Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

द्वितीय सेमेस्टर - बी0ए0एस0एल (N)- 102

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **बी0ए0एस0एल (N)-102**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय, संकाय अध्यक्ष
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केन्द्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादन

डॉ0 नीरज कुमार जोशी
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ0 नीरज कुमार जोशी	**खण्ड 1**	(इकाई 1 से 3)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग	**खण्ड 2**	(इकाई 1)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**खण्ड 3**	(इकाई 1,2, 5,6)
श्री राहुल पन्त	**खण्ड 1**	(इकाई 4)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग		
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी		
डॉ0 योगेन्द्र कुमार	**खण्ड 2**	(इकाई 2 से 5)
असि0 प्रोफे0, संस्कृत विभाग, नेशनल पी0जी0 कालेज, बड़हलगंज ,गोरखपुर		
डॉ0 राजेश शुक्ल	**खण्ड 3**	(इकाई 3 एवं 4)
प्रवक्ता संस्कृत,लाड देवी शर्मा पंचोली, संस्कृत महाविद्यालय, भीलवाड़ा, राजस्थान		

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139 **कॉपीराइट** @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास
ISBN No. **प्रकाशन वर्ष :** 2024
मुद्रक:

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक **पृष्ठ संख्या 1 - 4**

(Section-A) संस्कृत गद्यकाव्य का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई-1 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास 5-17

इकाई-2 संस्कृत के प्रमुख गद्यकार 18-38

इकाई-3 प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों का सामान्य परिचय 39-55

इकाई-4 पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, वेतालपञ्चविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका और पुरूष परीक्षा का सामान्य परिचय 56-70

खण्ड- दो **पृष्ठ संख्या 71**

(Section-B) कादम्बरी (शुकनासोपदेश)

इकाई-1 आचार्य बाणभट्ट की कादम्बरी (शुकनासोपदेश) का विहंगावलोकन 72-86

इकाई-2 शुकनासोपदेश : गद्य भाग 87-98

एवं समतिक्रामत्सु.....मेदादोषं गुरूकरणम् तक (अर्थ एवं व्याख्या)

इकाई-3 असुवर्णविरचनमग्राम्यं से.....चिन्तितापि वञ्चयति तक (अर्थ एवं व्याख्या) 99-114

इकाई-4 एवंविधयापि .....सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक (अर्थ एवं व्याख्या) 115-127

इकाई-5 आत्मविडम्बनां ..... स्वभवनं आजगाम तक (अर्थ एवं व्याख्या) 128-139

खण्ड- तीन **पृष्ठ संख्या 140**

(Section-C) शिवराजविजयम्

इकाई-1 पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का परिचय एवं समय 141-153

इकाई-2 संस्कृत गद्यकाव्य के उपन्यास शिवराजविजय का विहंगावलोकन 154-174

इकाई- 3 शिवराजविजयम् : प्रथम नि:श्वास – 175-205

विष्णोर्माया.....से..... विरराम तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

इकाई- 4 तदाकर्ण्य विविध....से....स्वकुटीरं प्रविवेश तक (मूल, अर्थ, व्याख्या) 206-218

इकाई- 5 शिवराजविजयम् : द्विताय नि:श्वास – 219-251

रात्रिर्गमिष्यंति .....से..... यवनयुवकान तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

इकाई- 6 क्वचिद अहो..... चरणौ प्रणनामतक (मूल, अर्थ, व्याख्या) 252-291

खण्ड - प्रथम – Section-A
संस्कृत गद्यकाव्य का परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई-1 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास
1.3.1 संस्कृत गद्यकाव्य का प्रयोजन
1.3.2 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव
1.3.3 संस्कृत गद्यकाव्य का विकास
1.3.4 संस्कृत गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों !

स्नातक द्वितीय सेमेस्टर, प्रथम प्रश्न पत्र, संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की प्रथम इकाई है। वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे ''गाथा'' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। वैदिक गद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है। संस्कृत गद्य का आरम्भ ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के गद्य में देखा जा सकता है। बहुत दिनों तक सरल स्वाभाविक शैली में गद्य लिखने की परम्परा चलती रही। समय के साथ गद्य में भी काव्य के उपादानों को प्रविष्ट कराने की प्रवृत्ति का जन्म हुवा। आरम्भिक शिलालेखों में गद्य-काव्य प्राप्त होते हैं। रूद्रदामन का गिरनार-शिलालेख तथा हरिषेण रचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति महत्वपूर्ण गद्य काव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। संस्कृत में गद्य-काव्य की रचना बहुत कम हुई है। पद्य की अपेक्षा अधिक श्रम, आलोचकों की उपेक्षा तथा ऊँचा मानदण्ड ये तीन मुख्य कारण हैं जिसके चलते गद्य की ओर कवि अभिमुख नहीं होते थे। उक्त बातों को यह उक्ति पुष्ट करती है-''**गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति**''

उपर्युक्त परेशानियों के बावजूद भी संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य की रचना हुई। यह रचना प्रायः छठी-सातवीं शताब्दी में गद्य काव्य के दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट के द्वारा की गई। दण्डी का दशकुमारचरितम्, सुबन्धु की वासवदत्ता एवं बाणभट्ट की कादम्बरी तथा हर्षचरितम् संस्कृत साहित्य के उत्कृष्टतम गद्य काव्य हैं। लगभग1200 वर्ष बाद उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजयम्' लिखकर बीच के खालीपन को दूर करने का प्रयास किया। इनके अतिरिक्त गद्य रचना विभिन्न कालों में प्रायः बाण का अनुकरण ही प्रतीत होता है। इस इकाई में आप संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव किस प्रकार हुआ, गद्यकाव्य का प्रयोजन क्या है, गद्यकाव्य का विकास, गद्यकाव्य के भेद के बारे में अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकेंगे कि संस्कृत गद्यकाव्य काउद्भव किस प्रकार हुआ। साथ ही गद्यकाव्य का विकास क्रम के विषय में विस्तार से विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा का विकास किस प्रकार हुआ यह बता सकेंगे।
- गद्यपरम्परा से सम्बन्धित महत्त्व पूर्ण तथ्यों का अध्ययन कर सकेंगे।
- गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गद्यकाव्य के विकास क्रम के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

1.3 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास

मुख्य रूप से काव्य के तीन भेद माने गए हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य तथा चम्पू जिसे मिश्रितकाव्य भी कहते हैं। मानव संवेदनशील प्राणी है। उसके आसपास का वातावरण एवं परिस्थितियॉ उसके मानस को प्रभावित करके भावों तथा विचारों को जन्म देती हैं, जिन्हें वह

शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। सामान्य ज्ञान किसी बात को साधारण ढंग से कह देता है, परन्तु कवि निजवैशिष्टय आरै और प्रतिभा के कारण उस कथन को इस रूप में संप्रस्तुत करता है कि उसका प्रभाव श्रोता या दर्शन पर तत्क्षण होता है। उसके शब्द चयन में चमत्कार तथा अद्भुत विलक्षणता होती है कवि प्रजापति है संसार का निर्माण करने वाला है कवि की रुचि के अनुकूल ही उसकी सृष्टि बन जाती है। **यथा—'अपारे काव्यसंसारे किवरेवप्रजापति:। यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते'।।(अग्निपुरण-336/10)** काव्य शब्द का सम्बन्ध कवि शब्द शहर व्याकरण की दृष्टि में कवि का भाव कर्म ही काव्य कहलाने का अधिकारी है। कई शब्द भारतीय साहित्य में बड़ा ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। निरूक्तकार महर्षि यास्क 'कवय: क्रान्तदर्शिन' कहकर स्पष्ट क्रांतदर्शी के रूप में स्मरण किया है। **'कवेयोऽप्यत्र मोहिता:' (गीता-4/16) 'सन्यासं कवयोपिदु:' (गीता-16/2)** आदि के रूप में उलझ कर गीता में इसे विशेषवेत्ता के रूप में स्मरण किया गया है। अमरकोषकार— 'संख्यावान पण्डित: कवि:' लिखकर कवि को पंडित के रूप में जाना है।

भारतीय परम्परा के अनुसार सभी विद्याओं के मूलस्रोत वेद हैं। सभी की उत्पत्ति और विकास के मूल तत्वों का अनुसंधान वेद से ही किया जाता है। आधुनिक पश्चात्य विद्वानों ने भी ऋग्वेद को ही विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया है। यद्यपि साहित्यशास्त्र का वेदों में कोई साक्षात संबंध नहीं दिखता है ना उसे वेदांगों में ही परिवर्तित किया जाता है, फिर भी वेद को ईश्वर का अमर काव्य कहा जाता है। यथा— **'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति'** ब्रह्मा को, जिनके नि:श्वासभूत वेद है, कवि की संज्ञा दी जाती है— **'कविर्मनीषी परिभू: स्वयम्भू'** अर्थात् कवि की कृति ही काव्य कहलाती है। आचार्यों ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर कहा है। पण्डित जगन्नाथ को छोड़कर प्राय: सभी आचार्य शब्द अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं।

काव्य का स्वरूप या तो गद्यमय होता है या पद्यमय होता है या गद्य-पद्य मिश्रित इनमें गद्य ही प्रधान है, क्योंकि गद्य मानव के प्रारम्भिक भाषा है। मानव जब बोलना प्रारम्भ करता है, तब पहले गद्य ही बोलता है। वह अपने भावों को जितनी स्पष्टता से गद्य में व्यक्त कर पाता है, उतनी पद्य में नही। दूसरा पद्य रचना सबसे लिए सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रतिभा, शक्ति, संस्कार और अभ्यास की आवश्यकता होती है। यद्यपि सभी गद्य भी काव्य नहीं कहे जा सकते हैं। पद्य के एक पद में भी चमत्कार हो तो पूरा पद्य चमत्कारी मान लिया जाता है। किन्तु गद्य की यह स्थिति नहीं है। उसका प्रत्येक शब्द कुछ ना कुछ विशेष चमत्कार लिए होना चाहिए, तभी वह उत्तम माना जाता है। इसलिए गद्यकाव्य को कवियों की कसौटी कहा गया है।

संस्कृतसाहित्य में गद्य की परम्परा वैदिक संहिताओं के समान प्राचीन कही जाती है। पद्य की अपेक्षा गद्य को संस्कृतसाहित्य में अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि गद्य के लेखक को अपने भावों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण छूट है, किन्तु पद्य में छन्द अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ आदि का बन्धन रहने से लेखक को उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती । इसलिए गद्य के सम्बन्ध में यह उक्ति है- **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** गद्य कवियों के लिए एक कसौटी है, जिसमें जितना प्रबल वैदुश्य रहेगा, वह कवी उतना ही उत्तम गद्य लिख सकता हैं।

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, निरुक्त, महाभारत, पुराण प्रवृत्ति ग्रन्थों से संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्द्धनशील परम्परा प्राप्त हुई है। आगे चलकर टिकाओं, कथाकाव्यों आख्यायिका ग्रन्थों तथा चम्पू, नाटक आदि में भी गद्य का प्रौढ़ रूप सामने आया है । यहां तक कि, तत्वज्ञानसम्बन्धी

दार्शनिक ग्रन्थों में, ज्योतिषशास्त्रों में तथा व्याकरण के ग्रन्थों में भी गद्य को फूलने-फलने और अपना विकास करने की पूरी सुविधाएँ प्राप्त रही हैं।

ऐतिहासिक गवेषणाओं से प्रतीक होता है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अंश वैदिक वांग्मय में गाथाओं का अस्तित्व बड़ा ही प्रभावोंत्पादक एवं महत्वपूर्ण रहा है। वैदिकसाहित्य में भाषा, आख्यान, इतिहास एवं पुराणों का स्पष्ट उल्लेख है, जो धार्मिक संस्कारों या यज्ञ के अवसरों पर सुनाये जाते थे। इसमें गद्य के साथ पद्यों का भी मिश्रण है।

गद्यभाषा की प्राचीनतम गाथा एवं आख्यायिकाएँ आज हमें उपलब्ध नही है, फिर भी प्रचीन ग्रन्थ है, इस सम्बन्ध में हमें पर्याप्त विवरण उपलब्ध करा देते हैं। सुप्रसिद्ध वैयाकरण वार्तिकार कात्यायन 400 ई0 पू0 हमें आख्यायिका से सुपरिचित जान पढ़ते हैं । दूसरे महावैयाकरण महाभाष्यकार भगवान पतञ्जलि 200 ई0 पू0 के सम्बन्ध में ऐसा विश्वास है कि वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी नामक अख्यायिकाओं को अपने हाथों से उलट-पुलट चुके थे। उनका महाभाष्य तो गद्य की समृद्धि का पूर्ण परिचायक है। रुद्रदामन का गिरिनार शिलालेख 150 ई0 भी गुप्तकाकलिक शिलालेख और विभिन्न स्थानों में सैकड़ों अभिलेखों को देखकर गद्य के प्राचीन अस्तित्व का सहज में अन्दाजा लगाया जा सकता है। कथाकार बाणभट्ट ने एक सिद्धहस्त गद्यकार भट्टारक का नाम उद्धृत किया है। उसी प्रकार कलहण के कथानुसार बररुचिकृत चारुमति, रोमिल्ल सोमिल्लकृत शूद्रककथा तिलकमंजरीकार धनपाल के कथानुसार श्रीपालिकृत तरंगवतीकथा तथा अन्धभृत्य सातवाहन राजाओं के समय में लिखे गए शतकर्णीहरण, नमोवन्तीकथा आदि ग्रन्थ भी प्राचीन ग्रन्थ की परम्परा का समर्थन करते हैं।

इन कथाकृतियों के कारण ही दण्डी, सुबन्धु, बाणभट्ट जैसे अद्भुत गद्यकारों की प्रतिभा को हम पा सके हैं। आचार्य दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ये तीनों ही संस्कृत के गद्य वैभव के स्वामी है । फिर भी यह स्मरणीय है कि इनके पूर्व भी संस्कृत के गद्य लेखन की परम्परा अवश्य विद्यमान थी । दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में शास्त्रीय गद्य का अवतरण करने वाले तीन विद्वानों शबरस्वामी 400 ई0, स्वामी शंकराचार्य 700 ई0 तथा जयन्तभट्ट 900 ई0 के नाम उल्लेखनीय हैं। पौढ़मीमांसा शबरस्वामी का कर्म मीमांसाभाष्य, स्वामी शंकराचार्य कृत ब्रह्मसूत्र, गीता एवं उपनिषद के भाष्य सुप्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट के न्यायमंजरी आदि दर्शनग्रन्थ गद्य का परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप उपस्थित करते हैं ।

गद्यकाव्य के क्षेत्र में इस प्रकार के प्रबुद्ध, लोकप्रिय, श्लाघ्य गद्य के प्रवर्तन दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट की कृतियों से लक्षित होता है । यद्यपि गद्य का वैभवशाली रूप, जिससे संस्कृत भाषा को आगे बढ़ाने का पर्याप्त अवसर हमें दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट की रचनाओं में मिलता है । फिर भी यह सुनिश्चित मत है कि गद्य परम्परा दण्डी आदि से भी पहले की है। दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट इन तीनों गद्यकार कवियों ने अपनी-अपनी स्वतन्त्र शैलियों को दिया, जो अत्यन्त ही रोचक थी, इसी परम्परा को आगे के गद्यकार इनका ठीक-ठीक अनुकरण करने में समर्थन हो सके ।

1.3.1 संस्कृत गद्यकाव्य का प्रयोजन

प्रयोजन के बिना किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नही होती है। अतः साहित्य ग्रन्थों के काव्य में अनेक प्रयोजन कहे गए हैं । कुछ लोगों की धारणा है कि काव्य प्रायः श्रृंगारात्मक होने के कारण बिषयी लोगों के मनोरञ्जन का साधन मात्र है। किन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि काव्य में अध्ययन

मैं धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, दार्शनिक एवं व्यावहारिक ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। सत्काव्य के अनुशीलन से सभी मनोभिलास पूर्ण हो सकते हैं। भामह ने अपने काव्यालंकार में धर्म, अर्थ और काम के अतिरिक्त सत्काव्य को मोक्ष का साधन तथा विभिन्न कलाओं के ज्ञान का धारण भी माना है। काव्यालंकार में कहा गया है—

धर्मार्थ काममोक्षाणां वैचक्षण्यं कलासु च ।
प्रीतिं कारोति कीर्तिं च साधुकाव्यनिषेवणम् ।। काव्यालंकार 1/2

आत्मज्ञान के लिए वेदों में, धर्म के लिए धर्म शास्त्रों में और नीति के लिए नीति ग्रन्थों में पचुर उपदेश हैं, किन्तु उनका मार्ग अत्यत गूढ़, दुर्गम एवं दुर्भेद्य होने के कारण उनमें प्रवेश पाना दुष्प्राप्य है। वेद में प्रभुसम्मित शब्द हैं, वे राजज्ञा के समान आत्म ज्ञान का उपदेश करते हैं। और और धर्मशास्त्र में सुहृदसम्मित शब्द हैं जो मित्र की तरह हित एवं अहित को समझाते हैं, किन्तु जो लोग उनके उपदेशों में रुचि नहीं रखते, ऐसे लोगों को उनके द्वारा शिक्षा पाना कठिन है। अतः उनके निमित्त काव्य द्वारा ही सदुपदेश उपयुक्त हो सकता है, क्योंकि काव्य में कान्तासम्मित शब्द हैं। जिस प्रकार कामिनी अपने प्रियतम को हाव-भाव कटाक्ष आदि की मधुरता से अनुरक्त करके अपने अनुकूल कर लेती है, उसी प्रकार सत्काव्य में भी वेदशास्त्रों से विमुख जनों को अपने मधुर श्रृंगार आदि रसों की सरसता से अपने में अनुरक्त करके सदुपदेश देता है। काव्य द्वारा उपदेश रुचिपूर्वक सेवन किया जा सकता है। अत: निर्विवाद सिद्ध है कि काव्य का अध्ययन मनोरञ्जन मात्र नहीं किन्तु अत्यन्त प्रयोजनीय, सहज और सुख साध्य होने के कारण अन्य मार्गों से विलक्षण है।

अनादिकाल से इस भूमण्डल पर असंख्य राजा-महाराजा एवं यशस्वी सम्राट हो गए हैं। किन्तु उनमें से जिन के विषय में कुछ नहीं लिखा गया है, उनका कुछ भी स्मृतिचिन्ह अवशेष नहीं है, किन्तु जिनका चरित्र काव्यों में अंकित है उन्हीं का सुयश चिरस्थायी रह गया है। बिल्हण ने ठीक ही कहा है कि जिस राजा के दरबार में बड़े-बड़े कविराज नहीं रहते, उनके यश का प्रसार नहीं होता—

महीपते: सन्ति न यस्य पाश्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि।
भूपा: कियन्तो न बभूवुरूर्व्या नामापि जानाति न कोऽपि तेषाम्।।

लोकव्यवहार का ज्ञान, दुख की निवृत्ति, ब्रह्मानन्द के समान सुख की उपलब्धि और कान्ता सम्मित सदुपदेश का लाभ बतलाया है। काव्यप्रकाश में कहा गया है —

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षये।
सद्य: परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। काव्यप्रकाश 1/1

1.3.2 संस्कृत गद्यकाव्य का उद्भव

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य की परम्परा को वैदिक संहिताओं जितना प्राचीन कहा जा सकता है । साहित्य के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि गद्य काव्य का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही हुआ है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद ग्रन्थों, निरुक्त, महाभारत और महाभाष्य आदि-आदि ग्रन्थों में संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्धनशील परम्परा उपलब्ध हुई । आगे चलकर गद्यकाव्य का पौढ़ रूप सामने आया तत्वज्ञान, दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, भाषाशास्त्र, व्याकरण आदि ग्रन्थों में भी गद्य को पुष्पित-पल्लवित करने की पूरी सुविधाएं प्राप्त रही। आरंभ में ऐतिहासिक गवेषणाओं से हमें प्रतीत होता

है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अंश वैदिकसाहित्य में गाथाओं का अस्तित्व बड़ी प्रभावोत्पादक रीति से स्वीकार किया गया है। प्रारम्भ में यद्यपि गद्य रचना को काव्य कौशल का कारण माना जाने लगा था गद्य कृतियों को काव्य न कह कर उसको कवियों की कसौटी माना जाने लगा था, तथापि हम देखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि आत्मश्लाघा एवं काव्य कौशल के लिए कवियों ने ऐसे गद्य का निर्माण किया जो समासबहुल, अतिदुरूह और पाण्डित्य प्रदर्शन से भरपूर था। हम देखते हैं कि एक छोटी सी कथा को विभिन्न प्रसंगों में उलझा कर, इतना जटिल बना दिया गया कि मुख्य कथा को समझना ही दुष्कर हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल से ही गद्य काव्य का उद्भव एवं उत्कर्ष प्रारम्भ हो चुका था।

1.3.3 संस्कृत गद्यकाव्य का विकास

संस्कृत में गद्य काव्यों की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं। वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक गद्य के विकास का क्रम अत्यन्त मनोरम है। यह प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में- संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में देखा गया है। साहित्य जहाँ प्रारम्भ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है, वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। यहाँ तक कि ज्योतिष, गणित, व्यवहार, आयुर्वेद जैसे शास्त्रीय विषयों में भी संस्कृत साहित्यकारों ने पद्य का ही आश्रय लिया। गद्य का प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों, भाष्यों, आख्यायिकाओं तथा आंशिक रूप से नाटकों में हुआ है। संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है। लेखकों और पाठकों का रूझान पद्य की ओर अधिक रहा है। कंठस्थ करने में सरल होने के कारण गद्य जनप्रिय रहे हैं, वह भी उस समय में जब अध्ययन-अध्यापन मख्य रूप से मौखिक ही होता था। 'रामायण', 'महाभारत' तथा विशाल पुराण साहित्य पद्य में ही रचे गये थे, किन्तु शीघ्र ही गद्य ने अपने व्यवहारिक महत्व के कारण, साहित्य में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लिया और उसे कवियों की सच्ची कसौटी माना जाने लगा।

साहित्य की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य को हम मुख्यतः छः भागों में विभाजित कर सकते हैं—1. वैदिकगद्य, 2. दार्शनिकगद्य, 3. सूत्रात्मकगद्य, 4. पौराणिकगद्य, 5. शास्त्रीयगद्य, 6. लौकिकगद्य। वैदिक साहित्य में गद्य के दो प्रकार के रूप मिलते हैं— वैदिक काल में सामान्य बोल चाल का गद्य तथा लौकिक संस्कृत का प्रोढ़, समास युक्त, दोनों प्रकार के गद्यों में अपना विशिष्ट सौन्दर्य है। वैदिक गद्य में सीधे-साधे छोटे-छोटे शब्दों का प्रयोग पाते हैं। वैदिक गद्य में यज्ञादि विधान का उद्देश्य होता था, वहाँ पाण्डित्यप्रदर्शन का कोई भाव नही है। वहा उपमा तथा रूपक का कमनीय सन्निवेश वैदिक गद्य को विदग्धों की दृष्टि से हृदयावर्जन बनाये हुए हैं। उक्त कथन की पुष्टि अथर्ववेद के 15 वें काण्ड से कर सकते हैं— **व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरसत्। स प्रजापतिःसुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललाममभवत्, तन्महदभवत्,तदज्जेष्ठमभवत्,तद् ब्रह्माभवत् तत्ततोऽभवत्तत्सत्यमभवत्, तेन प्रजायत्।** एतेरेय ब्राह्मण में पद्य इस रूप में प्राप्त होता है— **'अग्निर्वे देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः। आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति'।** स्पष्ट है कि वैदिक गद्य सरल और सहज रूप में थे।

वैदिकगद्य और लौकिक संस्कृत के गद्य को मध्य में मिलाने का काम पौराणिक गद्य करता है। पौराणिकगद्य भारतीय इतिहास और परम्परा के विश्वकोष हैं। पुराणों में वैदिकसाहित्य का ही लोक के लिये सुगम भाषा और शैली में पल्लवन हुआ है। व्याकरण, साहित्य, धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष तथा अन्य शास्त्रों का भी इनमें समावेश हैं। श्रीमद्भागवद् में कहा गया है- ''अखिल ब्रह्माण्ड की सृष्टि स्थिति व लय की विचित्र पहेली का सुन्दर समाधान एकमात्र पुराण ही है''। इसी विवेचन के कारण पुराणों को पाँचवा वेद कहा गया है। ''महर्षि वेदव्यास ने मानव जाति के कल्याण एवं मंगल के लिए वेदों के मंत्रों का एवं उनके रहस्यों को पुराणों में भाष्य के रूप में अभिव्यक्त किया है। इसी महत्ता के कारण पुराणों को जनकल्याण के लिए वदों का विस्तृत भाष्य कहा जाता है। गद्य लेखन की इस परम्परा को पौराणिकों ने भी स्वीकार किया। महाभारत, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण का गद्य इसका स्पष्ट उदाहरण है। महाभारत का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है—**'तस्येदानीं तमस: सम्भवस्य पुरूषस्य ग्रह्मयोनेब्रह्मण: प्रादुर्भावे स पुरूष: प्रजा: सिसृक्षमाणो नेत्राभ्यामग्नीषोमौ'** यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ में परम पुरूष के अग्नि से चन्द्रमा की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

वैदिक काल एवं पौराणिकगद्य के अनन्तर गद्य साहित्य के विकास में शास्त्रीयगद्य का भी बहुत योगदान रहा। सूत्रात्मकता तथा साररूप में चिन्तन को व्यक्त करने की क्षमता इस गद्य की विशेषता है। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष को प्रस्तुत करने की विशेष शैली इसमें विकसित हुई। इसके प्राचीन रूप सूत्र ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं। आगे चलकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पतञ्जलि के महाभाष्य आदि में इस प्रकार के गद्य का स्वरूप विकसित हुआ।

शास्त्रीयगद्य की आधारशिला एक प्रकार से निरुक्त में रखी जा चुकी थी। इसका सम्बन्ध गम्भीर चिन्तन और विषय विश्लेषण से था। दर्शनशास्त्रों के सूत्र इसी गद्य प्रकार में विकसित हुए। पतञ्जलि का महाभाष्य, शबरस्वामी का शावरभाष्य, शंकराचार्य का शारिकाभाष्य, जयन्त भट्ट की न्यायमंजरी, आचार्य आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक, अभिनवगुप्त की टीकायें, सायणाचार्य का वेदभाष्य इत्यादि उत्कृष्ट शास्त्रीय गद्य के उदाहरण हैं। अष्टाध्यायी के वार्तिककार कात्यायन ने आख्यायिका का साहित्यिक रचना के रूप में दो बार उल्लेख किया है। पाणिनि के सूत्र ''अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'' पर टिप्पणी करते हुए कात्यायन ने आख्यायिका का उल्लेख किया है। इस विषय में ईसा से तीसरी शताब्दी के पूर्वार्ध में महाभाष्य के प्रणेता पतञ्जलि का भी साक्ष्य उपलब्ध होता है। पतञ्जलि ने वासवदना, सुमनोत्तरा और भैभरथी इन तीनों आख्यायिकाओं के नामों का उल्लेख किया है, ये तीनों आख्यायिकाएँ वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। यह वासवदना न तो सुबन्धु की 'वासवदना' है और न ही बाण के द्वारा उल्लिखित 'वासवदना'। पतञ्जलि के द्वारा इन ग्रन्थों का उद्धरण ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी में 'गद्य काव्यों' की उप्लब्धता को सिद्ध करता है।

तिलकमंजरी में श्रीपालित की तरंगवती नाम की कथा का उल्लेख किया गया है राजा हाल की सभा का सदस्य होने के कारण श्रीपालित का काल ईसा की द्वितीय शताब्दी माना जा सकता है। इसी प्रकार रामिल एवं सोमिल के द्वारा रचित शूद्रक के चरित्र पर आधारित 'शूद्रक कथा' का तथा भट्टारक हरिश्चन्द्र के द्वारा रचित कथाओं का उल्लेख उपलब्ध होता है। परन्तु ये सब रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं।

साहित्यिकगद्य का प्रारम्भ तो ऐतिहासिक गद्यकाव्य की आत्मभूत आख्यायिकाओं से ही हो चुका था। इनमें से सबसे प्राचीन दण्डी, सुबन्धु एवं बाण की कृतियां उपलब्ध हैं जो भारतीय गद्यकाव्य के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करती हैं। सुबन्धु की वासवदत्ता नाम की कथारचना संस्कृत साहित्य में प्रथम कथा के नाम से जानी जाती है। प्राचीन ग्रन्थों के अभाव में संस्कृत गद्यकाव्य के विकास का वर्णन एक कठिन कार्य है। संस्कृत के गद्यकाव्य में कथासूत्र अथवा पात्रों के साहसपूर्ण कर्मों का वर्णन न्यून रूप में मिलता है और शस्त्रीय अलंकरणों, प्रकृति के सूक्ष्म वर्णनों और शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक गुणों से युक्त विस्तृत चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया गया है।

इस प्रकार संस्कृत गद्यकाव्य का सम्पूर्ण विकास स्वतन्त्र रूप से भारतवर्ष में हुआ। आख्यायिका का विकास प्रशस्तियों में काव्यशैली का समन्वय करने से हुआ, निश्चित रूप से साहित्यिक गद्य का स्पष्ट उदाहरण अभिलेखों में प्राप्त होता जैसा कि रुद्रदामन के गिरिनार शिलालेख तथा समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भलेख में देखा जा सकता है। इनमें अलंकृत वर्णनात्मक गद्यकाव्य में संक्षिप्त ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार गाथाओं की सामग्री पर आश्रित 'कथा' को, लौकिक एवं अलौकिक घटनाओं एवं उद्देश्यों के साथ मुख्य कथानक में रखने की चेष्टा की गई है। क्योंकि ये गद्यकाव्य सुसंस्कृत पाठकों के लिए लिखे गए हैं अतः इनमें सब प्रकार के वर्णन अतीव अलंकृत भाषा में उपलब्ध होते हैं।

1.3.4 संस्कृत गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार

आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथालिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा।।

अग्निपुराण में (336/12) गद्यकाव्य के पाँच भेदों का वर्णन मिलता है। दण्डी आदि आचार्यों ने संस्कृत गद्यकाव्य के दो ही मुख्य भेद किये हैं- कथा और आख्यायिका। यथा—

अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातय: । काव्यादर्श 1/28

संस्कृतसाहित्य में गद्य-रचनाएं प्राचीनकाल से ही प्राप्त होती हैं। यजुर्वेद के गद्य सूक्तों एवं अथर्ववेद के कुछ गद्य भागों के अतिरिक्त ब्राह्मण एवं उपनिषद बहुत प्राचीन गद्य रचनाओं के उदाहरण हैं। इन ग्रन्थों में कहीं-कहीं आख्यान भी हैं उदाहरणतः ऐतरेय एवं शतपथ ब्राह्मण के आख्यान, उपनिषदों में सत्यकाम जाबाल इत्यादि की कथाएँ मिलती हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा पतञ्जलि का महाभाष्य भी गद्य में लिखे हुए है। परन्तु उनकी शैली का उद्देश्य तथ्यों का उद्घाटन करना है। गहन-विषयों का शास्त्रीय विश्लेषण एवं विवेचन ही उनका मुख्य उद्देश्य है। अभिव्यक्ति के परिष्कार, अलंकरण अथवा विस्तार का कोई प्रयत्न नहीं किया गया न ही मनोरंजन उनका उद्देश्य है। परन्तु गद्य काव्यों की बात बिल्कुल इनके विपरीत है।

संस्कृत अलंकारिकों में भामह ने प्रथमत: गद्य भेद की अवतारणा अपने काव्यालंकार में की। उनके अनुसार आख्यायिका की कथावस्तु वास्तविक होती है, जिसे कवि स्वयं वक्ता रूप में प्रकट करता है आख्यायिका के विभागों का नाम उच्छवास होता है जिसके आदि और अन्त में भावी घटनाओं के सूचक श्लोक होते हैं, जो वक्त्र या अपरवक्त्र छन्द में निबद्ध होते हैं। कथा की कथावस्तु कवि की निजी कल्पना होती है जिसका वक्ता नायक से कोई इतर व्यक्ति होता है। इसमें आख्यायिका के सामने उच्छवास का विभाग रहता है ना वकत्रादि व्रत्तों की सत्ता दण्डी के

अनुसार कथा और आख्यायिका में किसी मौलिक भेद तथा पार्थक्य की कल्पना सम्भव नहीं है। उनका स्पष्ट मत है—

तत्कथाख्यायिकेत्येका जाति: संज्ञाद्वयांकिता।

अर्थात् ये दोनों भेद एक ही गद्यरूपा जाति के हैं। केवल नामकरण में ही विभिन्न संज्ञायें उपलब्ध होती हैं। आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में काव्यस्वरूप निरूपण प्रसंग में काव्य के दो भेद बताए हैं- दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। दृश्य काव्यों में नाटक, प्रहसन आदि रूपकों तथा उपरूपकों का विशद् विवेचन है। श्रव्य काव्यों का पुनः द्विधा विभाग किया पद्यकाव्य तथा गद्यकाव्य। गद्यकाव्य को परिभाषित करते हुए गद्य के चार प्रकार बताए गए- (1) मुक्तक (2) वृत्तगन्धि (3) उत्कलिकाप्राय: (4) चूर्णक।

वृत्तगन्धोज्छितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्।।

इन भेदों का कथन रचनाशैली, समासशैली, पदसमावेश आदि के आधार पर किया गया है।

1- समास से रहित गद्य रचना अर्थात् सरस पदावली, असमस्त पद युक्त रचना को मुक्तक कहते हैं। यथा- **'गुरुर्वचसि-पृथुरुरसि'** इत्यादि इसमें प्रत्येक पद्य मुक्त होता है।

2- जहाँ गद्य में छन्द के अंश आ जाएँ अर्थात् वृत्तों के अंश यत्र-तत्र प्रतित हुआ करें उसे वृत्तगन्धि कहते हैं। जैसे- **समरकण्डूल निविडभुजदण्ड कुण्डलीकृतकोदण्ड शिजिंनीटंकारोज्जागरितवैरिनगर** - यहाँ 'कुण्डलीकृतकोदण्ड' पद अनुष्टुप् छन्द का चरण है और समरकण्डूल पद भी पहले के दो अक्षरों को हटा देने पर अनुष्टुप् छन्द का चरण बन जाता है।

3- जहाँ लम्बे-लम्बे समस्त पदों से युक्त गद्य हो वह उत्कलिकाप्राय कहलाता है। जैसे- **'अणिसविसुमरनिशितशरविसरविदलितसमरपरिगतप्रवरपरबलः'(अनिशविसृमरनिशितशरविसरविदलितसमरपरिगतप्रवरपरबल..)** इत्यादि। प्रस्तुत गद्य में लम्बा समस्त पद परिलक्षित होता है।

4- जिस गद्य रचना में अल्पसमास हो अर्थात् जिसमें छोटे-छोटे समस्त पदों का उपनिबन्ध हो उसे चूर्णक कहते हैं। जैसे- कामनीमदन, जनरंजन, इत्यादि। विश्वनाथ ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है—

अद्यं समासरहितं वृत्त भागयुतं परम्।
अन्यद् दीर्घसमासाढयं तुर्यं चाल्पसमासकम्।।

साहित्यदर्पण में स्पष्ट रूप से आचार्य विश्वनाथ ने कहा है- कथा में गद्य द्वारा सरस कथानक का निर्माण होता है, इसमें कहीं-कहीं आर्या छन्द, कहीं वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों में भी रचना होती है। इसके आरम्भ में नमस्कार और खल आदि का वर्णन करते रहता है। दूसरी और आख्यायिका भी कथा को सामान होती है जिसमें कवि वंश का भी वर्णन करता रहता है। इसमें अन्य कवियों का भी कहीं-कहीं पद्यात्मक वर्णन होता है। कथा भाग के खण्डों को आश्वास (उच्छवास) कहते हैं।–

कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवेदार्या कवचिद्वक्त्रापवक्त्रके।

आदौ पद्यैर्नमस्कार: खलादेर्वृत्तकीर्तनम्।।
आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम् ।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्त पद्यं क्वचित्क्वचित्।।
कथांशानां व्यच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित् ।।
अन्यापदेशे नाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।

कथा में कथावस्तु कविकल्पित होती है, कथा का विभाजन नहीं होता है इसमें रसयुक्त इतिवृत्त की रचना होती है। कथा में कहीं-कहीं आर्या छन्द, कहीं वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दों में भी रचना होती है। कथा के आरम्भ में नमस्कारात्मक मंगलाचरण किया जाता है। दुर्जननिन्दा तथा सज्जनप्रशंसा सम्बन्धी पद्यों का निबन्धन भी इसमें किया जाता है। बाणभट्ट की कादम्बरी इसका उदाहरण है।

आख्यायिका में ऐतिहासिकता होती है, इसमें प्राचीन कवियों की प्रशंसा पद्य में और कवि का वंश वर्णन गद्य में होता है। इसमें प्रायः कथा की ही विशेषताएं रहती हैं। कवि अपने वंश का अनुकीर्तन करता है। अन्य कवियों की चर्चा भी प्रसंगानुसार करता रहता है। इसमें पद्यसूक्तियाँ भी रहती हैं। आख्यायिका में कथाशों का विभाग उच्छवासों या नि:श्वासों में विभक्त होता है। आख्यायिका में कवि अपना वृत्तान्त देकर मुख्य कथा को आरम्भ करता है। इसमें आर्या, वक्त्र, अपवक्त्र किसी एक छन्द के द्वारा वर्णनीय विषय की जानकारी भी दी जाती है। यथा - 'हर्षचरितम्'।

इन दोनों में समानता के तथ्य भी बहुत हैं जैसे- दोनों की रचना संस्कृत गद्य में होती है। गद्य की शैली दोनों में समान रहती है। रसों और भावों का समान रूप से प्रयोग होता है। नगर, वन, सरोवर, राजा, राजसभा, प्रेम आदि का समान रूप से वर्णन हो दोनों में होता है। इसलिए दण्डी ने इन दोनों के भेदों के प्रति अरुचि दिखाई है। कुल मिलाकर उच्छवासों में विभाजन तथा कथावस्तु का स्वरूप यही दो बिन्दु इनके परम्परागत अन्तर रह जाते हैं। अग्निपुराण में इन दो भेदों के अतिरिक्त भी अन्य भेद कहे गये हैं। प्राचीन गद्यकाव्य कथा और आख्यायिका ही हैं।

बोध प्रश्न:-

अभ्यास प्रश्न (1)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. मुख्य रूप से काव्य के कितने भेद माने गए हैं-

(क) तीन (ख) चार

(ग) छ: (घ) दो

2. साहित्य की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य को मुख्यतः कितने भागों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) तीन (ख) छ:

(ग) चार (घ) दो

3. महाभाष्य के रचयिता हैं-

(क) मनु (ख) पाणिनी

(ग) कौटिल्य (घ) पतञ्जलि

4. ध्वन्यालोक के रचनाकार हैं-

(क) शबरस्वामी (ख) शंकराचार्य

(ग) आनन्दवर्धन (घ) जयन्त भट्ट

5. अष्टाध्यायी के वार्तिककार का क्या नाम है।

(क) पतञ्जलि (ख) कौटिल्य

(ग) कात्यायन (घ) इनमें से कोई नही

6. अग्निपुराण में गद्यकाव्यर के कितने भेदों का वर्णन मिलता है।

(क) पाँच (ख) पांच

(ग) तीन (घ) दो

7. हर्षचरित एक है-

(क) नाटक (ख) कथा

(ग) प्रकरण (घ) आख्यायिका

8. कादम्बरी कथा कितने भागों में विभक्त है-

(क) दो भागों में (ख) चार भागों में

(ग) तीन भागों में (घ) पांच भागों में

9. काव्यादर्श में कितने परिच्छेदों हैं।

(क) दो परिच्छेद (ख) नौ परिच्छेद

(ग) चार परिच्छेद (घ) तीन परिच्छेद

10. धनपाल का समय क्या है-

(क) दसवीं शताब्दी (ख) नवीं शताब्दी

(ग) आठवीं शताब्दी (घ) सातवीं शताब्दी

(2). रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:-

1. ..... काममोक्षाणां वैचक्षण्यंच कलासु च ।

2. ..... कथा खण्डकथा परिकथा तथा।

3. कथालिकेति मन्यन्ते ..... च पञ्चधा।

4. त्रयो दण्डीप्रबन्धाश्च ..... विश्रुता:।

5. ..... समासभूयस्व मेतद् गद्यस्य जीवितम्।

(3). निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर सही (√) गलत उत्तर पर (×) का चिन्ह लगाइए—

1. पुराणों को पाँचवा वेद कहा गया है। ( )

2. शंकराचार्य का शारिकाभाष्य गद्य साहित्य का उदाहरण है। ( )

3. तिलकमंजरी में श्रीपालित की तरंगवती नाम की कथा का उल्लेख किया गया है। ( )

4. सुबन्धु के बाद दूसरे गद्यकार बाण हैं। ( )

5. आचार्य विश्वनाथ ने दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य को काव्य के दो भेद माना है। ( )

6. कथा भाग के खण्डों को आश्वास (उच्छवास) कहते हैं। ( )

7. दण्डी का काल बाण के पश्चात सातवीं शती ई0 का अन्तिम चरण और आठवीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। ( )

8. दशकुमारचरित तीन उच्छवासों में विभक्त है। ( )

9. 11वीं शताब्दी में वादीभसिंह ने गद्यचिन्तामणि नामक गद्य काव्य लिखा। ( )
10. राजशेखरसूरी का समय14 वीं शताब्दी है। ( )

1.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने संस्कृत गद्यकाव्य के उद्भव एवं विकास को विस्तार पूर्वक पढ़ा। आपने जाना कि संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। उह मुख्यतया गद्य व पद्य दो भागों में विभक्त है। पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ, टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं, मुख्य रूप से महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, धनपाल, प्रभाचन्द्र, मेरुतुगाचार्य, राजशेखरसूरी, बामनभट्टबाण, विश्वेश्वरपाण्डेय आदि प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्यकारों ने गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर गद्य लेखन को समृद्ध किया। नवीन विधाओं में उपन्यास, निबन्ध, जीवनवृत्त, संस्मरण आदि लिखे जा रहे हैं। पण्डिता क्षमाराव, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, प्रो. रामकरण शर्मा, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हर्षदेव माधव, बनमाली बिश्वाल, नारायण दास, आदि आधुनिक संस्कृत गद्यकार गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर रहे हैं। जिसका अध्ययन आप इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

1.5 शब्दावली

आरम्भिक	-	शुरूवाद के
उत्कृष्टतम	-	सबसे अच्छा
मनोभिलास	-	मन के अनुकूल इच्छा
परिष्कार	-	शुद्ध
उच्छवास	-	आख्यायिका के अंक विभाजन का नाम
पार्थक्य	-	अलग
चूर्णक	-	गद्य काव्य का भेद
कविकल्पित	-	कवि द्वारा रचित
आर्या	-	छन्द का एक भेद
पूर्ववर्ती	-	पहले के
निष्णात	-	ज्ञानी
अवरूद्ध	-	रूका हुआ

1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न - उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. (क) 2. (ख) 3. (घ) 4. (ग) 5. (ग) 6. (क) 7. (घ) 8. (ग) 9. (घ) 10. (क)

(2).

1. धर्मार्थ
2. आख्यायिका

3. गद्यकाव्यं
4. त्रिषु लोकेषु
5. ओज:

(3).

1. सही	2. सही	3. सही	4. सही	5. सही
6. सही	7. सही	8. गलत	9. सही	10. सही

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन, कस्तुरवानगर, वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बाभारतीअकादमी, वाराणसी।

3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास – जगन्नाथ पाठक सप्तम खण्ड, ।

4. अमरकोश – अमर सिंह

1.8 उपयोगी पुस्तकें

1. वासवदत्ता– सुबन्धु
2. कादम्बरी– बाणभट्ट, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3. दशकुमारचरित – आचार्य दण्डी
4. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गद्यकाव्य का प्रयोजन सिद्ध कीजिए ?
2. गद्यकाव्य का उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए ?
3. संस्कृत गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार का विवेचन कीजिए ?

इकाई-2 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकार

इकाई की रूप रेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकार
  2.3.1 सुबन्धु का जीवन परिचय
  2.3.2 बाणभट्ट का जीवन परिचय
  2.3.3 दण्डी का जीवन परिचय
  2.3.4 अम्बिकादत्तव्यास का जीवन परिचय
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

इससे पूर्व की इकाई में आपने संस्कृत गद्यकाव्य के उद्भव एवं विकास के बारे में जाना। प्रस्तुत इकाई में आप संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकारों के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे। संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आया है और प्राचीन काल में पद्य की अपेक्षा गद्य को अधिक सम्मान प्राप्त था। गद्य के विषय में संस्कृत में एक उक्ति है **''गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति''** अर्थात् गद्य कवियों की कसौटी है। इस प्रकार वेद, ब्रह्मण ग्रन्थों, उपनिषद् ग्रन्थों, निरुक्त आदि में संस्कृत गद्य साहित्य को सम्बर्द्धनशील परम्परा उपलब्ध हुई, तथा कलान्तर में विभिन्न रूपों में गद्य का प्रौढ़ रूप दिखाई पड़ा। गद्य साहित्य के प्रमुख गद्यकार के रूप में सुबन्धु, बाण, दण्डी एवं अम्बिकादत्तव्यास का प्रमुख स्थान है। उनके द्वारा संस्कृत गद्य साहित्य की श्री वृद्धि हुई है। इस इकाई के माध्यम से आप संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकारों के जीवन परिचय के बारें में परिचिति होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप—

- गद्य काव्य को सरलता से जान सकेगें।
- सुबन्धु के जीवन परिचय से परिचित हो सकेगें।
- बाणभट्ट के जीवन परिचय से परिचित हो सकेगें।
- दण्डी के जीवन परिचय से परिचित हो सकेगें।
- अम्बिकादत्तव्यास के जीवन परिचय से परिचित हो सकेगें।

2.3 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकार

2.3.1 सुबन्धु का जीवन परिचय—

सर्वानुक्रमणी में एक सुबन्धु का उल्लेख किया गया है जिनको ऋग्वेद के चार ऋषियों में से एक तथा गोपायन तथा लोपायन का पुत्र बताया गया है। एक और सुबन्धु है जिनका उल्लेख दण्डी ने किया है। नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त ने 'नाट्यायित' के दृष्टान्त के रूप में 'वासवदत्तानाट्यधारा' नामक रूपक का उल्लेख किया है जिसके कृत्तिकार का नाम उन्होंने महाकवि सुबन्धु बताया है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण में भी इसी रूपक का वर्णन मिलता हैं। शारदातनय ने अपने 'भावप्रकाशन' में सुबन्धु नामक एक नाट्यशास्त्री का उल्लेख किया है जिसने नाटक के पाँच विभाग किये है। लेकिन पी०वी० काणे के अनुसार यह सुबन्धु 'वासवदत्तनाट्यधारा' वाले सुबन्धु से भिन्न है।

'वासवदत्ता' के रचनाकार सुबन्धु उपर्युक्त सभी सुबन्धु नामक व्यक्ति से भिन्न हैं। इनकी एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' ही है जिसमें प्रदर्शित अपनी विद्वता और विलक्षण श्लेषयुक्त शैली के कारण सुबन्धु ने संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त किया है। 'वासवदत्त' की एक पाण्डुलिपि के अनुसार सुबन्धु को वररूचि की बहन का पुत्र बताया गया है। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ के तृतीय श्लोक के आधार पर आर०जी० हर्षे का अनुमान है कि दामोदर सुबन्धु के गुरु थे। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में सुबन्धु ने विष्णु की स्तुति दो श्लोकों में की है। जबकि शिव की

स्तुति में एक ही श्लोक लिखा है। इसके अतिरिक्त 'वासवदत्ता' में शिव की अपेक्षा विष्णु के संकेत बहुलता से मिलते है। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सुबन्धु वैष्णव थे, यद्यपि उन्होंने शिव और अन्य देवी देवताओं के प्रति भी अपनी श्रद्धा दिखायी हैं।

सुबन्धु का समय—

सुबन्ध का स्थितिकाल, समय, स्थान और वंश आदि का समय निश्चित नही है। सुबन्धु के माता-पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में सुबन्धु का काल निर्धारित कर पाना दुरुह कार्य हैं। कुछ स्रोतों के आधार पर सुबन्धु का सम्भावित समय प्राप्त किया जा सकता है। गद्यकाव्य के लेखकों में सुबन्धु ही सर्वप्रथम लेखक हैं। सुबन्धु वेद, धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, संगीत, नीतिशास्त्र और दर्शन आदि में निपुण थे। कुछ इन्हें कश्मीरी कुछ मध्यदेशीय स्वीकार करते हैं। बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण ये बाण के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

आचार्य वामन (800 ई०) ने 'काव्यलंकारसूत्र' में एक गद्यांश उद्धृत किया है— **कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेट पातिमत्तमातङ्गकुम्भस्थल – गलन्मदच्छटाच्छुरित चारुकेसरभार भासुरमुखे केसरिणि।** यही गद्यांश बाण के 'हर्षचरित' में भी समान रूप में पाया जाता है। अंशाधिक परिवर्तन के साथ ही उक्त गद्यांश सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में भी पाया जाता है- कुलिशशिखरखरनखर- प्रचयप्रचण्डचपेट-पातिमत्तमातङ्गकुम्भस्थल- रुधिरच्छताच्छुरित-चारुकेसरभासुर-केसरिकदम्बेन....। वामन और बाण के उद्धरणों में एकरूपता होने से यह प्रतीत होता है कि इस गद्यांश के सन्दर्भ में वामन बाण के 'हर्षचरित' से ही प्रभावित हुए होंगे क्योंकि बाण का काल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध लगभग माना गया हैं। बाण, हर्ष (606 से 648) के दरबारी कवि होने से बाण का समय (630-640 ई0) तक मानना उचित प्रतीत होता है। बाण से पूर्ववर्ती होने के कारण सुबन्धु का समय 600 ई0 के आस-पास मानना उचित है। अतः बाण इस समय के आधार पर वामन (800 ई०) पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। पुनः 'हर्षचरित' और 'वासवदत्ता' में उद्धरणों की साम्यता से यह प्रतीत होता है कि बाण ने सुबन्धु से इस गद्यांश को ग्रहण किया होगा क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में 'वासवदत्ता' नामक रचना का उल्लेख किया है। इसमें बाण ने 'वासवदत्ता को कवित्व के गर्व का नाशक बताया है। यह भी कहा जा सकता है कि बाण की उपरोक्त उक्ति भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' के बारे में भी हो सकती है लेकिन ऐसा सोचने के लिए कोई आधार नहीं है क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में भास का अलग से उल्लेख किया है। इसके अतिरक्त 'स्वप्नवासवदत्तम्' सरल शैली में रचित एक नाटक है, जिसमें श्लिष्टता या विद्धता का कोई विशेष पुट नहीं दिखता। अतः कहा जा सकता है कि कवियों का मान मर्दन कर सकने में कोई 'वासवदत्ता' सक्षम है तो वह है- सुबन्धु की 'वासवदत्ता'। अपने विद्वतापूर्ण वर्णनों के कारण, जटिल श्लेषयुक्त सामसिक शैली के कारण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' को ही यह गौरव दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध डॉ० भोलाशंकर व्यास का विचार द्रष्टव्य है- हमें ऐसा प्रतीत होता है, बाण को सुबन्धु की कृति का पूरी तरह पता था और हर्षचरित से भी अधिक इस बात की पुष्टि कादम्बरी की कथानक रूढ़ियों के सजाने और शैली के प्रयोग से होती है। अतः बाण सुबन्धु से परवर्ती सिद्ध होते हैं। वाक्यपतिराज (700-725) ने प्राकृत-काव्य 'गउडवहो' की रचना किया हैं। इसमें उन्होंने सुबन्धु का उल्लेख किया है लेकिन बाण का नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि

उस समय तक सुबन्धु की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी, पर बाण अभी तक अप्रसिद्ध ही थे। इन तथ्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की उत्तरसीमा बाण से पूर्व अर्थात् लगभग 550 ई० आंका जा सकता है। अब सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा पर विचार अपेक्षित है। सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा 'वासवदत्ता' में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर भी कुछ-कुछ निर्धारित की जा सकती है। इसमें रामायण, महाभारत, गुणाढ्य की बृहत्कथा, कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् इत्यादि का उल्लेख मिलता है। सुबन्धु ने एक रमणी के वर्णन के प्रसंग में श्लेष के माध्यम से नैयायिक उद्योतकार तथा बौद्धधर्मकीर्ति के 'बौद्धसंगत्यालंकार' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है परन्तु ये प्रमाण सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा निर्धारित कर सकने में सक्षम नहीं है क्योंकि उपरोक्त कृतियों या उद्योतकार का समय बहुत निश्चित नहीं हो पाया है लेकिन इतना निश्चित है कि उल्लेख करने के कारण सुबन्धु इन सबके बाद के विरूद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में एक साक्ष्य सहायक सिद्ध हो सकता है। सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में महान विक्रमादित्य की मृत्यु पर विलाप करते हुए लिखा है कि— **''सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरित नो कंकः। स्रसवीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।**

यहाँ पर वर्णित विक्रमादित्य कौन था, इसका यथार्थ परिचय नहीं मिल पाता है। इतिहास में अनेक विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है इसलिए यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि किस विक्रमादित्य का उल्लेख किया गया है लेकिन यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय (374-413ई०) का ही उल्लेख किया गया है क्योंकि वामन ने अपने 'काव्यलंकारसूत्र' में सुबन्धु को चन्द्रगुप्त के एक पुत्र का मन्त्री बताया है। अर्थप्रौढ़ी के पाँच भेदों में से अन्तिम साभिप्राय का वर्णन करते हुए वामन ने लिखा है- साभिप्रायत्वं यथा- **सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयश्चन्द्रपकाशो युवा, जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्टया कृतार्थश्रमः।** इसी की वृत्ति में वामन लिखते हैं— **'आश्रयः कृतधियामित्यस्य च सुबन्धुसाचिव्योपक्षेपमरत्वात् साभिप्रायत्वम्'।**

डॉ० मानसिंह का मत है कि 'चन्द्रगुप्तनयः' से चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का अभिप्राय है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुमार गुप्त प्रथम युवावस्था में अपने पिता के पश्चात् 414 ई० में सत्तासीन हुआ, उसने सुबन्धु को बुद्धिमान (कृतार्थ) समझकर अपना मन्त्री बनाया। सुबन्ध को उस समय तक युवावस्था पार कर लेना चाहिए। इसलिए उनका जन्म कुछ पहले (400 ई०) हुआ होगा और उन्होंने विक्रमादित्य चन्द्रगुप्तद्वितीय का शासनकाल भी देख था। कुमारगुप्त प्रथम के शासन के उत्तरार्द्ध में शत्रुओं का आक्रमण हुआ जिसको सुबन्धु ने भी देखा। 'वासवदत्ता' उनके जीवन के उत्तरार्द्ध की रचना होगी। स्कन्दगुप्त (455-676) के शासन काल में भी सुबन्धु जीवित रहे होंगे। अतः सुबन्धु को 400-465 ई० के बीच का माना जा सकता है। ऐसा भी माना जा सकता है कि 'चन्द्रप्रकाशः' कुमारगुप्त प्रथम का विशेषण है क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम के उनके सिक्कों में उसकी तुलना चन्द्रमा से की गयी है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर कुमारगुप्त प्रथम का मृत्युकाल लगभग 455 ई० माना गया है। सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का उल्लेख करना भी उपरोक्त समय को मानने में सहायक है क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि उद्योतकार ने प्रसिद्ध तर्कशास्त्री दिड्नाग की आलोचना की है और ए०बी०कीथ ने दिड्नाग को 400 ई० का माना है। आचार्य बलदेवउपाध्याय ने भी दिड्नाग का समय 345-425 ई० माना है। इस प्रकार उद्योतकार उसके बाद के ही रहे होंगे। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार उद्योतकार का समय षष्ठ

शतक ई० हैं सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि उद्योतकार का 'न्यायवार्तिक' 'वासवदत्ता' की रचना के समय ख्याति प्राप्त कर चुका होगा।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा 385-414 ई० के लगभग मानी जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने भी अपने शोध के आधार पर सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट किया है, जो इस प्रकार है—

1. पण्डित शंकदेवशास्त्री ने सुबन्धु का समय 500 ई० या इससे कुछ पूर्व माना है।
2. चन्द्रशेखर पाण्डेय ने सुबन्धु को 600 ई० या इससे कुछ पूर्व का ठहराया है।
3. डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार सुबन्धु का काल छठीं सदी का मध्य है।
4. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी का मानना है कि सुबन्धु 600 ई० के लगभग रहे होंगे।
5. आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी इनको षष्ठ सदी के अन्त का बताया है।

अन्त में सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में लुईस एच० डो के शब्दों को निश्कर्ष माना जा सकता है। इनके अनुसार सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा उद्योतकार के बाद तथा उत्तरसीमा बाणभट्ट के पूर्व निर्धारित की जानी चाहिए। इस प्रकार सुबन्धु का काल 400-550 ई० निर्धारित किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु इसी बीच कभी रहे होंगे। इस प्रकार हम सुबन्धु के काल एव जीवनवृत्त के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु 'वासवदत्ता' के रचयिता है जो उनकी एकमात्र कृति है। विक्रमादित्य-चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम (415 ई० 455) के दरबारी कवि थे और 385-500 ई० के बीच में कभी रहे होंगे। वे मध्यभारत के निवासी थे, सम्भवतः मालव के वैष्णव और सुबन्धु वररुचि की बहन के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम दामोदर था। सुबन्धु के काल एवं निवास-स्थान के विषय में डॉ० मानसिंह का मत भी उक्त बिन्दुओं को पुष्ट करने में सहायक हो सकता है।

सुबन्धु की भाषा शैली—

सुबन्धु वेदादि विभिन्न विद्याओं तथा धर्मशास्त्र, काव्यशास्त्र, व्याकरण, संगीत, नीतिशास्त्र और दर्शन आदि में निपुण थे। सुबन्धु ने गौडी रीति का प्रयोग किया है उनके ग्रन्थ के प्रत्येक अक्षर में श्लेष है। सुबन्धु ने अपनी श्लेषप्रधान शैली के विषय में कहा है—

''प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपंचविन्यासवैदग्ध्य निधि प्रबन्धम्।
सरस्वती दत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः''।।

श्लेष के अतिरिक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास,आदि अलंकारों की भी कमी नहीं है। सुबन्धु को उनकी शैली के कारण विद्वानों में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। दीर्घ समासों से युक्त गौडी रीति के प्रयोग के कारण उनकी शैली में प्रसाद और माधुर्य न होकर आडम्बर, कृत्रिमता तथा क्लिष्टता ही अधिक है। सुबन्धु ने वर्णन-वैचित्र्य के कारण विशेष ख्याति अर्जित की।

बोध प्रश्न:-

अभ्यास.1

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. वामन के ग्रन्थ का क्या नाम है-

(क) अलंकारसारमंजरी (ख) काव्यालंकारसूत्र
(ग) साहित्यदर्पण (घ) काव्यप्रकाश

2. हर्ष का समय है-

(क) 800 ई॰ (ख) 400 ई॰

(ग) 606 से 647 (घ) 609 से 640 ई॰

3. वासवदत्ता के लेखक हैं-

(क) मम्मट (ख) हर्ष

(ग) वाणभट्ट (घ) सुबन्धु

4. सुबन्धु की रचना है -

(क) वासवदत्ता (ख) कादम्बरी

(ग) हर्षचरितम् (घ) इनमें से कोई नहीं

5. सुबन्धु का प्रिय अलंकार है-

(क) श्लेष (ख) अनुप्रास

(ग) यमक (घ) उपमा

(2). रिक्त स्थानों की पूर्तिकीजिए—

(क) वासवदत्ता के पति का नाम.....है।

(ख) वासवदत्ता के नायक का नाम.....है।

(3). निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर सही (√) गलत उत्तर पर (×) का चिन्ह लगाइए—

1. वासवदत्ता गद्यकाव्य के लेखक वाण हैं। ( )
2. वासवदत्ता का कथानक ऐतिहासिक है। ( )

2.3.2 बाणभट्ट का जीवन परिचय

संस्कृत साहित्य के रचनाकारों में महाकवि बाणभट्ट ही उन प्रतिष्ठित कवियों में हैं जिनका विस्तृत जीवन परिचय हमें उनके शब्दों में ही मिलता है। ये वात्स्यायन वंश के पण्डित कुबेर के घर जन्मे। इनके पूर्वज शोण नदी के किनारे प्रीतिकूट नगर में निवास करते थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाणभट्ट का एक पुत्र भूषणभट्ट हुआ कहीं कहीं इसका नाम पुलिन्दभट्ट भी मिलता है। शैशवकाल में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था और 14 वर्ष की आयु तक इनके पिता की भी मृत्यु हो गई थी। ये समृद्ध परिवार से थे युवावस्था में मित्रमण्डली के साथ स्वयं ही संसार भ्रमण के लिए निकल गए। इन्होंने अनेक देशों की यात्रा कर विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया जिसका प्रभाव इनकी कृतियों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। बाणभट्ट के स्थितिकाल के विषय मे किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं है क्योंकि हर्षचरित में अपने विषय में बताते हुए इनका कथन है कि ये सम्राट् हर्षवर्धन के समकालीन और सभापण्डित थे।

बाणभट्ट के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी उनके ग्रन्थ हर्षचरित में प्रारम्भिक उच्छवासों से मिलती है। वे वत्सगोत्रीय ब्राह्मकुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाण की माता का निधन उनकी वाल्यावस्था में ही हो गया था। बालक बाणभट्ट का पालन-पोषण उनके पिता चित्रभानु ने किया। जब बाण की आयु चौदह वर्षकी थी। तभी दुर्भाग्य से उनके पिता का भी देहावसान हो गया। इसके पूर्व ही उनके पिता ने बाण के सभी ब्राह्मणोचित संस्कार यथासमय शास्त्रसम्मत रीति से अपनी कुलपरम्परा के अनुसार सम्पन्न करा दिया था। बचपन में ही बाण के सिर से माता-पिता के हाथों की छाया उठ

जाने से बाण अत्यन्त सन्तप्त हो गये किन्तु काल-प्रभाव से जब शोक कम हुआ तो बाण में सहज चपलता पूरी तरह घर कर गयी। पिता, पितामहादि के द्वारा अर्जित और संचित धन-वैभव प्रभूत मात्रा में था। अतः बाण की मित्र-मण्डली खूब जम गयी और वे उन सबके साथ देशाटन के लिए घर से निकल पड़े। इस तरह विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने के पश्चात् वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये।

हर्षचरित के अनुसार, ग्रीष्मकाल में एक दिन महाराज हर्ष के भाई कृष्ण ने बाण को बुलवाया बहुत विचार करके युवक बाण ने वहाँ जाने का निश्चय किया। प्रातःकाल तैयार होकर वे अपने ग्राम प्रीतिकूट से निकले। प्रथम दिन मल्लकूट तथा दूसरे दिन यष्टिग्रहक नामक ग्राम में रात बिताने के पश्चात् तीसरे दिन मणितार के समीप अजिरवती के तट पर स्थित महाराज हर्षदेव के स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के समीप ही निवास किया।

सायंकाल बाणभट्ट महाराज हर्ष से मिलने पहुँचे। प्रथमतः उन्होंने हर्षके हाथी 'दर्पशात' को देखा और तब राजभवन में प्रविष्ट होकर हर्षके दर्षन किये। किन्तु 'यह वही भुजंग बाण है'- कहकर हर्ष ने बाण से बात नहीं की। बाण ने अपनी भुजंगता (लम्पटता) के भ्रम को मिटाने के लिए अपनी ओर से पर्याप्त स्पष्टीकरण दिया किन्तु हर्ष उन पर प्रसन्न न हुए फिर भी हर्ष के प्रति बाण के हृदय में श्रद्धा भर गयी। वे राजभवन से निकलकर अपने मित्रों के यहाँ रूक गये। राजा ने धीरे-धीरे बाण के सम्बन्ध में अच्छी तरह पता किया और उनके वैदुष्य तथा ब्राह्मणोचित स्वभाव से परिचित होने पर प्रसन्न हो गये। पुनः बाण राजभवन में प्रविष्ट हुए तो राजा ने उन्हें प्रेम, मान, विश्वास और धन की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। महाराज हर्ष के साथ बहुत समय तक रहकर बाण पुनः अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौट आए।

बाणभट्ट विवाहित थे। बाण के पुत्र का नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट था। इस नाम के विषय में ऐकमत्य नहीं है। भूषणबाण, पुलिन्द, पुलिन्ध्र या पुलिन नाम भी कहे जाते हैं। कादम्बरी विषयक एक जनश्रुति के अनुसार बाणभट्ट के दो पुत्र थे। बाण के चन्द्रसेन और मातृशेण नामक दो भाई भी थे। बाणभट्ट के गुरु का नाम भत्सु या भर्वु था। इनके अन्य भी पाठभेद पाये जाते हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि गुरु का सही नाम क्या था ? वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में 'भश्चु' द्वारा निर्मित श्लोक उद्धृत किये गये हैं। महाराजा हर्ष के यहाँ लौटने के पश्चात् अपने बन्धु-बान्धवों के आग्रह पर बाणभट्ट ने महाराज हर्षवर्धन का चरित सुनाया था (अर्थात् अपनी अलंकृत गद्य-शैली में 'हर्षचरित' की रचना की)। इसके पश्चात् बाण के शेष जीवन का वृत्त उपलब्ध नहीं होता। हाँ, किंवदन्ती है कि बाण 'कादम्बरी' को पूरी नहीं कर सके थे और मृत्यु-शैया पर पड़ गये। अपने जीवन के अन्तकाल में उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि कादम्बरी कौन पूरी करेगा ? दोनों पुत्रों ने इसके लिए हामी भरी। तब उन्होंने कादम्बरी के अनुरुप भावकल्पना और भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में परीक्षा लेकर भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट को कादम्बरी पूर्ण करने की आज्ञा दी।

बाण का समृद्ध ब्राह्मण-परिवार में पैदा हुए थे। महाराज हर्ष ने भी उन्हें पर्याप्त धन प्रदान किया था। अतः भोग-ऐश्वर्य की प्रचुर सामग्री उन्हें उपलब्ध थी। इस तरह उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव न था और उनका जीवन आर्थिक दृश्टि से निरापद एवं सुखमय था।

बाण और मयूर के सम्बन्ध की चर्चा अनेकत्र प्राप्त होती है। बाण की मित्रमण्डली में स्त्री-पुरुष मिलाकर प्रायः चालीस की संख्या में तरह-तरह के लोग थे। इनमें से एक विषवैद्य 'मयूरक'

भी था। मित्रों के नाम और उनके गुण वैषिष्ट्य का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ये नाम उनके गुणों के आधार पर रख दिये गये थे (यथा-विषवैद्य मयूरक, पुस्तक-वाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चामीकर आदि)। किन्तु जिस मयूर के साथ बाण के मैत्री-सम्बन्ध की चर्चा मिलती है, वे हर्ष के सभाकवि के रूप में जाने जाते हैं। कुछ लोग मयूर को बाण का श्वसुर और कुछ लोग साला कहते हैं। प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित 'प्रभावकचरित' में बाण और मयूर का श्लोकबद्ध आख्यान मिलता है। तद्नुसार मयूर ने विद्वान् कवि युवक बाण के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। एक बार बाण अपनी रूठी हुई पत्नी को मना रहे थे। चूँकि बाण पद्य-कवि नहीं थे अतः एक श्लोक की तीन पंक्तियाँ ही बराबर दुहरा रहे थे, चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी। बाहर उनसे मिलने के लिए आये हुए मयूर खड़े थे। उनसे नहीं रहा गया और उन्होंने श्लोक के भावानुरूप चौथी पंक्ति बनाकर ऊँचे स्वर में कह दी। इस पर पिता का स्वर पहचाने बिना बाण की पत्नी ने चौथी पंक्ति बनाने वाले उस व्यक्ति को मान-रस-भंगकरने के अपराध के लिये कुष्ठ होने का शाप दे दिया। बाद में अपने पिता को तत्काल कुष्ठ हुआ देखकर उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। फिर मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना करके भगवान सूर्य की आराधना की और उनके प्रभाव से कुष्ठ रोग से मुक्त हो गये। मयूर की काव्यात्मक स्तुति का अद्भुत प्रभाव देखकर बाणभट्ट ने भी अपना प्रभाव प्रकट करने के लिए अपने हाथ-पैर काट डाले और देवी चण्डिका की स्तुति की। भगवती की अनुकम्पा से बाण पुनः पूर्ववत् कमनीय भक्तों वाले हो गये। बाणभट्ट द्वारा विरचित 'चण्डीशतक' प्राप्त होता है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी इसी प्रकार का बाण-मयूर विषयक आख्यान मिलता है। अन्यत्र भी इस विषय में संकेत प्राप्त होते हैं। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाशमें मयूर के सम्बन्ध में संकेत किया है।

अतः बाण का समय वही है जो इतिहास में हर्षवर्द्धन का अर्थात् 607 ई0 से 648 ई0। बाणभट्ट वात्स्यायन-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु था। विद्वान् परिवार में जन्म लेने के कारण इन्होंने सभी विद्याओं का अभ्यास किया। बचपन में हीं अनाथ हो गए बाणभट्ट ने युवावस्था में मित्रों की मण्डली बनाकर पर्याप्त देशाटन किया। अनुभव सम्पन्न होकर अपने ग्राम 'प्रीतिकूट',शोण के तट पर लौटे। राजा हर्षवर्द्धन के बुलावे पर यह उनके दरबार में गए और उनकी कृपा से वहीं रहने लगे।

बाणभट्ट का स्थितिकाल—

संस्कृत साहित्य के जिन कवियों के स्थितिकाल का निर्धारण अत्यन्त दुष्कर है, महाकवि बाणभट्ट उनमें से नहीं है। अन्तः साक्ष्यों के आधार पर बाणभट्ट के स्थितिकाल का निर्धारण असानी से हेा जाता है। सम्राट हर्षवर्धन के साथ बाणभट्ट का संबंध ऐतिहासिक प्रणामों से पुष्ट है। बाण, हर्ष की सभा के सम्मानित सदस्य थे। हर्षवर्धन का शासनकाल 606 ई॰ से 647 ई तक था। बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी ई॰ निश्चित ही है। चीनी यात्री हुएनसांग 629 ई॰ से 645 ई॰ तक भरत में रहा और उसने अपने यात्रा-विवरण में हर्षवर्धन और उनकी राज्यव्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाण ने भी हर्ष के जीवनवृत्त का कुछ साहित्यिक रीति से हर्षचरित में सन्निविष्ट किया है। दोनों वर्णनों की तात्विक तुलना करने पर सिद्ध होता है कि दोनों द्वारा वर्णित हर्ष एक ही हैं।

बाणभट्ट के समय सम्बन्ध में बर्हिःसाक्ष्यों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा । क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी ई॰) ने अपने रचनाओं में अनेकश: बाण का उल्लेख किया है। भोजराज अपने

सरस्वती- कण्ठाभरण में बाण रचानाओं से उदाहरण देते हैं भोजराज भी 11वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में शासन करते थे। सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा में कई श्लोकों में बाण की प्रशंसा की है। सोड्ढल का समय प्रायः 1000 ई० है। आचार्य धनंजय (10 वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) ने कादम्बरी और बाण का उल्लेख कई बार किया है। धनपाल ने भी 'तिलकमंजरी' वाणभट्ट और उनकी कृतियों-हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रशंसा की है। धनपालका का समय भी 10वीं शताब्दी का उतरार्ध है। त्रिविक्रम भट्ट ने 'नलचम्पू' का रचनाकाल 10वीं शताब्दी ई० का पूर्वाद्ध है। आन्दवर्धन-कृत 'ध्वन्यालोक' में बाण और कादम्बरी का उल्लेख हुआ है। उसमें 'हर्षचरित' के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालिक थे जिनका शासनकाल 855 ई० से 884 ई० तक था। अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है। अभिनन्द ने 'कादम्बरीकथासार' की रचना की है जिसमें कादम्बरी-कथा संक्षेपतः श्लोकबद्ध निबद्ध है। आचार्य वामन ने अपनी 'काव्यलंकारसूत्रवृति' में कादम्बरी से उद्धरण दिये हैं। वामन का स्थितिकाल 800 ई० के आसपास माना जाता है। प्रकाशवर्ष ने अपने रसार्णवालंकार में बाण का उल्लेख किया है। प्रकाशवर्षका समय सातवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार हमें यह ज्ञात होता है कि बाणभट्ट का उल्लेख तथा उनकी कृतियों से उद्धरणों का प्रयोग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही किया जाने लगा था। अतः बाणभट्ट के स्थितिकाल की पूर्व सीमा सातवीं शताब्दी ई० के पश्चात् कथमपि नहीं रखी जा सकती। सम्प्रति अन्तः साक्ष्यों का अवलोकन कर उन पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। बाणभट्ट की कृतियों में अनेक लेखकों और ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है। कादम्बरी और हर्षचरित में रामायण और महाभारत (वाल्मीकि और व्यास) का उल्लेख हुआ है। ये दोनों आर्ष महाकाव्य निश्चित रूप से ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विरचित हो चुके थे। हर्षचरित में महाकवि (नाटककार) भास का उल्लेख हुआ है। भास का समय ई० पूर्व चतुर्थ पंचम शताब्दी माना जाता है। कादम्बरी में 'आर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटिल्य का नामोल्लेख किया गया है। अर्थशास्त्र की रचना ई० पू० 321 से 300 के मध्य की गयी होगी। हर्षचरित में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की प्रशंसा बाण ने मुक्तकण्ठ से की है। अधिकांश विद्वान कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी मानते हैं। कुछ विद्वान कालिदास को गुप्तकाल (350 ई० से 450 ई० के मध्य) में मानते हैं। बाणभट्ट ने गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' का प्रशंसार्य हर्षचरित में की है। 'बृहत्कथा' अब उपलब्ध नहीं है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्य ही इसका अवलोकन किया होगा। 'बृहत्कथा' की रचना पैषाची प्राकृत में की गयी थी। 'बृहत्कथा' पर आधारित कथासरित्सागर' (सोमदेव) और 'बृहत्कथामऋजरी' (क्षेमेन्द्र) दो ग्रंथ में पद्यात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। उनसे तुलना करने पर प्रतीत होता है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरीकथा' अवश्य ही बृहत्कथा की वस्तु और रचनाषिल्प से प्रभावित है। बृहत्कथा का रचना काल प्रथम शताब्दी ई० अनुमानित है। हर्षचरित में ही बाण ने 'सेतुबन्धु' के रचयिता प्रवरसेन का उल्लेख किया है। यह प्रवरसेन वाकाटक वंश के राजा प्रवरसेन द्वितीय हैं, जिनका समय पांचवी शताब्दी ई० है।

उपर्युक्त प्रमाणों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि बाण ने अपनी रचानाओं में जिन कृतियों का उल्लेख किया वे ई० पूर्व से लेकर पांचवी ई० तक के हैं। इससे भी सातवीं शताब्दी ई०, बाण का स्थिति काल पुष्ट होता है। सबसे पुष्ट प्रमाण तो सम्राट हर्ष की समकालिक होना ही है।

बाणभट्ट की भाषा शैली—

बाण से पूर्व सुबन्धु ने दुरूह श्लिष्ट पदावली से युक्त अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता - ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पांचाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। सुतरा, बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्ण में कठोर वर्णों का प्रयोग करते हैं। दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजोगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुकनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।–

"कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा । सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भतीति विस्तरेणाभिधीयसे।'' बाण की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है— **"न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपामालोकयते। न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।''** जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं। अपने अलंकार-प्रयोग की ओर उन्होंने स्वयं ही संकेत किया है।–

हरन्ति कं नोज्जवलदीपकोपमैर्नवैपदार्थैरुपपादिता कथाः।
निरतन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव।।

इनकी उपमाएँ प्रायः श्लिष्ट हैं और विशेषण की शाब्दिक समानता पर आधारित हैं। यथा—' **अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोश मण्डलमपि मु ंचति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गडेगेव वसुजनन्यपि तरङगबुद्बुद्च ंचला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्राविडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव**

दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पस्वत्त्वमुन्मत्तीकरोति।' इनके विरोधाभास का एक उदाहरण इस प्रकार है—'**सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशितप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्तयपि लघिमानमापादयति।** उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य है— **अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्पते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापहृियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्।** अपनी विशिष्टि शैली के कारण निश्चय ही बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं। उन्होंने बाद के अनेक गद्यकवियों को प्रभावित किया है। संस्कृत के विद्वानों में बाण की शैली की प्रशंसा में अनेक सूक्तियाँ प्रचलित हैं।–

बाण की प्रशस्ति में प्रचलित सूक्तियाँ

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ।। - **गोवर्धनाचार्य।**

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य। **- धर्मदास।**

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सऽचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पऽचाननः।।-**चन्द्रदेव।**

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् क्वीन्।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः।।-**धनपाल**

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्।।-**त्रिलोचन भट्ट**

सहर्षचरितारम्भाद्भुतकादम्बरीकथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ।- **राजशेखर**

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती । - **सोड्ढल**

बोध प्रश्न:-

अभ्यास प्रश्न -2

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न -

1- किस अवस्था में बाण की माता का निधन हो गया ?

(क) किशोरावस्था में (ख) बाल्यावस्था में
(ग) बृद्धावस्था में (घ) शैशवावस्था में

2- बाणभट्ट कितने वर्ष की अवस्था में पितृविहीन हो गये ?

(क) चौदह वर्ष की अवस्था में (ख) दश वर्ष की अवस्था में
(ग) अठारह वर्ष की अवस्था में (घ) ग्यारह वर्ष की अवस्था में

3- बाणभट्ट ने अपने मित्रों की लम्बी सूची किसमें दी है ।

(क) हर्षचरित में (ख) कादम्बरी

(ग) मुकुटताडितक (घ) इनमें से कोई नही

4- बाणभट्ट किसके समकालीन थे।

(क) वामन के (ख) हर्षवर्धन के

(ग) अवन्तिवर्मा के (घ) सोमदेव के

5- हर्षवर्धन ने कब से कबत क शासन किया था।

(क) 606 ई0 से 648 ई0 तक

(ख) 600 ई0 से 648 ई0 तक

(ग) 560 ई0 से 606 ई0 तक

(घ) 648 ई0 से 680 ई0 तक

(2) निम्न वाक्यों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगायें—

1. बाणभट्ट की गद्य रचना कादम्बरी है।

2. बाणभट्ट के पिता का नाम दामोदर था।

3. बाणभट्ट ने अपने जीवन के अनेक वर्ष सम्राट हर्षवर्धन के समृद्ध आश्रय में व्यतीत किये थे।

(3). रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए—

1. कादम्बरी का प्रधान रस .....है।

2. हर्षचरित .....काव्य है।

3. चन्द्रापीड ..... अवतार थे।

4. कादम्बरी की नायिका ..... है।

5. (हर्षचरित ..... का उदाहरण है।

2.3.3 दण्डी का जीवन परिचय

आचार्य दण्डी 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता भारवि के प्रपौत्र थे। दण्डी विदर्भ के निवासी थे और इन्हें नरसिंह वर्मा प्रथम का राज्याश्रय प्राप्त था। उनका स्थिति काल 700 ई0 के लगभग माना जाता है। राजशेखर के **'त्रयोदण्डि प्रबन्धाश्च त्रिषु लाकेषु विश्रुताः'** के अनुसार दण्डी की तीन रचनायें प्रणीत हैं। जिनमें 'काव्यादर्श' और 'दशकुमारचरित' निःसन्देह उनकी रचनायें हैं। तीसरी रचना के विषय में मतभेद है। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के प्रकाश में आ जाने से बहुत से लोग इसे ही दण्डी की तीसरी रचना मानते हैं।

'काव्यादर्श' अलंकारशास्त्र का अनुपम ग्रन्थ है। 'दशकुमारचरित' में दस राजकुमार अपने देश-देशान्तरों में भ्रमण तथा विचित्र अनुभवों का मनोरंजक वर्णन करते हैं। 'अवन्तिसुन्दरीकथा' में अवन्तीसुन्दरी की कथा है। दण्डी की काव्य-शैली पांचाली रीति है। अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और शब्द का लालित्य ये दण्डी की शैली के विशेष गुण है। अतएव प्राचीन समीक्षकों ने कहा है- **''दण्डिनः पदलालित्यम्''** बड़े-बड़े जटिल समासों से दण्डी की शैली अधिकांशतः मुक्त है। डॉ0 कीथ ने उनकी मुख्य विशेषता उनका चरित्र-चित्रण माना है। दण्डी की काव्यात्मक विशेषताओं के कारण कतिपय आलोचक उन्हें बाल्मीकि और व्यास के बाद तीसरा कवि मानते हैं।

संस्कृत साहित्य की कवि परम्परा में प्राय: कवि अपने जीवन-चरित के सन्दर्भ में मौन ही हैं तथापि दण्डी के जीवन के सन्दर्भ में कुछ जानकारियाँ "अवन्तीसुन्दरी-कथा" में उपलब्ध होती हैं। यह दण्डी की ही रचना मानी जाती है। इसके अनुसार भारवि के तीन पुत्र थे, उनमें मध्यम पुत्र

का नाम मनोरथ था। मनोरथ के चार पुत्र हुए जिनमें वीरदत्त सबसे छोटा था। वीरदत्त की पत्नी गौरी थी। उन्हीं वीरदत्त तथा गौरी के पुत्र थे महाकवि दण्डी। बाल्यकाल में ही दण्डी अनाथ हो गये थे। अनाथ होने पर ये काञ्ची (काञ्जीवरम्) में अकेले ही रहते थे। काञ्ची में विप्लव होने पर ये जंगलों में रहे तत्पश्चात् जब शहर में शान्ति हो गयी तब ये पल्लव नरेश की सभा में आये और वहीं रहने लगे। ऐसा माना जाता है कि पल्लव नरेश के पुत्र को शिक्षा देने के लिए ही दण्डी ने काव्यादर्श की रचना की थी।

भारवि और दण्डी के सम्भावित सन्बन्ध के विषय में अब सन्देह होने लगा है। जिस श्लोक के आधार पर भारवि के साथ दण्डी के प्रपितामह दामोदर की एकता मानी जाती थी उस श्लोक में नये पाठ भेद मिलने से इस मत का बदलना पड़ा है । नया पाठ नीचे दिया जाता है— **स मेधावीकविर्विद्वान भारवि प्रभवं गिराम् । अनुरूध्याकरोन्मन्त्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने ।।** पहला पाठ प्रथमान्त 'भारवि' था, जब उसके स्थान पर द्वितीयान्त 'भारवि' मिला है, जिससे यह अर्थ निकलता है कि भारवि की सहायता से दामोदर की मित्रता विष्णुवर्धन के साथ हो सकी। अतः दामोदर दण्डी के प्रपितामह थे, भारवि नहीं। इस वर्णन से दण्डी के अन्धकारमय जीवन पर प्रकाश की एक गाढ़ी किरण पड़ती है भारवि का सम्बन्ध उत्तरी भारत से न होकर दक्षिण भारत में था। हिन्दुओं की पवित्र नगरी कांची (आधुनिक कांजीवरम्) दण्डी की जन्मभूमि थी। इनका जन्म अत्यन्त शिक्षित ब्राह्मण कुल में हुआ था। भारवि की चौथी पीढ़ी में इनका जन्म होना ऊपर के वर्णन से बिल्कुल निश्चित है। कांची के पल्लवनरेश की छाया में इन्होंने अपने दिन सुखपूर्वक बिताए थे।

इस वर्णन से दक्षिण भारत की एक किंवदन्ती की भी यथेष्ट पुष्टि होती है। एम॰ रंगाचार्य ने एक किवदन्ती का उल्लेख किया है कि पल्लव राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये ही दण्डी ने 'काव्यादर्श' की रचना की थी। काव्यदर्शन के प्राचीन टीकाकार तरूणवाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने निम्नलिखित प्रहेलिका में कांची तथा वहां के शासक पल्लवनरे-शों की ओर इगिंत किया है—**'नासिक्यमध्या परितष्चतुर्वर्णविभूषिता। अस्ति काचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाहया नृपा' ।।** अतः एव दण्डी को कांची के पल्लवनरे-श के आश्रय में मानना इतिहास तथा किंवदन्ती दोनों से सिद्ध होता है। दण्डी ने अपने काव्यादर्श में दक्षिण प्रान्त के मलयानिल, काची, कावेरी और चोल स्थानों का वर्णन किया है। ऐसे ही आधारों पर दण्डी को दाक्षिणात्य कल्पना किया जाता है। संभव है यह कल्पना ठीक हो, जब कि दण्डी का वर्णन शैली भी वैदर्भी रीति प्रधान है जो काश्मीर प्रान्त के साहित्यकों से प्रायः भिन्न प्रतीत होती है। **''जाते जागति बाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवत्। कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।।''** साहित्य के उपलब्ध प्राचीन लक्षण- ग्रन्थों में भामह के बाद दण्डी का काव्यदर्श ही मिलता है।

जिस प्रकार रूद्रट, आनन्दवर्धनाचार्य और मम्मट जैसे लब्ध प्रतिष्ठत सुप्रसिद्ध साहित्यानचार्यों ने भामह का नाम और उसका मत गौरव के साथ उल्लेख किया है, तादृश उल्लेख यद्यपि दण्डी के विषय में दृष्टिगत नहीं होता है, पर उसका यही कारण नहीं कि दण्डी के ग्रन्थ का महत्व भामह के सम-कक्ष नहीं, यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया जाय तो भामह का न्यायदोष प्रकरण यदि दण्डी से अधिक महत्वपूर्ण है, तो दण्डी की अलंकार, रीति और गुणों के विवेचन की मौलिकता भामह की अपेक्षा कही अधिक परिष्कृरत और उपयोगी है। सुप्रसिद्ध

प्राचीन साहित्याचार्यों द्वारा भामह के समान दण्डी का उल्लेख न किये जाने का एकमात्र कारण संभवतः यही है कि दण्डी दाक्षिणात्य थे और भामह काश्मीरी। साहित्य के प्राचीन प्रसिद्ध लेखक प्रायः काश्मीरी ही अधिक हुए हैं। इसी से उनके द्वारा भामह को इतना गौरव प्राप्त हो सका है और उस गौरव का मम्मट एवं रूप्यक के समय तक उसी प्रकार प्रभाव रहा है। किन्तु आचार्य मम्मट के काव्यप्रकाश की व्यापक और अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण विवेचना के प्रकाश ने केवल भामह के ग्रन्थ को ही नहीं, अपितु प्रायः सभी पूर्वा पर ग्रन्थों को निस्तेज कर दिया, फिर ऐसी अवस्था में दण्डी के ग्रन्थ का-जो स्वयं ही विकास था, अपनी पूर्वावस्था में रहना स्वाभाविक ही था। दण्डी ही ऐसे साहित्याचार्य है जिनमें अपने पूर्ववर्तियों से सबसे अधिक अलंकारों के उपभेदों का एवं गुण और रीति का विस्तृत निरूपण किया है। किन्तु उसके निरूपित अंलकारों के उपभेदों का अधिकांश में उसके परवर्ती आचार्यों के अनुसरण नहीं किया है।

आचार्य दण्डी का समय एवं स्थिति काल—

महाकवि दण्डी का स्थिति काल सप्तम शताब्दी का अन्त और अष्टम शताब्दी का आरम्भ माना जाता है। नवम शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने से निश्चित है कि उनका समय उक्त शताब्दी से पीछे कदापि नहीं हो सकता। सिंघली भाषा के अंलाकारग्रन्थ 'सियलकरबस' स्वभाषालंकार की रचना काव्यादर्श के आधार पर की गई है। इसका रचयिता राजा सेन प्रथम महावंश के अनुसार 846-66 ई० तक राज्य करता था। इससे भी पहले के कन्नड़ भाषा के अलंकारग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में काव्यादर्श की यथेष्ट० छाया देखी गई है। इसके उदाहरण या तो काव्यादर्श से पूर्णतः लिये गये या कहीं-कहीं कुछ परिवर्तित रूप में रखे गये है। हेतु अतिशंयोक्ति आदि अलंकारों के लक्षण तो दण्डी से अक्षरश: मिलते हैं। इसके लेखक 'अमोघवर्ष' का समय 815 ई के आसपास माना जाता है। अतएव काव्यादर्श की रचना नवीं शताब्दी के अनन्तर कदापि स्वीकृत नहीं की जा सकती है। यह तो दण्डी के काल की अन्तिम सीमा है। अब पूर्व की सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। यह निर्विवाद है कि काव्यादर्श के समग्र पद्य दण्डी की ही मौलिक रचना नहीं है, उनमें प्राचीनों के भी पद्य सन्निविष्टि है। लक्ष्म लक्ष्मी तनोतीति प्रतीति- सुभग वच में दण्डी के इति शब्द के स्पष्टी प्रयोग से यहां जाना जाता है कि कालिदास के प्रसिद्ध पद्यांश **'मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति'** से उद्धरणय दिया गया है। अतः इनके कालिदास के अनन्तर होने में तो संदेश का ध्यान नहीं है, परन्तु अन्य भाव-साम्य से ये बाणभट्ट के भी अन्तर प्रतीत होते हैं। **'अरत्नालोकसंहार्यमवार्य सूर्यरश्मिभिः। दृष्टिरोधंकरं यूना यौवनप्रभवं तमः'**॥ काव्यादर्श इस पद्य में कादम्बरी में चन्द्रापीड के शुकनास द्वारा दिए गए उपदेश की स्पष्टड छाया दीख पड़ती है। दण्डी को बाणभट्ट (7 वीं सदी पूर्वार्द्ध) के अनन्तर मानने में कोई विप्रतिपति नहीं जान पड़ती है। प्रो. पाठक की सम्मति में काव्यादर्श में निर्वत्य, विकार्य, तथा प्राप्य हेतु का विभाग वाक्यपदीय के कर्ता भर्तृहरि (650 ई०) के अनुसार किया गया है। काव्यादर्श के उल्लिखित राजवर्मा (रातवर्मा) को यदि हम नरसिंहवर्मा द्वितीय (जिसका विरूद अथवा उपनाम राजवर्मा था।) मान ले तो किसी प्रकार की अनुपपति उपस्थित नहीं होती। प्रो. आर. नरसिंहचार्य तथा डाक्टर बेलबल्कर ने भी इन दोनों की एकता मानकार दण्डी का समय सातवीं सदी क का उतरार्द्ध बतलाया है। शैव-धर्म उत्तेजक पल्लवराज नरसिंह वर्मा का समय 690-715 ई० माना जाता है। अतः इनके सभा कवि दण्डी का भी समय बाण के पश्चात् सप्तम शती के अन्त तथा अष्टम के आरम्भ में मानना उचित प्रतीत

होता है। दण्डी का समय भी अत्यन्त सन्दिग्ध है। दण्डी की अन्तिम सीमा के लिये अन्य ग्रन्थों में निम्नलिखित आधार प्राप्त होते हैं—

(1) श्री अभिन्वगुप्ताचार्य ने, जिनका समय लगभग दशम शताब्दी है धन्यालोक की व्याख्या लोचन में लिखा है- यथादण्डी-

(2) प्रतिहारेन्दुराज ने, जिसका समय लगभग ई0 सन् 925 है, उन्टाचार्य के काव्यलंकार सारसंग्रह की लघुवृति पृष्ट 28 में लिखा है- अतएव दण्डिना लिम्सीव इत्यादि।

(3) कनारी भाषा में 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रन्थ राष्ट्रलकूट के राजकुमार अमोघवर्ष प्रणीत है। उसके सम्पादक श्री पाठक के कथानानुसार उस ग्रन्थ के साधारणोमा, असम्भवोपमा, सम्भवोपमा, विशेषोक्ति, और अतिशयोक्ति की परिभाषाएं दण्डी के काव्यदर्श से सर्वथा अनुवादित हैं। और अन्य भागों पर भी काव्यदर्श का पर्याप्त प्रभाव है। उस ग्रन्थ का निर्माणकाल शक 736 -797 (815-874ई॰) है।

(4) सिंहली भाषा में एक 'सियाकसलकार (स्वभाषलंकार) नामक ग्रन्थ है। वह दण्डी के काव्यदर्श पर ही अवलम्बित हैं। उसमें काव्यदर्श का स्पष्टध नामोल्लेख भी है। महावंश के अनुसार इसका लेखक प्रथम राजा सेन का राज्यकाल सेन (846-866) है।

(5) वामन के काव्यलंकार सूत्र से दण्डी के काव्यादर्श को तुलनात्मक विवेचना द्वारा विदित होता है कि वामन से दण्डी प्राचनी है। दण्डी ने रीति-सिद्धान्त का जो महत्वपूर्ण विवेचन किया था, उसे वामन ने अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया है। दण्डी, वैदर्भ और गौड़ी दो ही मार्ग बतलाते है- तत्र वैदर्भ गौडीयौ (1।40) किन्तु वामन उनमें एक पांचाली और बढ़कर तीन बतलाते है। जिनके द्वारा दण्डी का वामन से प्रथम होना प्रतीत होता वामन का समय आठवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्द्ध है। इन आधारों पर दण्डी की अन्तिम सीमा सन् 800 ईसवी के लगभग हो सकती है। किन्तु एक और भी प्रमाण मिलता है। जिसके द्वारा यह सीमा भी पूर्व काल तक चली जाती है। शारंगधर पद्धति में (संख्या 180) विज्जिका नाम की एक स्त्री लेखिका का यह पद्य है — **'नीलोत्पलदलश्याशमां विज्जकां मामजानता । वृथैव दण्डिानाप्रोक्त सर्वशुक्ला सरस्वती'** ॥ काव्यादर्श में दण्डी ने मंगलाचरण प्रथम पद्य में 'र्सव-शुक्लसरस्वती लिखा है। इस पर विज्जका का यह व्यप्रात्मक उपहास है विज्जका के अनेक पद आचार्य मम्मट आदि के ग्रन्थों में उदाहरण रूप में मिलते है इसके पद्य विजया, विज्जा के नाम से भी उदृत किया गये है।

इसके विषय में कल्हण की सूक्ति मुक्तावली (सख्या 184) में राजशेखर के नाम से- **'सरस्वतीव कार्णाटी विजया जयत्यसौ। या विदर्भगिरां वासः कालिदासनन्तरम्'।।** यह पद्य हैं। इसके द्वारा यह दक्षिण प्रान्त की विदित होती है। सभवतः विख्यात कार्णाटी वही भारिका विजिया है, जो चद्रादित्य की महारानी थी चन्द्रादित्यह द्वितीय पुलकेशिन का पुत्र था। इसका समय सन् 660 ई0 है। यदि विजिया का पिज्जिक से एकीकरण भ्रमात्मक न हो जैसा कि सम्भव भी नही है, क्योंकि जिसने स्वयं अपनी विद्वत्ता के गर्व पर दण्डी पर व्यंग्योरक्ति की है और जिसके विषय में राजशेखर जैसा विद्वान् द्वारा ऐस महत्वपूर्ण उल्लेख हो तो दण्डी की अन्तिम सीमा विज्जका के पूर्व लगभग सन् 600 ई0 है। इसके सिवा ईसवी सन् की छठी शताब्दी के सुबन्धु प्रणीत वासवदत्ता में - **यश्र छन्दोविचितिरिव कुसुमविचित्राभिः - छन्दो विचितिरिव मालिनासनाथा। 'छन्दो विचिमिव भ्राजमानतनुमध्याम्'** इस प्रकार तीन स्थन पर छन्दोंविचिति शब्द का प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वानों का मत है कि दण्डी –**'छन्दो**

विचित्यां सकलस्तत्प्रपई को निदर्शितः'। इस वाक्य में दण्डी ने अपने 'छन्दों विरचित' नामक अपनें छंद-ग्रंथ का नामोल्लेख किया है। उसी के विषय में उपर्युक्त वाक्य सुबन्ध के हैं। यदि वह कल्पना ठीक हो तो इसके द्वारा भी दण्डी का सुबन्धु के पूर्ववर्ती अर्थात् ईसवी की छठी शताब्दी में होना सिद्ध होता है। दण्डी का समय बहुत से ऐतिहासिक विद्वान् छठी शताब्दी में ही बतलाते है। जैसे- मि0 मेक्समूलर, मि.वेबर प्रोफेसर मेकडोनल और कर्नल जेकौबी आदि। किन्तु दण्डी की पूर्व सीमा के लिये जो अन्य आधार उपलब्ध होते हैं वे अधिक प्रबल हैं, और उनके द्वारा ऊपर की मान्यता पर आघात पहुंचता है। श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न मि0 पीटरसन और जोकेवी का मत है कि दण्डी बाण की कादम्बरी का प्रतिबिम्ब हैं बाण का समय तो महाराज श्री हर्षवर्द्धन के समकालीन (606-647) ई॰ है। **'किरातार्जुनीयपंचदशसर्गादिकोंकारो दुर्विनीतनामधेयः।'** इस वाक्य द्वारा विदित होता है। अतएव भारवि का समय लगभग छठी शताब्दी के अन्तिम चरण से शताब्दी के प्रथम चरण तक माना जा सकता है। और अवन्तिसुन्दरीकथा के—

'मनोरथाव्हयस्तेषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।
ततस्तनूजाश्रंत्वार स्त्रटुर्वेदा इवा भवन्'।।
श्री वीरदत्त इत्येषां मध्यमों वंशवर्द्धनः।
यवीयानस्य च श्लासघ्याइ गौरी नामा भवत्प्रिया।।
ततः कथंचित्सा गौरी द्विजाधिपशिरोमणेः।
कुमार दण्डिना मानं व्यक्तशक्तिमजीजनत्।।

इन पद्यों से विदित होता है, कि भारवि का मध्यम पुत्र मनोरथ के चार पुत्रों में सबसे छोटा वीरदत्त था। वीरदत्त की पत्नी का नाम गौरी था। इन्ही वीरदत्त और गौरी देवी से दण्डी का जन्म हुआ है। इनकी जन्मभूमि कांची (आधुनिक कांजीवर) थी। इसके द्वारा दण्डी का दाक्षिणात्य होना भी सिद्ध है, जैसे कि अबतक विद्वानों की कल्पना है। यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिये 20 वर्ष भी मान लिये जाय तो भी दण्डी का समय इस आधार पर सप्तम शताब्दी का अन्तिम चरण हो सकता है। इसके द्वारा भामह और दण्डी के पूर्वापर के सम्बन्ध में जो पहिले विवेचन किया गया है। उसकी पुष्टि भी होता है कि भामह का समय महाकवि बाण के पूर्ववर्ती सम्भवतःछठी शताब्दी है। और दण्डी का सप्तम शताब्दी का अन्तिम चरण ही माना जा सकता है।

आचार्य दण्डी की भाषा शैली—

आचार्य दण्डी परिष्कृत गद्य शैली के जन्मदाता हैं। 'दशकुमारचरितम्' की शैली बहुत क्लिष्ट और समासबहुल है। वहीं काव्यादर्श की शैली सरल और समाम रहित है। 'काव्यादर्श' पद्य शैली में लिखा काव्यशास्त्र का ग्रन्थ है, जबकि 'दशकुमारचरितम्' गद्यशैली में लिखा कथाकाव्य है। आचार्य दण्डी स्वयं 'काव्यादर्श' में समासबहुल ओज को गद्य का जीवन मानते हैं।– **'ओजः समासभूयस्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्'।** गद्य का क्या स्वरूप होना चाहिए, उसमें भावादि, रस, अलंकारों का किस प्रकार समन्वय प्रस्तुत करना चाहिए, इसका आदर्श उन्होंने दशकुमारचरित में प्रस्तुत किया है। वे वदैर्भी शैली के कवि है। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य गुणों की पराकाष्ठा है। उनमें भावों की अभिव्यंजना की शक्ति इतनी प्रबल है कि कठिन से कठिन राजनीति आदि के तत्वों को सरलता से भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं। भावानुकूल पदावली का संचयन उनकी प्रमुख विशेषता है। श्रृंगार, करुण आदि के वर्णनों में उनकी भाषा में प्रसाद और

माधुर्य दृष्टीगोचर होता है। प्रकृति आदि वर्णन में समासयुक्त और सालंकार पदावली भी उनकी ही प्रौढ़ एवं परिष्कृत भाषा का रूप है।

दण्डी की काव्यशैली वैदर्भी रीति का अनुसरण करती है। अर्थ की स्पष्टता, रस की सुन्दर अभिव्यक्ति, कल्पना की सजीवता और शब्द का लालित्य ये दण्डी की शैली के विशेष गुण है इसलिए इनके बारे में कहा गया है । इनकी रचना में माधुर्य गुण विशेष रूप से पाया जाता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन्होंने ओज की तरफ ध्यान नहीं दिया। इन्होंने लम्बे व छोटे समस्त प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है। दण्डी का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। उन्होंने समाज के सभी पात्रों को लिया है। दण्डी आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी और व्यवहारवादी हैं। उन्होंने केवल सैद्धान्तिक शिक्षा न देकर व्यावहारिक शिक्षा भी दी है। व्यवहार कुशलता से जीवन सुखी बन सकता है यह दण्डी का लक्ष्य है। दण्डी निर्भीक, सुधारवादी, क्रान्तिकारी और व्यवहारकुशल कवि हैं।

दण्डी गद्य-कवियों में बेजोड़ हैं। रोमांचक घटनाएँ, विपुल वर्णन, सामान्य पात्र-चित्रण आदि इनकी मौलिक विशेषता है। सरल विषयों पर परिहास मुद्रा में तथा दुःखान्त एवं महत्वपूर्ण विषयों पर गम्भीर मुद्रा में ललित पद-विन्यास से प्रभावित होकर आलोचकों की यह उक्ति जगत्प्रसिद्ध है - **''दण्डिनः पदलालित्यम्।''**

2.3.4 अम्बिकादत्तव्यास का जीवन परिचय

आधुनिक संस्कृत रचनाकारों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त एवं अलौकिक प्रतिभासम्पन्न साहित्याचार्य श्री अम्बिकादत्त व्यास जी ही हैं। आपने "बिहारी 'बिहार' में संक्षिप्त निज-वृत्तान्त स्वयं लिखा है। जिसके अनुसार राजस्थान में जयपुर से करीब 22 मील पूर्व की ओर 'रावतजी का धूला' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध गाँव है । वह गाँव चारों ओर से पर्वतों से घिरा है तथा प्राकृतिक वातावरण से सुसम्पन्न है। राजा मानसिंह के दूसरे पुत्र दुर्जनसिंह ने घूला को ही अपने राज्य की राजधानी बनाया था। इसी ठाकुर वंश में आगे चलकर एक राजा दलेलसिंह हुए। इनके राज्यपण्डित श्रीगोविन्दरामजी थे। ये सुसंस्कृतज्ञ तथा प्रतिभा के धनी थे। आप आदि गौड़ पराशरगोत्रीय यजुर्वेदी, त्रिप्रवर तथा भोंडा वंश से सम्बन्धित थे। आपके प्रपौत्र पं० राजारामजी को तीर्थयात्रा तथा देशाटन विशेष प्रिय था । सम्पूर्ण भारत भ्रमण करते हुए पं० राजारामजी काशी पहुंचे वहाँ के पति मण्डली में पं राजारामजी शीघ्र हो अत्यन्त लोकप्रिय हो गये । आपसे काशी के पण्डित इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने आपको वापस ला नहीं जाने दिया। अतः आप काशी के मानमन्दिर मुहल्ले में रहने लगे। पं० राजारामजी ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान थे, अतः आपने ज्योतिष व पौरोहित्य को अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाया । इसके अतिरिक्त आप कुछ लेन-देन का भी काम करने लगे। किन्तु व्यवहारकुशलता की कमी के कारण आप इस व्यवसाय में सफल न हो सके।

पं० राजारामजी के दो पुत्र थे- दुर्गादत्त और देवीदत्त पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के पिताजी का नाम दुर्गादत्त था। वे कभी जयपुर रहते थे, कभी बनारस व्यासजी का जन्म जयपुर में ही चैत्र शुक्ल अष्टमी सं० 1915 में हुआ । आप प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे । संस्कृत व हिन्दी में आपको विशेष रुचि थी। उन दिनों बालविवाह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। अतः आपका भी विवाह १३ वर्ष की अल्पायु में ही हो गया। पं० व्यासजी के पिताजी कवि, विद्वान् और व्यवहारकुशल व्यक्ति थे ।

अतः उन्होंने व्यासजी को बाल्यकाल से ही अक्षरारम्भ के साथ ही उन्हें अमरकोष, शब्दधातुरूपावली और व्यावहारिक पदार्थो के संस्कृत नाम मौलिक रूप से कण्ठस्थ कराने प्रारम्भ कर दिये। वे स्वयं भी कुशाग्र बुद्धि और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, अतः शीघ्र ही संस्कृत में इनका ज्ञान प्रौढ़ होता गया। फलतः 10 वर्ष की अवस्था से ही वे कविता करने लगे। पिताजी स्वयं विख्यात कवि थे, एतावता उनके साथ रहने से अन्य कवियों से भी इनका सम्पर्क बढ़ा। इसी सिलसिले में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पर्क में आये। उन्होंने इनका इतना उत्साह-संवर्धन किया कि वे सुकवि नाम से विख्यात हो गये। शास्त्रों का अध्ययन करते हुए कथावाचन और शास्त्रार्थ में रुचि लेने से इनके पाण्डित्य में चार चांद लगने लगे। इनके 11 वर्ष की अवस्था में माता का तथा 17 वें वर्ष में पिता का देहान्त होने से सजी पर गृहस्थी का भार आ पड़ा। संवत् 1937 में इन्होंने साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की, साथ ही अँग्रेजी का भी प्रौढ़ ज्ञान अर्जित किया। वक्तृता, शास्त्रार्थ और कविता करते में व्यासजी को इतना अभ्यास हो गया था कि वे एक घड़ी (24 मिनट) में 100 श्लोक बना लेते थे। इसलिये सं० 1938 में काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा में इन्हें 'घटिका-शतक' की उपाधि प्रदान की। सं० 1940 में मधुवनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष होकर बिहार गये। वहाँ मैथिली भाषा का अध्ययन किया। संस्कृत सीखने की अभिनव प्रणाली का आविष्कार किया। बिहार- संस्कृत समाज की स्थापना की, जो आज भी संस्कृत के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है। सं० 1943 में ये मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के हेडपण्डित होकर गये, सं० 1944 में भागलपुर के सं० 1950 में ये छुट्टी लेकर भारत भ्रमण पर निकले। पूरे देश में इनके सम्मान में सभाएँ हुई। अन्त में काशी की महासभा में इन्हें भारतरत्न की उपाधि मिली। इनके घटिका शतक और शतावधान की विलक्षण शक्ति से बड़े-बड़े विद्वान् भी चमत्कृत रह जाते थे। इसके बाद ये छपरा में अध्यापन करने लगे और सं० 1957 में इनका देहा वसान हो गया।

अभ्यास प्रश्न -3

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. 'राजवाहन' नामक राजकुमार का वर्णन है-
   (क) दशकुमारचरित (ख) मृच्छकटिक
   (ग) रत्नावली (घ) वेणीसंहार
2. काव्यादर्श में परिच्छेद है ?
   (क) 6 (ख) 3
   (ग) 9 (घ) 10
3. दण्डी की कितनी रचनाएं हैं ?
   (क) तीन (ख) चार
   (ग) पांच (घ) आठ
4. 'दण्डिनः पदलालित्यम्' यह उक्ति किस कवि के लिए कही गई है ?
   (क) आचार्य दण्डी (ख) सुबन्धु
   (ग) वाण (घ) अम्बिकादत्त व्यास
5. (ब) आचार्य दण्डी के पिता का नाम था।
   (क) वीरदत्त (ख) चित्रभानु

(ग) वाचस्पति (घ) राघव

(2) निम्न वाक्यों में सही के सामने (√) और गलत के सामने (×) का चिन्ह लगायें-

1. दशकुमार चरित के रचनाकार आचार्य दण्डी है। ( )
2. दण्डी ने गौणी रीति का प्रयोग किया है। ( )
3. दण्डी ने दश गुणों का निरूपण किया है। ( )
4. दण्डी ने अर्थालंकारों का वर्णन किया है। ( )

2.4 सारांश:-

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, अम्बिकादत्तव्यास के बारे में विस्तृत रूप से जाना। आपने इस इकाई के अध्ययन से जाना कि संस्कृत गद्य साहित्य में सुबन्धु का शीर्षस्थ स्थान है। सुबन्धु ही सर्वप्रथम लेखक हैं जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उनकी एकमात्र कृति वासवदत्ता है। श्रृंगार रस प्रधान यह कथा काल्पनिक कथानक पर आधारित है।

बाणभट्ट के गम्भीर अध्ययन का परिणाम उनकी कृतियों का सम्यक रूप में अध्ययन कर सकते हैं। बाणभट्ट की काव्य प्रतिभा एवं उनका गद्य वैशिष्ट्य तथा उनका प्रकृष्ट पाण्डित्य, उनकी कृतियों में वेद वेदांग, इतिहास, राजनीति, पुराण, आयुर्वेद, मीमांसा, न्याय, ज्योतिष, काव्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, तथा अनेकों कलाओं का ज्ञान पद पद पर दिखाई देता है। अतः इनके विषय में कही गई उक्ति **''बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्''** सर्वथा उपयुक्त है।

संस्कृत गद्य काव्य के लेखकों में आचार्य दण्डी की कृति आज भी आक्षुण्य है जिस गद्य शैली को बाण ने अपने मनोरम कादम्बरी के द्वारा प्रशस्थ किया उसी शैली को दण्डी ने अपने सरल, सुगम, दशकुमारचरित के द्वारा उज्जवल बनाते हुए चमत्कृत किया है। इनके द्वारा लिखा हुवा लक्षण ग्रन्थ काव्यादर्श अलंकारशास्त्र के अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। संस्कृत साहित्य के उपन्यासकार के रूप में आचार्य अम्बिकादत्तव्यास का स्थान अधुनिक युग में श्रेष्ठता के साथ लिया जाता है। जिसका अध्ययन आप इस इकाई के माध्यम से बड़े ही सरलता पूर्वक कर सकते है।

2.5 शब्दावली:-

शब्द	**अर्थ**
पुर्ववर्ती	पहले से विद्यमान
सारिका	सुक
जीवनवृत्ती	जीवन से सम्बन्धित
अवान्तरकाली	बाद के समय
प्राच्य	प्राचीन
ब्राह्मणोचित्त	ब्राह्मण के अनुरूप
प्रगल्भता	वाक्य चातुर्य
भावानुरूप	भाव के अनुरूप
कुशस्थल	कानकुब्जय
कुतुहल	बेचैनी
कथानक	संक्षिप्त कथा, कथासार

किवंदन्ती	प्रसिद्ध
सन्निविष्ट	मिला हुआ
निर्दिष्ट	बतलाया गया
पूर्ववर्ती	पहले से स्थित
प्रतिबिम्बित	चित्रित

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

अभ्यास प्रश्न (1)

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न:-

(1) ख (2) ग (3) घ (4) क (5) क

(2). (क) कन्दर्पकेतु (ख) कन्दर्पकेतु

(3)- 1. गलत 2. सही

अभ्यास प्रश्न -2

(1) बहुविकल्पीय प्रश्न –

1- (घ) शैशवावस्था में

2- (क) चौदह वर्ष की अवस्था में

3- (क) हर्षचरित में

4- (ख) हर्षवर्धन के

5- (क) 606 ई0 से 648 ई0 तक

(2) . 1सही .2 गलत .3 सही

(3).

1. शृंगार
2. गद्य
3. चन्द्रमा के
4. कादम्बरी
5. आख्यायिका
6. आठ

अभ्यास प्रश्न -3

(1) 1. क	2. ख	3. क	4. क	5. क
(2) 1. सही	2. गलत	3. गलत	4.सही	

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन, कस्तुरवानगर, वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।

3. संस्कृत साहित्य का बृहद इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ।

4. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास– डॉ0 कपिल देव द्विवेदी, रामनारायणलाल, प्रयागराज।

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास- कन्हैया लाल पोद्दार

6. बाणभट्ट का साहित्यिक अनुशीलन- डा॰ अमरनाथ पाण्डेय

2. 8 उपयोगी पुस्तकें:-

1. वासवदत्ता– सुबन्धु

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'

3. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ

5. कादम्बरी, बाणभट्ट, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास - कन्हैया लाल पोद्दार

7. दशकुमारचरित - आचार्य दण्डी

8. काव्यादर्श- आचार्य दण्डी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. सुबन्धु के जीवन परिचय एवं समय पर प्रकाश डालिए।

2. बाणभट्ट के जीवन परिचय एवं समय पर प्रकाश डालिए।

3. सुबन्धु की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

4. बाणभट्ट की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।

5. महाकवि दण्डी का काल निर्धारण कीजिए।

6. दण्डी के शैलीगत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

7. अम्बिकादत्तव्यास का जीवन परिचय दीजिये।

इकाई.3 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों का सामान्य परिचय

इकाई की रूप रेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों का परिचय
    3.3.1 वासवदत्ता का परिचय
    3.3.2 हर्षचरितम् का परिचय
    3.3.3 कादम्बरी का परिचय
    3.3.4 दशकुमारचरितम् का परिचय
    3.3.5 अन्य प्रमुख गद्यकाव्यों का परिचय
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यासार्थ प्रश्नोंत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रिय शिक्षार्थियों!

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई है। इससे पूर्व प्रथम खण्ड में आपने संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकारों के बारे में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में आप ‘‘संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों’’ के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के माध्यम से प्रमुख गद्यकाव्यों (वासवदत्ता, हर्षचरितम्, कादम्बरी, दशकुमारचरितम् एवं अन्य प्रमुख गद्यकाव्यों) के वैशिष्ट्य को अत्यन्त ही सूक्ष्म दृष्टि सें प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। जिसकी सहायता से आप प्रमुख गद्यकाव्यों के विषय में सरलता से जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप—

- वासवदत्ता के विषय में अध्ययन करेंगे।
- महाकवि दण्डी के दशकुमारचरितम् का अध्ययन करेंगे।
- बाणभट्ट के कृतियों के विषय में अध्ययन करेंगे।
- संस्कृत गद्यकाव्य में दशकुमारचरित का स्थान एवं महत्त्व के विषय में अध्ययन करेंगे।
- महाकवि दण्डी के दशकुमारचरित का वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
- संस्कृत के अन्य प्रमुख गद्यकाव्यों के विषय में अध्ययन करेंगे।

3.3 संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों का परिचय

3.3.1 वासवदत्ता का परिचय—

संस्कृत साहित्य के इतिहास में सुबन्धु का नाम गद्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध है। सुबन्धुत बाण के कुछ पूर्ववर्ती थे। सम्प्रति समुपलब्ध गद्यकाव्य में सुबन्धु की वासवदत्ता ही सबसे प्राचीनतम प्रतीत होती है। बाण ने हर्षचरित के सम्मानपूर्वक सुबन्धु का समुल्लेख किया है। हर्ष के सभापण्डित होने के कारण उन्हें बाण का स्थितिकाल सप्तम शती ई0 प्राय: सुनिश्चित है। सुबन्धु के काल के विषय में उनके नाम का प्राचीनतम उल्लेख वाक्पतिराज का है जिनका काल 734 ई0 है। उनके ग्रन्थ का प्राचीनतम उल्लेख कन्नौज के राजा हर्षवर्धन (606-647 ई0) के समकालीन कवि बाण का है। इस प्रकार अवश्य ही सुबन्धु बाण के पूर्ववर्ती है। सुबन्धु के काल पर एक और साहित्यिक साक्ष्य इस प्रकार है-‘‘न्यायस्थितिमिवोद्योतकरस्वरूपाम्’’ अर्थात् उद्योतकर वे द्वारा प्रतिपादित न्यायस्थिति के समान। यहाँ सम्बन्ध के द्वारा उल्लिखित उद्योतकर न्यायवार्तिक के रचियता माने जाते हैं, उन्होंने बौद्ध तांत्रिक दिड्नाग (525-600) का खण्डन किया है। यदि दिड्नाग और उद्योतकर को समकालीन भी मान लिया जाय तो भी वासवदना की रचना 520 ई. से पूर्व सिद्ध नहीं हो सकती अतः सुबन्धु को छठी शताब्दी के उत्तभरार्ध में ही रखना होगा। ऐसा भी माना जाता है कि सुबन्धु बाण का समकालीन था। परन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं है क्योंकि बाण ने वासवदना को उत्कृष्ट साहित्यिक रचना माना है जिससे

कवियों का दर्प टूट गया था। पुनश्च, दिड्नाग तथा उद्योतकर का काल भी पूर्णतः निश्चित नहीं है इसलिए सम्भवतः सुबन्धु बुद्धगुप्त विक्रमादित्य छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध के काल के कुछ समय ही बाद रहे होंगे। अतः सुबन्धु को इतिहासविदों ने छठी शती ई0 का माना है।

वासवदत्ता का कथासार—

सुबन्धु की रचना संस्कृत गद्यकाव्य का एक उत्कृष्ट आदर्श है। वासवदत्ता की स्वल्प कथावस्तु को अपने वर्णन वैचित्र्य से एक पूर्ण काव्य का रूप में दिया है। इनके काव्य में प्रत्येक अक्षर में श्लेष है, जिसे वह स्वयं कहते हैं—

प्रत्यहक्षरश्लेंषमयप्रपञ्चं विन्या सवैदग्ध्यनिधिप्रलम्ब्म्।
सरस्वयतीदत्तलवरप्रसादश्चंक्रे सुबन्धुद सुजनैकबन्धुय।।

यद्यपि इनका काव्य गौड़ी रीतिप्रधान होने से क्लिष्ट् है, प्रसाद और माधुर्य की न्यूनता के कारण स्वभाविक भी उसमें उतनी नहीं है, फिर भी कवि का अपना अप्रतिम पाण्डित्यप और विचित्र वर्णन क्षमता इस एक ही काव्य उसे महाकवि पद पर समासीन कर देती है ।

सुबन्धु की 'वासवदत्ता' में नायक राजकुमार कन्दर्पकेतु और नायिका राजकुमारी वासवदत्ता की प्रेमकथा वर्णित हैं लेखक का उद्देश्यक दोनों का मिलन करना ही हैं छोटे से कथानक को लेखक ने अपनी वर्णन शक्ति के ग्रन्थ का कलेवर दे दिया है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है—

राजा चिन्तामणी का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु अपने पिता की ही भाँति सद्गुणों से युक्त नवयुवक है। एक बार स्वप्न में वह अष्टादश वर्षीया अप्रतिम सुन्दरी कन्या को देखता हैं, उसकी सुन्दरता के आकर्षण से वह उस कन्या से प्रथम दृष्टँया प्रेम कर बैठता है। प्रेमाभिभूत राजकुमार उस कन्या को पाने के लिए बेचैन हो उठता है और उसके वियोग में भूख-प्यास त्यागकर एकान्तवास करने लगता है। किसी प्रकार उसका मित्र मकरन्द इस बात से अवगत होता है और उसको नीतिपरक उपदेष देते हुए समझाने का प्रयास करता है, किन्तु राजकुमार पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता है वह अपने मित्र से उस सुन्दरी को खोजने में सहायता मांगता है और उसको भुला पाने में अपनी असमर्थता व्यक्त करता है। इसके पश्चात उस अज्ञात सुन्दरी की खोज में कन्दर्पकेतु अपने मित्र मकरन्द के साथ निकल पड़ता है। खोजने के क्रम में एक रात वे विन्ध्य पर्वत की तलहटियों में एक वृक्ष के नीचे ठहरते है। रात में उसी वृक्ष पर बैठे एक शुकदम्पत्ती का वाकयुद्ध कन्दर्पकेतु को सुनायी देता है। सारिका (स्त्री शुक) पर परस्त्रीगमन का आरोप लगाते हुए देर रात्रि में आने कारण पूछती है शुक अपने देर से आने का कारण बताते हुए नायिका वासवदत्ता का निम्नेवत् वर्णन करने लगता है, सकल गुणों से युक्त श्रृंगारशेखर कुसुमपुर का राजा है। राजा की एक पुत्री है, जिसका नाम वासवदत्ता उसकी माता का नाम अनंगती है। पुत्री के विवाह योग्य हो जाने पर राजा उसको मनपसन्द वर चुनने की छूट दे देता है और भूमण्डल के समस्त राजकुमारों को स्वयंवर हेतु आमंत्रित करता है। किन्तु वासवदत्ता को कोई भी राजकुमार पसन्द नहीं आता है। उसी रात वासवदत्ता स्वप्न में एक सुन्दर राजकुमार को देखती है ओर स्वप्न में ही कन्दर्पकेतु के प्रेमपाश में आबद्ध हो जाती है। इस प्रेमपाश से वासवदत्ता को मुक्त कराने में उसकी सखियों के सारे प्रयास निरर्थक सिद्ध होते हैं। उसकी विरहावस्था तीव्रतर होती जाती हैं अन्ततः राजकुमारी की विश्वतस्त सारिका तमालिका को कन्दर्पकेतु का पता लगाने के लिए भेजा जाता है। जो कथा कहने वाले शुक के साथ उसी वृक्ष पर आ पहुँचती है जिसके नीचे

कन्दर्पकेतु और मकरन्द्र विश्राम कर रहे थे इनता सब जानने के पश्चात् मकरन्द भी तमालिका से कन्दर्पकेतु के विषय में सम्पूर्ण वृतान्त बताता हैं। कन्दर्पकेतु बहुत प्रसनन होता है और तमालिका को गले लगतो हुए उससे वासवदत्ता का कुशलक्षेम पूछता है। इसके पश्चा तृ दोनों मित्र तमालिका (सारिका) का अनुकरण करते हुए वासवदत्ता से मिलने के लिए उसके राज्य की ओर प्रस्थान करते हैं। वहाँ वासवदत्ता को अपने भव्य प्रसाद में दासियों से घिरे हुए देखकर खुशी से कन्दर्पकु अचेत हो जाता है। वासवदत्ता भी अपने सपनों के राजकुमार को देखक मूर्च्छित हो जाती है। सख्यिों द्वारा युगलप्रेमी चेतना में लाये जाते हैं। इसके पश्चारत् वासवदत्ता की प्रिय सखी कलावती कन्दर्पकेतु से वासवदत्ता की विरहकालीन व्यथाओं का वर्णन करती है। उसी के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि वासवदत्ता के पिता वासवदत्ता की इच्छा के विरूद्ध उसका विवाह विद्यधरों के देवपुत्र पुष्प केतु से कल ही करना चाहते हैं। इतना जानते ही कन्दर्पकेतु सख्यिों की सहायता से वासवदत्ता के साथ मनोजव नामक जादुई घोड़े पर चढ़कर निकल भागता है और मकरनछ को नगर का समाचार जानने के लिए वही छोड़ जाता है। दोनों प्रेमी भागते हुए विन्ध्य जंगल में पहुँचते है और थककर एक लताकुंज में सो जाते हैं। प्रातः काल जब कन्दर्पकेतु सोया ही था, वासवदत्ता इसके लिए फल इत्यादि लाने जंगल में चली जाती है। वासवदत्ता को जंगल में घूमते देखकर वहीं पर डेरा डाले दो किरात समूह उस पर अपना-अपना अधिकार जताने लगते हैं। फलस्वरूप भयंकर युद्ध होता है और इसी में एक ऋषि की कुटिया भी नष्टह हो जाती है। इस उपद्रव का कारण वासवदत्ता को मानते हुए ऋषि उसे शापमुक्त होने का रास्ता भी बताते हैं कि अपने अपने प्रिय द्वारा स्पर्शित होने पर शापमुक्त होकर पूर्वरूप में आ सकती है।

इधर नींद टूटने पर कन्दर्पकेतु अपनी प्रिया वासवदत्ता को वहाँ नहीं पाता है। वह उसकी खोज में निश्फल ही इधर-उधर भटकता हैं अन्त में दुःखी होकर वह समुद्र में डुबकर अपने प्राण त्यागने को उद्यत होता है। किन्तु उसी समय आकाषवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है और उसको प्रिया से पुर्नमिलन होने का आष्वासन देती है। इसके पष्चात् कन्दर्पकेतु प्रिया-वियोग में इधर-उधर घूमता-फिरता है। इस प्रकार रात-दिन और ऋतुएं व्यतीत होने लगती हैं। अन्त में घूमते हुए एक स्थान पर वह वासवदत्ता के सदृष एक पाशाणमूर्ति को देखा है, जब वह उस पाशाणमूर्ति का स्पर्ष करता है तो उसके स्पर्ष से वह मूर्ति सजीव हो जाती है। इस प्रकार वासवदत्ता पुनः स्त्री रूप में आ जाती है, षाप का प्रभाव समाप्त हो जाता है। दोनों प्रेमी प्रसन्न होकर आलिंगनबद्ध हो जाते है और दो समर्पित हृदयों का मिलन होता है। बाद में मकरन्द भी वहाँ पहुँच जाता है। कन्दर्पकेतु सबके साथ राज्य लौट आता है और अलभ्य मनोवांछित सुखों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत करता है।

3.3.2 हर्षचरितम् का परिचय—

सुबन्धु के बाद दूसरे गद्यकार बाण हैं। संस्कृत गद्यकाव्य में बाण अनुपम हैं। बाण ने गद्य के इतिहास में वही स्थान प्राप्त किया है जो कि कालिदास ने संस्कृत काव्य क्षेत्र में । बाद के लेखकों ने एक स्वर में बाण पर प्रशस्तियों की अभिवृष्टि की है। आर्या सप्तती के लेखक गोवर्धनाचार्य का कथन है— **''जाता शिखंडिनी प्राग्यथा शिखंडी तथावगच्छामि। प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणी बभूवेति।''** इनके नाम से पाँच रचनाएँ प्रकाशित हैं- हर्षचरित (आख्यायिका), कादम्बरी (कथा), पार्वती-परिणय, (नाटक) चण्डीशतक (स्तुतिकाव्यर) और मुकुटताडितक (नाटक) का उल्लेख चण्डपाल और गुणविजयगणि ने बाण

की कृति के रूप में है। किन्तु। यह उपलब्ध नही हैं। चण्डीशतक की विवेचना गीतिकाव्य के प्रसंग में की है। अत: यहाँ हर्षचरित का परिचय दिया जा रहा है।

हर्षचरित में बाण ने अपना और अपने वंश का समग्र विवरण दिया है। बाण संस्कृत के कुछ गिने-चुने लेखकों में से एक हैं जिनके जीवन एवं काल के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात है। कादम्बरी की भूमिका में तथा हर्षचरित में बाण ने अपने वंश के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सूचना दी है। हर्ष के सभापण्डित होने के कारण प्रायः इनका भी स्थितिकाल सप्तम शती निश्चित है। आठ उच्छ्वासों में उपलब्ध हर्षचरित एक आख्यायिका है। प्रारम्भ के इक्कीस श्लोकों में भगवान् शिव और पार्वती का वन्दन किया गया है। तदनन्तर संस्कृत साहित्य के प्रमुख कवियों तथा ग्रन्थों की भी स्तुति की गई है। प्रथम उच्छ्वास में बाण का स्वयं का वर्णन, मित्रवर्णनादि विषय संवलित है। तीन उच्छ्वासों के पश्चात बाण हर्षचरित सुनाना प्रारम्भ करते हैं।

विदित ही है कि महाकवि बाणभट्ट ने अपने जीवन के अनेक वर्ष सम्राट हर्षवर्धन के समृद्ध आश्रय में व्यतीत किये थे। इसलिए स्वाभाविक है कि हर्ष जैसे महान् सम्राट का गुणकीर्तन उसके आश्रित प्रतिभाशाली विद्वान कवि के द्वारा किया जाय। हर्षचरित, ऐतहिसासिक पृष्ठभूमि पर आधारित एक उच्चकोटि की गद्दकाव्य रचना है जिसे समीक्षकों ने: आाख्यायिका' की कोटि में रखा है। इसमें महाकवि बाण और सम्राट हर्ष के जीवन में कुछ अंशों की अलंकृत गद्यशैली में काव्यात्मक प्रस्तुति है।

हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। इनके प्रारम्भिक तीन उच्छ्वासों में कवि वंशानुकीर्तन पूवर्क अपना परिचय तथा षेश पाँच उच्छ्वासों में अपने आश्रयदाता सम्राट हर्षवर्धन के जीवन का कुछ अंश प्रस्तुत किया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हर्षचरित एक अपूर्ण रचना है। किन्तु यदि हम हर्षचरित में बाण के कथनों का अनुशीलन करें तो ज्ञात होगा कि यह एक पूर्ण रचना है।

प्रथम उच्छवास:- भगवान शिव और भगवती उमा की स्तुति करने के पश्चात कुकवि निन्दा और सुकवि प्रशंसा करके बाण ने पौराणिक शैली में अपने वंश के उद्भव की मनोरमा कथा प्रस्तुत की है। ब्रम्हा की सभा में दुर्वासा से अभिशप्त होकर सरस्वती, सावित्री के साथ नियतकाल के लिए निर्वासित होकर मर्त्यलोक अवतरित होती है। और शोणन्द के पष्चिमी तट पर एक मनोरम वन प्रान्त में निवास करने लगती है। वहां दैव योग से महर्षि च्वयन और सुकुन्याय के पुत्र कुमार दधीच से सरस्वती का सुदंर प्रीतिमय मिलन हुआ। उससे सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पति के साथ ही शाप समाप्त हो जाने के कारण सरस्वती, सावित्री के साथ ब्रम्हा लोक चली गयी। उदास दधीच ने पुत्र के पालन का भार भार्गव वंशोत्पन्न ब्राह्मण हुआ। अक्षमाला ने सामन वात्सल्य ने दोनो का पालन-पोषण किया। सारस्वत ने वत्स को सभी विद्याये प्रदान की तथा उसके लिए प्रीतिकूट नामक निवास बना दिया। स्वयं तपस्या के लिए पिता के पास चला गया । वत्स के कुल में बहुत समय पश्चात् कुबेर पैदा हुए। उनके चार पुत्र जिनमें से पाशुपत से अर्थपति नामक पुत्र हुआ। अर्थपति के ग्यारह पुत्र हए जिनमें से जिनमें से चित्रभानु का विवाह राजदोही से हुआ। इसी दम्पती के पुत्र बाण हुए । राजदेवी का निधन होने के पश्चात् बालक बाण का पालन पिता चित्रभानु ने किया। बाण जब चौदह वर्ष के हुए तो पिता भी दिवंगत हो गये किन्तु इसके पूर्व ही बाण के सारे संस्कार यथाविधि संपन्न हो चुके थे।

पितृवियोग का शोक कम होने पर बाणयस अपने मित्रों के साथ देशाटन करने निकले और कुछ पश्चाशत् अपने गांव लौटे। बान्धवों ने बाण का अभिनन्दन किया।

द्वितीय उच्छवास:- सम्राट हर्ष के भाई कृष्णक के बुलावे पर बाण हर्षसे मिलने गये। हर्षके मन में बाण के प्रति जो कुविचार थे, वे दूर हो गये तथा वे सम्राट के प्रेम-भजन उनके आश्रम में रहने लगे।

तृतीय उच्छवास:- पर्याप्त काल हर्ष की सन्निधि में व्यतीत कर बाण प्रीतिकूल में अपने बंधु बान्धवों के बीच उन लोगों के कहने पर उन्होंने महाराज हर्ष का चरित सुनाना आरंभ किया। प्रारंभ में उन्होंने हर्ष के पूर्वज श्रीकण्ठ जनपदान्तर्गत स्थणीश्वयर प्रदेशके राजा पुष्येभूति का वर्णन किया।

चतुर्थ उच्छवास:- पुष्ययभूति से प्रवर्तित राजवंशमें हूणहरिणकेसरी राजाधिराज प्रभाकरवर्धन उत्पन्न हुए। आदित्यपूजक उस राजा की पत्नी का नाम यशोमती था। इस दम्पती को राजवर्धन, हर्षवर्धन और राज्यश्री नामक तीन संतानों हुई । यशोमती के भाई का पुत्र भण्डिय इन दोनों राजकुमारों के अनुचर के रूप में साथ रहने लगा । दो मालव कुमार-कुमारगुप्त और माधवगुप्त भी इनके सहचर हो गये। राजश्रीदास का विवाह मौखरिवंश के ग्रहवर्मा के साथ हुआ ।

पंचम उच्छवास:- राजा प्रभाकरवर्धन ने कुमार राज्यवर्धन को हुणों को परास्त करने के लिए उत्तरी सीमा पर भेजा। हर्षवर्धन भी कुछ दूर तक उनका अनुगमन करते रहे किन्तु बाद में आखेट के लिए रूक गये। एक रात उन्होंने दुःस्वप्न देखा और अगले दिन उन्हें पिता की गंभीर रूग्णावस्था का संदेश मिला। वे तुरंत लौटे और पिता की दशा देखकर संतप्त हो गये। राजा ने किसी तरह आलिंगन पूर्वक हर्ष को भोजन के लिए राजी किया। राजा की हालत बिगड़ने लगी। चिकित्सा कर रहे वैद्य ने निराश होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया। रानी यशोमती ने भी, हर्ष के लाख मनाने के बावजूद राजा की मृत्यु के पूर्व ही अग्निप्रवेश कर लिया। कुछ देर ही राजा का भी प्राणान्त हो गया। हर्ष षोक-सन्तप्तर हो गये और बड़े भाई के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे ।

षष्ठ उच्छवास:- राज्यवर्धन लौटे और दोनों अत्यंत शोक पूर्वक देर तक रोते रहे। राज्यवर्धन को राज्य से विमुख जानकर हर्ष ने अषिषय विनय कुमार किया। तभी राज्यश्री का परिचारक आकर रोने लगा कि मालवराज ने ग्रहवर्मा की हत्या करके राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। हर्ष को राज्यभार सौंप कर राज्यवर्धन, भण्डि और दश हजार घुड़सवारों के साथ मालवराज को विनष्टआ करने हेतु चल पड़ा। कुछ ही दिनों बाद कुन्तल ने आकर बताया कि राज्यवर्धन ने मालवराज को परास्त कर दिया था किन्तु गौडाधिप ने धोखे से राज्यवर्धन का मार डाला। यह सुनकर हर्ष क्रोध से तमतमा उठा। हर्श ने सिंहनाद नाम सेनापति से प्रेरित होकर प्रतिज्ञा की गौडाधिप समेत सभी षत्रुओं का विनाश कर एकच्छत्र राज्य स्थापित करूगाँ। इस अवसरस पर गजाधिप स्कन्दगुप्त ने अनेक राजाओं की विपत्तियों का वर्णन किया।

सप्तम उच्छवास:- महाराज हर्षवर्धन ने शुभ मुहूर्त में दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। एक पड़ाव पर प्राग्ज्योतिशेश्वपर कुमार का दूत आकर उन्हें 'आभोग' नाम छत्र भेंट कर गया और राजा ने कुमार के अनुराध पर उसे अपना मित्र बना लिया । कुछ समया बाद भण्डि (हर्ष के मामा का पुत्र) आया और उसने रोते हुए बताया कि राज्यवर्धन की मृत्यु के बाद गुप्त ने कुशस्थल पर अधिकार कर लिया और राज्यश्री कारागार से निकलकर विन्ध्य के वनों में चली गयी है। उसने

उसे खोजने के लिए कुछ आदमी लगाये किन्तु सफलता न मिली। तब सोना समेत भण्डि को गौड़ देश का आदेशदेकर हर्ष स्वयं राज्यश्री को खोजने चल पड़ा।

अष्टम उच्छवास:- वन में कई घूमने के पश्चात् एक शबर युवक की सहायता से हर्ष गिरिनदी के तट पर रहने वाले भिक्षु दिवाकर मिश्र के आश्रम में पहुँचे। दिवाकर मित्र के साथी एक भिक्षु द्वारा तत्काल लाये गये वृत्तान्त को सुनकर वे सभी उस स्थान पर पहुँचे जहाँ एक स्त्री साहस पूर्वक अग्नि प्रवेश करने जा रही थी। हर्श अपनी बहन राज्यश्री को पहचान गये और उसे पकड़कर बचा लिया। भाई-बहन का यह मिलन अद्भुत कारूणिक था। राज्यश्री ने काशाय ग्रहण करने की आज्ञा हर्ष से मांगी किन्तु हर्ष ने उसे तब तक के लिए मना कर दिया जब तक वह दुःखी प्रजा को शत्रुओं का दमन करके सुखी न कर दे। दिवाकर मित्र ने इसका अनुमोदन किया। रात वहीं आश्रम में व्यतीत की। भाई-बहन दोनों अगले दिन प्रातः काल अपने शिविर को चले गये।हर्ष का इतना ही चरित सुनाते-सुनाते दिवसावसान हो गया।

3.3.3 कादम्बरी का परिचय—

बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी एक कथा है। कथानक कवि-कल्पित हैं और इसमें चन्द्रापीड एवं पुण्डरीक के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी दो भागों में है - पूर्वभाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और इसे ही बाण की कृति माना गया है। उत्तर भाग की रचना बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषणभट्ट ने की है। कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। विदिशा नगरी के राजा थे शूद्रक, जो अत्यन्त प्रतापी और कलाविद् थे। एक दिन प्रातः वे अपनी राजसभा में बैठे थे, तभी प्रतीहारी ने आदेश प्राप्त कर एक चाण्डाल कन्या को सभा में प्रवेश कराया। चाण्डाल कन्या के हाथ में सोने का पिंजरा था, जिसमें वैशम्पायन नाम का शुक था। शुक ने अपना दाहिना चरण उठाकर श्लोक द्वारा राजा का अभिवादन किया। शुक द्वारा राजा शूद्रक के समक्ष कथा का आरम्भ - इस शुक के विषय में राजा को महान कौतूहल हुआ और चाण्डाल कन्या तथा शुक के भोजन एवं विश्राम कर लेने पर राजा ने उस शुक से अपने विषय में बताने को कहा। शुक ने अपनी कथा सुनाई और बताया कि वह विन्ध्याटवी में अपने वृद्ध पिता के साथ रहता था। एक बहेलिये ने अन्य शुकों के साथ उसके पिता का वध कर दिया और नीचे फेंक दिया। पिता के पंखों के भीतर छिपकर वह भी नीचे गिरा, किन्तु बच गया। अपने प्राण बचाने के लिए वह झाड़ियों में छिप गया और बहेलिये के चले जाने के बाद उस मार्ग से जाने वाले ऋषिकुमार हारीत उसे दयावश अपने साथ लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम आये। जाबालि ने अपने शिष्यों को शुक के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

जाबालि द्वारा आश्रम के शिष्यों के समक्ष शुक के पूर्व जन्म तथा चन्द्रापीड की कथा सुनाना - उज्जयिनी में तारापीड नाम के राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। राजा के महामन्त्री का नाम शुकनास और महामन्त्री की पत्नी का नाम मनोरमा था। बहुत दिनों की पूजा अर्चना के बाद राजा तारापीड को पुत्र की प्राप्ति हुई और उसी दिन शुकनास के यहाँ भी एक पुत्र ने जन्म लिया। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर पिता तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक किया। इस अवसर के पूर्व चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास से मिलने गया और शुकनास ने एक सारगर्भित उपदेश दिया, जो शुकनासोपदेश नाम से प्रसिद्ध है। अभिषेक के बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा पर निकला। अनेक राजाओं को परास्त कर वह

हिमालय के निकट विश्राम करने के लिए रुका। एक दिन शिकार खेलने के लिए निकलने पर उसने किन्नर-मिथुन को देखा और उत्सुकतावश उनका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया। किन्नर-मिथुन अदृश्य हो गये, तब जल की खोज में वह अच्छोद सरोवर के पास पहुँचा। वहाँ जल पीकर अपने अश्व को बाँधकर विश्राम करने लगा, तब ही उसे वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ी, जिसकी खोज करते हुए उसने सरोवर के तट पर स्थित शिव के मन्दिर में वीणा बजाकर स्तुति करती हुई एक युवती को देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। युवती उसे अपने आश्रम में ले गयी और उसने फल आदि से चन्द्रापीड का सत्कार किया। चन्द्रापीड के आदरपूर्वक प्रश्न करने पर उस युवती ने, जिसका नाम महाश्वेता था, अपनी कथा इस प्रकार सुनाई।

सारांश—

कादम्बरी विश्वसाहित्य के अनुपम और समस्त दृष्टियों से उन्नतकोटि का गद्यकाव्य स्वीकार किया गया है। कादम्बरी का वर्ण्य विषय गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया गया है। इस कथा में तीन जन्मों की कथा आपस में गुंथी हुई है। इसका नायक प्रथम जन्म में चन्द्रमा, द्वितीय में चन्द्रापीड तथा तृतीय में शूद्रक बना है। प्रथम जन्म का पुण्डरीक, द्वितीय जन्म में वैशम्पायन तथा तृतीय जन्म में शुक बना है। कथा तीन भागों में विभक्त है - कथामुख, पूर्वभाग तथा उत्तर भाग। बाण की सहज प्रफुल्लित प्रकृति, चित्रग्रहिणी प्रतिभा, कल्पनाशील मन और असाधारण पाण्डित्य का जो प्रदर्शन हमें हर्षचारित में दृष्टिगोचर होता है, वह कादम्बरी में नितान्त परिपक्व और पुष्ट होकर निखर उठता है। अर्थ के अनुरूप शब्द की योजना, घटना के अनुसार और असमास, अल्पसमास या दीर्घसमास की संरचना, प्रकृति का अद्भुत तद्रूप निरूपण एवं पात्रों का सटीक चरित्र चित्रण करने की अद्भुत क्षमता बाण में है। पाञ्चाली रीति और ओज गुण के लिए विख्यात बाण काव्य की सभी विधाओं में निष्णात हैं।

3.3.4 दशकुमारचरितम् का परिचय—

संस्कृत गद्यकाव्य के इतिहास में सरस गद्य लेखक के रूप में दण्डी का नाम अमर है। बाण के अनन्तर प्रसिद्ध गद्यकार दण्डी हैं। संस्कृत वाङ्मय के विश्रुत महाकवि भारवि के प्रपौत्र थे। इनकी विद्वत्ता की इतनी ख्याति थी कि बाल्मीकि और व्यास की कोटि में इन्हें गिना जाता था। इनका स्थिति काल बाण के पश्चात अर्थात् सातवीं शती ई0 का अन्तिम चरण और आठवीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। क्योंकि नवम शताब्दी में ग्रन्थकारों ने इनका उल्लेख किया है और अपने काव्यादर्श में दण्डी ने राजवर्मा का उल्लेख किया है। पल्लोवराज नरसिंहवर्मा द्वितीय का उपनाम राजवर्मा था और उसका शासनकाल 690 से 715 ई0 है। 'त्रयो दण्डीप्रबन्धाश्चव त्रिषु लोकेषु विश्रुता:' राजशेखर कि इस उक्ति से ज्ञात होता है कि दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की जो निम्न है—

1- काव्यादर्श, 2- अवन्तिसुन्दरीकथा 3- दशकुमारचरित। 'ओज: समासभूयस्व्इ मेतद् गद्यस्यर जीवितम्' इनका यह वाक्य उनके प्रखर गद्यकार होने का साक्षी है।

दशकुमारचरित महाकवि दण्डी की गद्यरचना है। महाकवि लालित्यपूर्ण गद्य लिखने के लिए विख्यात हैं। इनका दशकुमारचरित उनके इस गुण को प्रकट करने में समर्थ है। इस काव्य का कथानक इस प्रकार है।—

दशकुमारचरित इस नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य का विषय दश कुमारों के चरित्र का वर्णन करना है। यह गद्यकाव्य पूर्वपीठिका, उत्तरपीठिका और उपसंहार इन तीन भागों में

विभक्त है। इसका अवान्तर वर्गीकरण उच्छ्वासों हुआ है। पूर्वपीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं। उत्तरपीठिका में आठ उच्छ्वास और उपसंहार भाग का कोई वर्गीकरण नहीं है। पूर्वपीठिका में दो राजकुमारों सोमदत्त और पुष्पोद्भव के चरित्र वर्णित हैं। उत्तरपीठिका में राजवाहन, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और सुश्रुत इन आठ राजकुमारों के चरित वर्णित हैं। उपसंहार में विश्रुत का चरित्र वर्णित है। मगध के राजा राजहंस मालवनरेश से पराजित होकर वन में चले जाते हैं। वहाँ उनकी रानी राजकुमार राजवाहन को जन्म देती है। इसी समय सम्राट राजहंस के चार मन्त्री भी एक-एक पुत्ररत्न को प्राप्त करते हैं। कालान्तर में अन्य पाँच राजकुमार भी वन में राजा राजहंस के पास लाए जाते हैं और इन सभी दसों कुमारों का पालन-पोषण तथा प्रशिक्षण एकसाथ किया जाता है। वयस्क होने पर राजवाहन अपने साथियों के साथ दिग्विजय हेतु प्रस्थान करते हैं। भाग्यवशात् ये सभी अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं। दैवयोग से ही पुनः इनका मिलन होता है और ये सभी अपने साथ बीती घटनाओं को सुनाते है। इन्हीं आपबीती घटनाओं का वर्णन दशकुमारचरित का वर्य् य विषय है।

दशकुमारचरितम् की कथावस्तुन—

''दण्डिनः पदलालित्यम्'' दशकुमारचरित महाकवि दण्डी की गद्यरचना है। दण्डी लालित्यपूर्ण गद्य लिखने के लिए विख्यात हैं। दशकुमारचरित उनके इस गुण को प्रकट करने में समर्थ है। इस काव्य का कथानक इस प्रकार है।—

दशकुमारचरित इस नाम से ही स्पष्ट है कि इस काव्य का विषय दश कुमारों के चरित्र का वर्णन करना है। यह गद्यकाव्य तीन भागों में विभक्त है। इसका अवान्तर वर्गीकरण उच्छ्वासों हुआ है। पूर्वपीठिका में पाँच उच्छ्वास हैं। उत्तरपीठिका में आठ उच्छ्वास और उपसंहार भाग का कोई वर्गीकरण नहीं है। काव्य का आरम्भ इस प्रकार होता है कि पुष्पपुरी (आधुनिक पटना) का राजा राजहंस मालवेश्वर मानसार को पराजित करता है परन्तु तपस्या के प्रभाव से सम्पन्न होने के कारण मानसार पाटलिपुत्र (पटना) पर चढ़ाई कर देता है और राजहंस को युद्ध में परास्त कर देता है। परास्त होकर राजा राजहंस सपरिवार जंगल में चला जाता है। वहीं पर उनकी रानी के पुत्र उत्पन्न होता है, जिसका नाम राजवाहन रखा जाता है। राजहंस के मन्त्रियों के भी पुत्र होते हैं। जब राजकुमार और मन्त्रियों के पुत्र बड़े हो जाते हैं; तब वे सब यात्रा पर चले जाते हैं। दुर्भाग्य से वे सब एक-दूसरे से बिछुड़ जाते हैं और अलग-अलग स्थानों पर जाकर संकटपूर्ण तथा विचित्र जीवन यापन करते हैं। पुनः वे एक-एक करके राजवाहन से मिलते हैं और अपने-अपने जीवन यापन की विचित्र घटनाएँ राजवाहन को सुनाते हैं। इनके ये वृत्तान्त ही दशकुमारचरित में क्रमशः वर्णित हैं।

दशकुमार के पूर्वपीठिका का कथानक—

दशकुमार के पूर्वपीठिका में मगधनरेश राजहंस का मालवनरेश मानसार से युद्ध, पराजित होकर राजहंस का विन्ध्यावटी में निवास, वहीं पर उनके पुत्र राजवाहन की उत्पत्ति राजहंस के मित्र मिथिलानरेश प्रहारवर्मा के दो पुत्रों की तथा अन्य सात मन्त्री कुमारों की भी प्राप्ति । उनके यौवन होने पर उन सबको राजहंस की आज्ञा से दिग्विजय के लिए प्रस्थान, मार्ग में किरातों के साथ रहे हुए मातंग नाम के ब्राह्मण की सहायता के लिए रात में गुप्त रूप से राजवाहन का उनके साथ पाताल गमन, राजवाहन की सहायता से मातंग को पाताल का राज्य और दैत्य राजकुमारी की प्राप्ति और मातंग से राजवाहन की भूख और प्यास को मिटाने वाली मणि की

प्राप्ति का वर्णन है। प्रातः काल राजवाहन को ने देखकर उनके मित्रों का उन्हें ढूंढने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों में प्रस्थान राजवाहन के साथ सोमदत्तर और पुष्पोद्भव का समागम उन दोनों का राजवाहन को अपना चरित्र सुनाना। ऐन्द्र जालिक ब्राह्मण विघ्नेश्वर के द्वारा राजवाहन का मानसार, नन्दिनी अवन्तिसुन्दरी के इन्द्र जाल के प्रयोग से विवाह का वर्णन वर्णित है।

दशकुमारचरित महाकवि दण्डी की गद्यरचना है। दशकुमारचरित के हस्तलिखित तथा प्रकाशित संस्करणों में प्रायः तीन भाग हैं- (1) पूर्व पीठिक (प्रथम भाग) (2) दशकुमारचरित (द्वितीय भाग) (3) उत्तगरपीठिका (तृतीय भाग)। इनमें से मध्यवर्ती अष्टमोच्छवासात्मक अंश ही दण्डी की वास्तविक कृति मानी जाती है।

दशकुमारचरित पूर्व पीठिका (प्रथम भाग)— पूर्व पीठिका पॉच उच्छवासों में विभक्त है।

1. प्रथम उच्छवास में राजवाहन का जन्म (कुमारोत्त पत्ति) व उनकी शिक्षा का वर्णन है।
2. द्वितीय उच्छवास मन्त्री पुत्रों का जन्म (द्विजोपकृति), राजवाहन की पाताल यात्रा का वर्णन है।
3. तृतीय उच्छवास सोमदत्तर की आपबीती (सोमदत्तकचरितम्) का वर्णन है।
4. चतुर्थ उच्छवास पुष्पोद्भव की आपबीती एवं सोमदत्तस एवं पुष्पोद्भव नामक दो कुमारों की कथा (पुष्पोद्भवचरितम्) का वर्णन है।
5. पंचम उच्छवास में राजवाहन का अवन्तिसुन्दरी से विवाह (अवन्तिसुन्दरी परिणय) आदि का वर्णन है।

दशकुमारचरित (द्वितीय भाग)—

सुबन्धु एवं बाण से भिन्न, दण्डी ने कथा में काव्य की अलंकृत चमत्कृति का प्रदर्शन करने में अत्यधिक प्रयत्न किया है। दण्डी के गद्यकाव्यों का मुख्य उद्देश्यं जीवन तथा यथार्थता का चित्रण करना है जो अन्य गद्यकाव्य में कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। दशकुमारचरित (द्वितीय भाग) आठ उच्छवासों में विभक्तय है। इसमें कुमारों का चरित्र चित्रण वर्णित है, जिसमें राजवाहन, अपहारवर्मा, उपहारवर्मा, अर्थपाल, प्रमति, मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, एवं विश्रुत के चरित्र का वर्णन किया गया हैं। आठ उच्छवासों का कथानक इस प्रकार है।—

1. प्रथम उच्छवास (राजवाहनचरितं) में राजवाहन को एक बन्दी के रूप में प्रस्तुत करते हुए दशकुमारचरित की कथा प्रारम्भ होती है। चम्पा के अभियान में राजवाहन को अपने सब मित्र मिलते हैं जो अपनी 'साहसिक घटनाओं' का वर्णन करते हैं।
2. द्वितीय उच्छवास (अपहारवर्मचरितं) में समृद्ध घटनाओं एवं विविध पात्रों से युक्त अपहारवर्मा की कथा है। मारीचि नाम के ऋषि तथा वास्तु-पाल नाम के श्रेष्ठी का प्रवञ्चना बहुत रोचक है। नायक के द्यूतशाला में अनुभव तथा घरों में सेंध लगाना आदि हास्यपूर्ण घटनाएँ हैं।
3. तृतीय उच्छवास (उपहारवर्मचरितं) में उपहारवर्मा की कथा है। उसने राज्यापहारी के मन पर अधिकार करके अपनी अद्भुत सौन्दर्य देने की शक्ति के विषय में सुझाया। इस प्रकार सौन्दर्यशक्ति के बहाने से उनकी हत्या कर दी तथा अपने पिता के खोए हुए राज्य को वापस लिया।
4. चतुर्थ उच्छवास (अर्थपालचरितं) में बतलाया गया है कि अर्थपाल ने अपने पिता के खोए मन्त्रिपद तथा मणिकार्णिका नामक राजकुमारी को प्राप्त किया।
5. पंचम उच्छवास (प्रमतिचरितं) में प्रमति श्रावस्ती की राजकुमारी का पाणि-ग्रहण करता है। युवराज की यात्रा के वर्णन में ग्राम्य तथा नागरिक जीवन का अनेक प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है।

6. पष्ठ उच्छ्वास (मित्रगुप्तचरितं) में मित्रगुप्त के द्वारा खुँह देश की राजकुमारी की प्राप्ति का वर्णन है। इसमें दण्डी ने समुद्र पर किये गये साहसों का वर्णन किया है।

7. सप्तम उच्छ्वास (मन्त्रगुप्तचरितं) में मन्त्रगुप्त के अनुभवों का वर्णन है।

8. अष्टम उच्छ्वास (विश्रुतचरितं) में विश्रुत के साहसिक कार्यों का वर्णन है जो विदर्भ देश के राजकुमार को उसका खोया हुआ राज्य दिलाता है।

उत्तरपीठिका (तृतीय भाग) —

उत्तरपीठिका दण्डी द्वारा छोड़ी गई कथा है जो एक उच्छ्वास में उपसंहार रूप में उपलब्धव होती है। दशकुमारचरित एक घटना प्रधान कथानक है। जिसमें द्युतक्रीड़ा, सेंध लगाना, चालाकी, धूर्त्तहता, प्रवञ्चना, हिंसा, हत्या, जालसाजी, अपहरण एवं अवैध प्रेम का वर्णन सामूहिक रूप में सब कथाओं में मिलते हैं। लेखक का समाज के प्रति व्यवहार अतीव सोपालम्भ है। परन्तु इनका उद्देश्य अनैतिकता का समर्थन करना नहीं है। लोगों की मिथ्या मान्यताओं का विश्लेषण करके समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना ही इनका मुख्य उद्देश्य है।

3.3.5 अन्य प्रमुख गद्यकाव्यों का परिचय—

संस्कृत साहित्य का विकास क्रम किसी भी युग में अवरूद्ध नहीं हुई और यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि आधुनिक काल अर्थात् विगत शताब्दी और प्रवर्तमान शताब्दी में उसमें निर्मित उच्च कोटि का विशाल साहित्य हमारे आकलन का विषय रहा है। प्राचीनकाल में भारत में संस्कृत साहित्य के इतिहास का लेखन नहीं हुआ। इसके लेखन की परम्परा पहले, विगत शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों ने स्थापित की।

1. तिलकमञ्जरी— 10 वीं शती के उत्तरार्ध एवं एकादश शती के पूर्वार्ध में धनपाल ने तिलकमञ्जरी की रचना की। ये राजा भोज के चाचा मुञ्जराज के सभा में सम्मानित कवि थे। राजामुञ्ज ने इनकी काव्य प्रतिभा से अभिभूत होकर उन्हें 'सरस्वती' विरुद्ध के से सम्मानित किया था। तिलकमञ्जरी पर कादम्बरी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है तथा तात्कालिक भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों प्रतिबिम्बित होती हैं, साथ ही तात्कालिक शिल्पकला एवं मूर्तिकला का सुन्दर चित्रण तिलकमञ्जरी में प्राप्त होता है।

2. गद्यचिन्तामणि— 11वीं शताब्दी धनपाल के कुछ दिनों बाद महाकवि वादीभसिंह हुए थे जिन्होंने गद्यचिन्तामणि नामक गद्य काव्यब लिखा। ये तमिल राज्य के निवासी थे। इनके नाम से स्याहद्वादसिद्धि, नवपदार्थनिश्चय आदि पांच कृतियां निर्दिष्ट हैं।

3. गद्यकथाकोष — प्रभाचन्द्र का समय 12 वीं शताब्दी तथा जिनभद्र (13 वीं शताब्दी) था। प्रभाचन्द्र ने गद्यकथाकोष के रूप में 89 कथाओं की काव्य कथा प्रस्तुत की है। इनमें मुख्यत: गुजरात, राजस्थान, मालवा तथा वाराणसी के प्रसिद्ध महापुरुषों की कथाएं हैं।

4. प्रबन्धचिन्तामणि — 14 वीं शताब्दी में प्रबन्धचिन्तामणि नामक ग्रन्थ के लेखक, मेरुतंग चंद्रप्रभ मुनि के शिष्य थे। प्रबन्ध चिन्तामणि के कुल 11 प्रबन्ध है, जिनमें ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है।

5. प्रबन्धकोश— इनका समय 14 वीं शताब्दी है। इनकी कई कृतियां प्रसिद्ध है जिसमें गद्यकाव्य प्रबन्धकोश भी है। इसकी रचना 1405 विक्रमाब्दन 1348 ई0 में पूरी हुई थी। इसका दूसरा नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध भी है क्योंकि इसमें 24 महापुरुषों के जीवन वृत्त हैं। इतिहास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है यद्यपि दन्तकथाओं का भी इसमें समावेश है।

6. वेमभोपालचरित — 1450 ई0 बामनभट्टबाण का समय है। बाणभट्ट के समान ये भी वत्स गोत्र के थे । तेलंगाना के शासक वेमभोपाल की राज्यसभा में इन्होंने आदर पाया था, उनके जीवनवृत्त को वेमभोपालचरित नामक आख्यायिका में गुम्फित किया । यह हर्षचरित से प्रेरित गद्यकाव्य है। वेमभोपाल स्वयं भी कवि थे जिन्होंने अमरुशतक पर श्रृंगारमंजरी टीका लिखी थी। बामनभट्ट ने बाण की ख्याति और पौढि का दावा किया है। इन्होंने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे।

7. मन्दारमञ्जरी— इनका समय 18 वीं शती का पूर्वार्ध माना गया है। यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे तथा व्याकरण, दर्शन, साहित्य, के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने विविध विषयों से सम्बन्धित लगभग 20 ग्रन्थों का प्रणयन किया मंदार। मन्दारमञ्जरी इनकी उत्कृष्ट गद्य रचना है जिस पर कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भाषा सरस एवं ललित कादम्बरी की कथा के समान मुख्य् कथा में अनेक कथाओं का नियोजन किया गया है। इनके अन्यथ ग्रन्थ् इस प्रकार हैं- वैयाकरणसिद्धान्तिसुधनिधि, तर्ककुतूहल, श्रृंगारमंजरी, रसचन्द्रिका, अलंकाप्रदीप, रोमावलीशतक ।

संस्कृत साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल का आरम्भ कब से जाना जाए, इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद व्याप्त हैं। सामान्यतः कह सकते हैं कि जो पूर्व है वह प्राचीन है और जो प्रवर्तमान है वह आधुनिक है, गद्य साहित्य का विकास पद्य साहित्य के बाद का माना जाता है। संस्कृत में अर्वाचीन समय से ही पद्य और गद्य का प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। वेदों का वाङ्मय पद्य और गद्य दोनों में निबद्ध है और प्राचीनतम काल से दोनों साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद पद्यबद्ध है तो यजुर्वेद गद्य में। ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद आदि गद्यबद्ध हैं और उनका गद्य इतना परिपक्व, सुगठित और उच्चस्तरीय है कि वह आदिमकालीन या प्रारम्भिक अवस्था का न होकर चरम, परिपक्व और विकसित अवस्था का परिलक्षित होता है। पञ्चतन्त्र की कथाएँ विश्व के प्राचीनतम कथा-साहित्य में प्राप्त होती हैं। नाट्य साहित्य में भी गद्य और पद्य के समन्वित रूप प्राप्त होते हैं।

गद्य साहित्य की कुछ प्राचीन विधाएँ संस्कृत साहित्य के आदिकाल से ही प्राप्त होती है। संस्कृत गद्य की इस चिरन्तन धारा में युगानुरूप विकास भी हुआ है । कादम्बरी जैसी प्राचीन कृतियाँ उपन्यास विधा में प्राचीन हैं, आधुनिक काल में भी संस्कृत लेखन हुआ है। लघुकथा की नवीन विधा संस्कृत में आधुनिक काल में ही जन्मी है, ललित निबन्ध, यात्रावृत्तान्त आदि आधुनिक काल में लिखे जाने लगे। सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास कहा जाने वाला 'शिवराजविजयम्' सर्वप्रथम 'संस्कृतचन्द्रिका' पत्रिका में ही धारावाहिक रूप से निकला था। उस समय की अधिकांश कहानियों, उपन्यासों, निबन्धों, पत्रों आदि का जन्म संस्कृत पत्रकारिता से ही हुआ था। अप्पाशास्त्री राशिवडेकर (1873-1913), जिन्होंने 'संस्कृतचन्द्रिका' में स्वयं अनेक उपन्यास, कहानियाँ आदि लिखीं तथा जिनके कार्यकाल में अनेक विख्यात लेखक हुए। फिर भट्ट मथुरानाथ शास्त्री (1889-1964) ने 'संस्कृत रत्नाकर' में शतशः कथाएँ, उपन्यास, निबन्ध आदि लिखे, इसी प्रकार डॉ0 वेंकटराघवन (1908-1979) ने देश की साहित्य अकादमी की मुख पत्रिका 'संस्कृत प्रतिभा' द्वारा भारत के संस्कृत नवलेखकों को प्रोत्साहित और स्वयं मंच-नाटक काव्य आदि में नूतन सर्जना की। इस दृष्टि से आधुनिक काल की संस्कृत सर्जना को इन तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) अप्पाशास्त्री युग 1890-1930 (2) भट्ट मथुरानाथ शास्त्री युग 1930-1960 (3) राघवन युग 1960-1980 इन तीन युगों में संस्कृत गद्य में भी क्रान्तिकारी विकास हुआ। "आधुनिक युग का संस्कृत गद्यकार देवी-देवताओं की स्तुति या उपाख्यान ही नहीं लिखता, अब उसके नायक हैं राष्ट्रनेता, समाजसेवक, उसकी विषय वस्तु है विश्वशान्ति की आवश्यकता, सामाजिक विद्रूपताओं पर प्रहार, राजनीति का प्रदूषण, भ्रष्टाचार, विश्वक्षितिज पर हो रही घटनाएँ। संस्कृत में उपन्यास और कहानियाँ लिख रहा है, आधुनिक संस्कृत गद्यकाव्य की नवीन विधायें-कथा, आख्यायिका आदि प्राचीनकाल से प्रचलित हैं। महाकवि बाण भट्ट की रचनाओं, हर्षचरित और कादम्बरी को संस्कृत की अलंकृत गद्यशैली का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग माना गया और उनके आदर्श पर अनेक शताब्दियों तक संस्कृत में लेखन की प्रवृत्ति अभिलक्षित होती है।

उपन्यास—

आधुनिककाल के संस्कृत के प्रथम उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास रचित 'शिवराजविजयम्' को बहुत प्रतिष्ठा मिली, निश्चय ही गद्य लेखन में पं0 व्यास को मिली प्रतिष्ठा ने संस्कृत में गद्य लेखन को दूर तक प्रेरित किया है।

उपन्यास विधा का अस्तित्व भारत मे लगभग एक हजार वर्षों से चला आ रहा है। सुबन्धु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी को थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपन्यास का ही एक रूप माना जा सकता है। इस प्रकार यह विधा विश्व के किसी भी प्राचीन साहित्य में हमें प्राप्त नहीं होती है। इस प्रकार उपन्यास विधा मूलतः भारत की ही देन है।

आधुनिक काल में संस्कृत के उपन्यासों की एक लम्बी श्रृंखला है। सर्वप्रथम संस्कृत उपन्यास पं. अम्बिकादत्त व्यास का शिवराजविजयम् माना जाता है। अपनी नूतन शैली और प्रेरक विषयवस्तु के कारण यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसके अनेक संस्करण, टीका, अनुवाद आदि निकले। भारत में मुगलों के साम्राज्य, अत्याचार आदि के विरूद्ध हुए आन्दोलन के प्रतीक के रूप में शिवाजी महाराज द्वारा किया गया सशस्त्र संघर्ष इसकी विषयवस्तु है। नगेन्द्रनाथ सेन का कल्याणी (1918), रेणुदेवी का रजनी (1920) और राधा (1922), राधारानी (1930), बलभद्र शर्मा का वियोगिनी बाला (संस्कृतचन्द्रिका, 1906) गोपालशास्त्री की अतिरूपा (अतिरूपाचरितम्) (स. सा. परिषद् पत्रिका, 1908), भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की 'अनादृता' जैसी कहानियाँ जिसे लघु उपन्यास कहा जा सकता है। इस युग के प्रमुख उपन्यासकारों में अम्बिकादत्त व्यास, मेधाव्रत शास्त्री, श्रीनिवास शास्त्री, रुद्रदत्त पाठक, दुर्गादत्त शास्त्री, श्रीनाथ हसूरकर, सत्यप्रकाश सिंह, श्याम विमल, कान्त आचार्य, कृष्णकुमार, हरिनारायण दीक्षित, रामशरण त्रिपाठी शास्त्री एवं जगदीशचन्द्र आचार्य हैं।

संस्कृत में लघुकथा साहित्य का भी आधुनिक काल में अपेक्षित विकास हुआ है। अनेक लघु कथाओं के संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। इसी प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य में निबन्ध विधा का विकास भी हुआ है, जिसमें ललित निबन्ध भी लिखे गये हैं तथा लिखे जा रहे हैं। इसी प्रकार जीवनचरित पर गद्य रचनाएँ भी प्रकाश में आयी हैं और त्रावृत्तान्तों का भी अभ्युदय हुआ है। आधुनिक युग में संस्कृत गद्य साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों एवं विधाओं का विकास हो रहा हैं—

बोध प्रश्न—1

अभ्यास प्रश्न:

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न

1. दशकुमारचरितम् किस प्रकार का काव्य है।

(क) गद्य काव्य (ख) पद्य काव्य

(ग) चम्पू काव्य (घ) महाकाव्य

2. दशकुमारचरितम् कितने भागों में विभक्त है।

(क) दो भागों में (ख) तीन भागों में

(ग) चार भागों में (घ) एक भाग में

3. दशकुमारचरितम् के विभक्त भागों को किस नाम से जाना जाता है।

(क) पूर्वपीठिका (ख) चरितम्

(ग) उत्तरपीठिका (घ) उक्त सभी

4. महाकवि दण्डी के कितने ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

(क) चार ग्रन्थ (ख) दो ग्रन्थ

(ग) तीन ग्रन्थ (घ) एक ग्रन्थ

5. अर्थशास्त्र के प्रवर्तक हैं-

(क) कौटिल्य (ख) पतञ्जलि

(ग) वेदव्यास (घ) कालिदास

6. शावरभाष्य के प्रणेता का क्या नाम है-

(क) शबरस्वामी (ख) शंकराचार्य

(ग) आनन्दवर्धन (घ) जयन्त भट्ट

7. न्यायमंजरी के प्रवर्तक हैं-

(क) सायणाचार्य (ख) जयन्त भट्ट

(ग) अभिनवगुप्त (घ) शंकराचार्य

8. सुबन्धु का समय किस उत्तकरार्ध में माना गया है-

(क) छठी शताब्दी के (ख) सातवीं शताब्दी के

(ग) आठवीं शताब्दी के (घ) नवीं शताब्दी के

9. आचार्य विश्वनाथ ने काव्य के कितने भेद बताए हैं-

(क) चार (ख) दश

(ग) दो (घ) एक

10. कथा भाग के खण्डों को क्या कहते हैं-

(क) उच्छवास (ख) उल्लास

(ग) सर्ग (घ) परिच्छेद

11. हर्षचरित में कितने उच्छवास है-

(क) पांच उच्छवास (ख) दश उच्छवास

(ग) आठ उच्छवास (घ) चार उच्छवास

12. कादम्बरी का वर्ण्य विषय कहा से लिया गया है-

(क) गुणाढ्य की बृहत्कथा से(ख) पुराणें से

(ग) वेद (घ) महाभारत से

13. दशकुमारचरित कितने उच्छ्वासों में विभक्त है-

(क) चौदह उच्छ्वासों (ख) तेरह उच्छ्वासों

(ग) पांच उच्छ्वासों (घ) आठ उच्छ्वासों

14. 'तिलकमंजरी' की रचनाकार है-

(क) धनपाल (ख) वादीभसिंह

(ग) प्रभाचन्द्र (घ) विश्वनाथ

(2). रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. काव्य के तीन भे..... तथा चम्पू माने गए हैं।

2. काव्यं ..... शिवेतरक्षये।

3. पतञ्जलि ने वासवदना.... और भैभरथी इन तीनों आख्यायिकाओं के नामों का उल्लेख किया है।

4..... पदलालित्यम्।

5. ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जैन उदयदेव वादीभसिंह ने ..... की रचना की।

(3). निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर पर सही (√) गलत उत्तर पर (×) का चिन्ह लगाइए—

1. मुख्य रूप से काव्य के तीन भेद माने गए हैं। ( )

2. संस्कृत गद्यकाव्य को मुख्यतः छ: भागों में विभाजित कर सकते हैं। ( )

3. पतञ्जलि ने अर्थशास्त्र लिखा। ( )

4. शबरस्वामी का शावरभाष्य उत्कृष्ट शास्त्रीय गद्य के उदाहरण हैं। ( )

5. अष्टाध्यायी के वार्तिककार पतञ्जलि हैं। ( )

3.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने संस्कृत गद्यकाव्य के प्रमुख गद्यकाव्यों एवं उपन्यासों का सामान्य परिचय को विस्तार पूर्वक पढ़ा। आपने जाना कि संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। उह मुख्यतया गद्य व पद्य दो भागों में विभक्त है। पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ, टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं, मुख्य रूप से महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, धनपाल, प्रभाचन्द्र, मेरुतुगाचार्य, राजशेखरसूरी, बामनभट्टबाण, विश्वेश्वरपाण्डेय आदि प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्यकारों ने गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर गद्य लेखन को समृद्ध किया। इसमें प्रमुखत: सुबन्धु की वासवदत्ता का सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका वासवदत्ता तथा उदयन की प्रणय कहानी से कुछ भी नहीं है । यह पूरा कथानक कवि के मस्तिष्क की उपज है। केवल नायिका का अभिधान प्राचीन है । वासवदत्ता कथा में समाजशास्त्री दृष्टि से सामाजिक संचेतना मुख्य विचारणीय बिन्दु है । पारिवार सामाजिक जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज है। इसमें समाज के अन्दर बनते बिगड़ते मानव मूल्यों को अंकित करने का स्तुत्य प्रयास किया है । विवाह संस्था द्वारा परिवार को स्थायी रूप प्रदान किया जाता है। इसमें प्रेम कथाएँ शुद्ध लौकिक प्रेम का अदर्शन उपस्थित करती है वासवदत्ता विशुद्ध रूप से प्रेमकथा है । आचार्य दण्डी ने भी अपनी प्रतिभा से दशकुमारचरितम् नामक ग्रन्थ कि रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। संस्कृत गद्यकाव्य के लेखकों में आचार्य दण्डी की रचना

आज भी आक्षुण्य है। इनके द्वारा लिखा हुवा लक्षण ग्रन्थ काव्यादर्श अलंकारशास्त्र के अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में विद्वानों द्वारा स्वीकार किया गया है। जिस गद्य शैली को बाण ने अपने मनोरम कादम्बरी के द्वारा प्रसक्त किया। उसी शैली को दण्डी ने अपने सरल, सुगम, दशकुमारचरितम् के द्वारा उज्जवल बनाते हुए चमत्कृत किया है।

नवीन विधाओं में उपन्यास, निबन्ध, जीवनवृत्त, संस्मरण आदि लिखे जा रहे हैं। अम्बिकादत्तव्यास, पण्डिता क्षमाराव, भट्टमथुरानाथ शास्त्री, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, आदि आधुनिक संस्कृत गद्यकार गद्य साहित्य के कोष को अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर रहे हैं।

3.5 शब्दावली

अविश्वसनीय	-	जिस पर विश्वास न किया जा सके।
किवंदन्ती	-	प्रसिद्ध
सन्निविष्ट	-	मिला हुआ।
चूर्णक	-	गद्य काव्य का भेद
कविकल्पित	-	कवि द्वारा रचित
आर्या	-	छन्द का एक भेद
पूर्ववर्ती	-	पहले के
निष्णात	-	ज्ञानी

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न-उत्तर

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

1. क	2.ख	3.घ	4.ग	5. (क)
6. (क)	7. (ख)	8. (क)	9. (ग)	10. (क)
11. (ग)	12. (क)	13. (क)	14. (क)	

(2).

1. पद्यकाव्य, गद्यकाव्य	2. व्यवहारविदे	3. सुमनोत्तरा
4. दण्डीन:	5. गद्यचिन्तमामणि	

(3).

1. सही	2. सही	3. गलत	4. सही
5. गलत	6. सही	7. सही	8. सही
9. सही	10. सही		

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उमाशंकरशर्मा 'ऋषि'- संस्कृत साहित्य का इतिहास

2. पं॰ बलदेव उपाध्याय- संस्कृत वांगमय का वृहद् इतिहास

3.संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन, कस्तुरवानगर, वाराणसी।

4.संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बाभारतीअकादमी, वाराणसी।

4. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास – जगन्नाथ पाठक सप्तम खण्ड।

3.8 उपयोगी पुस्तकें

1. कन्हैया लाल पोद्दार-संस्कृत साहित्य का इतिहास
2. आचार्य दण्डी-दशकुमारचरित
3. आचार्य दण्डी-काव्यादर्श
4. वासवदत्ता– सुबन्धु
5. कादम्बरी– बाणभट्ट, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
6. दशकुमारचरित – आचार्य दण्डी
7. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्यों का परिचय दीजिए ?
2. आधुनिक संस्कृत गद्यकाव्यों पर प्रकाश डालिए ?
3. हर्षचरितम् पर प्रकाश डालिए ?
4. कादम्बरी एक कथा है सिद्ध कीजिए ?
5. वासवदत्ता का परिचय लिखिए ?
6. दशकुमारचरितम् का परिचय लिखिए ?

इकाई.4 पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-वेतालपञ्चविंशतिका-सिंहासनद्वात्रिंशिका एवं पुरूष परीक्षा का सामान्य परिचय

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 पञ्चतन्त्र का परिचय
4.3.1 पञ्चतन्त्र का उद्गम और विकास
4.3.2 तंत्राख्यायिका का परिचय
4.4 हितोपदेश का परिचय
4.5 वेतालपंचविंशतिका का परिचय
4.6 सिंहासनद्वात्रिशिका का परिचय
4.7 पुरुष परीक्षा का परिचय
4.8 सारांश
4.9 पारिभाषिक शब्दावली
4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.11 सन्दर्भ सूची ग्रन्थ
4.12 अन्य सहायक पुस्तकें
4.13 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों !

संस्कृत की नीतिकथाओं से सम्बन्धित यह चतुर्थ इकाई है। इस इकाई में संस्कृत की नीतिकथाओं का वर्णन किया गया है। जैसा की आप सभी प्रायः पञ्चतन्त्र से परिचित होंगे, इसमे कोई संशय होना भी नहीं चाहिए क्योंकि आचार्य विष्णुशर्मा द्वारा रचित ग्रन्थ पञ्चतन्त्र एक विश्व विख्यात कथा ग्रन्थ है। संस्कृत नीतिकथाओं में आचार्य विष्णुशर्मा के ग्रन्थ पञ्चतन्त्र का स्थान सर्व प्रथम है। इस ग्रन्थ को पाँच तन्त्रों में विभाजित किया गया है, मित्र भेद , मित्रलाभ या मित्र सम्प्राप्ति, ककोलुकीयम्, लब्धप्रणाश, अपरीक्षित कारक । पञ्चतन्त्र के पश्चात हितोपदेश भी एक स्वतन्त्र प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ नीतिकथाओं में सर्वाधिक प्रचलित है। हितोपदेश की कथाएँ अत्यन्त सरल व सुग्राह्य हैं। ये कथाएँ भारतीय जन मानस तथा परिवेश से प्रभावित उपदेशात्मक कथाएं हैं। हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डित हैं। पञ्चतन्त्र के बाद पशु-पक्षियों की कहानियाँ प्रायः लुप्त सी हो चुकी थी, परंतु फिर आगे चलकर रोचक कथाओं का एक सुंदर, विपुल तथा सुव्यवस्थित ग्रन्थ वेतालपंच्चीसी उपलब्ध होता है , जिसे संस्कृत में वेतालपंचविंशतिकाकहते हैं। विद्वानों ने इस ग्रन्थ को स्वतन्त्र कथा ग्रन्थ माना है, साथ ही आप इस इकाई में सिंहासनद्वात्रिशिका, और पुरुष परीक्षा के सामान्य परिचयएवं इनके रचनाकार तथा रचनकाल से भी भली-भांति परिचित होंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- पञ्चतन्त्र से परिचित हो सकेंगे।
- हितोपदेश का परिचय एवं रचनाकार के विषय में जान सकेंगे।
- वेतालपंचविंशतिका के सामान्य परिचय एवं संक्षिप्त कथा से परिचित होंगे।
- सिंहासनद्वात्रिशिका के सामान्य परिचय, रचनाकाल एवं संक्षिप्त विषयवस्तु से परिचित होंगे।
- पुरुष परीक्षा के सामान्य परिचय एवं रचनाकार , रचनाकाल के विषय में जान सकेंगे।

4.3 पञ्चतन्त्र का परिचय

आचार्य विष्णुशर्मा द्वारा रचित ग्रन्थ पञ्चतन्त्रएक विश्व विख्यात कथा ग्रंथ के रूप में जाना जाता है। संस्कृत नीतिकथाओं में आचार्य विष्णु शर्मा के ग्रंथ पञ्चतन्त्र का स्थान सर्व प्रथम है। इस ग्रंथ का रचना काल तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व० के आस–पास माना जाता है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह माना जाता है कि जब इस ग्रंथ की रचना पूर्ण हुई उस समय आचार्य विष्णु शर्मा की आयु लगभग अस्सी वर्ष थी । भारतीय नीतिकथाओं का सम्पूर्ण विश्व में महत्वपूर्ण स्थान है, और पंचतंत्र उनमे प्रमुख है। संस्कृत भाषा में पंचतंत्र का अर्थ पाँच निबंध या पाँच अध्याय भी कहा जा सकता है। इस ग्रंथ में पशुकथाओं का संग्रह है जो कि अपने मूल देश तथा सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रूप से प्रसारित हुआ है। पंचतंत्र को पाँच भागों या पाँच तंत्रों में विभाजित किया गया है। जो कि निम्न प्रकार से है –

1. मित्र भेद (मित्रों में मनमुटाव एवं अलगाव)

2. मित्र लाभ या मित्र संप्राप्ति (मित्र प्राप्ति एवं उसके लाभ)
3. ककोलुकीयम् (कौवे एवं उल्लुओं की कथा)
4. लब्ध प्रणाश (सर्वनाश की स्थिति आ जाने पर)
5. अपरीक्षित कारक (जिसको परखा नहीं गया हो उसे करने से पहले सावधान रहें, हड़बड़ी में कदम नउठायें)

पाँच अध्यायों में लिखे जाने के कारण ही इस ग्रन्थ का नामपञ्चतन्त्र रखा गया। इस ग्रन्थ में पशुओं को पात्र के रूप में रखकर शिक्षाप्रद, नीतिप्रद, ज्ञानप्रद एवं व्यवहारप्रद बातें लिखी गई है। पञ्चतन्त्र की कहानियाँ मनोविज्ञान, व्यवहारिक, तथा राज – काज के सिद्धांतों से परिचित करती हैं। आचार्य विष्णु शर्मा के द्वारा महिल्यारोप नगर के राजा अमरशक्ति के तीन पुत्रों को शस्त्रों में कुशल बनाने के लिए उपक्रम किये जाने की कथा है **(पञ्चतन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्रा:)** कथामुख के अन्त मे ग्रंथ का फल बताया गया है—

अधीते या इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च।
न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन ।।

पञ्चतन्त्र का मुख्य भाग गद्यात्मक है, कथाएं गद्य में ही कही गई हैं। किन्तु कहीं – कहीं निष्कर्ष रूप पद्य भी है। पद्यों में अधिक सूक्तियाँ हैं जो पढ़ने वालों को, कंठाग्र कर लेने पर नीतिशास्त्र में प्रवीणता प्रदान करती है। वस्तुतः कथाएं व्याजमात्र हैं मुख्य रूप से इन पद्यों के द्वारा व्यवहार कौशल देना ही लेखक का उद्देश्य है।

4.3.1 पञ्चतन्त्र का उद्गम और विकास

पञ्चतन्त्र विष्णु शर्मा द्वारा रचित नीति कथा है, किन्तु इसका मूल रूप नष्ट हो चुका है। पञ्चतन्त्र जिन कथाओं का संग्रह है , वे भारत में नितांत प्राचीन कथाएँ हैं। पञ्चतन्त्र के भिन्न – भिन्न शताब्दियों में तथा भिन्न–भिन्न प्रांतों में कई संस्करण हुए। कुछ तो आज भी उपलब्ध हैं। इनमें सबसे प्राचीन संस्करण **'तन्त्राख्यायिका'** के नाम से प्रसिद्ध है जिसका मूल स्थान कश्मीर है। पंचतंत्र के भिन्न–भिन्न चार संस्करण उपलब्ध हैं –

(1) पंचतंत्र का पहला अनुवाद, जो उपलब्ध तो नहीं है , लेकिन कथाओं का परिचय सीरिअन तथा अरबी अनुवादों की सहायता से प्राप्त होता है।

(2) दूसरा संस्करण गुणाढ्य की बृहत्कथा में अंतर्निविष्ट है। यह बृहत्कथा पैशाची भाषा में थी, मूल इस कथा का नष्ट हो गया है, परंतु ग्यारहवीं शताब्दी के क्षेमेन्द्र – रचित बृहत्कथामंजरी तथा सोमदेव का कथासरितसागर इसी ग्रंथ के अनुवाद हैं।

(3) तृतीय संस्करण **'तन्त्राख्यायिका'** तथा उसी से सम्बद्ध जैन कथा संग्रह है। आजकल का प्रचलित पञ्चतन्त्र इसी का आधुनिक प्रतिनिधि है।

(4) चौथा संस्करण दक्षिणी पंचतंत्र मूल रूप है। नैपाली पंचतंत्र तथा हितोपदेश इस संस्करण के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार पंचतंत्र एक सामान्य ग्रंथ न होकर एक अनुपम एवं विपुल साहित्य का प्रतिनिधि है।

पञ्चतन्त्रका तुलनात्मक अध्ययन करके डॉ० एजर्टन (Edgerton) ने मूल पंचतंत्र के उद्धार के लिए अतुलनीय प्रयास किया। हर्टल (Hertel) ने भी पञ्चतन्त्र पर अपनेअनुसंधानों से पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन्होंने पञ्चतन्त्र का रचनकाल 200 ई० पू० के बाद माना है। मूल पंचतंत्र के रचयिता विष्णु शर्मा कौन थे ? यह विवाद का विषय है, कुछ लोग चन्द्रगुप्तमौर्य के

प्रतिष्ठापक चाणक्य को मानते है। कुछ चाणक्य के पुत्र को मानते हैं और कुछ किसी अन्य ही विद्वान को विष्णु शर्मा मानते हैं। कथा मुख में दिए मंगल श्लोकों के अनुसार यए चाणक्य से भिन्न थे क्योंकि नीतिशास्त्र के ग्रंथकारों में यहाँ विष्णु शर्मा, मनु , वाचस्पति (वृहस्पति) , शुक्र , पराशर एवं व्यास के अतरिक्त चाणक्य को नमस्कार करते हैं। पञ्चतन्त्र को समस्त अर्थशास्त्र का सार भी कहा गया है **"सकलार्थशास्त्रसारम्"**। पञ्चतन्त्र में पाँच तंत्र हैं (तंत्र का अर्थ है भाग) – मित्र भेद , मित्रलाभ, संधि विग्रह , लब्ध प्रणाश , तथा अपरीक्षित – कारक। प्रत्येक तंत्र में मुख्य कथा एक ही है जिसके अंग को पुष्ट करने के लिए अनेक गौण कथाएं कही गयी हैं। ग्रंथकार का उद्देश्य आरंभ से ही सदाचार तथा नीति का शिक्षण रहा है। कहा जाता है कि दक्षिण के महिलारोप्य नामक नगर में अमरकीर्ति नामक राजा निवास करते थे। उन्हें अपने मूर्ख पुत्रों को विद्वान तथा नीति-सम्पन्न बनाने के लिए योग्य गुरु की आवश्यकता थी। उन्हें योग्य गुरु मिले विष्णु शर्मा। ये लोक तथा शास्त्र दोनों विषयों के पारंगत पंडित थे। इसी लिए उन्हे बहुत कम समय में राजकुमारों को व्यवहार – कुशल , सदाचार सम्पन्न तथा नीति पटु बना दिया।संसार के भिन्न – भिन्न कार्यों के निरीक्षण की शक्ति ग्रंथकार में खूब है। उनमे विनोद – प्रियता की भी कमी नहीं हैं। पंचतंत्र की भाषा सीधी – साधी है। वाक्य-विन्यास में न तो कहीं दुरूहता है और न भवों के समझने में दुर्बोधता। कथानक का वर्णन गद्य में किया है, पर उपदेशात्मक सूक्तियाँ पद्य में हैं। ये पद्य रामायण , महाभारत तथा प्राचीन नीतिग्रंथों में संगृहीत हैं। पञ्चतन्त्र की उत्पत्ति उसे राजनीति तथा लोकनीति का ग्रंथ प्रमाणित करती है।

4.3.2 तंत्राख्यायिका

तंत्राख्यायिका वह ग्रंथ है जो पंचतंत्र के बहुत निकट है। डॉ० हर्टल ने इसका संस्करण 1910 ई० में प्रकाशित किया था जिसमें इसे पंचतंत्र की सबसे प्राचीनतम उपलब्ध वाचक कहा गया है। पंचतंत्र का मूल रूप का निर्देश इसी ग्रंथ के द्वारा होता है। राजनीति की शिक्षा के लिए इसकी रचना हुई थी। क्योंकि इसमें राजशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों से गद्य-पद्य के लंबे उद्धरण मिलते हैं। इसका निर्माण 300 के आस-पास माना गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनेक उद्धरण यहाँ उपलब्ध होते हैं। तथा राजनीति की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग भी अधिक किया गया है। डॉ० हर्टेल इसे भारतीय अलंकृत काव्य का प्राचीनतम उपलब्ध उदाहरण मानते हैं, उनका यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि अश्वघोष का बुद्धचरित तो इससे प्राचीनतर है। **'दिनार'** का प्रयोग तंत्राख्यायिका का रचना काल द्वितीय शती से अर्वाचीन बता रहा है। इससे पूर्व महाभारत का प्रणयन पूर्ण हो गया था, क्योंकि इसका रचयिता महाभारत को प्रमाणिक ग्रंथ मानता है और वेद व्यास के नाम से बहुत श्लोकों को उद्धृत करता है, जो वर्तमान महाभारत में उपलब्ध होते हैं। पंचतंत्र मूल रूप तंत्राख्यायिका से भी प्राचीन होना चाहिये। उस युग में ब्राह्मणों का आदर विशेष रूप से किया जाता था। जो व्यक्ति धर्म , अर्थ , काम की सिद्धि चाहता हो, उसे राजा, स्त्री, तथा ब्राह्मण को रिक्तपाणि कभी नहीं भेजना चाहिये। इसमे बौद्ध धर्म कहीं भी संकेत नहीं किया गया है। पूरा वातावरण वैदिक धर्म के प्रभाव से स्निग्ध है तथा यहाँ का नैतिक आचार-विचार बौद्ध धर्म से सर्वथा भिन्न है। आख्याने एवं कथा जितनी महत्वपूर्ण हैं ठीक उतनी ही महत्वपूर्ण सूक्तियाँ भी हैं। सूक्तियाँ पैनी तथा तीक्ष्ण हैं जैसे कि –

यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शाक्यमेव तत्।
नोदके शकटम् याति न नावा गम्यते स्थले ।।

उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ है कि जो अशक्य है, वह कथमपि शक्य नहीं हो सकती परंतु शक्य वस्तु सर्वदा शक्य ही रहती है। पानी में कभी गाड़ी नहीं चलती और न नाव स्थल पर पार जा सकती है। संतुष्ट मन वाले व्यक्ति के लिए सर्वत्र संपत्तियाँ विद्यमान रहती हैं। चाम के जूता से ढके पैर वाले प्राणी के लिए समस्त पृथ्वी चाम से ही ढकी हुई रहती है।

सर्वाः सम्यत्तयस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्।
उपानदगूढपादस्य सर्वा चर्मावृतैव भूः ।।

इस पर आधारित पंचतंत्र की अनेक वाचनायें उपलब्ध होती हैं। प्रथम पंचतंत्र की डॉ० हर्टेल दो वचनायें स्वीकृत करते हैं – **सरल पंचतंत्र** तथा **अलंकृत पंचतंत्र।** देखा जाए तो आरंभिक जीवन में भाषा-शैली की शिक्षा के साथ व्यवहार कुशलता की शिक्षा पाने के लिए पंचतंत्र जैसा विपुल ग्रंथ सम्पूर्ण विश्वसाहित्य में नहीं है। पशु पक्षियों की कथा से उपदेश भी मिलता है और किसी व्यक्तिगत आक्षेप भी नहीं होता।

बोध प्रश्न –1

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन किजिये।

1 पंचतंत्र के लेखक का क्या नाम है ?

(क) चाणक्य

(ख) विष्णु शर्मा

(ग) हर्टल

(घ) जयदेव

2 पंचतंत्र विभक्त है।

(क) अध्याय

(ख)परिच्छेद

(ग) तंत्र

(घ) सर्ग

3 तंत्राख्यायिका को किसने प्राचीनतम उपलभ्य माना है ?

(क)चाणक्य

(ख) विष्णु शर्मा

(ग)हर्षवर्धन

(घ) डॉ० हर्टेल

4 पंचतंत्र का सबसे प्राचीन संस्करण है।

(क)पंचरात्र

(ख)बुद्धचरित

(ग)तंत्रोपाख्यान

(घ)तंत्राख्यायिका

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये।

1 पंचतंत्र में तंत्र का अर्थ ----------होता है।

2 पंचतंत्र का प्राचीन संस्करण---------- है।

3 पंचतंत्र का रचनाकाल ----------शताब्दी माना जाता है।

4 पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने ----------को पात्र माना है।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1 पंचतंत्र में तीन तंत्र हैं।

2 तंत्राख्यायिका यह पंचतंत्र के बहुत निकट है, डॉ० हर्टल ने इसका संस्करण 1910 ई० में प्रकाशित किया था।

3 सबसे प्राचीन संस्करण तन्त्राख्यायिका के नाम से प्रसिद्ध है जिसका मूल स्थान कश्मीर है।

4 पंचतंत्र में नीतिप्रद कथाएं नहीं हैं।

4.4 हितोपदेश का परिचय

हितोपदेश पंचतंत्र पर आश्रित एक नितांत लोकप्रिय कथा ग्रंथ है , यह ग्रंथ नीतिकथाओं में सर्वाधिक प्रचलित है। हितोपदेश की कथाएं अत्यंत सरल व सुग्राह्य हैं। ये कथाएं भारतीय जन मानस तथा परिवेश से प्रभावित उपदेशात्मक कथाएं हैं। हितोपदेश के रचयिता नारायण पंडित हैं, तथा इनके आश्रयदाता बंगाल के राजा धवल चंद्र थे। पुस्तक के अंतिम पद्यों के आधार पर इसके रचयिता का नाम **"नारायण"** ज्ञात होता है।**"नारायणेन प्रचरतु रचितः संग्रहोSयं कथानां"**हितोपदेश के रचयिता ने पशु-पक्षियों के माध्यम से कथा की रचना की है। पशुओं को नीति की बातें कराते हुए दिखाया गया है। सभी कथाएं एक दूसरे से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। इस ग्रंथ की एक पांडुलिपि 1373 ई० की मिली है। अतः यह चौदहवीं शताब्दी के पूर्व की ही कृति है। रुद्रभट्ट का एक पद्य इसमें उद्धृत है इसलिए यह ग्यारहवीं शताब्दी के बाद की रचना महीन हो सकती **कीथ** एक जैन लेखक ने 1199 ई० में इसका उपयोग किया था। **fleet** ने हितोपदेश में प्रयुक्त भट्टारकवार (रविवार) शब्द के विषय में कहा है कि 900 ई० के पूर्व इसका प्रयोग नहीं था। इसलिए इसका काल 10 वीं–11 वीं शताब्दी ई० माना जा सकता है।

हितोपदेश को चार भागों में विभक्त किया गया है – **मित्रलाभ , सुहृद्भेद , विग्रह तथा संधि**। इनमें 39 कथाएं हैं, प्रत्येक भाग की मुख्य 4 कथाओं को मिलाकर पूरे ग्रंथ में 43 कथाएं हैं। पंचतंत्र के समान इसमें छोटी 47 पद्य और कुछ कथा से युक्त प्रस्ताविका भी हैं। ग्रंथ में पद्यों की कुल संख्या 726 है। पंचतंत्र की शैली का ही इसमें अनुसरण किया गया है। 25 कथाएं इसमें पंचतंत्र से ली गयी हैं। पंचतंत्र की अपेक्षा इसमें पद्यों पर अधिक बाल दिया गया है, इसलिए गद्य से पद्य इसमें अधिक हैं। कुछ **"कामन्दकीयनीतिसार"** से संकलित हैं। इसकी प्रस्ताविका में पाटली पुत्र के राजा सुदर्शन के चार मूर्ख पुत्रों को विष्णु शर्मा के द्वारा नीतिशास्त्र की शिक्षा देने की कथा है।

मित्रलाभ- में काक-कूर्म –मृग- मूषिका की कथा है।

सुहृद्भेद- में सिंह और वृष की मैत्री शृगाल द्वारा तोड़े जाने की कथा है।

विग्रह – में हंसों और मयूरों के युद्ध की कथा है।

संधि- में हंसों तथा मयूरों के बीच गीध और चकवे के द्वारा मैत्री कराने की मुख्य कथा है।

बालकों को नीति की शिक्षा कथा मुख से देना ही हितोपदेश का परम लक्ष्य है जैसा कि कहा ही गया है **"कायाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते"** देखा जा सकता है कि इस उदेश्य की पूर्ति में यह ग्रंथ सर्वथा सफल हुआ है। संस्कृत शिक्षण की यह प्रथम पुस्तक मानी गयी है और यूरोप की अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद से वहाँ भी इस ग्रंथ की लोकप्रियता को देखा जा

सकता है। इसके देश काल का यथार्थ परिचय नहीं मिलता। नई जोड़ी कथाओं के अनुशीलन से इसकी उद्गम भूमि का पता चलता है। मित्र लाभ की षष्ठ कथा में गौरीव्रत का उल्लेख है , जिसमें वस्त्रालंकार युक्त कुलीन युवती के पूजन के प्रतिरात्री विधान का उल्लेख है। इसका समुल्लेख हितोपदेश की उद्गम भूमि बंगाल बातला रहा है।

बोध प्रश्न-2

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन किजिये।

1 हितोपदेश के प्रणेता हैं।

(क) चाणक्य

(ख) विष्णु शर्मा

(ग)नारायण पंडित

(घ) जयदेव

2 हितोपदेश कितने भागों में विभक्त है।

(क) दो

(ख) तीन

(ग) पाँच

(घ) चार

3 हितोपदेश की पांडुलिपि सर्वप्रथम कब मिली ?

(क) 1373

(ख) 1375

(ग) 1376

(घ) 1378

4 धवलचंद्र कहाँ के राजा थे ?

(क)कश्मीर

(ख) गुजरात

(ग) अयोध्या

(घ) बंगाल

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये।

1 ---------- नीतिकथाओं में सर्वाधिक प्रचलित है।

2 हितोपदेश के प्रथम भाग का नाम ---------- है।

3 हितोपदेश में ---------- पद्यों की संख्या है।

3 हितोपदेश का रचनाकाल ----------माना जाता है।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1 हितोपदेश की रचना गुजरात में हुई।

2 हितोपदेश में तीन अध्याय हैं।

3 मित्रलाभ में काक-कूर्म –मृग- मूषिका की कथा है।

4 हितोपदेश में पशुओं को नीति की बातें कराते हुए दिखाया गया है।

4.5 वेतालपंचविंशतिका का परिचय

पञ्चतन्त्र के बाद पशु-पक्षियों की कहानियाँ प्रायः लुप्त सी हो चुकी थी, परंतु फिर आगे चलकर रोचक कथाओं का एक सुंदर,विपुल तथा सुव्यवस्थित ग्रंथ वेतालपच्चीसी उपलब्ध होता है , जिसे संस्कृत में **वेतालपंचविंशतिका** कहते हैं। विद्वानों ने इस ग्रंथ को स्वतंत्र कथा ग्रंथ माना है। विद्वानों का यह मत भी है कि यह ग्रंथ वृहतकथामंजरी तथा कथा सरितसागकर से प्रभावित रचना है। वेतालपंचविंशतिका का के रचयिता जम्भलदत्त ने की जो पूर्णतया गद्य में है। इसमे विक्रम और वेताल से सम्बद्ध 25 शिक्षाप्रद एवं रोचक कहानियों का संकलन है। यह एक स्वतंत्र कथानक है जिसका सम्बन्ध लोककथाओं के साथ पूर्णतया स्थापित किया जा सकता है। इन कहानियों का 11 वें शतक में प्रचलित सर्व प्राचीन रूप क्षेमेन्द्र तथा सोमदेव के ग्रंथ में उपलब्ध होता है। दोनों ग्रंथों में कहानियाँ एक जैसी ही है। यद्यपि क्षेमेन्द्र का वर्णन कुछ छोटा है , कतिपय अवांतर घटनाओं से विरहित है, परंतु सोमदेव का विवरण कुछ बाड़ा तथा विशेष घटना प्रधान है ।वेतालपंचविंशतिका के दो परवर्ती हैं सर्वप्रथम शिवदास का 1200 ई० में जो कि पद्यात्मक है। जर्मन विद्वान हाइनरिश ऊले द्वारा प्रकाशित , लाइपजिग , 1884 ई०। इसका संस्करण जम्भलदत्त के द्वारा किया गया है , जो पूर्णतः गद्यात्मक है। एमेनाउ द्वारा रोमन लिपि में अंग्रेजी अनुवाद के साथ 1934 ई० में अमेरिकन ओरियंटल सोसाईटी से प्रकाशित है । वल्लभदास ने भी इसका संक्षिप्त रूपांतरण किया था जो भारतीय भाषाओं में रूपांतरित होकर बहुत लोकप्रिय हुआ है। माँगोल भाषा में **'सिद्धिकूर'** (अलौकिक शक्तिशाली मृतक) के रूप में इसका रूपांतरण है ।इस ग्रंथ की मुख्य कथा विक्रमसेन की है। जो एक तांत्रिक की सहायता के लिए एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को मौन धारण किये ही अपने कंधे पर लादकर शमशान में पहुंचा देने की बात स्वीकार करता है। शव में वेताल का निवास होता है। मार्ग में वेताल विक्रम को कोई कथा सुनाता है और अंत में उससे सम्बद्ध जटिल प्रश्न पूछता है। उत्तर देने में विक्रम का मौन टूट जाता है और वेताल पुनः वृक्ष पर लटक जाता है । इस प्रकार वेताल ने विक्रम को चौबीस कथाएँ सुनायी हैं। इस ग्रंथ की कथाओं के अनुवाद संसार की विभिन्न भाषाओं में है। पंचतंत्र की भांति ही यह विश्व साहित्य बन गया है। इस लोककथा ग्रंथ का प्रारंभ कुछ इस प्रकार से देखा जा सकता है। राजा विक्रमसेन को एक भिक्षु प्रतिदिन एक फल लाकर दिया करता था। उस फल को राजा अपने कोषाध्यक्ष को डे दिया करता था । यह क्रम दश वर्षों तक निरंतर चलता रहा। सहसा एक दिन राजा को यह ध्यान आता है कि प्रत्येक फल में रत्न विद्यमान है। कोषाध्यक्ष से पूछने पर वह बात सत्य साबित होती है। एक दिन राजा का हृदय उस भिक्षु की राजभक्ति को देखकर उसकी ओर आकृष्ट हो गया। एक दिन राजा भिक्षु को प्रणाम कर इस मूल्यवान वस्तु का करणं पूछते हैं , पूछे जाने पर भिक्षु राजा को एकांत में ले जाता है और कहता है कि मुझे एक मंत्र की साधना करनी है। जिसमे मुझे एक वीर व्यक्ति की नितांत आवश्यकता है,जो इस कार्य में मेरी सहायता करे। राजन आपके जैसा वीर पराक्रमी और कौन होगा। राजन आने वाली कृष्ण चतुर्दशी को मैं शमशान में वट वृक्ष के नीचे तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा। जैसे ही वह दिन आता है तो राजा वहाँ पहुँच जाता है। शमशान में भयंकर दृश्य को देखकर राजा चकित हो जाता है। राजा भिक्षु के पास जाता है और कहता हैं, मैं आगया हूँ क्या कार्य करना है बताओ। भिक्षु ने कहा राजन शमशान से दक्षिण दिशा में जाइये बहुत दूर जाने पर शिंशपा नाम का एक वृक्ष की डाल पर एक मृतक का शरीर लटका हुआ है, उसे राजन आप यहाँ लाकर रख दो और मेरा कार्य पूर्ण करवाएं। राजा शिंशपा वृक्ष के पास पहुंचकर उसकी डाल से शव को

गिराया और जैसे ही उसे लाना शुरू किया वह शव फिर से डाल पर लटक गया और जोर-जोर से हंसने लगा। अगली बार पूर्ण साहस से राजा ने दोबारा उस शव को डाल से गिराया और कंधे पर रखकर चल दिया, रास्ते में वेताल ने राजा को उलझन भरी कहानियाँ सुनाई और कहा तुम इन कहानियों का समाधान करो अन्यथा तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जाएंगे। इन कहानियों का क्रम इसी प्रकार निरंतर 24 बार चला 25 वीं कहानी एसी वेताल ने सुनाई किराजा उसका समाधान नहीं कर पा रहे थे। वेताल समझ गया कि राजन इस कहानी का हाल नहीं कर पाएगा। वेताल ने कहा राजन मैं समझ गया हूँ तुम समाधान नहीं कर पा रहे हो, परंतु मैं तुम्हारी वीरता, पराक्रम,धैर्य पर प्रसन्न हूँ। मैं इस शरीर से बाहर निकल जाता हूँ। राजन वह भिक्षु इस शरीर में आज रात मेरा आह्वान करेगा। वह तुम्हें दंडवत प्रणाम करने को कहेगा और तुम्हारी बली चड़ा देगा तुम उसे कहना मुझे दंडवत प्रणाम करना नहीं आता तुम ही सिखा दो फिर वह भिक्षु दंडवत प्रणाम करेगा तभी तुम उसका सिर काट देना। राजा वेताल के कथनानुसार कार्य का निर्वाह करता है। फिर तो शमशान के सारे भूत,प्रेत,और वेताल प्रसन्न हो जाते हैं और राजा से वरदान मांगने को कहते हैं। राजा ने कहा आप सब ने मेरी सहायता कर मेरे प्राणों की रक्षा की इसलिए यह पचीस कथाएँ संसार में सुप्रसिद्ध हों यही वरदान मंगता हूँ। यह पच्चीसों कथाएँ सम्पूर्ण विश्व में आज वेतालपंचविंशतिका के नाम से प्रसिद्ध हैं।

बोध प्रश्न-3

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन किजिये।

1 वेतालपंचविंशतिका के रचयिता हैं।

(क) चाणक्य

(ख) कालिदास

(ग) नारायण पंडित

(घ) जम्भलदत्त

2 वेतालपंचविंशतिका में कथाएँ हैं।

(क) 13

(ख) 15

(ग) 25

(घ) 35

3 वेतालपंचविंशतिका में राजा का क्या नाम है ?

(क) वेताल

(ख) विक्रमसेन

(ग) भानु प्रताप

(घ) देवसेन

4 राजा को प्रतिदिन फल कौन दिया करता था।

(क) भिक्षु

(ख) वेताल

(ग) प्रेत

(घ) इनमे से कोई नहीं

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये।

1 वेतालपच्चीसी को संस्कृत में----------कहते हैं।

2 वेतालपच्चीसी को एमेनाउ द्वारा रोमन लिपि में अंग्रेजी अनुवाद के साथ ----------ई० में अमेरिकन ओरियंटल सोसाईटी से प्रकाशित किया गया।

3 राजा विक्रमसेन को एक भिक्षु प्रतिदिन----------लाकर दिया करता था।

4 भिक्षु ने विक्रम को ----------वृक्ष के पास जाने को कहा।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1 वेतालपंचविंशतिका में 23 कथाएँ हैं।

2 भिक्षु का नाम वेताल था।

3 वेतालपच्चीसी की कथाएँ सम्पूर्ण विश्व में आज वेतालपंचविंशतिका के नाम से प्रसिद्ध हैं।

4 भिक्षु ने राजा से कहा कि आने वाली कृष्ण चतुर्दशी को मैं शमशान में वट वृक्ष के नीचे तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।

4.6 सिंहासनद्वात्रिशिका का परिचय

सिंहासनद्वात्रिशिका को अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे द्वात्रिशत्पुत्तलिका, विक्रमचारित इसमें कथा है कि राजा भोज को भूमि में गड़ा हुआ विक्रमादित्य का सिंहासन प्राप्त हुआ। उसमे बत्तीस पुतलियाँ लगी हुई थी। जब सिंहासन को स्वच्छ कराने के बाद राजा भोज ने उस पर बैठने का प्रयास किया तब उन पुतलियों ने उन्हे रोका और विक्रमादित्य के न्याय से सम्बद्ध कथाएँ सुनायीं। एक – एक पुतली ने एक-एक कथा सुनायी कथा सुनाकर ये पुतलियाँ मुक्त हो गयी क्योंकि उनमे आत्माएं थी । इन बत्तीस कथाओं में विक्रमादित्य के सत्य,न्याय,पराक्रम और उदारता का वर्णन है। अतः जो इन गुणों से युक्त होगा वही इस सिंहासन पर बैठने का अधिकारी होगा । इस प्रकार भोज उस पर नहीं बैठ पाते। इस ग्रंथ की दो वाचनिकायें मिलती हैं जो परस्पर में भिन्नता रखती हैं – उत्तरी तथा दक्षिणी। उत्तरी वाचनिका में तीन विवरण मिलते हैं। जैन क्षेमकर मुनि रचित , इसी पर आश्रित बंगाली विवरण तथा तीसरा एक छोटा विवरण दक्षिण भारत में वह विक्रमचरित के नाम से ही विशेष प्रख्यात है , जिसके दो रूप हैं गद्य और पद्य। दोनों वचिकाओं में कौन मूलसंगत तथा प्राचीन है यह निर्णय करना बिल्कुल ठीक नहीं है। डॉ० हर्टेल के अनुसार जैन विवरण ही मूल के निकट है, परंतु डॉ० इड्गर्टन के विचार में दक्षिण वाचनिका ही मौलिक तथा प्राचीनतर है दोनों विवरणों मे हेमाद्रि के 'दानखंड' का स्पष्ट निर्देश है। फलतः यह ग्रंथ 13 वीं सदी से प्राचीनतर नही हो सकता। विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन अन्य कृतियों में भी मिलता है जैसे – अनन्त कृत **वीरचरित** इसमें 30 सर्ग हैं। शिवदास कृत **शालिवाहनकथा** इसमे गद्य युक्त 18 सर्ग हैं। आनंद कृत **माधवानलकथा** संस्कृत – प्राकृत पद्यों से युक्त , गद्य में हैं। **विक्रमोदय** इसके लेखात अज्ञात हैं। इस कथा ग्रंथ का सार इतना है कि विक्रमादित्य को इन्द्र ने एक सिंहासन भेंट किया था। जिसमें बत्तीस पुत्तलियाँ लगी हुई थी। शालिवाहन के द्वारा पराजित होने के पश्चात अंतिम बार उन्होंने सिंहासन पर बैठकर पुत्तलियों से कहा था कि मेरे देहावसान के 500 वर्षों के बाद पृथिवी पर राजा भोज होंगे वे खोदकर इस सिंहासन को प्राप्त कर लेंगे , और वह इस सिंहासन पर बैठने का प्रयास करेंगे, तभी टीम सब उनसे मेरे द्वारा किये गए महान कार्यों का वर्णन कर उन्हे सुनना। इसके पश्चात तुम सभी मुक्त होकर स्वर्ग की ओर प्रस्थान करना। यह सब कहने के बाद

विक्रमादित्य ने सिंहासन को धरती के अंदर छिपा दिया । ग्यारहवीं शताब्दी में धारा नरेश भोजराज अपने मंत्री के साथ शिकार खेलने जंगल में गए थे, तभी उन्होंने एक टीले के नीचे जमीन से सिंहासन निकाला और इसको स्वच्छ करने के पश्चात सिंहासन का पूजन किया , शांति पाठ ,वेद पाठ कर ब्राह्मण भोजन जैसा मांगलिक कार्य किया । फिर जैसे ही उन्होंने सिंहासन पर बैठने के लिए कदम उठाया पुत्तलियों ने उन्हे रोका और विक्रमादित्य के जन्म एवं दिव्यकर्मों का वर्णन सुनने लगी । पुत्तलियों की बात सुनकर राजा भोज आश्चर्य चकित हो गए और वापस लौट गए, अंत में उनके धैर्य को देखकर पुतलियों ने कहा कि हे राजन!हम सभी ने अपने कार्य का पालन किया, आपको विक्रमादित्य के द्वारा किये गये दिव्य कर्मों सो सुनाया अब हम सभी स्वर्ग की ओर प्रस्थान करेंगी । राजन! तुम इस सिंहासन पर एक वर्ष तक बैठकर सिंहासन कर सकते हो । यह कहकर पुत्तलियों ने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया ।

बोध प्रश्न-4

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन किजिये ।

1 राजा भोज को भूमि में गड़ा हुआ सिंहासन किसका प्राप्त हुआ ?

(क) भिक्षु

(ख) विक्रमादित्य

(ग) चन्द्रगुप्त

(घ) इनमे से कोई नहीं

2 सिंहासनद्वात्रिशिका में कितनी पुत्तलियों का वर्णन है ?

(क) 21

(ख) 23

(ग) 33

(घ) 32

3 पुत्तलियों ने राजा भोज को किसके महान कार्यों का वर्णन सुनाया ?

(क) अशोक

(ख) विक्रमादित्य

(ग) चन्द्रगुप्त

(घ) समुद्रगुप्त

4 विक्रमादित्य को सिंहासन किसने दिया ?

(क) इन्द्र

(ख) शिव

(ग) चन्द्रगुप्त

(घ) समुद्रगुप्त

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये ।

1 अंत में पुत्तलियों ने ---------- की ओर प्रस्थान किया ।

2 अनन्त कृत वीरचरितमें----------सर्ग हैं ।

3 राजाभोज को सिंहासन ----------से प्राप्त हुआ ।

4 पुत्तलियों ने ---------- को विक्रमादित्य के दिव्य कर्मों का वरना सुनाया ।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1 विक्रमादित्य को सिंहासन शिव ने दिया था।

2 राजा भोज को इन्द्र में विक्रमादित्य के गुणों का वर्णन सुनाया था।

3 सिंहासनद्वात्रिशिका में 32 पुत्तलियों का वर्णन है।

4 अंत में पुतलियाँ स्वर्ग की ओर गयी।

4.7 पुरुष परीक्षा का परिचय

विद्यापति जी द्वारा रचित ग्रंथ पुरुष –परीक्षा एक उपदेशात्मक संस्कृत कथा साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमे समसामयिक आदर्श चरित्रों का वर्णन कर प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रंथ के रचयिता विद्यापति जी का मानना यह है कि पुरुष वही है जिसके व्यक्तित्व में वीरता,शौर्य हो , सुबुद्धि हो , विद्या एवं पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्यक समन्वय हो। यदि व्यक्ति में यह गुण न हों तो वह मात्र पुरुष की भांति आकार धारण किये हुये है और वह बिना सींग और पूछ के पशु के ही समान प्रतीत होता है। पुरुष –परीक्षा से ही इस ग्रंथ का अभिप्राय सिद्ध हो रहा है। इस ग्रंथ के मंगलाचरण में आदि शक्ति की वंदना की गई है। इस ग्रंथ को कुछ इस प्रकार से विभाजित किया गया है – एक बार चंद्रतपा नगरी के राजा पारावार ने अपनी सर्व गुण सम्पन्न पुत्री के अनुरूप वर चयन के लिए विचार किया और इसके पश्चात मुनिवर सुबुद्धि के पास जाकर प्रश्न किया। राजा पारावार ने कहा कि वीरता , सदबुद्धि , विद्या , तथा पुरुषार्थ से युक्त पुरुष ही वास्तविक पुरुष है। इस गुणों से सम्पन्न पुरुष को ही अपनी कन्या प्रदान करनी चाहिए। विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ की रचना 14 वीं सदी में हुई थी। इस ग्रंथ में चार परिच्छेद हैं।

प्रथम परिच्छेद- के अंतर्गत दानवीर विक्रमादित्य , युद्धवीर कर्णाट , राज कुमार मल्लदेव , रणयम्भौर के नरेश हम्मीर देव तथा सत्यवीर चौहान वंश के नरेश चाचिक देव की कथाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

दूसरे परिच्छेद- में कवि ने उदाहरण कथा की दृष्टि से अनेक गुणों युक्त विशाख , मेधा सम्पन्न , कोक पंडित तथा कर्णट नरेश हरिसिंह देवके मंत्री सुबुद्धि सम्पन्न गणेश्वर की कथाओं का वर्णन किया है।

तृतीय परिच्छेद- के अंतर्गत धारा नगरी निवासी शास्त्र विद्या में दक्ष सिंघल नामक क्षत्रिय धनुर्धर , ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता वाराहमिहिर , आयुर्वेद के ज्ञाता हरिश्चंद्र एवं शबर स्वामी की कथाएं हैं।

चतुर्थ परिच्छेद- में धर्म,अर्थ,काम,मोक्ष जैसे पुरुषार्थ से संबंधित कथाओं का वर्णन किया गया है। धर्म के उदाहरणार्थ तत्वज्ञानी बोधि नामक कायस्थ , तमोगुण धार्मिक श्रीकण्ठ नामक ब्राह्मण तथा पाप कर्म के लिए पश्चाताप पूर्वक पुण्य अर्जन करने वाले राज कुमार रत्नांगद की कथाओं का वर्णन है। इन कथाओं में न्याय के द्वारा उपार्जित धन का दान एवं भोगों में व्यय करने वाले धनिक की कथाओं के साथ-साथ अन्य कथाओं का भी वर्णन सुलभता से प्राप्त होता है। साथ ही विक्रमादित्य की कथा , धूर्त नायक शशि की कथा तथा विद्या एवं बुद्धि से सम्पन्न होने पर भी अपनी प्रियतमा पटरानी शुभ देवी के वशीभूत होने के कारण अपने राज्य तथा प्राणों को भी गवां देने वाले महाराज जयचंद की कथा का भी वर्णन किया गया है। भर्तृहरि की कथा

मोक्ष के अंतर्गत प्राप्त होती है । इस ग्रंथ का समापन्न मुमुक्षु कृष्ण चैतन्य की कथा एवं लबधसिद्धि मुमुक्षु की कथा के साथ सम्पन्न होती है।

बोध प्रश्न-5

(1) निम्नलिखित प्रश्नों के उचित विकल्प का चयन किजिये।

1. पुरुष परीक्षा के रचयिता हैं।

(क) कालिदास

(ख) शिव

(ग) विद्यापति

(घ) चाणक्य

2. पुरुष परीक्षा ग्रंथ में परिच्छेदों की संख्या है।

(क) दो

(ख) चार

(ग) छः

(घ) आठ

3. विद्वानों के अनुसार पुरुष परीक्षा की रचना कब हुई थी ?

(का) 10 वीं सदी

(ख) 11 वीं सदी

(ग) 13 वीं सदी

(घ) 14 वीं सदी

4. चंद्रतपा नामक नागरी के राजा थे।

(क) चंद्रगुप्त

(ख) समुद्रगुप्त

(ग) देवेन्द्र

(घ) पारावार

(2) रिक्तस्थानों की पूर्ति किजिये।

1. विद्वानों के अनुसार इस ग्रंथ की रचना----------सदी में हुई थी।

2. राजा पारावार का कथन है कि वीरता ,----------से युक्त पुरुष ही वास्तविक पुरुष है।

3. चतुर्थ परिच्छेद में----------जैसे पुरुषार्थ से संबंधित कथाओं का वर्णन किया गया है।

4. इस ग्रंथ का समापन----------की कथा---------- की कथा के साथ सम्पन्न होती है।

(3) सही गलत का चयन किजिये।

1. पुरुष –परीक्षा एक उपदेशात्मक संस्कृत कथा साहित्य का महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

2. विद्यापति जी का मानना यह है कि पुरुष वही है जिसके व्यक्तित्व में वीरता, शौर्य हो, सुबुद्धि हो, विद्या एवं पुरुषार्थ चतुष्टय का सम्यक समन्वय हो।

3 इस ग्रंथ में 8 परिच्छेद हैं।

4 इस ग्रंथ की रचना 11 वीं सदी में हुई।

4.8 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों !

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप जान चुके हैं कि भारतीय संस्कृत साहित्य में नीतिप्रद शिक्षा कितना महत्व रखती है । साथ ही आपने यह भी जाना है कि यह नीतिप्रद लौकिक साहित्य के ग्रंथ भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है । विश्व की कई भाषाओं में इन ग्रंथों का अनुवाद भी हो चुका है, यह भी आपने जाना । साथ ही आप इन ग्रंथों के लेखकों एवं रचनाकाल से भीभली-भांति परिचित हो चुके होंगे । आपने यह भी जाना है कि इन ग्रंथों में नैतिक मूल्यों,नैतिक शिक्षा, व्यवहारप्रद शिक्षा का वर्णन पशु – पक्षी पत्रों के माध्यम से किया गया है । जैसा की आपने अध्ययन के पश्चात जाना ही होगा कि इन कथा ग्रंथों में पञ्चतन्त्र को विष्णु शर्मा जी ने अत्यंत कला कौशल से युक्त पशु-पक्षी पात्र प्रधान कथाओं की रचना की और समाज को जीव जंतुओं में मानवोचित क्रियाकलापों को दिखाया गया है । हितोपदेश को नारायण पंडित जी ने चार भागों में विभक्त कर अनेक कथाओं की सृजना करके व्यवहारिक नीतिप्रद शिक्षा से परिचित करवाया है । एवमेव प्रकारेण वेतालपंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिशिका तथा पुरुष परीक्षा नामक ग्रंथों के अनुशीलन पश्चात पाठकों में लोकनीति, कूटनीति एवं व्यवहारप्रद शिक्षा के साथ – साथ चतुर्वर्ग पुरुषार्थ की प्राप्ति होना भी सहज है । अंततः इन कथाओं का सार चतुर्वर्ग पुरुषार्थ की ही प्राप्ति है ।

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

शब्द	**-**	**अर्थ**
लौकिक	-	सांसारिक
हितोपदेश	-	अच्छा उपदेश / हितकारी उपदेश
अभिप्राय	-	इरादा
वांगमय	-	वाच्य वाचक से समन्वययुक्त शास्त्र
उद्भावक	-	संवर्धक
मानवोचित	-	मनुष्यों के अनुकूल
मांगलिक	-	मंगल सूचक
मुमुक्षु	-	मोक्ष का इच्छुक
पाठक	-	पढ़ने वाला
अनुरूप	-	समान रूपवाला
अनुशीलन	-	सतत एवं गंभीर अभ्यास
समसामयिक	-	समकालीन

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.11 संदर्भ सूची ग्रंथ

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास , डॉo उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बा भारती अकादमी

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास , पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय , शारदा निकेतन वाराणसी

4.12 अन्य सहायक पुस्तकें

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास , वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी

4.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पंचतंत्र ग्रंथ का परिचय विस्तार से दीजिए।
2. हितोपदेश का परिचय विस्तार से दीजिए।

खण्ड – द्वितीय – Section-B
कादम्बरी (शुकनासोपदेश)

इकाई-1 आचार्य बाणभट्ट की कादम्बरी (शुकनासोपदेश) का विहंगावलोकन

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 आचार्य बाणभट्ट की कादम्बरी का विहंगावलोकन
1.3.1 आचार्य बाणभट्ट का परिचय
1.3.2 कादम्बरी का परिचय
1.3.3 शुकनासोपदेश का परिचय
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 उपयोगी पुस्तकें
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास नामक पुस्तक के कादम्बरी (शुकनासोपदेश) से सम्बन्धित खण्ड दो की यह प्रथम इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपनें संस्कृत गद्यकाव्य का परिचय एवं उसके प्रतिपाद्य विषय का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप कादम्बरी (शुकनासोपदेश) एवं महाकवि बाणभट्ट के बारे में जानेंगे।

वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे ''गाथा'' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। वैदिक गद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है। इसी क्रम में बाणभट्ट की कादम्बरी के शुकनासोपदेश का परिचय आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

- बाणभट्ट के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेंगे।
- बाणभट्ट की कृतियों के विषय उल्लेख करेंगे।
- बाणभट्ट के समय से सम्बद्ध तथ्यों का परीक्षण करेंगे।
- संस्कृत गद्य परम्परा के बारे में जान सकेंगे।
- कादम्बरी की कथा व उसके अंश शुकनासोपदेश का परिचय बता सकेंगे।

1.3 आचार्य बाणभट्ट की कादम्बरी का विहंगावलोकन

सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार हैं बाणभट्ट। वस्तुतः बाण की शैली सुबन्धु की अलंकृत शैली की प्रौढ़ता के साथ दण्डी के पदलालित्य का भी समावेश करती है।

1.3.1 आचार्य बाणभट्ट का परिचय

बाण ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में पर्याप्त सूचनायें दी हैं। हर्षचरित के आरम्भ के उच्छवासों में उन्होंने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय कथा के माध्यम से दिया है। इसी प्रकार उन्होंने कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में अपने वंश का वर्णन किया है। बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। शैशवावस्था में ही बाण की माता का निधन हो गया और चौदह वर्ष की अवस्था में वे पितृविहीन हो गये। युवावस्था में बाण किसी अनुशासन के बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे। वे अनेक राजाओं के यहाँ भी गये और अनेक विद्वानों की संगति प्राप्त कर शास्त्रीय चर्चाएँ भी करते रहे। विविध प्रकार के कार्यों एवं जीवनवृत्तियों वाले अनेक लोग उनके मित्र थे। इन मित्रों की लम्बी सूची बाण ने अपनी हर्षचरित में दी है। इस देशाटन से उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुआ। बाण सम्राट हर्षवर्धन के समकालीन थे।

अतः उनका समय पर्याप्त निश्चित है। हर्षवर्धन ने 606 ई0 से 648 ई0 तक शासन किया था। इस प्रकार बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। अनेक बाह्य एवं आन्तरिक साहित्यिक प्रमाणों से भी बाण का यही समय सिद्ध होता है।

आचार्य बाणभट्ट की रचनायें—

महाकवि बाण की तीन रचनायें मानी जाती हैं। मुकुटताडितक नाम का नाटक, हर्षचरित नाम की आख्यायिका तथा कादम्बरी नाम की कथा। इस नाटक का उल्लेख सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रणेता भोज ने किया है और नलचम्पू के टीकाकार चंद्रपाल और गुणविजयगणि ने इसे बाण की रचना के रूप में निर्दिष्ट किया है। यह महाभारत के कथानक के ऊपर आधारित रचना थी, जिसमें अन्त में भीम दुर्योधन के मुकुट को तोड़ा डालते हैं। यह नाटक उपलब्ध नहीं है और यह सम्भावना की जा सकती है कि बाण की इस प्रकार की एकाध और रचनायें थीं, जो अनुपलब्ध हैं। चण्डीशतक नाम की एक ऐसी रचना बाण के नाम से उल्लिखित है।

हर्षचरितम्—

बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् एक आख्यायिका है। सम्भवतः हर्षचरित ही आख्यायिका के वर्ग में सबसे प्राचीन रचना है। इसका विभाजन आठ उच्छ्वासों में है। प्रथम उच्छ्वास के आरम्भ में 21 श्लोकों में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का प्रशंसापूर्वक स्मरण किया है, यथा व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा। हर्षचरित के आरम्भिक तीन उच्छ्वासों में बाण ने अपनी आत्मकथा ही मनोमन शैली में प्रस्तुत की है। उनका राजा हर्षवर्धन से किस प्रकार सम्पर्क हुआ, इसका भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। तृतीय उच्छ्वास में बाण अपने गाँव लौटकर आने तथा अपने चचेरे भाइयों के आग्रह पर हर्ष के चरित का वर्णन करने का उल्लेख करते हैं ।हर्षचरित में वर्णित घटनायें संक्षेप में इस प्रकार हैं - चतुर्थ उच्छ्वास - राजा प्रभाकरवर्धन और रानी यशोमती का वर्णन क्रमशः उनके पुत्रों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा पुत्री राज्यश्री का जन्म होता है। राज्यश्री का मौखरिवंश के राजा ग्रहवर्मा के साथ विवाह होता है। पंचम उच्छ्वास - राज्यवर्धन अपने भ्राता हर्ष तथा सेना के साथ हूणों को जीतने के लिए प्रस्थान करता है, किन्तु पिता की बीमारी का समाचार सुनकर हर्ष वापस लौट आते हैं। यशोमती प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होने के पूर्व सती हो जाती है। षष्ठ उच्छ्वास - राज्यवर्धन वापस लौटता है, पिता द्वारा हर्ष को राज्य का भार सौंप दिया जाता है, ग्रहवर्मा की मृत्यु हो जाती है और मालव नरेश राज्यश्री को बन्दी बना लेता है। राज्यवर्धन सेना सहित मालव नरेश पर आक्रमण के लिए प्रस्थान करता है और उस पर विजय प्राप्त करता है। गौड देश के राजा शशांक के साथ युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाती है। सप्तम उच्छ्वास - हर्ष दिग्विजय यात्रा के लिए निकलता है और मालवराज पर विजय प्राप्त करता है। अष्टम उच्छ्वास - एक शबर द्वारा हर्ष को राज्यश्री के सती होने की तैयारी करने की सूचना दी जाती है। हर्ष राज्यश्री के पास पहुँचता है, बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र द्वारा राज्यश्री को समझाया जाता है। हर्ष भी दिग्विजय के बाद गेरुआ वस्त्र धारण करने का निश्चय करता है।

1.3.2 कादम्बरी का परिचय

बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी एक कथा है। कथानक कवि-कल्पित हैं और इसमें चन्द्रापीड एवं पुण्डरीक के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी दो भागों में है - पूर्वभाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और इसे ही बाण की कृति माना गया है। उत्तर भाग की रचना बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषणभट्ट ने की है ।कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। विदिशा नगरी के राजा थे शूद्रक, जो अत्यन्त प्रतापी और कलाविद् थे। एक दिन प्रातः वे अपनी राजसभा में बैठे थे, तभी प्रतीहारी ने आदेश प्राप्त कर एक चाण्डाल कन्या को सभा में प्रवेश कराया। चाण्डाल कन्या के हाथ में सोने का पिंजरा था,

जिसमें वैशम्पायन नाम का शुक था। शुक ने अपना दाहिना चरण उठाकर श्लोक द्वारा राजा का अभिवादन किया । शुक द्वारा राजा शूद्रक के समक्ष कथा का आरम्भ - इस शुक के विषय में राजा को महान कौतूहल हुआ और चाण्डाल कन्या तथा शुक के भोजन एवं विश्राम कर लेने पर राजा ने उस शुक से अपने विषय में बताने को कहा। शुक ने अपनी कथा सुनाई और बताया कि वह विन्ध्याटवी में अपने वृद्ध पिता के साथ रहता था। एक बहेलिये ने अन्य शुकों के साथ उसके पिता का वध कर दिया और नीचे फेंक दिया। पिता के पंखों के भीतर छिपकर वह भी नीचे गिरा, किन्तु बच गया। अपने प्राण बचाने के लिए वह झाड़ियों में छिप गया और बहेलिये के चले जाने के बाद उस मार्ग से जाने वाले ऋषिकुमार हारीत उसे दयावश अपने साथ लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम आये । जाबालि ने अपने शिष्यों को शुक के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

जाबालि द्वारा आश्रम के शिष्यों के समक्ष शुक के पूर्व जन्म तथा चन्द्रापीड की कथा सुनाना - उज्जयिनी में तारापीड नाम के राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। राजा के महामन्त्री का नाम शुकनास और महामन्त्री की पत्नी का नाम मनोरमा था। बहुत दिनों की पूजा अर्चना के बाद राजा तारापीड को पुत्र की प्राप्ति हुई और उसी दिन शुकनास के यहाँ भी एक पुत्र ने जन्म लिया । राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर पिता तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक किया। इस अवसर के पूर्व चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास से मिलने गया और शुकनास ने एक सारगर्भित उपदेश दिया, जो शुकनासोपदेश नाम से प्रसिद्ध है । अभिषेक के बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा पर निकला। अनेक राजाओं को परास्त कर वह हिमालय के निकट विश्राम करने के लिए रुका। एक दिन शिकार खेलने के लिए निकलने पर उसने किन्नर-मिथुन को देखा और उत्सुकतावश उनका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया। किन्नर-मिथुन अदृश्य हो गये, तब जल की खोज में वह अच्छोद सरोवर के पास पहुँचा। वहाँ जल पीकर अपने अश्व को बाँधकर विश्राम करने लगा, तब ही उसे वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ी, जिसकी खोज करते हुए उसने सरोवर के तट पर स्थित शिव के मन्दिर में वीणा बजाकर स्तुति करती हुई एक युवती को देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। युवती उसे अपने आश्रम में ले गयी और उसने फल आदि से चन्द्रापीड का सत्कार किया। चन्द्रापीड के आदरपूर्वक प्रश्न करने पर उस युवती ने, जिसका नाम महाश्वेता था, अपनी कथा इस प्रकार सुनाई ।

महाश्वेता द्वारा अपनी कथा सुनाना

महाश्वेता ने बताया कि वह गन्धर्वराज हंस तथा गौरी नाम की अप्सरा की पुत्री है। एक दिन वह अपने माता के साथ सरोवर पर आयी तो उसे पुष्प की अद्भुत गन्ध मिली तब उसने एक ऋषिकुमार को देखा, जिनके कान के ऊपर अद्भुत गन्ध वाला पुष्प था। साक्षात्कार होते ही दोनों एक दूसरे की ओर प्रेम से आकृष्ट हो गये। ऋषिकुमार का नाम पुण्डरीक था। उनके साथ उनका मित्र कपि´जल था । महाश्वेता पुण्डरीक से पुष्प लेकर अपने भवन चली आयी, किन्तु पुण्डरीक उसके विरह में अतिशय सन्तप्त हो उठे। कपि´जल ने महाश्वेता से मिलकर आग्रह किया कि अविलम्ब पुण्डरीक से मिलकर उसके प्राणों को बचा लीजिए। रात्रि को जब उपयुक्त समय देखकर महाश्वेता सरोवर के पास पहुँची तब तक पुण्डरीक के जीवन का अन्त हो चुका था। महाश्वेता पुण्डरीक के शरीर से लिपट कर विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष निकला और पुण्डरीक के शव को लेकर आकाश में चला गया । जाते-जाते उसने

महाश्वेता से कहा कि इससे तुम्हारा अवश्य मिलन होगा। तब से महाश्वेता अपने प्रियतम से मिलन की आशा में भगवान शिव की आराधना में लगी हुई है।

कादम्बरी की कथा—

रात्रि में विश्राम के समय महाश्वेता ने चन्द्रापीड से अपनी सखी कादम्बरी के विषय में बताया कि कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है और अपने माता-पिता के बार-बार कहने पर भी विवाह के लिए सहमत नहीं हो रही है । दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड को साथ लेकर कादम्बरी से मिलने गयी । वहाँ चन्द्रापीड और कादम्बरी में बातें हुई और वे परस्पर प्रगाढ़ प्रेम बन्धन में बँध गये। कादम्बरी से मिलकर वापस महाश्वेता की कुटी में आने पर चन्द्रापीड को अपनी सेना मिली और पिता का पत्र मिला, जिसमें उसे तत्काल राजधानी बुलाया गया था। चन्द्रापीड ने अपनी पानवाली पत्रलेखा को कादम्बरी के पास भेजा और स्वयं राजधानी चला गया। कुछ दिन बाद पत्रलेखा जब लौटकर राजधानी पहुँची, तो उसने चन्द्रापीड से कादम्बरी की विरहदशा का वर्णन किया। चन्द्रापीड को इसी समय यह सूचना मिली कि उसका मित्र वैशम्पायन, जो महामन्त्री शुकनास का पुत्र था, अच्छोद सरोवर में स्नान करने के बाद वहाँ से लौटना नहीं चाहता, वह वहाँ पागल की तरह कुछ ढूँढ़ रहा है । चन्द्रापीड उसे वापस ले आने के लिए चल पड़ा । महाश्वेता ने बताया कि एक ब्राह्मण युवक उसके पास आकर प्रणय निवेदन करने लगा, जिस पर कुपित होकर उसने उसे शुक बन जाने का शाप दे दिया । वह शुक बन गया, तब ज्ञात हुआ कि वह चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन था । अपने मित्र से बिछुड़ने और कादम्बरी से मिलन की सम्भावना न होने के दुःख में चन्द्रापीड भी तत्काल निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा । उधर कादम्बरी यह सुनकर कि चन्द्रापीड महाश्वेता की कुटी में आये हैं , बड़ी आशा से मिलने के लिए आयी, किन्तु उसे उसका शव ही मिला । परम दुःख से व्यथित होकर वह सती होने के लिए उद्यत हुई, किन्तु एक आकाशवाणी ने उसे आश्वस्त किया कि उसका चन्द्रापीड से मिलन होगा । वह चन्द्रापीड के मृत शरीर की रखवाली करने लगी । उसी समय पत्रलेखा चन्द्रापीड के अश्व इन्द्रायुध को लेकर सरोवर में कूद गयी। कुछ क्षण बाद सरोवर से एक ब्राह्मण युवक निकला, जो पुण्डरीक का मित्र कपि´जल था। उसने महाश्वेता को बताया कि पुण्डरीक पृथ्वी पर वैशम्पायन शुक के नाम से उत्पन्न हुआ है और वह भी एक ऋषि के शाप से इन्द्रायुध नाम का अश्व बन गया था । उसी ने महाश्वेता से यह भी बताया कि उसने जिसे शुक बन जाने का शाप दिया था वह कोई और नहीं पुण्डरीक था, तब महाश्वेता छाती पीट-पीट कर रोने लगी। कपि´जल ने उसे आश्वासन दिया कि अब उसके दुःखों का अन्त निकट है और वह स्वयं आकाश में चला गया। अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार जानकर राजा तारापीड, महारानी विलासवती तथा महामन्त्री शुकनास और उनकी पत्नी मनोरमा भी उस स्थान पर आये। तारापीड वहीं तपस्या में लग गये। मूर्च्छित कादम्बरी होश में आयी और चन्द्रापीड के शरीर की सेवा में लग गयी ।

शुक का राजा शूद्रक से अपने विषय में बताना—

राजा शूद्रक के समीप चाण्डालकन्या द्वारा लाये गये शुक ने राजा से अपने विषय में आगे की कथा इस प्रकार बतायी - महर्षि जाबालि ने जब अपने शिष्यों को मुझसे सम्बद्ध जो कथा सुनायी, उससे मुझे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया और मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं ही

महामन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन हूँ। जब मेरे पंख निकल आये, तब मैं अपने मित्र चन्द्रापीड को ढूँढ़ने निकला, किन्तु चाण्डाल कन्या द्वारा पकड़ लिया गया।

चाण्डाल कन्या द्वारा कथा को पूरी करना—

इसके बाद चाण्डाल कन्या ने राजा को बताया कि राजा शूद्रक ही चन्द्रापीड हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है और वैशम्पायन उसका पुत्र है। राजा शूद्रक को अपना पूर्व जन्म याद हो आया। उधर महाश्वेता की कुटी में वसन्त छा गया और कादम्बरी ने जैसे ही चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन किया, वह ऐसे जीवित हो उठा जैसे नींद से जागा हो। उसी समय शूद्रक ने भी अपना शरीर त्याग दिया। महाश्वेता की कुटी में कुछ ही क्षण में पुण्डरीक अपने मुनिकुमार वाले रूप में प्रकट हुआ और उसका महाश्वेता से मिलन हो गया। सर्वत्र आनन्द छा गया।

इस प्रकार इस कथा का नायक है चन्द्रापीड और नायिका है कादम्बरी। सहनायक और सहनायिका हैं - पुण्डरीक और महाश्वेता। यह तीन जन्मों की मिली-जुली कहानी है, जिसका अधिकांश भाग शुक द्वारा महर्षि जाबालि की कथा के अनुसार शूद्रक से कहा जाता है। कादम्बरी के आरम्भ में बाण ने बीस पद्यों में मङ्गलाचरण, सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन की निन्दा, अपने वंश के पूर्वजों का आलंकारिक एवं मनोरम वर्णन, तथा कथा के गुणों का उल्लेख किया है। चन्द्रापीड की ताम्बूलकरंकवाहिनी पत्रलेखा, जो चन्द्रापीड के चले आने पर भी कादम्बरी के पास रह गयी थी, लौटकर चन्द्रापीड की राजधानी आती है, इस वर्णन के साथ ही कादम्बरी कथा का पूर्वभाग समाप्त होता है।

कादम्बरी की समीक्षा—

कादम्बरी एक कथा है और कथा का कथानक कविकल्पित होता है, फिर भी बाण की कादम्बरी की कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा के कथानक से कई समानताएँ प्रदर्शित करती हैं, जिससे यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बाण को कादम्बरी कथा की प्रेरणा गुणाढ्य की बृहत्कथा से मिली है। इसका संस्कृत रूपान्तर सोमदेव का कथासरित्सागर है, जो बाण के समय के बहुत बाद रचा गया। बाण में कथानक को सजाने और जीवन्त बनाने की विलक्षण प्रतिभा है जिससे कादम्बरी कथा अद्वितीय रूप प्राप्त कर लेती है। कादम्बरी की मुख्य कथा के साथ प्रसंगवश अनेक स्थलों पर बाण ने लम्बे वर्णन किये हैं और अपनी कविप्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग का भरपूर प्रदर्शन किया है, जिससे ऐसे स्थलों पर कथा की गति मन्थर हो गयी है, किन्तु उन वर्णनों का अपना सौन्दर्य पाठक को इतना अधिक बाँध लेता है कि वह कथा के इस मन्द प्रवाह की ओर ध्यान नहीं दे पाता। यद्यपि कादम्बरी कथा की घटनायें जटिल हैं, तथापि वे मुख्य कथा के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं। उसमें उस प्रकार की जटिलता नहीं है जैसी जटिलता दण्डी के दशकुमारचरित में मिलती है। कथा के प्रति पाठक के उत्सुकता बनाये रखने में बाण दक्ष हैं। कादम्बरी में प्रत्येक घटना का वर्णन अगली घटना के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

चरित्र चित्रण—

बाण को जीवन के हर क्षेत्र का पूरा अनुभव था। यही कारण है कि वे पुत्रों के चरित्र-चित्रण में अपने अनुभव और निरीक्षण की प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। हर्षचरित में तो उन्हें इसके लिए अवसर ही नहीं मिला है, किन्तु कादम्बरी में वे अनेक प्रकार के चरित्रों का सूक्ष्म वर्णन कर सके हैं। कादम्बरी के चन्द्रापीड, पुण्डरीक, कादम्बरी और महाश्वेता जैसे उच्च वर्ग के पात्र तो हैं ही, साथ ही बाण ने चाण्डालकन्या और शबर सेनापति जैसे अरण्यवासी पात्रों का भी

सफलतापूर्वक चित्रण किया है। जाबालि, हारीत और कपिञ्जल जैसे ऋषियों एवं मुनि कुमारों के वर्णन भी स्वाभाविक हैं। बाण ने अतिमानवीय पात्रों को मानवीय धरातल पर लाकर स्वर्ग और पृथ्वी, गन्धर्वलोक तथा मुनियों के आश्रम को एक साथ सम्बद्ध कर दिया है। उनका प्रत्येक चरित्र अपने आप में विस्मय और रहस्य से परिपूर्ण है। उनके चरित्रों में एक असाधारण आकर्षण और औदात्य है। प्रेम के उदात्त स्वरूप का दर्शन बाण ने महाश्वेता और कादम्बरी के चरित्रों द्वारा कराया है। कादम्बरी अपने मृत प्रियतम से मिलन की आशा में सम्पूर्ण समर्पण से उसके शरीर की रक्षा और सेवा करती है और महाश्वेता अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करती है। इन चरित्रों के प्रति एक स्वाभाविक श्रद्धा भाव पाठक के मन में उत्पन्न होता है। भाग्य की क्रूर विडम्बना से बार-बार छली गयी महाश्वेता नारी के धैर्य एवं सहिष्णुतामय गाम्भीर्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाण ने अपने प्रमुख नारीपात्रों में एकनिष्ठ एवं त्यागमय प्रेम और चरित्र का बल दिखाकर प्रेम के अलौकिक पक्ष को आलोकित किया है। पुण्डरीक तपस्वी का आदर्श रूप है, किन्तु युवावस्था में स्वभावतः मन को कामविकार किस प्रकार वशीभूत कर लेता है, इसका प्रबल उदाहरण भी बाण ने इस चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। काम के वशीभूत पुण्डरीक अपना जीवन भी त्याग देता है। चन्द्रापीड एक आज्ञाकारी पुत्र, योग्य शासक, वीर सेनानी होने के साथ ही एक आदर्श मित्र और आदर्श प्रेमी है। वस्तुतः बाण ने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता कादम्बरी में प्रदर्शित की है।

वर्णन का सौन्दर्य—

गद्यकवि बाण की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी वर्णन की प्रतिभा है। वे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति द्वारा प्रत्येक चित्र अथवा भावना का सजीव वर्णन करते हैं। वर्णन कौशल द्वारा वे किसी वस्तु या स्थिति का शब्दों द्वारा चित्र बनाकर उसके रूप, रस, गन्ध का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष सा करा देते हैं। कथामुख में ही राजसभा में उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए राजा शूद्रक का, सभाभवन की प्रत्येक वस्तु का वे उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं से इतना विस्तृत वर्णन करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित सा अनुभव करने लगता है। विन्ध्याटवी की भयावहता तथा पम्पासरोवर की निर्मलता का वर्णन भी इसी प्रकार का है। सभाभवन में बैठे राजा शूद्रक का यह वर्णन द्रष्टव्य है—

प्रविश्य च नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुलिजतकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरण जालकान्तरिता वयमिन्द्रायुधसहस्रस´ छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम,अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्यङ्कनिषण्णम् ...

इसी प्रकार महाश्वेतावृत्तान्त में महाश्वेता की कुटी की एक-एक वस्तु का वर्णन बाण इस प्रकार करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित जैसा अनुभव करता है -

हिमहारहरहासधवलैश्चोभयतःक्षरद्भिर्निर्झरैर्द्वारावलम्बितचलच्चामरकलापामिवोपलक्ष्य माणाम् अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्, एकान्तावलम्बितयोगपट्टिकाम्, विशाखिकाशिचारनिबद्धनारिकेलीफलवल्कल धौतोपानद्युगोपेताम् ... इन्दुमण्डलेनेव टङ्कोत्कीर्णेव शङ्खमयेनेव भिक्षाकपालेनाधिष्ठितां सन्निहितभस्मालाबुकां गुहाम् अद्राक्षीत्।

सौन्दर्य चाहे प्रकृति का हो या मानव-रूप का, बाण उसके वर्णन में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। विन्ध्याटवी, पम्पासरोवर, अच्छोद सरोवर के वर्णन में, महाश्वेता की कुटी बनी हुई गुफा के वर्णन में या वसन्त ऋतु के आगमन के वर्णन में उनके प्रकृति वर्णन का सौन्दर्य देखा जा सकता है। बाण ने वर्णन के लिए विषयों का इतना व्यापक क्षेत्र चुना है कि विद्वानों का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि '**बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**'।

रसाभिव्यक्ति—

श्रेष्ठ गद्यकार बाण रस की अभिव्यंजना में भी सफल हैं। कथा की प्रशंसा के माध्यम से अपनी ही कथा की विशेषताओं का संकेत करते हुए वे कहते हैं -

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ।।

वस्तुतः बाण ने अपनी वर्णन-प्रतिभा से प्रत्येक वर्णन में रस भर दिया है। उन्होंने कादम्बरी में शृङ्गार रस परिणामतः वासनात्मक नहीं है। महाश्वेता और पुण्डरीक का तथा कादम्बरी एवं महाश्वेता का प्रेम ऐसा ही आदर्श एवं उदात्त प्रेम है। संयोग-शृङ्गार की तीखी अभिव्य´जना का एक उदाहरण पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रथम मिलन के वर्णन में देखा जा सकता है—

तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनंप्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत्। मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभङ्गभीतेवाकम्पतकरतलगताक्षमाला। द्वितीयमेव कर्णावसक्तकुसुमम´जरी कपोलतलासंगिनी समदृश्यत स्वेदसलिसिकरजालिका ।

विप्रलम्भ की अभिव्य´जना पुण्डरीक और कादम्बरी की वियोगावस्था के वर्णन में द्रष्टव्य है। महाश्वेता और कादम्बरी का विलाप इस कथा को करुण रस से आप्लावित कर देते हैं। बाण की रसाभिव्यक्ति पाठक को कथा में इस प्रकार विभोर कर देती है कि उत्सुकता और रोचकता आदि से अन्त तक कम नहीं होती। बाण की रसाभिव्यक्ति की दक्षता का ही यह परिचायक है कि पाठक पात्रों के साथ दुःख में दुःखी और आनन्द में आनन्दित अनुभव करता है। कादम्बरी के रस और भावपक्ष को लेकर विद्वज्जन इतने अधिक प्रभावित रहे हैं कि ये सूक्तियाँ सटीक ही हैं -

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोपि न रोचते ।
कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।

अभ्यास प्रश्न 1 -

1.निम्न में से एक बाणभट्ट की रचना है

क. कुमारसम्भव

ख. हर्षचरितम्

ग. किरातार्जुनीयम्

घ. शाकुन्तलम्

2. बाण का समय है

क. सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध

ख. सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

ग. छठी शताब्दी

घ. आठवीं शताब्दी

रिक्त स्थन की पूर्ति कीजिए

3. हर्षचरित एक ..... है।

4. स्फुरत्कलालाप ..... कोमला।

सत्य असत्य का चयन करें

5. महाश्वेता गन्धर्वराज हंस तथा गौरी की पुत्री है ( )

6. वैशम्पायन अच्छोदसरोवर से स्नान करके लौटना चाहता था ( )

बाण की गद्यशैली—

बाण से पूर्व सुबन्धु ने दुरूह श्लिष्ट पदावली से युक्त अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ।।

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता - ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पाञ्चाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। सुतरा, बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्ण में कठोर वर्णों का प्रयोग करते हैं। दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजोगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुकनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।

कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे।

बाण की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है -

न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपामालोकयते । न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।

जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

अलंकार – प्रयोग—

बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं। अपने अलंकार-प्रयोग की ओर उन्होंने स्वयं ही संकेत किया है।

हरन्ति कं नोज्जवलदीपकोपमैर्नवैपदार्थैरुपपादिता कथाः।
निरतन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव॥

इनकी उपमाएँ प्रायः श्लिष्ट हैं और विशेषण की शाब्दिक समानता पर आधारित हैं। यथा - **अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोश मण्डलमपि मु´चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गडेगेव वसुजनन्यपि तरङगबुद्बुद्च´चला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्राविडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पस्वत्त्वमुन्मत्तीकरोति।**

इनके विरोधाभास का एक उदाहरण इस प्रकार है - **सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशितप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्तयपि लघिमानमापादयति।**

उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य है -**अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्पते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम्।**

बाण द्वारा प्रयुक्त अनुप्रासालंकार उनकी शैली में एक मनोरम नादसौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। शुकनासोपदेश से कुछ उदाहरण ये हैं - **अप्रदीपप्रभापनेयम्। सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। इन्द्रियहरिणहारिणी। अखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी। गजघटितघनघटा। मूलदण्डकोश मण्डलम्। धनलवलाभावलेप-।**

अपनी विशिष्टि शैली के कारण निश्चय ही बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं। उन्होंने बाद के अनेक गद्यकवियों को प्रभावित किया है। संस्कृत के विद्वानों में बाण की शैली की प्रशंसा में अनेक सूक्तियाँ प्रचलित हैं।

बाण की प्रशस्ति में प्रचलित सूक्तियाँ—

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह॥ - **गोवर्धनाचार्य।**

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य। **- धर्मदास।**

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे
ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः॥ **चन्द्रदेव।**

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् क्वीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः ॥ **- धनपाल**
हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥ -**त्रिलोचन भट्ट**
सहर्षचरितारम्भाद्भुतकादम्बरीकथा ।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ।- **राजशेखर**
बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती । **- सोड्ढल**

1.3.3 शुकनासोपदेश का परिचय

राजा तारापीड का पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड गुरुकुल में निवास और अध्ययन समाप्त कर अपने माता-पिता के पास लौटा आता है । कुछ दिन बीतने पर राजा तारापीड उसका यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय करते हैं । राजा तारापीड के सुयोग्य और विद्वान प्रधानामात्य थे शुकनास । यौवराज्याभिषेक की तिथि निर्धारित हो जाने पर एक दिन राजकुमार चन्द्रापीड शुकनास से मिलने जाता है । शुकनास चन्द्रापीड को राजलक्ष्मी की चंचलता और उसके अनेक दोषों का कारण बताते हुए एवं युवावस्था के विकारों का उल्लेख करते हुए चन्द्रापीड को सावधान रहकर आत्मनियन्त्रण एवं सतर्कता बरतने का उपदेश देते हैं, जो संक्षेप इस प्रकार है -

यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता । लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं । दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता । विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं । विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है । दृष्टि में कामुकता बनी रहती है । विषयोपभोग की मृगतृष्णा पुरुष को उनके पीछे दौड़ाती रहती है । एक बार जब मन में विकार उत्पन्न हो जाता है तो वे ही विषयसुख और मधुर प्रतीत होने लगते हैं और परिणाम यह होता है कि पुरुष भटक कर नष्ट हो जाता है ।

गुरुपदेश का महत्व—

जिसके मन में विकार नहीं समाया हुआ है, उसी की बुद्धि में गुरुजनों के उपदेश प्रवेश करते हैं । इसके विपरीत जो स्वभावतः दुष्ट है उसके लिए तो गुरुजनों के वचन कानों में शूल जैसे कष्टदायी प्रतीत होते हैं। गुरुपदेश मन के अन्धकार को दूर करता है और बुद्धि का विकास कर वृद्धावस्था जैसी समझ उत्पन्न कर देता है । कोई उच्च कुल में उत्पन्न हो इतने मात्र से ही उसमें अविनय की सम्भावना समाप्त नहीं होती । गुरुपदेश एक गम्भीरता ला देता है, एक चमक उत्पन्न कर देता है। विशेषतः राजाओं के लिए तो इसका महत्त्व और अधिक है। उनके लिए हितकारी परामर्श देने वालों का अभाव होता है। जनसमाज तो उनके आदेश का भयवश अनुगमन ही

करता है। दर्प के कारण राजाओं के कान सूज कर बहरे हो जाते हैं। वे सुनते हुए भी हाथी के समान आँखें बन्द कर उपेक्षा करते हैं। अहंकार के दाहज्वर की मूर्च्छा इन **राजाओं पर छायी रहती है।**

लक्ष्मी का प्रवञ्चनामय स्वभाव—

लक्ष्मी में वक्रता, चंचलता, नशा, मूर्च्छा उत्पन्न करने की शक्ति और कठोरता सहज रूप में विद्यमान होती है। ऐसा कोई नहीं है जिसे इसने धोखा न दिया हो। मिल जाने पर भी लक्ष्मी की रक्षा बड़े कष्ट से होती है। लक्ष्मी किसके पास पहुँच जाय, इसका ठिकाना नहीं। यह परिचय, कुलपरम्परा, शील, विदग्धता, शास्त्रज्ञान, धर्म, त्याग, विशेषज्ञता, आचार और सत्यशीलता का विचार नहीं करती। देखते-देखते गायब हो जाती है। क्रूर और साहस के कर्म करने वालों के अधीन हो जाती है। शक्तिशाली राजा को भी क्षण भर में छोड़ देती है। सरस्वती के भक्तों से तो ईर्ष्या ही रखती है। गुणवान, उदार, सज्जन, कुलीन, वीर, दानी, विनम्र और मरस्वी पुरुष के समीप नहीं जाती। यह पुरुष में तृष्णा को बढ़ाने, क्षुद्रता उत्पन्न करने का ही कार्य करती है। यह इन्द्रियों को फाँसती है, मनुष्य को कुकर्मों की ओर प्रेरित करती है और उत्तम चरित्र को कलंकित कर देती है, मनुष्य में क्रोध उत्पन्न करती है और सदाचार एवं सद्गुणों को समाप्त कर देती है। यह धूर्तता सिखाती है और कामवासना को बढ़ाने के साथ धर्मबुद्धि का सम्पूर्ण नाश कर देती है। जो राजा किसी प्रकार इसकी कृपा पा लेते हैं, वे सभी अवगुणों, दुर्गुणों, अधर्म, अहंकार, अक्षमा और अदूरदर्शिता से ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ दूसरे राजा पागल जैसे होकर विषयभोगों की ओर दौड़ते हैं और मानो असंख्य इन्द्रियों द्वारा अधिक से अधिक भोगों का सुख पाना चाहते हैं। वे सब कुछ स्वर्णमय देखने लगते हैं। ऐसे राज अत्याचारी होकर निरन्तर पाप करते जाते हैं, सैकड़ों व्यसनों में पड़कर अधोगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे राजाओं की चापलूसी में लगे धूर्त उनके दोषों को गुण के रूप में बखान कर उन्हें ऐसे भ्रम में डाल देते हैं जैसे वे देवता के ही अवतार हों और वे राजा भी ऐसे भ्रम में देवताओं की तरह आचरण करने लगते हैं तथा उपहास के पात्र बनते हैं। गर्व से चूर ये राजा किसी को दर्शन देना भी कृपा करना दृष्टिपात करना, उपकार, वार्तालाप कर लेना, धन का दान देना तथा किसी को आज्ञा देना वरदान देना समझते हैं। वे अहंकार से देवों औश्र गुरुजनों का सम्मान नहीं करते, किसी की बात नहीं सुनते। वे धूर्तों और चापलूसों को ही अपने समीप रखते हैं, उन्हीं को लाभ पहुँचाते हैं और उन्हीं को प्रमाण मान लेते हैं, जो सभी कार्यों को छोड़कर उनकी स्तुति में लगा रहता है।

चन्द्रापीड को कर्त्तव्य हेतु उद्बोधन—

अपने उपदेश को समाप्त करते हुए शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट - खसोट करने, व´चना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके।

शुकनास के उपदेश को सुनकर चन्द्रापीड ने अपूर्व निर्मलता और प्रसन्नता का अनुभव किया और कुछ समय शुकनास के पास रुकने के बाद अपने भवन को लौट आया।

शुकनासोपदेश के अन्तर्गत सूक्तियाँ—

यद्यपि शुकनासोपदेश अधिकांशतः सूक्ति के समान है, तथापि निम्नलिखित सूक्तियाँ विशेष्ज्ञतः उल्लेखनीय हैं)

1- निसर्गत एवं अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।

2- अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

3- अन´जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।

4- अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा।

5- यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः।

6- अनुज्झातधवलतापि सरागैव भवित यूनां दृष्टिः।

7- अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

8-गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा।

9- इन्द्रियहरिणहारिणी सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका।

10- नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकःपुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

11- अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

12- गुरुवचनममलमपि सलिलमिवमहदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।

13- कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिवगलत्युपदिष्टम्।

14- अकारणं च भवित दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य।

15- गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमजलं स्नानम।

16- प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।

17- अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वलाहि राजप्रकृतिः।

18- अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि।

19- राज्यविषविकारतन्दाप्रदा राजलक्ष्मीः।

20- (लक्ष्मीः) सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति।

21- (लक्ष्मीः) जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

22- नहि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः।

23- तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि।

24-विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीः।

25 - आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।

अभ्यास प्रश्न 2

1.बाण किस रीति के कवि हैं

क. वैदर्भी ख. पांचाली ग. गौड़ी घ. कुछ नहीं

2. **वाणी बाणो बभूव** किसने कहा है

क. बाणभट्ट ख. दण्डी ग. चन्द्रदेव घ. गोवर्धनाचार्य

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. न ..... रक्षति।

4. बाण ..... चक्रवर्ती।

सत्य और असत्य का ज्ञान करें

5.लक्ष्मी के प्रवंचनामय स्वभाव का वर्णन कादम्बरी में किया गया है ( )

6.' बाणस्तु पंचानन :' धनपाल नें कहा है ( )

अति लघु- उत्तरीय प्रश्न

1- सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार कौन है ?

2- बाणभट्ट ने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय किसके माध्यम से दिया है ?

3- बाणभट्ट नें कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में किसका वर्णन किया है ?

4- महाकवि बाण की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं ?

5- महाकवि बाणभट्ट की कौन सी तीन कृतियाँ हैं ?

6- बाणभट्ट के पिता का नाम क्या था ?

7- बाणभट्ट की माता का नाम क्या था ?

8- किस अवस्था में बाण की माता का निधन हो गया ?

9 - बाणभट्ट कितने वर्ष की अवस्था में पितृविहीन हो गये ?

10 - युवावस्था में बाण किसके बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे ?

11 - बाणभट्ट ने अपने मित्रों की लम्बी सूची किसमें दी है ?

12 - बाणभट्ट किसके समकालीन थे ?

13 - हर्षवर्धन ने कबसे कब तक शासन किया था ?

14 - बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् क्या है ?

15 - बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी क्या है ?

1. 4 सारांश

इस इकाई इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि लौकिक संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें बाण की रचनाओं में मिलता है। निश्चय ही ये गद्य-काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट- खसोट करने, वंचना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके। यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है।

इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. क 3. आख्यायिका 4. विलास 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2.

1. ख 2. घ 3. परिचय
4. कविनामिह 5. सही 6. गलत

अतिलघुत्तरीय के उत्तर

(1) बाणभट्ट (2) कथा के माध्यम से दिया है (3) अपने वंश का वर्णन किया है
(4) तीन कृतियाँ।
(5) हर्षचरित, कादम्बरी, और मुकुटताडितक
(6) चित्रभानु (7) राजदेवी था (8) शैशवावस्था में
(9) चौदह वर्ष की अवस्था में (10) अनुशासन के बन्धन से
(11) हर्षचरित में दी है (12) हर्षवर्धन के समकालीन थे
(13) 606 ई0 से 648 ई0 तक (14) आख्यायिका (15) एक कथा है

1.6 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1- कादम्बरी, बाणभट्ट, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2- शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3- संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय प्रकाशक, शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. बाण की गद्य शैली की विवेचना कीजिए।
3. शुकनासोपदेश का परिचय दीजिए।

इकाई-2 शुकनासोपदेश : गद्य भाग

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 एवं समतिक्रामत्सु ..... मेदोदोषं गुरुकरणम् तक अर्थ एवं व्याख्या
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

कादम्बरी (शुकनासोपदेश) से सम्बन्धित खण्ड दो की यह दूसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपनें बाणभट्ट की कादम्बरी आदि का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि चन्द्रापीड कौन था ? राजा ने चन्द्रापीड को युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को, जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा से शुकनास ने विस्तार से उपदेश दिया। अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता आदि - आदि ।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप इसमें से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगे तथा शुकनास द्वारा दिये गये उपदेशों का महत्व समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश दिया , इसके विषय में समझा सकेंगे ।
- शुकनाशका परिचय विस्तार पूर्वक दे सकेंगे ।
- अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे ।
- चन्द्रपीड आदि का परिचय दे सकेंगे ।
- बाण की गद्यशैली की विशेषताओं को बता सकेंगे ।

2.3 एवं समतिक्रामत्सु ... मेदोदोषं गुरुकरणम् तक अर्थ एवं व्याख्या

एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु, राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः प्रतीहारानुपकरण - सम्भारसंग्रहार्थमादिदेश । समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढ़विनयमपि विनीततरमिच्छुकनासः सविस्तरमुवाचतात चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्याधीतसर्व-शास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति । केवलं च निसर्गतएवाभानु - भेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीप-प्रभापनेयमति-गहनं तमो यौवनप्रभवम् । अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

शब्दार्थ - एवम् = इस प्रकार से, जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है उस प्रकार से। समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु = कुछ दिनों के बीतते रहने पर । सम्, अति, क्रम्,शतृ। समतिक्रामत् से सप्तमी बहुवचन । ' यस्य च भावेन भावलक्षणम् ' नियम से सप्तमी विभक्ति हुई है। राजा = राजा तारापीड ने । यहाँ राजा से कादम्बरी कथा के नायक चन्द्रापीड के पिता तारापीड से तात्पर्य है । राज्कनिन् प्रत्यय । चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः = अपने पुत्र चन्द्रापीड का युवराज पद पर अभिषेक करने की इच्छा से युक्त। राजा या युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए पवित्र नदियों और तीर्थों के जल से स्नान कराने की क्रिया को अभिषेक कहा गया है । चिकीर्षुः = करने की इच्छा से युक्त, कृ + सन् + उ प्रत्यय । प्रतीहारान् =

द्वारपालों को। द्वार पर रहने वाले सेवक या चौकीदार को प्रतीहार कहा गया है ' द्वारि द्वास्थे प्रतीहारः'- अमरकोश। उपकरण - सम्भार - संग्रहार्थम् = सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए, उपक्रियते अनेन इति उपकरणम्, तेषां सम्भारः उपकरणसम्भारः, तस्मै इति उपकरण - सम्भारसंग्रहार्थम्। अर्थ पद के साथ चतुर्थी के अर्थ में नित्यसमास। उपकरण - उप + कृ + ल्युट् करण अर्थ में। सम्भार- सम् + भृ + घञ् भाव में। आदिदेश = आदेश दिया। आ + दिश् + लिट् लकार प्रथम पु0 एक व0। समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तम् = जिसके युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट आ गया था ऐसे उसको। उसको से यहाँ चन्द्रापीड से अर्थ है। उस चन्द्रापीड को, समुपस्थितिः यौवराज्याभिषेकः यस्य तम्। सम् + उप + स्था + क्त। कदाचित् दर्शनार्थम् आगतम् = कभी दर्शन के लिए आये हुए उसको। दर्शनार्थम् में अर्थ पद के साथ चतुर्थी में नित्यसमास हुआ। दृश् + ल्युट्। आरूढविनयमपि = विनय से युक्त होने पर भी, आरूढःविनयः यम् इति आरूढविनयः तम्। आ + रुह् + क्त = आरूढ। विनीततरम् इच्छन् = और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा करते हुए। शुकनासः सविस्तरम् उवाच = शुकनास ने विस्तार से कहा। विस्तरेण सह वर्तमानः इति यथा स्यात् तथा। विनीतर - वि + नी + तरप्। इच्छन् - इष् + शतृ। विस्तरः - वि + सतृ + अप्। उवाच - ब्रू-वच् लिट्लकार प्रथम पु 0 एकवचन । तात = हे प्रिय। स्नेहसूचक अव्यय। = विदितवेदितव्यस्य = सभी जानने योग्य विषयों को जान लेने वाले विदितं वेदितव्यं येन सः, तस्य। विद् + क्त कर्म अर्थ में। वेदितव्य विद् + तव्य। अधीतसर्वशास्त्रस्य = सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने वाले, अधीतानि सर्वाणि शास्त्राणि येन सः अधीतसर्वशास्त्रः तस्य। अधि + इ + क्त। ते = तुम्हारे लिए, आपके लिए। न अल्पम् अपि उपदेष्टव्यम् अस्ति = कुछ भी उपदेश देने योग्य विषय नहीं है। केवलं च = केवल यही है। इतना ही कहना है। निसर्गतः एव = स्वभाव से ही। नि+ सृज् + घञ् । अभानुभेद्यम् = सूर्य द्वारा दूर न किया जा सकने वाला। भेत्तुं योग्यम् इति भेद्यम्। भानुना भेद्यम्, भानुभेद्यम्। न भानुभेद्यम् इति अभानुभेद्यम् - नञ् तत्पुरुष। भिद् + ण्यत्। यहाँ अज्ञानरूपी अन्धकार के विषय में कहा गया है। सूर्य उस अन्धकार को दूर नहीं कर सकता। अरत्नालोकोच्छेद्यम् = रत्नों के प्रकाश से भी जो हटाया नहीं जा सकता। रत्नानाम् आलोकः रत्नालोकः। उच्छेत्तुं योग्यम् उच्छेद्यम् । रत्नालोकेन उच्छेद्यम् रत्नालोकोच्छेद्यम् न रत्नालोकोच्छेद्यम् इति अरत्नालोकोच्छेद्यम्। उत् + छिद् + ण्यत्। अप्रदीपप्रभापनेयम् = दीपक की ज्योति से दूर न करने योग्य। प्रदीपयन्ति इति प्रदीपाः तेषां प्रभा प्रदीपप्रभा। अपनेतु योग्यम् अपनेयम्। प्रदीपप्रभया अपनेयम् इति प्रदीपप्रभापनेयम् न प्रदीपप्रभापनेयम् इति अप्रदीपप्रभापनेयम्। तत्पुरुष। प्रज्वलित दीपक की प्रभा से रात्रि का अन्धकार दूर हो सकता है, किन्तु युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार नहीं।

अप + नी + यत् = अपनेयम्। अतिगहनु तमः यौवनप्रभवम् = युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अत्यन्त गहन होता है। अतिशयेन गहनम् अतिगहनम्। यहाँ अन्धकार दूर करने के कारणों के होते हुए भी अन्धकार दूर न होने का वर्णन है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है। यहाँ तमः से अज्ञान, दर्प, मोह, गर्व और तमोगुण अभिप्रेत है। अपरिणामोपशमः = परिणामेण यः उपशमः तथाभूतः - पच जाने पर समाप्त हो जाने वाला। आगे आये हुए शब्द लक्ष्मीमदः के विशेषण हैं। लक्ष्मीमदः = लक्ष्मी अर्थात् धन-सम्पत्ति से उत्पन्न मद = नशा या अभिमान। मदपान करने पर उसका नशा पचने के साथ समाप्त हो जाता है, किन्तु धन-सम्पत्ति या राजसत्ता

का मद या अभिमान परिणाम में अर्थात् वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं होता। मदपान का नशा उसके पचने पर उतर जाता है, किन्तु धन का नशा नहीं परिणाम का दूसरा अर्थ होगा - वृद्धावस्था। यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। दारुणः = भीषण। दारयति इति दारुणः। भयावह। दृ+ णिच्+ उनन्।

हिन्दी भावार्थ - इस प्रकार कुछ दिनों के बीतने पर राजा ने चन्द्रापीड का युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को, जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनानेकी इच्छा से शुकनास ने विस्तार से कहा-

प्रिय चन्द्रापीड ! जानने योग्य सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले और सभी शास्त्रों का अध्ययन कर चुके आपके लिए उपदेश देने योग्य कुछ भी नहीं है। केवल यही कहना है कि स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता।

कष्टमनञ्जन-वर्ति-साध्यमपरमैश्वर्य-तिमिरान्धत्वम्।
अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्प-दाह-ज्वरोष्मा।
सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषय-विषास्वादमोहः।

शब्दार्थ - कष्टम् = कष्टदायी है, दुःख देने वाला है। अनंजनवर्तिसाध्यम् = अंजन की वर्ति से दूर न किया जाने योग्य। अंजनस्य वर्तिः अंजनवर्तिः, तया साध्यम् अंजनवर्तिसाध्यम्, न अंजनवर्तिसाध्यम् अनंजनवर्तिसाध्यम्। अंजन - अंज् + ल्युट्। अपरम् = कोई दूसरा ही विलक्षण। ऐश्वर्तिमिरान्धत्वम् = ऐश्वर्य से उत्पन्न नेत्ररोग का अन्धापन है। ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्यम् एव तिमिरम्ऐश्वर्यतिमिरम्, तेन अन्धत्वम्, ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अन्धस्य भावः अन्धत्वम्। ऐश्वर्य- ई श्वर + ष्यञ्। तिमिर आँखों का एक रोग है। यहाँ ऐश्वर्य से उत्पन्न अन्धकार पर मितिर रोग का आरोप होने से रूपकालंकार है। अशिशिरोपचारहार्यः = चन्दन आदि शीतलता उत्पन्न करने वाले पदार्र्थों से दूर न किये जाने योग्य। शिशिरःचासौ उपचारश्यच शिशिरोपचारः, हर्तुयोग्यःहार्यः, शिशिरोपचारेण हार्यः शिशिरोपचारहार्यः न अशिशिरोपचारहार्यः शिशिरोपचारहार्यः। उपचारः - उप+ चर् +घञ्। हार्यः - हृ + ण्यत् अतितीव्र = अत्यधिक तीव्र। अतिशयेन तीव्रः। दर्पदाहज्वरोष्मा = अभिमान रूपी दाहक ज्वर की गर्मी। दाहकारकः ज्वरः दाहज्वरः। तस्य ऊष्मा दर्पदाहज्वरोष्मा। कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष। दर्प = दृप्+घञ्। दाह = दह्+घञ्। भाव यह है कि अन्य प्रकार के ज्वरचन्दन आदि शीतल पदार्थों के उपचार से दूर हो सकते हैं, किन्तु धनसम्पत्ति के अभिमानसे उत्पन्न ज्वर या तीव्र गर्मी शान्त नहीं होती। दर्प पर दाहज्वरः का आरोप होने से रूपकालंकार है। सततम् = निरन्तर। अमूलमन्त्रगम्यः = मूल अर्थात् जड़ी- बूटियाँ औश्र मन्त्रों के लिए अगम्य। इनसे दूर न किये जाने योग्य। शम्यः पाठ भी है तब अर्थ होगा शान्त न किये जाने योग्य। मूलानि च मन्त्राश्च मूलमन्त्राः, तैः गम्यः। मूलमन्त्रगम्यः, न मूलमन्त्रगम्यः अमूलमन्त्रगम्यः। विषमः = विकट, कठिन, कुटिल। विषयविषास्वादमोहः = विषयभोग रूपी विष का आस्वादन करने से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा।

विषयाः एव विषम् विषयविषम्, तस्य आस्वादः विषयविषास्वादः, तस्मात् मोहः विषयविषास्वादमोहः। विषयों पर विष का आरोप होनेसे रूपक अलंकार है। सामान्य विष को खाने से उत्पन्न मूर्च्छा जड़ी-बूटियों और मन्त्रों से झाड़-फूँक से दू की जा सकती है, किन्तु विषयभोग के सेवन से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा इतनी कठिन होती है कि इनसे परे होती है।

हिन्दी भावार्थ - कष्ट है कि ऐश्वर्य से उत्पन्न कुछ दूसरे ही प्रकार का तिमिर नामक नेत्ररोग का अन्धापन होता है, जो अंजन की वर्तिका से दूर नहीं किया जा सकता। दर्प रूपी दाहकारी ज्वर की गर्मी अति तीव्र होती है, जो शीतल पदार्थों द्वारा उपचार से दूर नहीं होती। विषयभोग रूपी विष के आस्वादन से उत्पन्न मूर्च्छा विषम तथा जड़ी - बूटियों और मन्त्रों की पहुँच से परे होती है।

नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुख-संनिपात-निद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे । गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः।

शब्दार्थ - नित्यम् अस्नानशौचवध्यः = सदा ही स्नान और शुद्धि की विधियों से नष्ट करने योग्य नहीं होती । स्नानं च शौचं च स्नानशौचे। ताभ्यां वध्यः स्नानशौचवध्यः, न स्नानशौचवध्यः अस्नानशौचवध्यः। द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास । वध्यः वध्यत् । बलवान् - बल+ मतुप । रागमलावलेपः = राग अर्थात् विषयभोग की अभिलाषा रूपी मल - गन्दगी, कीचड़ या मैल का अवलेप । रागः एव मलः रागमलः, तस्य अवलेपः रागमलावलेपः। कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष समास। गम्यः - गम् + यत्। आस्वाद - आ+ स्वद् + घञ् । स्नान - स्ना/ल्युट्। अवलेपः - अव + लिप् + घ'! । राग के ऊपर मल का आरोप होने से रूपक अलंकार है । सामान्य गन्दगी या कीचड़ लग जाने पर स्नान या सफाई की अन्य विधि से समाप्त हो जाती है, किन्तु राग रूपी मल इतना गाढ़ा होता है कि नष्ट नहीं होता । अजस्रम् निरन्तर । अक्षपावसानप्रबोधा रात्रि समाप्त हो जाने पर भी जागने न देने वाली। क्षपयाः अवसानम् क्षपावसानम्, तस्मिन् प्रबोधः क्षपावसानप्रबोधः, न क्षपावसानप्रबोधः यस्यां तथाभूता । घोरा = गहरी । राज्यसुख-सन्निपातनिद्रा = राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न सन्निपात रोग की नींद। राज्यस्य सुखानि राज्यसुखानि तेषां सन्निपातः एव सन्निपातः राज्यसुखसन्निपातः तेन निद्रा, सम्+नि+पत्+घञ्। राज्यसुखसन्निपातनिद्रा । गर्भेश्वरत्वम् = जन्म से ही राजा या धनसम्पन्न होना । ईश्वरस्य भावः ईश्वरत्वम् गर्भात् ईश्वरत्वम गर्भेश्वरत्वम्। अभिनवयौवनत्वम = नयी युवावस्था होना। यूनः भावः यौवनम्, अभिनवं यौवनं यस्य सः, अभिनवं च तत् यौवनम् अभिनवयौवनं, तस्य भावः। अप्रतिमरूपत्वम् = अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना। न प्रतिमा यस्य तथाभूतम् अप्रतिमम्, अप्रतिममं रूपं यस्य सः अप्रतिमरूपः, तस्य भावः अप्रतिमरूपत्वम् । अमानुषशक्तित्वम् = मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना । मनुष्यस्य इयम् मानुषी । न मानुषी इति अमानुषी । अमानुषी शक्तिः यस्य सः तथाभूतः अमानुषशक्तिः तस्य भावः। अनर्थपरम्परा = अनर्थों की कड़ी या शंखला है । अनर्थानां परम्परा अनर्थराम्परा । एषाम् =इन चारों में । एकैकम् - प्रत्येक । अवनयानाम् - अविनय के कार्यों के, उद्दण्डता के आयतनम् = घर हैं कारण है । किमुत समवाय = फिर इनका समवाय होने पर, इन सबके एक व्यक्ति में एकत्र होने पर कहना ही क्या ? यहाँ हेतु अलंकार है।

हिन्दी भावार्थ- सुख भोग की अभिलाषा रूपी मल का लेप इतना तगड़ा होता है कि स्नान और शुद्धि के उपायों से समाप्त नहीं होता। राज्यसुख रूपी सन्निपात ज्वर की निद्रा निरन्तर रात्रि के समाप्त होने पर भी न टूटने वाली और घोर होती है। इस कारण आपसे विस्तार से कहा जा रहा है। जन्म से ही राज या धनसम्पन्न होना, नयी युवावस्था, अद्वितीय रूपवान् होना और मनुष्य से बढ़कर शक्ति से युक्त होना - यह अनर्थ की बड़ी शृङ्खला है। इनमें एक-एक उद्दण्डता के घर हैं, इनके समूह की तो बात ही क्या।

यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

शब्दार्थ - मित्रलाभ में कहा गया है - यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता। एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥ यौवनारम्भे = यौवन के आरम्भ में, नयी युवावस्था में। यौवनस्य आरम्भःयौवनारम्भः तस्मिन्। आरम्भः - आ + रम्भ घञ्। प्रायः = बहुधा, अधिकांशतः। शास्त्रजल - प्रक्षालननिर्मला अपि = शास्त्र रूपी जल से धुलकर अज्ञानरूपी मल से मु होने पर भी। शास्त्रम् एव जलम् शास्त्रजलम्। तेन प्रक्षालनम् शास्त्रजलप्रक्षालनम्। प्रक्षालन - प्र + क्षाल्ः ल्युट्। निर्गतः मलः यस्याः सा निर्मला, शास्त्रजलेन प्रक्षालनेन निर्मला तथाभूता (बुद्धि का विशेषण) बुध् + क्तिन्। बुद्धिः कालुष्यम् उपयाति = बुद्धि कलुषता को प्राप्त होती है। मलिन हो जाती है, विवेकहीन हो जाती है। कलुषायाः भावः कालुष्यम्। कालुष्य शब्दपर श्लेष है। इसका बुद्धि के पक्ष में अर्थ हे अववेकरूपी कलुषता। शास्त्र पर जल का आरोप होने से रूपकालंकार है। कलुष् + तल् + टाप् = कलुषता। शास्त्र पर जल का आरोप होने से रूपकालंकार है। कलुष + ष्यञ्। अनुज्झितधवलता अपि = धवलता या सफेदी को न छोड़ने पर भी। न उज्झिता अनुज्झिता। धवलायाः भावः धवलता, अनुज्झिता धवलता यया सा। बहुब्रीहि। (दृष्टिः का विशेषण)। यूनां दृष्टिः = युवकों की दृष्टि। सरागा एव भवति = राग से युक्त ही होती है। राग शब्द पर श्लेष होने से इसके दो अर्थ हैं - लालिमा से युक्त। कामासक्ति से युक्त। लालिमा का अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है, अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है। तात्पर्य यह है कि बाहर से धवल या पवित्र दिखायी देने पर भी कामासक्ति से युक्त ही होती है। उज्झित - उज्झ् + क्त। धवलता- धवल + तल् + टाप्। शुष्कपत्रं वात्या इव = सूखे पत्ते को जैसे बवण्डर वाली आँधी। आत्मेच्छया अतिदूरं अपहरति = इच्छानुसार दूर उड़ा कर ले जाती हैं शुष्कं च तत् पत्रम् शुष्कपत्रम्, वातानां समूहः वात्या। वात्या धूल लेकर चक्कर काटते हुए चलने वाले बवण्डर को कहते हैं। यौवन-समये = युवावस्था में। समुद्भूतरजोभ्रान्तिः प्रकृतिः = जिसमें रज (धूल या रजोगुण) चक्कर वेग से बढ़ा रहता है। इस पर श्लेष है। यह वात्या और प्रकृति दोनों का विशेषण है।

1- जिसमें धूल का चक्कर उठाने वाला बवण्डर हो ऐसी वात्या।

2- जिसमें रजोगुण का विभ्रम अतिशय रूप में बढ़ा हुआ है ऐसी प्रकृति।

समुद्भूत - सम्, उत् + भू + क्त। भ्रान्ति - भ्रम् + क्तिन्। प्रकृतिः - प्र + कृ + क्तिन्। वात+ वत् + टाप्। पुरुषम् आत्मेच्छया अतिदूरम् अपहरति = पुरुष को अपनी इच्छानुसार बहुत दूर भटका ले जाती है। सन्मार्ग से बहुत दूर हटा देती है।

हिन्दी भावार्थ - यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धुलकर निर्मल अर्थात् अज्ञान

रहित होने पर भी बुद्धि कलुषता को प्राप्त करती है। नवयुवकों की दृष्टि अपनी धवलता (अर्थात् सरलता) को न छोड़ने पर भी राग या कामुकतादि आसक्ति से युक्त होती है। जैसे धूल के बवण्डर वाली आँधी सूखे पत्ते को अपनी इच्छा से बहुत दूर उड़ा ले जाती है, वैसे ही युवावस्था में रजोगुण के भ्रम वाली प्रकृति पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार बहुत दूर भटका देती है।

अभ्यास प्रश्न 1.

1. राजातारापीड किसके अभिषेक की बात करते हैं

क. वैशम्पायन ख. चन्द्रपीड ग. पुण्डरीक घ. शुकनाश

2. शुकनाश कौन था

क. मन्त्री ख. राजा ग. प्रतीहार घ. सैनिक

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. दर्प ..... दाह।

4. सततमूलमन्त्रगम्यो ..... विषयास्वादमोहः।

सत्य / असत्य का निर्धारण करें

5 युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अति गहन होता है **( )**

6. रागवलेप नित्य स्नान से समाप्त होता है ( )

इन्द्रियहरिणहारिणी च सतत-दुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवन-कषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

शब्दार्थ - इन्द्रिय हरिणहारिण = इन्द्रिय रूपी हरिणों को लुभानेवाली, इन्द्रियाणि एवहरिणाः इन्द्रियहरिणाः, तान् हरति इति इन्द्रियहरिणहारिणी। हृ, णिनि,ङीप्। उपभोगमृगतृष्णिका का विशेषण है। इयम् उपभोगमृगतृष्णिका = यह कामोपभोग रूपी मृगतृष्णा। उपभोगः एव मृगतृष्णिका उपभोग मृगतृष्णिका। कर्मधारय। उप + भृज् + घञ्। सततम् अतिदुरन्ता = निरन्तर अतिशय दुःख के साथ समाप्त होने वाली। विषयसुखों से कभी तृप्ति नहीं होती, अपितु उनके भोग की प्रचण्ड इच्छा मृगतृष्णा के समान बढ़ती जाती है। मनु का कथन है - न जातु कामः कामानमुप - भोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ नवयौवन-कषायितात्मनः = नयी युवावस्था से जिसका चित्त कसैला हो गया है काम भावना के विकार से त्रस्त है, ऐसे पुरुष के। नवं च तत् यौवनम् नवयौवनम्। तेन कषायितः आत्मा यस्य तथाभूतः, तस्य। कर्मधारयगर्भित बहुव्रीहि। मन के सन्दर्भ में कसैला का अर्थ होगा परिवर्तित, भोगेच्छा से अभिभूत होना। कषायःइतच् प्रत्यय = कषायित। सलिलानि इव = जल के समान, जैसे आँवला आदि कसैली वस्तु खाने पर जल मीठा न होने पर भी मीठा लगता है। तानि एव विषयस्वरूपाणि = वे ही भोग की वस्तुएँ। विषयस्य स्वरूपाणि विषयस्वरूपाणि। आस्वाद्यमानानि = आस्वादन की जाने पर, भोग करते जाने पर। आ + स्वद् + णिच् + शानच् कर्म में। मनसः मधुरतराणि आपतन्ति = मन के लिए और मधुर प्रतीत होती है। मधुर+ तरप्। दिग्मोहः इव = दिग्भ्रम के समान। दिशः मोहः दिङ्मोहः। उन्मार्गप्रवर्त्तकः = विपरीत मार्ग पर ले जाने वाला। उत् ऊर्ध्व यावत् मार्गः उन्मार्गः। तस्मिन् प्रवर्त्तकः उन्मार्गप्रवर्त्तकः। विषयेषु अत्यासङ्गः = विषयभोगों में अतिशय आसक्ति। अतिशयितः आसंगअत्यासंगः। आ + सञ्ज् + घञ्। पुरुषं नाशयति = पुरुष को भटका देती है, नष्ट कर देती है। यहाँ उपमा अलंकार है।

हिन्दी भावार्थ - विषयभोग की यह मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है। नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है। विषयभोगों में अतिशय आसक्ति दिग्भ्रम के समान पुरुष को विपरीत मार्ग पर ले जाकर उसका नाश कर देती है उसे भटका देती है।

भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकर-गभस्तयो विशन्ति सुखेनोप देशगुणाः। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधि- कतरममुपजनयति। हरति च अतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसयम निशाकर इव।

शब्दार्थ - भवादृशाः एव = आप जैसे ही। भवन्तः इव दृश्यन्ते ये ते। भवत् + दृश् + क´ प्रत्यय। उपदेशानां भाजनानि = उपदेशों के पात्र होते हैं, योग्य होते हैं। उपदेशः - उप + दिश् + घञ्। हि = क्योंकि। अपगतमले मनसि = विकार रहित मन में। मन के पक्ष में मल का अर्थ होगा कामादि विकार। अपगतः मलः यस्मात् तादृशे। यह मन और स्फटिक मणि दोनों का विशेषण है। अपगतमले स्फटिक मणौ = धूल और मैल हटाकर स्वच्छ किये गये स्फटिक मणि में। स्फटिकश्चासौ मणिश्च स्फटिकमणिः। कर्मधारय। तस्मिन् रजनिकर - गभस्तयः इव = चन्द्रमा की किरणों के समान। रजनिकरः = चन्द्रमा। रजनीं करोति इति रजनिकरः, तस्य गभस्तयः रजनिकरगभस्तयः। उपदेशगुणाः सुखेन विशन्ति = उपदेश के गुण या वचन सुखपूर्वक सरलता से प्रवेश करते हैं, प्रभाव डालते हैं। श्लिष्ट उपमा अलंकार है। दुर्जन और भले व्यक्ति पर उपदेश के निर्मल वचनों का क्या प्रभाव पड़ता है इसका वर्णन करते हैं। अमलम् अपि सलिलम् इव = निर्मल भी जल के समान। (अमलम् अपि) गुरुवचनम् = गुरुजन के रागद्वेषरहित वचन। श्रवणस्थितम् शुलम् उपजनयति = कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है। यहाँ भी दो अर्थ होंगे - निर्मल भी जल कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है और रागद्वेष रहित निर्मल भी गुरुवचन कान में पड़ने पर शूल जैसा कष्ट या क्रोध उत्पन्न करता है। अभव्यस्य = दुष्ट के लिए। भव्य का अर्थ है भला, सज्जन। अभव्य का अर्थ होगा - दुराचारी, दुर्जन के लिए। इतरस्य तु = किन्तु दूसरे के लिए, अर्थात् भव्य के लिए, भले के लिए। करिणः = हाथी के लिए। करः अस्यास्ति इति करी, तस्य। कर+इन्। शङ्खाभरणम् इव = शङ्खों के आभूषण के समान। शङखः एव आभरणम् शङ्खाभरणम्। अधिकतरम् आननशोभसमुदयम् उपजनयति = और अधिक मुख की शोभा के सम्भार को और बढ़ा देता है। आननस्य शोभा आननशोभा, तस्याः समुदयम्। उप + जन् + णिच् + लट्। अतिमलिनम् अन्धकारम् इव सकलं दोषजातं हरति च = गुरु या गुरुजनों का उपदेश अत्यन्त काले अन्धकार जैसे सम्पूर्ण दोषों के समूह को दूर करता है। अतिशयेन मलिनम् अतिमलिनम्। दोषाणां जातम् दोषजातम् - अवगुणों के समूह को। अतिमलिनम् में श्लेष है, अतः दोषजातम् के साथ भी इसका अर्थ किया जायेगा।

हिन्दी भावार्थ - आप जैसे ही उपदेश के पात्र होते हैं। जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं। जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध

बढ़ाता है। उससे भिन्न (भले व्यक्ति) के लिए वह मुख की शोभा को और अधिक वृद्धि प्रदान करता है जैसे शङ्ख का आभूषण हाथी के मुख की शोभा बढ़ा देता है।

गुरुपदेशः प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयाति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशर-शरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्।

शब्दार्थ - अत्यन्त कलुष से युक्त भी दोषसमूह को। वही गुरुपदेश प्रशम का हेतु होता है प्रशमहेतुः = काम आदि विकारों के शमन का हेतु। प्रशमस्य हेतुः प्रशमहेतुः। प्र + शम् + घञ्। गुरुपदेशः = गुरु जन का उपदेश। गुरुपदेश की उपमा वयः परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था से दी गयी है। वयः परिणामः इव शिरसिजजालम् पलितरूपेण अमलीकुर्वन् = जैसे वृद्धत्व सिर के केशों को पलित अर्थात् सफेदी के रूप में निर्मल बनाता हुआ वयसः परिणामःवयः परिणामः। शिरसि जायन्ते इति शिरसिजाःतेषां जालम्। शिरसि + जन् + ड प्रत्यय। अमलीकुर्वन = न मलं यस्मिन् तत् अमलम् अनमलम् अमलं सम्पद्यमानं करोति इति। अमल + कृ + च्वि + शत्। तदेव गुणरूपेण परिणमयति = उन केशों को ही गुण रूप में बदल देता है। वैसे ही गुरु का उपदेश बुद्धि में उठने वाले विचारों को दोषरहित करता हुआ उन्हें गुणरूप में बदल देता है। परि + नम् + णिच् + लट् लकार। यहाँ यह भी अर्थ लिया जा सकता है कि गुरूपदेश प्रशम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह का हेतु बनकर दोष समूह को भी गुण रूप में बदल देता है। अयम् एव च = और यही है। अनास्वादितविषयरसस्य ते = विषयभोगों के रस का आस्वादन किये हुए तुम्हारे लिए। विषयाणां रसः विषयरसः, आस्वादितः विषयरसः येन सः आस्वादितविषयरसः, न आस्वादितविषयरसः, अनास्वा 0 तस्य। कुसुमशर - शर - प्रहार - जर्जरिते = कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जरित, छलनी बने हुए, तार - तार हुए, जीर्ण हुए। कुसुमशर = कामदेव, कुसुमानि एव शराः यस्य सः, कुसुमशरः, तस्य शराः कुसुमशरशराः, तेषां प्रहारः कुसुमशरशरप्रहार +, तैः जर्जरितम्, तस्मिन्। (हृदि का विशेषण)। हृदि = हृदय में। हृत् से सप्तमी एकवचन । उपदिष्टं जलम् इव गलति = उपदेश का वचन जल के समान बह जाता है। व्यर्थ हो जाता है। उपमा अलंकार है। शरशर की आवृत्ति में लाटानुप्रास है।

हिन्दी भावार्थ - और गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है। चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है। विषयभोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है। कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है।

अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य। चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा द्य गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन- क्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम्।

शब्दार्थ - दुष्प्रकृतेः = दुष्ट स्वभाव वाले का। दुष्टा प्रकृतिः यस्य सः दुष्प्रकृतिः। अन्वयः श्रुतं च = उच्च वंश और शास्त्रों की शिक्षा। अविनयस्य अकारणं भवति = उसकी उद्दण्डता (के न

होने का) कारण नहीं होती। 'अविनयस्य' के स्थान पर 'विनयस्य' पाठ भी है। जब अर्थ होगा विनय का कारण नहीं होती। तात्पर्य यह है कि जिसका स्वभाव ही दूषित है, उसके अविनय के विष्य में उसका उच्च वंश में जन्म लेना या गुरु से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त किये होना कोई अन्तर नहीं उत्पन्न करता , निष्प्रभावी होता है। विनयः - वि + नी + अच्। चन्दनप्रभवः अनलः = चन्दन की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि। चन्दनात् प्रभवः यस्य तथाभूतः चन्दनप्रभवः। किं न दहति = क्या नहीं जलाता है ? वह भी जलाता ही है। इसी प्रकार उच्च वंश में उत्पन्न और शास्त्रों का अध्ययन किया हुआ भी यदि उसका स्वभाव दुष्टता का है तो उद्दण्ड होता ही है। किं वा = अथवा क्या ? प्रशमहेतुना अपि वारिणा = ताप को पूर्णतः शान्त करने का हेतु होने पर भी जल से। वडवानलः प्रचण्डतरी न भवति = वडवानल और अधिक प्रचण्ड नहीं होता ? तात्पर्य यह है कि जैसे अग्नि बुझाने का हेतु होने पर भी जल से वडवानल और प्रचण्ड होता है और चन्दन शीतलता प्रदान करने वाला है किन्तु उसकी लकड़ी से उत्पन्न अग्नि भी जलाती है उसी प्रकार उच्च वंश में जन्म लेने पर अथवा शास्त्रों का अध्ययन किये जोने पर भी दुष्ट स्वभाव वाला उद्दण्ड होता है। अप्रचण्डतरः प्रचण्डतरः सत्म्पद्यमानः भवित इति। च्वि प्रत्यय। गुरुपदेशः च = और गुरु का उपदेश है। नाम = वस्तुतः। पुरुषाणाम् =पुरुषों के लिए। अखिल-मल-प्रक्षालन-क्षमम् = मन के सभी कालुष्य रूपी मैल को स्वच्छ करने में समर्थ। अखिलश्चासौ मलः अखिलमलः, तस्य प्रक्षालनम् अखिलमलप्रक्षालनम्। तस्य क्षमम् इति। अजलं स्नानम् = बिना जल का स्नान है। अनुपजा त- पलितादि- वैरूप्यम् = केश पकना आदि विरूपता जिसमें उत्पन्न नहीं है। पलितम् आदि यस्य तथाभूतम् च तत् वैरूप्यम। अजरं वृद्धत्वम् = जरा अर्थात् बुढ़ापा के बिना वृद्धत्व है। न जरा यस्मिन् तत् अजरम्। वृद्धस्य भावः वृद्धत्वम्। वृद्ध + त्व। अवस्था से वृद्ध न होने पर भी ज्ञान और आचरया में वृद्धवत्। अनारोपितमेदोदोषम् = चर्बी का दोष बढ़ाये बिना। मेदाः रूपः दोषः मेदोदोषः, न आरोपितः मेदोदोषः येन सः। आरोतपः-आ + रुह् + णिच + क्त। गुरूकरणम् = गुरु बनाना है। गुरु का अर्थ होगा मोटा और गौरवशाली। स्थूल होने पर चर्बी का दोष बढ़ जाता है, किन्तु गुरु के उपदेश से चर्बी बढ़े बिना व्यक्ति बुरु अर्थात् गौरवशाली हो जाता है। अगुरुं गुरुं सम्पद्यमानं करोति इति गुरुकरणम्। गरु + कृ + च्वि + ल्युट् प्रत्यय। यहाँ विरोधाभास है, चर्बी बढ़े बिना भारी पर अर्थ लेने पर।

हिन्दी भावार्थ - उच्च वंश में जन्म और शास्त्रों की शिक्षा दुष्ट स्वभाव वाले की उद्दण्डता के ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालती। चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है। केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है। चर्बी के दोष को बिना बढ़ाये गुरु (भारी अर्थात् गौरवशाली) बनाने की प्रक्रिया है।

अभ्यास प्रश्न. 2

1. हारिणी का क्या अर्थ है

क. चुराना ख. लुभाना ग. भगाना घ. मारना

2. कसैले मुख वाले व्यक्ति को जल कैसा लगता है

क. मीठा ख. तीता ग. स्वाद विहीन घ.बिना स्वाद

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. भवादृशा एव ..... भाजनानि ।

4. जलमिव ..... उपदिष्टम् ।

सत्य / असत्य का ज्ञान करें

5. गुरूपदेश दोष समूह के शमन का कारण होता है ( )

6. चर्बी के दोष के बिना बढाये गुरू बनाने की प्रक्रिया है ( )

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

1 - धूल या मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में क्या प्रवेश करने लगती है ?

2 - निर्मल जल भी किसमें पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है ?

3 - शंख का आभूषण किसके मुख की शोभा बढ़ा देता है ?

4 - चन्द्रमा किसको दूर कर देता है ,

5 - गुरुजन का उपदेश किसके मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान हैं ?

2.4 सारांश

इस इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है। चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है। विषय भोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है। कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है। जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं। जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध बढ़ाता है। चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है। केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है। विषयभोग की मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है। नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है। स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
घोरा	गहरी

राज्यसुख-	राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न
सन्निपातनिद्रा	सन्निपात रोग की नींद
गर्भेश्वरत्वम्	जन्म से ही राजा या
अभिनवयौवनत्वम	नयी युवावस्था होना
अप्रतिमरूपत्वम्	अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना
अमानुषशक्तित्वम्	मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना
अनर्थपरम्परा	अनर्थों की कड़ी या शंखला है
एषाम्	इन चारों में
एकैकम्	प्रत्येक
आयतनम्	घर हैं कारण है
किमुत समवाय	फिर इनका समवाय होने पर

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 . 1 . ख 2. क 3 . ज्वरोष्मा 4. विषमो विषय 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2 . 1 . ख 2. क 3 . भवन्ति 4. गलति 5. सही 6. सही

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न (1) चन्द्रमा की किरणें (2) कान में पड़ने पर (3) हाथी के मुख की (4) काले अन्धकार को (5) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ

2.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1- कादम्बरी,बाणभट्ट,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2- संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

2. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये -

अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य । चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा द्यगुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन - क्षममजलं स्नानम्, नुपजातपलितादि वैरूप्य मजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम् ।

2. बाण की गद्यशैली की विवेचना कीजिए।

इकाई-3 असुवर्णविरचनमग्राम्यं.....से.....चिन्तितापि वञ्चयति तक (अर्थ एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 असुवर्णविरचनमग्राम्यम् से चिन्तितापि वञ्चयति तक अर्थ एवं व्याख्या
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

कादम्बरी (शुकनासोपदेश) से सम्बन्धित खण्ड दो की यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है आपने यह जाना। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है।

इस इकाई में आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि चन्द्रापीड कौन था ? चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते है कि कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है। ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता। राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं। प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं। प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों के महत्व को भली भाँति समझा सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- राजाओं की प्रकृति व अहंकार के विषय में बताएंगे।
- ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, इसकी व्याख्या करेंगे।
- विदग्धता या पाण्डित्य के महत्व को समझाएंगे।
- गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, इस तथ्य की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 असुवर्णविरचनमग्राम्यम्.....चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमापि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरुन्।

शब्दार्थ - असुवर्णविरचनम् = सोने के बिना बनाया गया। सुवर्णस्य विरचन यस्मिन् तत् सुवर्णविरचनम्, न सुवर्णविरचनम् असुवर्णविरचनम्। अग्राम्यम् = अग्राम्य, जो गँवारू नहीं है, भद्दा नहीं है, सुन्दर। न ग्राम्यम् अग्राम्यम्। नञ् तत्पुरुष। ग्राम, यत्। कर्णाभरणम् = कानों का आभूषण है। गुरु का उपदेश कानों में पहुँचने पर उन्हें ज्ञान से भर देता है, अतः आभरण अथवा भरी जाने वाली वस्तु है, शोभा है। अतीतज्योतिः आलोकः = बिना ज्योति का प्रकाश है। अतीत ज्योतिः यस्मात् तथाभूतः। अन्य ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है। उपदेश से उत्पन्न ज्ञान का प्रकाश। अतीत- अति + इ + क्त। ज्योतिः - द्युत् + इसुन्। आलोकः - आ + लोक + घञ्। नोद्वेगकरः प्रजागरः = जिसमें किसी प्रकार का खेद नहीं होता इस प्रकार कर निरन्तर

जागरण है। यहाँगुरुपदेश को पक्ष में प्रजागर का अर्थ होगा निपरन्तर जागरूकता । विशेषण राज्ञाम् = राजाओं के लिए तो इसका विशेष रूप से महत्त्व है । हि = क्योंकि । तेषाम् उपदेष्टारः विरलाः = उनको उपदेश देने वाले दुर्लभ होते हैं । उप+ दिश् +तृच् । प्रतिशब्दकः इव = प्रतिध्वनि के समान । प्रतिगतः शब्दः प्रतिशब्दः, प्रतिशब्दः एव प्रतिशब्दकः । जैसे कोई ध्वनि करने पर उसकी प्रतिध्वनि उसका अनुकरण करती है वैसे ही। जनः = लोग, प्रजाजन । भयात- भय के कारण । राजवचनम् अनुगच्छति = राजा के आदेश का ही अनुपालन करते हैं । राज्ञः वचनम् राजवचनम् । उद्दामदर्पश्वयथु - स्थगित- श्रवणविवराः = उत्कट दर्परूपी श्वयथु रोग से जिनके कानों के विवर सूजकर बन्द हो गये हैं । उद्दामा दर्पः एव श्वयथुः उद्दामदर्पश्वयथुः, तेन स्थगिते श्रवणविवरे येषां ते । उपदिश्यमानम् अपि = उपदेश दिये जाने पर भी । उप + दिश्+ शानच्, कर्म में । ते न शृण्वन्ति = वे नहीं सुनते हैं । शृण्वन्तः अपि च = और सुनते हुए भी । श्रु+शतृ । गजनिमीलितेन = हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर । गजस्य निमीलितम् गजनिमीलितम्, तेन । उपमान तत्पुरुष । अवधीरयन्तः = अनादर करते हुए अव + धीर् + शतृ। हितोपदेशदायिनः गुरुन् खेदयन्ति = हितकारी उपदेश देनेवाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं, कष्ट देते हैं। खिद + णिच् + लट् लकार । हितस्य उपदेशः हितोपदेशः हितोपदेशः, तं ददति इति ।

हिन्दी भावार्थ - कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है । ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता । राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं । प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं । प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं ।

अहंकार- दाहज्वरमूर्च्छान्धाकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः। आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशो लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि सुभटखड्ग-मण्डलोत्पलविभ्रम - भ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागारात् उद्गता।

शब्दार्थ - हि - सचमुच । अहंकार - दाहज्वर - मूर्च्छान्धकारिता = अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से जिसके लिए अन्धकार छाया हुआ करता है । अहम् इति करणम् अहङ्कार, स एव दाहज्वर अहंकारदाहज्वरः, तेन या मूर्च्छा, तया अन्धकारिता । विह्वलाः = व्याकुल, राजप्रकृतिः = राजाओं की प्रकृति । राज्ञां प्रकृतिः राजप्रकृतिः। अहंकार पर दाहज्वर का आरोप होने से रूपकालंकार। तात्पर्य यह कि दाहज्वर की मूर्च्छा से जैसे अन्धकार या चेतनाशून्यता छा जाती है वैसे ही राजाओं की प्रकृति अंधकार से विवेक खो देती है और उनके लिए अज्ञान छा जाता है। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि = मिथ्या अभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली । अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानः (कर्मधारय), स एवं उन्मादः, अलीकाभिमानोन्मादः, तं कुर्वन्ति इति। धनानि = धन होते हैं । राजलक्ष्मीः = राज्य की प्रभुता और धन सम्पत्ति । राज्ञः लक्ष्मी राजलक्ष्मीः। राज्यविष - विकार - तन्द्राप्रदा = राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न तन्द्रा देने वाली होती है। राज्यम् एव विषम् राज्यविषम् (कर्मधारय) तेन यः विकारः राज्यविषविकारः, तेन या तन्द्रा, तां प्रददाति इति। तन्द्रा = सुस्ती, प्रमाद, शिथिलता । राज्य पर विष का आरोप-

रूपकालंकार। अवलोकयतु = देखें । आ + लोक् + लोट् । तावत् =तो । लक्ष्मीम् एव = लक्ष्मी को ही । प्रथमम् = पहले । कल्याणाभिनिवेशः = कल्याण चाहने वाले । कल्याणे अभिविनेशः अस्यास्ति इति । अभि, नि+ विश् + घञ् । पहले लक्ष्मी को ही देखिये, उस पर विचार कीजिए। यहाँ लक्ष्मी के दोषों या वैशिष्ट्यों को कहते हैं और उत्प्रेक्षा करते हैं कि उसने इनको वहाँ अपने साथ रहने वालों से लिया है । श्लेष होने से इन विशेषताओं के वाचक शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे । हि = सचमुच । इयम् = यह राजलक्ष्मी । सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी = श्रेष्ठ वीरों की तलवार समूह रूपी कमलों के वन में विलास करने वाली भ्रमरी के रूप वाली लक्ष्मी । शोभनाश्च ते भटाः सुभटाः। खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलम् । सुभटानों खड्गमण्डलम्, सुभटखड्गमण्डलम् । उत्पलानां वनम् इति उत्पलवनम् । सुभटखड्मण्डलम् एवं उत्पलवनम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनम्, तत्र विभ्रमः यस्याः सा । खड्गमण्डल पर उत्पलवन का् आरोप और लक्ष्मी पर भ्रमरी का आरोप है । क्षीरसागरात् = क्षीरसागर से । क्षीरस्य सागरात् । उद्गता = निकली है । उद् + गम् + क्त + टाप् । प्रसिद्ध कथा है कि देवों और असुरों के समुद्र मन्थन से लक्ष्मी प्रकट हुई थीं ।

हिन्दी भावार्थ- राजाओं की प्रकृति अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से अज्ञान के अन्धकार से भरी हुई और व्याकुल होती है। उनके धन मिथ्या अभिमान का उन्माद उत्पन्न करते हैं। राजलक्ष्मी राज्य रूपी विष के विकार के रूप में तन्द्रा उत्पन्न करने वाली होती है। कल्याण की चाह करने वाले आप पहले लक्ष्मी को ही देखें। श्रेष्ठ वीरों की तलवार रूपी कमलों के वन में विहार करने वाली भ्रमरी रूपी लक्ष्मी क्षीरसागर से निकली है ।

पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिरायाः मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता । न ह्येवंविधम-पवरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसन्दाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति ।

शब्दार्थ - पारिजातपल्लवेभ्यः रागः = पारिजात वृक्ष के पल्लवों से राग । पारिजात के पक्ष में राग का अर्थ होगा लालिमा और लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा अनुराग । इन्दुशकलात् एकान्तवक्रताम् = चन्द्रलेखा से अनोखा टेढ़ापन लेकर । इन्दोः शकल् इन्दुशकलम्, तस्मात् । एकान्तं यथा स्यात् तथा वक्रता एकान्तवक्रता, ताम् । लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा प्रतिकूलता, कुटिल आचरण । उच्चैःश्रवसः चंचलताम् = उच्चैःश्रवा नाम के अश्व से चंचलता । उच्चैःश्रवा इन्द्र का अश्व है । चंचलस्य भावः चंचलता । चंचल + तल् + टाप् । कालकूटात् = कालकूट विष से । मोहनशक्तिम् = मोहने की शक्ति लेकर । कालकूट के पक्ष में मूर्च्छित करने की, लक्ष्मी के पक्ष में वशीभूत करने की क्षमता । मोहनस्य शक्तिः, ताम् । मदिरायाः मदम् = मदिरा से मद अर्थात् नशा लेकर, मद = अल्हड़ता, उद्धत स्वभाव । कौस्तुभमणेः नैष्ठुर्यम् = कौस्तुभ मणि से कठोरता लेकर । निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यम् । निष्ठुर + ष्यञ् । इति = इस प्रकार । एतानि = ये । सहवासपरिचय - वशात् = एक साथ निवास से उत्पन्न परिचय के कारण । सह वसनं सहवासः। तेन यः परिचयः, तस्य वशात् । वास = वस् + घञ् । विरहविनोदचिह्नानि = विरह में मनबहलाव के चिह्नों को लेकर । विरहे विनोदः विरहविनोदः, तस्य चिह्नानि । विरह - वि + रह्+ अच् । विनोदः- वि + नुद् + घञ् । गृहीत्वा एव उद्गता = लेकर ही निकली है ।

एवंविधम् = इस प्रकार का। एवं विधा यस्य तत्। अपरिचितम् = परिचयरहित, परिचय का न रखने वाला। इह जगति = इस संसार में। किंचित् अपरम् अस्ति = कुछ दूसरा नहीं है। यथा इयम् अनार्या = जैसी यह अनार्या, दुष्टा लक्ष्मी। लब्धा अपि = प्राप्त होने पर भी। खलु = निश्चय ही। दुःखेन परिपाल्यते = इसकी रक्षा कठिनाई से हो पाती है। परि+ पाल् + कर्मवाच्य लट्। दृढगुण- पाश - सन्दान - निष्पन्दीकृता अपि = गुण रूपी रस्सियों के दृढ बन्धनों से गतिहीन बना दी जाने पर भी। गुणाः एव पाशः गुणपाशः, दृढश्चासौ गुणपाशः, दृढगुणपाशः, तेन यत् सन्दानम्, दृढगुणपाशसन्दानम्, तेन निष्पन्दीकृता इति दृढगुणपाशनिष्पन्दीकृता। स्पन्दन स्पन्दः, निर्गतः स्पन्दः यस्याः सा निष्पन्दाः, अनिष्पन्दा निष्पन्दा सम्पद्यमाना कृता इति। च्वि प्रत्यय। नश्यति = नष्ट हो जाती है, गायब हो जाती है। गुणों पर पाश का आरोप होने से रूपक है और विशेषोक्ति है।

हिन्दी भावार्थ - पारिजात के पल्लवों से राग अर्थात् अनुराग, चन्द्रलेखा से अनोखी वक्रता या कुटिलता, उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूट विष से मोहन की, मूर्च्छित करने अर्थात् वश में करने की शक्ति, मदिरा से मद, कौस्तुभ मणि से कठोरता - इन सबको साथ रहने के परिचय के कारण विरह में मनबहलाव के चिह्नों के रूप में लेकर ही निकली है। इस संसार में इस प्रकार का दूसरा कुछ भी ऐसा अपरिचित नहीं है, जैसी यह अनार्या लक्ष्मी। मिल जाने पर भी बड़े दुःख से इसकी रक्षा हो पाती है। गुणों रूपी रस्सी से दृढ़ता से बाँध कर जकड़ दिये जाने पर भी निकल कर चली जाती है।

उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्ज्रविधृताप्यपक्रामति । दजल-दुर्दिनान्धकार-गज-घटित- घनघटा-परिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शीलं पश्यति । न वैदग्धं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति।

शब्दार्थ - उद्दाम- दर्प- भट - सहस्रोल्लासितासि - लता - पंजरविधृता अपि = उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में घेरी गयी भी। दाम्नः उद्गतः उद्दामः, उद्दामश्चासौ दर्पः उद्दामदर्पः । उद्दामदर्पः येषां तथाभूतः ये भटाः, उद्दामदर्पभटाः, तेषां सहस्राणि, तैः उल्लसिताः असयः लताः इव उद्दामदर्पभटसहस्रासिलताः। ताः एवं पंजरम्। तस्मिन् विधृता। अपक्रामति = भाग जाती है। सहस्रों वीर अपनी तलवारों के बल पर उसे अपने वश में करते हैं और उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं, फिर भी वह उनके वश में नहीं रहती। मदजल- दुर्दिनान्धकार - गज - घटित - परिपालिता अपि = मदजल की वर्षा से अन्धकार उत्पन्न कर देने वाले हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा सुरक्षित की गयी भी। मदजलेन दुर्दिनं मदजलदुर्दिनम्, तेन अन्धकारः येभ्यः तथाभूताः ते गजाः मदजलदुर्दिनान्धकारगजाः, तैः घटितैः घनघटाभिः परिपालिता। प्रपलायते = भाग जाती है, अन्यत्र चली जाती है। न परिचयं रक्षति = न परिचय का निर्वाह करती है। न अभिजनम् ईक्षते = न उत्तम कुल का विचार करती है। न रूपम् आलोकयते = न रूप या सौन्दर्य को देखती है। न कुलक्रमम् अनुवर्तते = न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है। कुलस्य क्रमः कुलक्रमः, तम्। न शीलं पश्यति = उत्तम चरित्र को नहीं देखती। न वैदग्धयं गणयति = विदग्धता या पाण्डित्य को कुछ नहीं गिनती। न श्रुतम् आकर्णयति = शास्त्रज्ञान को नहीं सुनती, अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान पर ध्यान नहीं

देती । न धर्मम् अनुरुध्यते = धर्म का अनुरोध नहीं करती, धर्म का अनुसरण नहीं करती। न त्यागम् आद्रियते = न त्याग का आदर करती है । कोई दानी और त्यागशील है इस हेतु उसके प्रति आदर नहीं रखती । न विशेषज्ञतां विचारयति = न विशेष ज्ञान से सम्पन्न होने का विचार करती है। विशेष + ज्ञा + क । विशेषज्ञस्य भावः विशेषज्ञाता । न आचारं पालयति = न आचार की रक्षा करती है । आचारवान् के समीप ही रहने का विचार नहीं करती ।

हिन्दी भावार्थ- उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में बन्द की गयी भी निकल कर भाग जाती है । मदजल की वृष्टि के अन्धकार में हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा निगरानी किये जाने पर भी पलायन कर जाती है । न परिचय का निर्वाह करती है , न उच्च कुल का विचार करती है, न रूप - सौंदर्य को देखती है, न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है, न सदाचरण को देखती है, न विदग्धता को कुछ गिनती है, न शास्त्रज्ञान को सुनती है, न धर्म का अनुरोध रखती है, न त्याग के लिए कोई आदर रखती है, विशेषज्ञता का विचार नहीं करती और न आचार का पालन करती है ।

न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमन्दर-परिवर्तवर्त-भ्रान्ति जनित-संस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनी-सञ्चरण-व्यतिकर- लग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपान मत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति ।

शब्दार्थ - न सत्यम् अनुबुध्यते = न सत्य को पहचानती है । सत्य का विचार नहीं करती । न लक्षणं प्रमाणीकरोति = सामुद्रिक शास्त्र के लक्षणों या शुभ चिह्नों को प्रमाणित नहीं करती , सत्य सिद्ध नहीं करती । अप्रमाणं प्रमाणं सम्पद्यमानं करोति इति । प्रमाण+ च्वि + लट्लकार । गन्धर्वनगर-लेखा इव = गन्धर्वनगर के दृश्य के समान । गन्धर्वाणां नगरं गन्धर्वनगरम्, तस्य लेखा। गन्धर्वनगर क्षितिज पर दिखायी पड़ने वाला एक प्राकृतिक दृश्य है । पश्यतः एव नश्यति = देखते ही देखते नष्ट हो जाती है, लुप्त हो जाती है । अद्यापि = आज भी, समुद्रमन्थन के समय से कितने ही युग बीत जाने पर भी । आरूढ - मन्दर - परिवर्तावर्त- भ्रान्ति - जनित- संस्कारा इव = मानो मन्द्राचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कारवाली मन्दरस्य परिवर्तः मन्दरपरिवर्तः, आरूढ़ः यः मन्दरपरिवतः आरूढमन्दरपरिवर्तः तेन भ्रन्तिः, तया जनितः यः संस्कारः यस्याः सा । किसी गोल घूमने वाले चर्खी आदि यन्त्र पर बैठकार घुमाये जाने पर उससे उतरने के बाद भी कुछ समय तक घूमने का संस्कार बना रहता है। वैसे ही मन्दराचल से समुद्र मथे जाने से उत्पन्न जल के भँवर में फँसकर चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार से लक्ष्मी अभी भी घूमती रहती है । अति -प्रयत्नविधृता अपि = बड़े प्रयत्न से रोक कर रखी गयी भी । अतिशयितः प्रयत्नः अतिप्रयत्नः, तेन विधृता । वि + धृ + क्त + टाप् । परमेश्वरगृहेषु = बड़े राजाओं और सम्पत्तिशालियों के घरों में। परमाश्च ते ईश्वराः परमेश्वराः, तेषाम् गृहेषु । विविध- गन्धगज - गण्डमधुपानमत्ता इव = मानो अनेक प्रकार के मदगन्ध वाले हाथियों के कपोलों के मद रूपी मदिरा का पान करने से मतवाली होकर। विविधाः ये गन्धगजाः विविधगन्धगजाः, तेषां गण्डेषु यत् मधु विविधगन्धगजगण्डमधु, तस्य पानेन मत्ता । यहाँ भी उत्प्रेक्षालंकार है । गन्धगज श्रेष्ठ गज होते हैं। परिस्खलति = गिरती है, इधर-उधर चली जाती है। पारुष्यम् = कठोरता, क्रूरता को । उपशिक्षितुम् इव = मानो सीखने के लिए । उप + शिक्ष् +

तुमुन्। असिधारासु = तलवारों की धार में निवास करती है। अर्थात् क्रूरतापूर्वक जो वीर अपनी तलवार से दूसरों को नष्ट करता है, उसी के अधीन हो जाती है।

हिन्दी भावार्थ - यह सत्य को नहीं समझती, किसी सामुद्रिकशास्त्र के लक्षण को भी प्रमाणित नहीं करती। गन्धर्वनगर के दृश्य के समान देखते-देखते ही लुप्त हो जाती है। आज तक मानो मन्दराचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार के कारण घूमती रहती है। कमलिनियों के मध्य घूमने के सम्पर्क से मानो कमलनालों के काँटे चुभने के कारण, कहीं भी पैरों को पूरी तरह नहीं रखती। बड़े राजाओं और धनियों के घर प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखी गयी भी मानो विविध गन्धगजों के कपोलों से गिरने वाले मदजल रूपी मद के पान से मतवाली होकर इधर-उधर गिरती है।

विश्वरूपत्वमिवगृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्त्तिम, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचित-मूल-दण्ड-कोश-मण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्चंचला,

शब्दार्थ - विश्वरूपत्वम् गृहीतुम् इव = मानो विश्वरूप धारण करने के लिए, सभी पदार्थों के रूप में अभिव्यक्त होने के लिए। विश्वानि रूपाणि यस्य सः विश्वरूपः, तस्य भावः। नारायणमूर्त्तिम् आश्रिता = नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का इसने आश्रय लिया है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। अप्रत्ययबहुला च = और विश्वास से भरी रहने वाली, किसी पर विश्वास न करने वाली। न प्रत्ययः अप्रत्ययः, अप्रत्ययः बहुलः यस्याः तथाभूता। समुपचित- मूल- दण्ड- कोश - मण्डलम दिवसान्तकमलम् इव = जिसके मूल, दण्ड, कोश और मण्डल पूर्ण विकास को प्राप्त हैं ऐसे सायंकाल के कमल के समान। यहाँ श्लेषमूलक उपमा है। भूभुज = राजा की उपमा सायंकालीन कमल से की गयी है। अतः चार शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे - एक कमल के पक्ष में और एक राजा के पक्ष में। समुचित- वृद्धि को प्राप्त, मूल = कमल की जड़, राजा का मूल अर्थात् राज्य। दण्ड = कमल का डण्ठल, राजा की सेना। कोश = कमल का परागकोश, राजा का कोष। मण्डल = कमल का घेरा, राजा के सहायक। मूलं च, दण्डश्च, कोषश्च, मण्डलं च मूलदण्डकोशमण्डलानि, समुपचितानि मूलदण्डकोशमण्डलानि यस्य तत्। दिवसस्य अन्तः दिवसान्तः, तस्य कमलम्। समुपचित- मूल- दण्ड- मण्डलम् अपि = जिसका राज्य, सेना, कोष और मित्रगण का समूह पूर्णतः समृद्ध है, ऐसे राजा को भी । भूभुजम् मुंचति = राजा को छोड़ देती है, जैसे दिवस के अन्त में कमल की शोभा रहने वाले तथा उनके कामुकतापूर्ण व्यापारों में सहायक, धूर्त पुरुष। गंगा इव = गंगा के समान। अब लक्ष्मी की गंगा से उपमा देते हैं दो श्लिष्ट विशेषणों द्वारा। वसुजननी अपि = (1) वसु देवताओं की माता होने पर भी - गंगा के पक्ष में। (2) वसु अर्थात् धन की जननी उत्पन्न करने वाली। तरंबुद्बुद् चंचला = तरंगों और बुद्बुद् के समान चंचल। गङ्गा के पक्ष में वत् = युक्त - वतुप प्रत्यय। लक्ष्मीपक्ष में वत् = इव। कमल को छोड़ देती है, वैसे ही लक्ष्मी सभी प्रकार से समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा को भी छोड़ देती है। भुवम् भुनक्ति इति भूभुजम्। भू + भुज् + क्विप्। लता जैसे विटपक वृक्ष की शाखाओं पर चढ़ती है, वैसे ही लक्ष्मी धूर्त विटों के स्वामी का आश्रय लेती है। इसे ही श्लिष्टोपमा द्वारा कहते हैं। लता इव = लता के समान। विटपकान् अध्यारोहति = विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है। विटपकान् -1- छोटे वृक्षों पर चढ़ती है। 2- राजाओं के साथ।

हिन्दी भावार्थ - मानो विश्वरूपत्व पाने के लिए उसने नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का आश्रय लिया हो, अविश्वास से भरी हुई वह मूल, दण्ड, कोश और मण्डल की पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेने वाले सायंकालीन कमल के समान राज्य, सेना, कोष और मित्र गण से सम्पन्न भी राजा को छोड़ देती है। लता जैसे विटपकों (छोटे वृक्षों) पर चढ़ती है, वैसे ही वह धूर्त विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है। वसु नाम के देवताओं की माता और तरंगों एवं बुद्बुदों से चञ्चल गंगा के समान वसु अर्थात् धन को उत्पन्न करने वाली होने पर भी तरंगों और बुद्बुद् के समान चंचला है।

अभ्यास प्रश्न .1

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. गुरू का उपदेश सौन्दर्य के बिना बनाया गया क्या है

क. दिवस ख. आभूषण ग. विद्युत घ. विनय

2. मिथ्याभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली है

क. सरस्वती ख. पार्वती ग. लक्ष्मी घ. उर्वशी

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. न प्रमाणी ..... करोति।

4. क्वचिदपि ..... पदम्।

एक शब्द में उत्तर दीजिए

5. सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होती है

6. उदार मन वाले को अमंगल जैसा कौन मानता है

दिवसकरगतिरिव प्रकटित - विविध - संक्रान्तिः, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवा - चिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वुन्मत्तीकरोति । सरस्वतीपरिगृहीतमीष्यर्येव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

शब्दार्थ - दिवसकरगतिः इव = सूर्य की गति के समान। दिवस करोति इति दिवसकरः तस्य गति। प्रकटित-विविध-संक्रान्तिः = अनेक प्रकार की संक्रान्ति प्रकट करने वाली। सूर्य की जैसे विविध राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे लक्ष्मी भी एक से दूसरे के पास चली जाती है। समास का विग्रह दो प्रकार से होगा। सूर्यगति पक्ष में - विविधाः संक्रान्तयः विविधसंक्रान्तयः, प्रकटिताः विविधसंक्रान्तयः यथा तथाभूता। लक्ष्मी पक्ष में - प्रकटिताः विविधेषु जनेषु संक्रान्तिः यया सा। पातालगुहा इव = पाताल की गुफा के समान। पातालस्य गुहा। तमोबहुला = तम से भरी हुई। 1- गुहा पक्ष में-अन्धकार से भरी हुई - तमः बहुलं यत्र तथाभूता। 2- लक्ष्मी पक्ष में- तमोगुण के व्यापारों से भरी हुई। तमः बहुलं यस्यां सा। यहाँ भी श्लेषमूलक उपमा है। हिडिम्बा इव = हिडिम्बा नाम की राक्षसी के समान। भीमसाहसैकहार्यहृदया = भीम साहस से ही आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली। भीम साहस के दो अर्थ होंगे - 1- भीम के साहस से (हिडिम्बा) 2- भीषण साहस से (लक्ष्मी)। प्रावृड् इव = वर्षा के समान। अचिर-द्युति-कारिणी = क्षण भर चमक दिखानेवाली। अचिराद्युतिः अचिरद्युतिः, तां करोति इति। दुष्ट - पिशाची इव = दुष्ट पिशाची के समान। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया = अनेक पुरुषों का उच्छ्राय दिखाने वाली। उच्छ्राय का दो अर्थ होगा - अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाने वाली। न एके अनेके। अनेके च ते पुरुषाः अनेकपुरुषाः, तेषाम् उच्छ्रायः अनेकपुरुषोच्छ्रायः, दर्शितः अनेकपुरुषोच्छ्रायः यया तथाभूता।

लक्ष्मी के पक्ष में - उच्छ्रायः का अर्थ होगा उन्नति, समृद्धि। उच्छ्रायः - उत् + श्रि + घञ्। स्वल्पसत्त्वम् = दुर्बल चित्त वाले को। स्वल्पं सत्त्वं यस्य तथाभूतम्। उन्मत्तीकरोति = उन्मत्त, पागल बना देती है। पिशाची आतंकित कर पागल बना देती है और लक्ष्मी अनेक पुरुषों को ऊँचे पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त कर देती है। सरस्वतीपरिगृहीतम् = सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को सरस्वत्यापरिगृहीतः सरस्वतीपरिगृहीतः, तम्। ईर्ष्यया इव = मानो इर्ष्या से। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार आरम्भ करते हैं। न आलिंगति = आलिङ्गन नहीं करती, नहीं अपनाती। गुणवन्तं जनम = गुणवान् व्यक्ति को। अपवित्रम् इव = अपवित्र व्यक्ति के समान। न स्पृशति = स्पर्श नहीं करती। गुणी व्यक्ति को अपवित्र जैसे मानते हुए उसका स्पर्श नहीं करती।

हिन्दी भावार्थ - सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है। पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है। जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यों से आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली है। वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है। दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती। गुणवान् पुरुष का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती।

उदारसत्त्वममंगलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लंघयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथा हि। सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति।

शब्दार्थ - उदारसत्त्वम् = उदार मन वाले को, उदारं सत्त्वं यस्य तथाभूतम्। अमंगलम् = अमंगल, अशुभ के समान, न बहु मन्यते = आदर नहीं देती। सुजनम् = सज्जन को, शोभनः जनः सुजनः तम्। अनिमित्तम् इव = अपशकुन के समान, मानो वह अपशकुन हो। न निमित्तम् अनिमित्तम्। न पश्यति = नहीं देखती। अभिजातम् = उत्तम कुल के पुरुष को अहिम् इव = वह साँप हो ऐसा मानती हुई। लंघयति = लाँघ जाती है। शीघ्रता से दूर हट जाती है। शूरम् = वीर पुरुष को। कण्टकम् इव = मानो वह काँटा हो इस तरह से। परिहरति = बचाकर चलती है। दातारम् = दानशील पुरुष को। दुःस्वप्नम् इव = बुरे स्वप्न के समान। मानो वह कोई दुःस्वप्न हो। न स्मरति = याद नहीं रखती। विनीतम् = विनम्र पुरुष को, पातकिनम् इव = पातकी जैसा मानती हुई, घोर पापी समझती हुई। न उपसर्पति = समीप नहीं जाती। मनस्विनम् = मनस्वी पुरुष को। उन्मत्तम् इ = पागल जैसा मानकर। उपहसति = उस पर हँसती है। यहाँ उपमा या उत्प्रेक्षा अलंकार माना जा सकता है। अब विरोधाभास अलंकार का प्रयोग करते हुए लक्ष्मी के परस्पर विरोधी चरित्र का वर्णन करते हैं। विशेषण पदों पर श्लेष होने से दो - दो अर्थ होंगे। परस्परविरुद्धम् =परस्पर विरोध। परस्परं यथा स्यात् तथा विरूद्धम्। इन्द्रजालम् इव = जादू का खेल सा। दर्शयन्ती = दिखाती हुई दृश् + णिच् + शत् + ङीप्। जगति = संसार में। निज (परस्पर विरूद्धम्) चरितम् = अपने परस्पर विरोधी चरित को। प्रकटयति = प्रकट करती है। तथा हि = जैसे। सततम् = निरन्तर। ऊष्माणम् उपजनयन्ती अपि = ऊष्मा उत्पन्न करती हुई

भी। ऊष्मा के दो अर्थ हैं गर्मी, उत्साह या धन के कारण अहंकार की गर्मी। जाड्ययम् उपजनयति = जाड्य को उत्पन्न करती है। जाड्य के दो अर्थ हैं - 1- ठंडक, 2- जड़ता, मूर्खता। निरन्तर गर्मी से युक्त होने पर भी ठंडक उत्पन्न करती है, यह अर्थ देने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु निरन्तर धन के कारण अहंकार की गर्मी देने के साथ जडता या मूर्खता उत्पन्न करती है यह अर्थ लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है। उन्नतिम् आदधाना अपि = उन्नति प्रदान करती हुई भी। उत् + नम् + क्तिन्। आदधाना- आ + धा + शानच् + टाप्। नीचस्वभावताम् आविष्करोति = नीचस्वभावता को प्रकट करती है। यहाँ भी विरोधाभास है। नीचस्वभावता का एक अर्थ होगा निम्न अवस्था या स्थिति, दूसरा अर्थ है नीचजनों का स्वभाव अर्थात् निकृष्ट आचरण। धन की समृद्धि होने पर व्यक्ति की उन्नति के साथ स्वभाव में नीचता भी आती है।

हिन्दी भावार्थ - उदार मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती। सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं। उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है । वीर से काँटे की तरह परहेज करती है। दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती । विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती। मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो। परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है। निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है।

तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका, विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना, पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया।

शब्दार्थ - तोयराशिसंभवा अपि = जल की राशि से उत्पन्न होने पर भी। तोयस्य राशिः तोयराशिः, तस्मात् सम्भवः यस्याः सा। तृष्णां संवर्धयति = तृष्णा को बढ़ाती है। तृष्णा का अर्थ प्यस लेने पर विरोध की प्रतीति होती है कि जो जल की राशि समुद्र से उत्पन्न है व प्यास कैसे बढ़ा सकती है, किन्तु तृष्णा का अर्थ धन की चाह लेने पर परिहार हो जाता है। ईश्वरतां दधाना अपि = ईश्वरता प्रदान करती हुई भी। ईश्वर से यहाँ महादेव शिव का तात्पर्य है और प्रभुता, धन-सम्पत्ति, स्वामित्व का अर्थ भी । ईश्वरस्य भावः ईश्वरता । ईश्वर + तल् + टाप्। अशिवप्रकृतित्वम् आतनोति = अशिव प्रकृति की वृद्धि करती है। अशिव के दो अर्थ होंगे - शिव से भिन्न और अमंगलकारी, निन्दित कर्म करने का स्वभाव। एक अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है। बलोपचयम् आहरन्ती अपि = बल की वृद्धि लाती हुई भी। बल के दो अर्थ होंगे-सेना या धनसम्पत्ति की शक्ति और शारीरिक शक्ति। लघिमानम् आपादयति = हल्कापन ले आती है, उत्पन्न करती है। लघिमा के भी दो अर्थ होंगे 1- शरीर का हल्कापन या दुर्बलता, 2- क्षुद्रता या कृपणता। बल की वृद्धि करती हुई भी हल्कापन या दुर्बलता ले आती है अर्थ करने पर विरोध होगा, सेना की वृद्धि करने पर भी क्षुद्रता के व्यवहार या कृपणता को उत्पन्न करती है ऐसा अर्थ करने पर परिहार हो जायेगा। अमृतसहोदरा अपि = अमृत की सगी बहिन होते हुए भी। लक्ष्मी और अमृत समुद्र से उत्पन्न हैं, अतः लक्ष्मी अमृत की बहिन है। कटुकविपाक = कटु विपाक वाली है। कटु विपाक का एक अर्थ होगा कड़वे स्वाद वाली। यह अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है। दूसरा अर्थ है 'दुःखदायी परिणाम देने वाली' यह अर्थ लेने पर परिहार हो जाता है। विग्रहवती अपि = विग्रह

धारण करने वाली होने पर भी। अप्रत्यक्षदर्शना = प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली। विग्रह का एक अर्थ शरीर है और दूसरा अर्थ युद्ध। प्रथम अर्थ लेने पर विरोध होगा कि जो शरीर धारिणी है, वह प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर विरोध नहीं रह जाता। पुरुषोत्तमरता अपि = पुरुषोत्तम में रत रहने वाली होने पर भी। पुरुषोत्तम =1- श्रेष्ठ पुरुषों में रत होने पर भी, 2- पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में रत। खलजनप्रिया = खलों अर्थात् दुर्जनों को अपना प्रिय माननेवाली, उनसे प्रेम करने वाली।

हिन्दी भावार्थ- जल की राशि समुद्र से उत्पन्न होने पर भी तृष्णा को बढ़ाती है। ईश्वरता प्रदान करती हुई भी हल्कापन ले आती है। अमृत की सहोदरा होने पर भी कटु विपाक वाली होती है। विग्रह (शरीर) वाली होने पर भी प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली होती है। पुरुषोत्तम में रत होने पर भी खल जन से प्रेम करने वाली है।

रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति । यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथा हि। इयं संवर्धनवारिधारातृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवास- जीर्ण- वलभी धन - मद-पिशाचिकानाम्।

शब्दार्थ - रेणुमयी इव = धूलि की बनी हुई के समान, धूलि के समान। स्वच्छम् अपि कलुषीकरोति = निर्मल पदार्थ को भी कलुषयुक्त बनाती है। अकलुषं कलुषं सम्पद्यमानं करोति इति। कलुष + कृ + च्वि + लट् निर्मल चित्त वाले को भी दूषित विचार से कलुषित करती है। यथा यथा च इयं चपला दीप्यते = जैसे जैसे यह चंचला दीप्त होती है, बढ़ती है। तथा तथा दीपशिखा इव = वैसे वैसे दीपशिखा के समान, दीपक की लौ के समान। केवलं कज्जलमलिनम् एव कर्म उद्वमति = केवल काजल के समान कलुषित कर्म ही कराती है। जैसे दीपक की लौ उतना ही अधिक काजल के रूप में काला बनाने का काम करती है। कज्जलम् एव मलिनं कर्म-दीपशिखा के पक्ष में। कज्जलवत् मलिनं कर्म-लक्ष्मी के पक्ष में। तथाहि = क्योंकि। इयम् = यह लक्ष्मी। संवर्धन- वारि - धारा = पूर्ण रूप में बढ़ाने वाली जल की धारा है। लक्ष्मी पर वारिधारा का आरोप है। वारिणः धारा वारिधारा, संवर्धने वारिधारा संवर्धनवारिधारा। तृष्णा विषवल्लीनाम् = तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए। तृष्णा = विषयसुखों को भोगने की इच्छा विषस्य वल्ल्यः, तृष्णा एवं विषवल्ल्यः, तृष्णाविषवल्ल्यः, तासाम्। व्याधगीतिः = व्याधो की गीति है। मृगों को फँसाने के लिए बहेलियों द्वारा गाया जाने वाला संगीत है। व्याधानां गीतिः। इन्द्रियमृगाणाम् = इन्द्रिय रूपी मृगों के लिए। इन्द्रियाणि एव मृगाः इन्द्रियमृगाः, तेषाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी इन्द्रियों को मधुर ढंग से फुसलाकर विषयों में फँसा देती है जिससे पुरुष विनाश को प्राप्त होता है। परामर्शधूमलेखा = मलिन करने वाली धुएँ की पंक्ति है। परामर्शाय धूमलेखा परामर्शधूमलेखा। परामर्श = ढँक देना, मलिन बना देना। सच्चरितचित्राणाम् = सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों के लिए। सन्ति चरितानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि, तेषाम्। लक्ष्मी सज्जनों के चरित्र को धुँएकी लेखा के समान ढँक देती है, मलिन कर देती है। विभ्रमशय्या = विलास की शय्या है। मोह - दीघ्र - निद्राणाम् = मोह रूपी दीर्घ निद्राओं की। मोह एवं दीर्घा निद्रा, मोहदीर्घनिद्रा, तासाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर लेने वाले मोह या विवेकहीनता की लम्बी नीदों में पड़े रहते हैं। मोह पर दीर्घनिद्रा

का आरोप - रूपकालंकार । निवास - जीर्ण - वलभी = रहने की टूटी अटारी है । धनमदपिशाचिकानाम् = धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए । धनस्य मदः धनमः, धनमदाः एव पिशाचिकाः धनमदपिशाचिकाः, तासाम् । धनमद पर पिशाचिका का आरोप होने से रूपकालंकार है । धन का अहंकार अनेक रूपों में प्रकट होता है और पिशाचियों के समान कार्य कराता है।

हिन्दी भावार्थ- धूलि से भरी हुई के समान निर्मल को भी कलुषित कर देती है। जैसे-जैसे यह चंचला प्रदीप्त होती है, वैसे - वैसे दीपक की लौ के समान केवल काजल की कालिमा जैसे कर्म ही प्रेरित करती है और भी। यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है। इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है। सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है। मोह की लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है।

तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्।

शब्दार्थ - तिमिरोद्गतिः = तिमिर रोग की वृद्धि है । तिमिर नेत्ररोग है । तिमिरस्य उद्गतिः। शास्त्रदृष्टीनाम् = शास्त्र रूपी दृष्टियों के लिए। शास्त्राणि एव दृष्टयः शास्त्रदृष्टयः, तासाम् । तात्पर्य है कि लक्ष्मी या धन सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर शास्त्र ज्ञान की दृष्टि से दिखायी नहीं पड़ता । वह ज्ञान व्यर्थ हो जाता है । शास्त्र पद दृष्टि का आरोप-रूपकालंकार । पुरःपताका = आगे चलने वाली पताका है। सर्वाविनयानाम् = सभी प्रकार के अविनय या उच्छृंखलाओं की । पताका का तात्पर्य चिह्न या प्रेरणा देने वाली । सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनया, तेषाम् । उत्पत्तिनिम्नगा = उत्पत्ति की नदी है। निम्नगा = नदी, निम्नं यथा स्यात् तथा गच्छति इति । क्रोधावेगग्राहाणाम् = क्रोधावेश रूपी ग्राहों के लिए। क्रोधस्य आवेगाः क्रोधावेगाः, ते एव ग्राहाः, तेषाम् । लक्ष्मी या धन- सम्पत्ति के कारण ही क्रोध के आवेग उठते हैं । क्रोधावेग पर ग्राह का आरोप होने से रूपकालंकार । आपानभूमिः = पीने का स्थान, मधुशाला । आपानस्य भूमिः आपानभूमिः। विषयमधूनाम् = विषय रूपी मदिरा की । विषयाः एव मधूनि, तेषाम् । भोग के पदार्थों पर मधु का आरोप होने से रूपकालंकार है। संगीतशाला = संगीतशाला है । भ्रूविकारनाट्यानाम् = भौहों के विकार रूपी अभिनय का । भ्रुवोः विकाराः भ्रूविकाराः, ते एव नाट्ययानि, तेषाम् । लक्ष्मी से सम्पन्न लोगों की भौहें अनेक भंगिमायें दिखाती हैं, प्रायः चढ़ी रहती हैं । आवासदरी = आवास की कन्दरा है । आवासस्य दरी। दोषाशीविषाणाम् = दोषों रूपी सर्पों की । दोषाः एव आशीविषाः, तेषाम् । दोषों पर सर्पों का आरोप होने से - रूपक अलंकार । उत्सारणवेत्रलता = हटाने के लिए बेंत की छड़ी है। वेत्रस्य लता वेत्रलता, उत्सारणाय वेत्रलता । सत्पुरुषव्यवहाराणाम् = सज्जनों के व्यवहारों के लिए। सन्त् पुरुषाः सत्पुरुषाः, तेषां व्यवहाराः सत्पुरुषव्यवहाराः तेषाम्। अकालप्रावृड् = असमय की वर्षा ऋतु है । अकाले प्रावृट् । गुणकलहंसानाम् = गुण रूपी कलहंसों के लिए। श्रेष्ठ हंसों को कलहंस कहते हैं । वर्षा में वे मानसरोवर चले जाते हैं । असमय की वर्षा में उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है । गुणाः एव कलहंसाः गुणकलहंसाः, तेषाम् । गुण पर कलहंस का आरोप - रूपकालंकार । विसर्पणभूमिः =

फैलने का स्थान है। विसर्पणस्य भूमिः। वि + सृप् + ल्युट्। लोकापवादविस्फोटकानाम् = लोकनिन्दा रूपी विस्फोटक रोग का। लोके अपवादाः, ते एव विस्फोटकाः लोकापवादविस्फोटकाः। विस्फोटक रोग फोड़ेवाली खुजल का एक रूप है। लोकापवाद पर विस्फोटक का आरोप – रूपक।

हिन्दी भावार्थ - शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए तिमिर रोग की वृद्धि है। सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है। भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है। भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है। (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है। सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। लोकापवाद रूपी विस्फोटक रोग के फैलने का स्थान है।

प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

शब्दार्थ - प्रस्तावना = प्रस्तावना है। नाटक के आरम्भ में प्रस्तावना नाम का अंश होता है, जिसमें कवि का परिचय और नाटक की घटनाओं की सूचना होती है। कपटनाटकस्य = कपट रूपी नाटक की। कपटम् एव नाटकम् कपटनाटकम्, तस्य। कपट पर नाटक का आरोप - रूपकालंकार है। कदलिका = केलों की पंक्ति है। कामकरिणः = काम रूपी हाथी की। कामः एव करी कामकरी। करः अस्य अस्ति इति करी। काम पर हाथी का आरोप है - रूपकालंकार। हाथी जैसे केलों की पंक्ति में इच्छानुसार उन्हें खाते हुए विहार करता है, वैसे धन - सम्पत्ति से सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं। वध्यशाला = वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है। वध्यानां प्राणिनां शाला। साधुभावस्य = सौजन्य का। साधोः भावः साधुभावः तस्य। लक्ष्मी की प्राप्ति सौजन्य को समाप्त कर देती है। राहुजिह्वा = राहु की जिह्वा है। राहोः जिह्वा राहुजिह्वा। धर्मेन्दुमण्डलस्य = धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए इन्दोः मण्डलम् इन्दुमण्डलम। धर्मः एव इन्दुमण्डलम् धर्मेन्दुमण्डलम्, तस्य धर्म पर चन्द्रमण्डल का आरोप होने से रूपकालंकार। जिस प्रकार राहु की जिह्वा चन्द्रमण्डल को ग्रस लेती है, उसी प्रकार लक्ष्मी धर्म को समाप्त कर देतजी है। तं न पश्यामि = ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता। यः = जो। अपरिचितया अनया = इस अपरिचिता के द्वारा। न परिचिता अपरिचिता, तया। न निर्भरम् उपगूढः = जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया। उप + गुह् + क्त। निर्भर यथा स्यात् तथा। यः वा न विप्रलब्धः = और जिसे धोखा नहीं दिया गया। विप्र + लभ्:क्त। नियतम् = निश्चय ही। इयम् = यह लक्ष्मी। आलेख्यगता अपि चलति = चित्र में अंकित होने पर भी चलती है अर्थात् चली जाती है। पुस्तमयी अपि = मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी। इन्द्रजालम् आचरति = इन्द्रजाल या जादू कर देती है। उत्कीर्णा अपि = खोद कर बनायी गयी भी। पत्थर या लकड़ी पर तराशी गयी भी। विप्रलभते = धोखा देती है। श्रुता अपि = उसके विषय में सुनने पर भी। अभिसन्धते = ठगती है। चिन्तिता अपि = सोचने पर भी। वंचयति = विश्वासघात करती है।

हिन्दी भावार्थ- कपट रूपी नाटक की प्रस्तावना है। काम रूपी हाथी के लिए केलों की पंक्ति है

। सौजन्य की वध्यशाला है । धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है । मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो । निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, सोचने पर भी वंचना करती है ।

अभ्यास प्रश्न 2

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. कॉटे के समान लक्ष्मी किससे बच कर चलती है

क. वीर ख.सपेरा ग. जादूगर घ. कायर

2. शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए लक्ष्मी क्या है

क. श्वयथु ख.तिमिर क्षेत्र ग. हल्का घ. गुरू

रिक्तस्थन की पूर्ति करें

3. पुरूषोत्तम रतापि..... ।

4. लक्ष्मी सभी अविनयों के आगे चलने वाली .....है ।

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

1- सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होता है ?

2- लक्ष्मी किस मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती है ?

3- लक्ष्मी किससे काँटे की तरह परहेज करती है ?

4- लक्ष्मी किसका दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती हैं ?

5- किससे सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं ?

3.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह लक्ष्मी अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है । पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है । जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यों से आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली है । वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है । दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है । सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती। गुणवान् पुरुष का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती। सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं। उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है । वीर से काँटे की तरह परहेज करती है । दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती । विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती । वह मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो । परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है। पन: निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है। यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है । इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है। सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है । इतना ही नहीं मोह की

लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है। सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है। भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है। भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है। (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है। सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है। मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो। निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, आदि। अत: इस आधार पर आप लक्ष्मी की अन्य गतिविधियों को भी व्याख्यायित कर सकेंगे।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
वध्यशाला	वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है।
साधुभावस्य	सौजन्य का।
राहुजिह्वा	राहु की जिह्वा है।
धर्मेन्दुमण्डलस्य	धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए।
तं न पश्यामि	ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता।
न निर्भरम् उपगूढः	जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया
यः वा न विप्रलब्धः	और जिसे धोखा नहीं दिया गया।
नियतम्	निश्चय ही।
इयम्	यह लक्ष्मी।
आलेख्यगता अपि चलति	चित्र में अंकित होने पर भी चलती है
पुस्तमयी अपि	मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी।
इन्द्रजालम् आचरति	इन्द्रजाल या जादू कर देती है।
उत्कीर्णा अपि	खोद कर बनायी गयी भी।
विप्रलभते	धोखा देती है।
श्रुता अपि	उसके विषय में सुनने पर भी।
अभिसन्धते	ठगती है।
चिन्तिता अपि	सोचने पर भी।
वंचयति	विश्वासघात करती है।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. ग 3. लक्षणं 4. निर्भरमाबध्नाति

अभ्यास प्रश्न 2.

1. क 2. ख 3. खलजनप्रिय: 4. पताका

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न -

(1) संक्रान्ति (2) उदार मन वाले को

(3) वीर से (4) दानशील का (5) धन- सम्पत्ति से सम्पन्न

3. 6 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1.कादम्बरी,बाणभट्ट,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास,बलदेव उपाध्याय,प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर, सिगरा वाराणसी

3. 7 उपयोगी पुस्तकें

1. शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3. 8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये अथवा व्याख्या कीजिए ?

प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भ्ज्ञरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति,पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति,उत्कीर्णापिविप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

इकाई-4 एवंविधयापि.....से.....सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक (अर्थ एवं व्याख्या)

इकाई की रूप रेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 एवंविधयापि से सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक व्याख्या
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कादम्बरी (शुकनासोपदेश) से सम्बन्धित खण्ड दो की यह चौथी इकाई है। इसके माध्यम से आप जानेंगें कि चँवरों की वायु से सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय- जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है , और भी।

कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि शुकनास ने चन्द्रापीड को महत्त्व पूर्ण बातों का उपदेश दिया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- दुराचारिणी द्वारा भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं। इस तथ्य की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उदारता धो दी जाती है, इसे समझायेंगे।
- छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है इसके विषय बतायेंगे।
- मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, इसकी पुष्टि करेंगे।
- इस इकाई से प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख करेंगे।

4.3 एवंविधयापि - सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक व्याख्या

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवाः भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तथा हि । अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोक - दर्शनम्।

शब्दार्थ - एवंविधया अपि = इस प्रकार की (वंचनापरायणा) होने पर भी, एवं विधा यस्याः सा, तया। अनया दुराचारया = इस दुराचारिणी के द्वारा। कथमपि = जिस किसी प्रकार। दैववशेन = भागय से, संयोग से। दैवस्य वशेन। परिगृहीता = ग्रहण किये गये, कृपा पात्र बनाये गये। राजानः = राजागण। विक्लवाः भवन्ति = व्याकुल हो जाते हैं। सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति = और सभी प्रकार के अविनय के अधिष्ठान या घर बन जाते हैं। अधिष्ठीयते यत् अधिष्ठानम्- अधिष्ठानस्य भावः अधिष्ठानता। सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनयाः, तेषाम् अधिष्ठानता, ताम्। अभिषेकसमये एव = राज्याभिषेक के समय ही। अभिषेकस्य समयः अभिषेकसमयः, तस्मिन्।

एतेषाम् = इन राजाओं के । दाक्षिण्यम् = उदारता, शालीनता। दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यम्। दक्षिण+ष्यञ्। मङ्गलकलशजलैः इव = मानो मंगल कलशों के जल से । मंगलाश्च ते कलशाश्च मंगलकलशाः। तेषां जलैः । यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है । प्रक्षाल्यते = धो दी जाती है । अग्निकार्यधूमेन इव = मानो अग्नि कार्य होम आदि के धुएँ से । हृदयं मलिनीक्रियते = हृदय मलिन कर दिया जाता है, विकारयुक्त बना दिया जाता है । पुरोहित - कुशाग्र - सम्मार्जनीभिः = पुरोहित के कुशाग्र रूपी झाड़ू से । राज्याभिषेक के समय पुरोहित राजा में पवित्रता का आधान करने के लिए उसे कुश के गुच्छों से झाड़ता है । कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि, पुरोहितस्य कुशाग्राणि पुरोहित-कुशाग्राणि, तानि एव सम्मार्जनयः, ताभिः। कुशाग्रों पर सम्मार्जनी का आरोप है। क्षान्तिः अपह्रियते = क्षमाशीलता निकालकर दूर कर दी जाती है । रूपक और उत्प्रेक्षा । उष्णीषपट्टबन्धेन इव = मानो रेशमी पगड़ी को बाँधने से उष्णीषम् एव पट्टम् उष्णीषपट्टम्, तस्य बन्धनेन । जरागमनस्मरणम् = वृद्धावस्था के आगमन की स्मृति । आच्छाद्यते = ढँक दी जाती है। वे भूल जाते हैं कि वे भी कभी वृद्ध होंगे। उष्णीष से वृद्धावस्था के आगमन का संकेत देने वाले केश ढँक दिये जाते हैं । आतपत्र - मण्डलेन इव = मानो छत्र के मण्डल से। परलोकदर्शनम् अपसार्यते = परलोक की दृष्टि हटा दी जाती है, दूर कर दी जाती है । आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, तस्य मण्डलेन । परश्च लोकश्च परलोकः, तस्य दर्शनम् । वह परलोक नहीं देखता ।

हिन्दी भावार्थ- इस प्रकार की इस दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है ।

चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः,जयशब्द कलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।तथा हि । केचिच्छ्रमवशशिथिल-शकुनिगलपुट चटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्त्तमनोहराभिः मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेप विस्मृत जन्मानोऽनेकदोषेपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः,

शब्दार्थ - चामरपवनैः इव = मानो चामरों की वायु से । चामराणां पवनैः, चामरपवनैः। सत्यवादिता अपह्रियते = सत्यवादिता दूर उड़ा दी जाती है । सत्यं वदति इति सत्यावादी, तस्य भावः सत्यवादिता । वेत्रदण्डैः इव = मानो बेंत के डण्डों से । वेत्रस्य दण्डाः, तैः। गुणाः उत्सार्यन्ते = गुण भगा दिये जाते हैं । जयशब्दकलकलैः इव = मानो जयकार शब्द के कोलाहलों से । जय इति शब्दः जयशब्दः, तस्य कलकलैः। साधुवादाः = हितकारी वचन तिरस्कृत हो जाते हैं । इन सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षालंकार है । ध्वज - पट- पल्लवैः इव = मानो ध्वज के वस्त्रों के आँचल से। यशः परामृश्यते = यश पोंछ दिया जाता है। दुष्कर्मों के कारण यश समाप्त हो जाता है । केचित् = कुछ राजा । श्रम-वश-शिथिल-शकुनि-गल-पुट-चटुलाभिः = परिश्रम के कारण थके पक्षी के गले के समान चंचल (सम्पद्भिः का विशेषण)। श्रमस्य वशेन शिथिलाः श्रमवशशिथिलाः। श्रमवशशिथिलाः ये शकुनयः तेषां यः गलःतस्य यत् पुटम्, श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटम्, तद्वत् चटुलाभिः। यहाँ लुप्तोपमा है । खद्योतोन्मेषमुहूर्त्त-

मनोहराभिः = खद्योतों की चमक के समान क्षण भर को सुन्दर लगने वाली (सम्पद्भिः का विशेषण)। खे द्योतन्ते इति खद्योताः, तेषाम् उन्मेषः, खद्योतोन्मेषः, तद्वत् मुहूर्त्त मनोहराभिः। लुप्तोपमा है। मनस्विजनगर्हिताभिः = मनस्वी जनों द्वारा निन्दित। यह भी समपद्भिः का विशेषण है। प्रशस्तं मनः यस्य सः मनस्वी, मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः, तैः गर्हिताभिः। गर्ह+क्त। सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना = सम्पत्तियों द्वारा लुभाये जाते हुए। उनके लोभ में पड़े हुए। धनलव - लाभावलेप- विस्मृत-जन्मानः = धन के अल्प अंश का लाभ पाकर अहंकार में जन्म को भूले हुए, स्वयं को अमर समझते हुए। धनस्य लवः धनलवः, तस्य यः लाभाः धनलवलाभः, तेन विस्मृतं जन्म यैः तथाभूताः। अनेक-दोषोपचितेन = अनेक दोषों के कारण बढ़े हुए। न एके इति अनेके, अनेके च ते दोषाः अनेकदोषाः, दुष्टासृजा इव = दूषित रक्त के समान। दुष्ट यत् असृक् दुष्टासृक्, तेन। वात, पित्त, कफ दोषों के बढ़ने से रक्त दूषित हो जाता है। रागावेशेन बाध्यमाना = राग के आवेश से पीड़ित रहने वाला। विषयभोगों की उत्कट इच्छा से सन्तप्त रहने वाले। रागस्य आवेशः रागावेशः, तेन बाध्यमानाः = बाध्+शानच् कर्म में। उन राजाओं में अनेक दोष बढ़ने से वे विषयभोग की उत्कट लालसा से बेचैन रहते हैं। रागावेश की उपमा दूषित रक्त से दी गयी है। उपमालंकार है। दोष के दो अर्थ होंगे - 1- राजाओं के पक्ष में-कामक्रोधादि दोष, 2- रक्त के पक्ष में - वात, पित्त कफ के दोष।

हिन्दी भावार्थ - चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं।

विविध-विषय-ग्रास-लालसैःपंचभिरप्यनेक-सहस्रसंख्यै-रिवेन्द्रियैरायास्यमानाः,प्रकृति चंचलतयालब्धप्रसरेणैकेनापिशतसहस्रतामिवोपगतेनमनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति। ग्रहैरिवगृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते।

शब्दार्थ - विविध-विषय-ग्रास-लालसैः विविध विषयों के भाग की लालसा से युक्तविविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः, तेषां ग्रासे लालसा येषां तानि, तै। (इन्द्रियैः का विशेषण)।ग्रासः-ग्रस्+घञ्। लालसः = लस्+यङ् लुक+अच् प्रत्यय। पंचभिः अपि अनेकसहस्रसंख्यैः इव इन्द्रियैः = पाँच होने पर भी मानो अनेक सहस्र संख्या वाली इन्द्रियों द्वारा। अनेकानि सहस्राणि संख्या येषां तानि, तैः। मानो पाँच ही इन्द्रियाँ कई हजार बन गयी हों। उत्प्रेक्षालंकार है। आयास्यमानाः = उद्योग के लिए प्रेरित किये जाते हुए आ+यस्+णिच्+शानच्। उनकी भोग की इच्छा इतनी बढ़ जाती है कि वे पाँच ही इन्द्रियों को कई हजार जैसे समझते हुए निरन्तर भोगों के लिए बेचैन रहते हैं, सन्तोष का अनुभव नहीं करते। प्रकृतिचंचलतया = स्वभाव से चंचल होने के कारण मन के विषय में कहते हैं कि मन स्वभाव से चंचल होता है। प्रकृत्या चंचलम् प्रकृतिचंचलम्, तस्य भावः, प्रकृतिचंचलता, तया। लब्धप्रसरेण = अवसर पाकर। लब्धः प्रसरः येन तथाभूतेन।

प्र+सृ+अप्। एकेन अपि =एक होकर भी। शतसहस्रताम् उपगतेन इव = मानो सौ हजार बने हुए। उत्प्रेक्षा अलंकार, शतानि सहस्राणि शतसहस्राणि, तेषां भावः शतसहस्रता, ताम्। मनसा = मन से। आकुलीक्रियमाणा = आकुल बनाये जाते हुए । अनाकुलाः आकुलाः सम्पद्यमानाः क्रियमाणाः। आकुल + कृ+ च्वि + शानच्। विह्वलताम् उपयान्ति = छटपटाने लगते हैं। विह्वलस्य भावः विह्वलता, ताम्। ग्रहैः इव गृह्यन्ते = मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं। उनकी स्थिति कैसी हो जाती है, इसी का वर्णन कवि ने यहाँ उत्प्रेक्षालेकारों द्वारा किया है। भूतैः इव अभिभूयन्ते = मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं। मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते = मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं। आभिचारिक मन्त्रों से मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है। सत्त्वैः इव = दुष्टात्माओं के द्वारा। अवष्टभ्यन्ते = निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं।

हिन्दी भावार्थ- वे अनेक विषयों के भोग की उत्कट चाह वाली, पाँच होने पर भी कई हजार बनी हुई सी इन्द्रियों द्वारा उद्योग के लिए प्रेरित किये जाकर, स्वभाव से चंचल होने के कारण और अवसर पाकर एक होने पर भी सैकड़ों, हजारों जैसे बने हुए मन से व्याकुल किये जाकर छटपटाने लगते हैं। वे मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं, भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं, मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, दुष्टात्माओं द्वारा मानो निश्चेष्ट बना दिये जाते हैं।

वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढ़ाप्रहारतहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक्परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इस परेण संचार्यन्ते मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति।

शब्दार्थ - वायुना इव विडम्ब्यन्ते = मानो वायु के द्वारा हास्यास्पद बना दिये जाते हैं, अस्तव्यस्त बना दिये जाते हैं। पिशाचैः इव ग्रस्यन्ते = मानो पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं। मदनशरैः मर्माहताः इव = कामदेव के बाणों से मर्म पर आहत के समान। मदनस्य शराः मदनशराः, तैः। मर्मसु हताः मर्महताः। मृखभंग-सहस्राणि = सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमा प्रदर्शित करते हैं। मुखस्य भंगा: मुखभंगा:, तेषां सहस्राणि। मुख की भंगिमाएँ इस प्रकार दिखाते हैं जैसे कामदेव के बाणों से मर्माहत। धनोष्मणा पच्यमाना इव = धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान। धनस्य ऊष्मा धनोष्मा, तेन। विचेष्टन्ते = छटपटाते रहते हैं। गाढप्रहारहताः इव = गहरी चोट से पीटे गये के समान। गाढ़ाश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः तैः हताः। अङ्गानि न धारयन्ति = अंगों को सम्भाल नहीं पाते, होश में नहीं रहते। कुलीराः इव = केकड़े के समान। तिर्यक् परिभ्रमन्ति = तिरछे चलते हैं। अधर्मभग्नगतयः = अधर्म के कारण (सत्कर्म की ओर) गति भग्न हो जाने से, पङ्गव इव = लंगड़ों के समान। परेण संचार्यन्ते = दूसरे के द्वारा चलाये जाते हैं। मन्त्री आदि सिकी अन्य के कहे अनुसार कार्य करते हैं। उपमा अलंकार है। मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इव = मिथ्या या असत्य बोलने के फल के रूप में, जिनके मुख में रोग हो गया है, उनके समान। मृषावादस्य विपाकेन संजातः मुखस्य रोगः येषां तथाभूताः। अतिकृच्छ्रेण जल्पन्ति = बहुत कष्ट से बोलते हैं। यहाँ कवि ने इस प्रचलित विश्वास को संकेत किया है कि पूर्व जन्म के असत्य भाषण के कारण मुख के रोग होते हैं। राजा अहंकार के कारण किसी से बातें करना पसन्द नहीं करते। सप्तच्छदतरवः इव = जिस प्रकार सप्तच्छद के वृक्ष। कुसुम- रजो- विकारैः = अपने पुष्पों के

पराग के विकास से, उग्र गन्ध से। उसी प्रकार राजागण अपने कुसुम = नेत्र के, रजोविकार = रजोगुण के विकार से। कुसुमानां रजः कुसुमरजः, तस्य विकारैः। कुसुम का दूसरा अर्थ नेत्र भी है। यहाँ श्लेष है। पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलम् उत्पादयन्ति = समीप में रहने वालों के लिए सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं, उद्विग्न कर देते हैं।

हिन्दी भावार्थ- मानो वायु के द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते हैं, मानो पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं। वे कामदेव के बाणों से मर्माहत हुए के समान सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमाएँ दिखाते हैं, धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान छटपटाते हैं, गहरी मार से पीटे गये के समान अपने होश में नहीं रहते, केकड़ों के समान तिरछे चलते हैं, अधर्म के कारण (सत्कर्म में) गति भग्न हो जाने से दूसरे द्वारा चलाये जाते हैं, मिथ्या भाषण के फल के रूप में उत्पन्न मुख के रोग वाले के समान बड़ी कठिनाई से बोलते हैं, जैसे ये राजा सप्तपर्ण वृक्ष के पुष्प-पराग की उग्र गन्ध से वैसे ही अपने नेत्रों के रजोगुणविकार से समीप रहने वालों के सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं।

आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, तुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिता कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति।

शब्दार्थ - आसन्नमृत्यवः इव = मरणासन्न लोगों के समान। आसन्नः मुत्युः येषां तथाभूताः। बन्धुजनम् अपि न अभिजानन्ति = अपने बन्धुजनों को भी नहीं पहचानते। बन्धुश्चासौ जनश्च बन्धुजनः, तम्। राजागण अहंकार के कारण अपने बन्ध-बान्धवों को नहीं पहचानते। उत्कुपितलोचनाः इव = जिनकी आँख आई हुई है, ऐसे लोगों के समान। उत्कुपिते लोचने येषां ते। तेजस्विनः न ईक्षन्ते = तेजस्वी या प्रतापी व्यक्तियों को नहीं देखते। जैसे जिसकी आँख आई होती है, वह तेज युक्त सूर्य या दीपक के प्रकाश को नहीं देखता, वैसे ही तेजस्वी पुरुषों को नहीं देखना चाहते, उस पर दृष्टि नहीं ड़ालते। कालद्रष्टाः इव = विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्तियों के समान, कालेन दष्टाः कालदष्टाः। महामन्त्रैः अपि = विष उतारने के बड़े मन्त्रों से होश में नहीं आते। राजाओं के पक्ष में अर्थ होगा - श्रेष्ठ मन्त्रणाओं से जागरूक होकर विवेक से कार्य नहीं करते। महान्तश्च मन्त्राश्च ते महामन्त्राः तैः। श्लेषमूला उपमालंकार। जातुषाभरणानि इव = लाख के आभूषणों के समान, जातुषः इमानि इति जातुषाणि। सोष्माणम् = ऊष्मा, गर्मी से युक्त अग्नि आदि पदार्थ को- लाख के आभूषण के पक्ष में। उत्साह सम्पन्न व्यक्तियों को-राजाओं के पक्ष पक्ष में। न सहन्ते = सहन नहीं करते। जैसे लाख के आभूषण तापयुक्त अग्नि आदि को सहन नहीं करते वैसे ही वे उत्साही व्यक्ति को सहन नहीं करते। दुष्टवारणाः इव = बिगड़ैल हाथियों के समान, दुष्टाश्चते वारणाः दुष्टवारणाः। महामानस्तम्भनिश्चलीकृता = 1- बड़े भारी खम्भों में बाँधकर जकड़े गये भी-हाथी के पक्ष में। महत् मानं यस्य तथाभूतः यः स्तम्भः महामानस्तम्भः। अनिश्चलाः निश्चलाः सम्पद्यमानाः कृताः निश्चलीकृता। महामानस्तम्भे निश्चलीकृता महामानस्तम्भनिश्चलीकृता। 2 - घोर अहंकार के कारण अकड़े हुए, -राजा के पक्ष में। महान् यः मानः महामानः, स एव स्तम्भः, तेन निश्चलीकृताः। उपदेशं न गृह्णन्ति = उपदेश को ग्रहण नहीं करते। 1- हाथी के पक्ष में- महावत के सिखाने को ग्रहण नहीं करते, 2- राजाओं के पक्ष में- हितोपदेष्टा गुरुजन के उपदेश को ग्रहण नहीं करते। श्लेषमूला उपमालंकार है। तृष्णाविषमूर्च्छिता = तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित बेहोश। तृष्णा = धन की न बुझने वाली प्यास, लालसा। तृष्णा

पर विष का आरोप किया गया है, रूपकालंकार । तृष्णा एव विषं तृष्णाविषमृ, तेन मूर्च्छिता । सर्व कनकमयम् इव पश्यन्ति = सब कुछ कनकमय सा देखते हैं । कनकमय = सोने का, धनरूप में । जैसे विष से बेहोश व्यक्ति को सभी वस्तुएँ पीली दिखायी देती हैं ।

हिन्दी भावार्थ - मरणासन्न व्यक्तियों के समान वे अपने बन्धु - बान्धवों को नहीं पहचानते, जैसे जिनकी आँख आई हुई है, वे सूर्य आदि के तेज को नहीं देख पाते, वैसे ही वे तेजस्वी लोगों को नहीं देखते, विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्ति जैसे बड़े प्रभावशाली मन्त्रों से भी होश में नहीं आते, वैसे ही वे बड़ों के हितकारी उपदेश से भी जागरूक नहीं होते, जैसे लाख के आभूषण ताप से युक्त (अग्नि आदि) को नहीं सहते, वैसे ही वे उत्साह सम्पन्न व्यक्ति को सहन नहीं करते हैं, जैसे बिगड़ैल हाथी बड़े भारी खम्भे में जकड़े गये भी (महावत के) सिखाने को नहीं ग्रहण करते, वैसे ही वे घोर अहंकार से जिद पर अड़े रहकर गुरुजनों के उपदेश को ग्रहण नहीं करते, तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित हुए वे सब कुछ स्वर्णमय सा देखते हैं ।

अभ्यास प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय -

1. शुकनासोपदेश में दुराचारिणी किसे कहा है

क. पार्वती ख. लक्ष्मी ग. गंगा घ. उर्वशी

2. क्षान्ति का क्या अर्थ है -

क. क्षमाशील ख. शान्ति ग. क्रोध घ. उत्साह

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. भूतैरिव ..... ।

4. मानो वायु के द्वारा ..... बना दिये जाते है ।

इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

शब्दार्थ - इषवः इव = बाणों के समान । पानवर्धिततैक्ष्ण्याः = 1- शान चढ़ाने से जिनका पैनापन बढ़ा हुआ है - बाणों के पक्ष में । 2- पान अर्थात् मदपान से जिनकी तीक्ष्णता अर्थात् निर्दयता, क्रूरता बढ़ी हुई है - राजाओं के पक्ष में । तीक्ष्णस्य भावः तैक्ष्ण्यम्, पानेन वर्धितं तैक्ष्ण्यं येषो ते । परप्रेरिताः विनाशयन्ति = 1- शत्रुओं के द्वारा चलाये गये प्राण ले लेते हैं- बाणों के पक्ष में । 2- दूसरे-मन्त्री या निकट रहने वाले सलाहकार द्वारा प्रेरित किये जाकर प्राण ले लेते हैं, नाश कर डालते हैं । श्लेषमूला उपमालंकार । दूरस्थितानि अपि फलानि = जैसे वृक्ष पर ऊँचे लगे हुए फलों को लोग दण्डविक्षेप = डण्डा फेंककर गिरा देते हैं, वैसे ही राजा लोग दूर पर रहने वाले उच्च कुलों का नाश कर देते हैं। दण्डविक्षेपैः = 1- डण्डा फेंककर, 2- दण्ड देकर या सेना को भेजकर । दण्डस्य विक्षेपैः। शातयन्ति = पीडित करते हैं, नष्ट कर देते हैं । अकाल - कुसुम - प्रसवाः इव = असमय में बिना ऋतु के निकलने वाले पुष्पों के समान । न कालः अकालः तस्मिन् कुसुमप्रसवाः इव । मनोहराकृतयः अपि = मनोहर आकृति की होने पर भी । मनसः हराः मनोहराः, मनोहराः आकृतयः येषां ते । लोकविनाश-हेतवः = संसार के नाश के द्योतक हैं, हेतु हैं। जैसे असमय में निकले हुए पुष्प सुन्दर होने पर भी लोक के नाश की सूचना देते हैं, वैसे ही वे सुन्दर आकृति के होने पर भी लोगों को पीड़ित करते हैं । श्लेषमूला उपमालंकार है ।

श्मशानाग्नयः इव = श्मशान की अग्नियों के समान । श्मशानस्य अग्नयः श्मशानाग्नयः। अतिरौद्रभूतयः = अति भयानक भूति वाले होते हैं । भूति पर श्लेष है, अतः दो अर्थ होंगे - 1- भस्म-श्मशान के अग्नि की भस्म, 2- राजाओं के पक्ष में समृद्धि, ऐश्वर्य । जिस प्रकार श्मशान के अग्नि की भस्म बहुत भयानक होती है, वैसे ही इन राजाओं के समृद्धि अतिशय भय देने वाली होती है । अतिशयेन रौद्रा भूतिः येषां ते । तैमिरिकाः इव = तिमिर नेत्ररोग से ग्रस्त व्यक्तियों के समान। तिमिरं संजातं येषां ते। तिमिर+ठक् प्रत्यय । अदूरदर्शिनः = अदूरदर्शी होते हैं । अदूरदर्शी के दो अर्थ होंगे- 1- दूर तक न देख सकने वाले-नेत्ररोगी के पक्ष में । 2- कार्य के परिणाम पर विचार न करने वाले-राजाओं के पक्ष में । श्लेषमूला उपमालंकार है । जिस प्रकार तिमिर रोग से ग्रस्त व्यक्ति दूर तक नहीं देख पाते, वैसे ही ये राजा किसी कार्य के परिणाम पर विचार नहीं करते। न दूरं यथा स्यात् तथा पश्यन्ति इति ।

हिन्दी भावार्थ- जैसे शान चढ़ाने से बढ़े हुए पैनापन वाले बाण शत्रुओं द्वारा चलाये जाने पर प्राण ले लेते हैं, वैसे ही ये मदपान से और अधिक क्रूर होकर मन्त्री आदि दूसरों द्वारा उकसाये जाने पर प्राण ले लेते हैं । जैसे (वृक्ष पर) दूर पर लगे फलों को डण्डे मारकर गिरा दिया जाता है, वैसे ही ये दूर पर रहने वाले सम्भ्रान्त कुलों को भी दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं। जैसे असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर भी संसार के विनाश के हेतु होते हैं, वैसे ही ये सुन्दर रूप वाले होने पर भी प्रजा के विनाश के कारण होते हैं । जैसे श्मशान के अग्नि की भूति (= भस्म) अति भयावह होती है, वैसे ही इनकी भूति (= समृद्धि) भयावह होती है । ये तिमिर नेत्ररोग को रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं ।

उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसन-शत-शरव्यातामुपगता ।

शब्दार्थ - उपसृष्टा इव = वेश्यागामी कामुक लोगों के समान । क्षुद्राधिष्ठित - भवना = 1- क्षुद्राओं अर्थात् वेश्याओं या क्षुद्र विट, चेट आदि द्वारा उनके घर अधिष्ठित रहते हैं । जिस प्रकार कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ भरी रहती हैं, वैसे इन राजाओं के भवनों में वेश्याएँ और विट आदि क्षुद्र लोग भरे रहते हैं । क्षुद्रा का एक अर्थ वेश्या भी है। कुछ लोगों ने उपसृष्टा अर्थ किया है भूत-प्रेत से ग्रस्त। इसका समासविग्रह होगा 1- उपसृष्टाः के पक्ष में-क्षुद्राभिः अधिष्ठितं भवनं येषां ते। श्रूयमाणाः अपि = सुने जाते हुए भी, उनके विषय में या उनके आगमन के विषय में सुनायी पड़ने पर भी प्रेतपटहाः इव उद्वेजयन्ति = शवयात्रा में बजाये जाने वाले नगाड़े के समान उद्वेग उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार शवयात्रा के समय बजाये जाते हुए नगाड़े सुनने में उद्वेग उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इन राजाओं के विषय में सुनायी पड़ने पर भी आतंक छा जाता है। श्लेषमूला उपमा। चिन्त्यमाना अपि = सोचे जाते हुए भी अर्थात् उनके विषय में सोचने पर भी। महापातकाध्यवसायाः इव = महापातक कर्म का निश्चय करने के समान । महत् च तत् पातकम्, तस्य अध्यवसायाः। उपद्रवम् उपजनयन्ति = अशान्ति या बेचैनी उत्पन्न कर देते हैं । जैसे ब्राह्मणवध आदि महापातक करने का उपक्रम करने पर विचार मात्र से ही मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही इन राजाओं के विषय में चिन्तन करने पर भी मन अशान्त हो जाता है। अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेन इव = मानो प्रतिदिन पाप से भरे जाते हुए, दिवसे दिवसे इति अनुदिवसम्, अव्ययीभाव। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। आध्मातमूर्त्तयः भवन्ति = फैली या फूली हुई

मूर्ति वाले हो जाते हैं। आध्माताः मूर्त्तिः येषां तथाभूताः। मानो प्रतिदिन उनके भीतर जो पाप भरता जाता है, उससे उनका आकार फैल या फूल जाता है, जैसे किसी रबर के गुब्बारे या खिलौने में हवा भरी जाती है, वैसे-वैसे फूलता जाता है। तदवस्थाः च = इस प्रकार की दशा वाले ये। सा अवस्था येषां तथाभूताः। व्यसन-शत-शरव्यताम् उपगता = सैकड़ों दुर्व्यसनों के शिकार बनकर । व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि, तेषां शरव्यता, ताम्। शरस्य लक्ष्यं शरव्यम्, तस्य भावः शरव्यता ।

हिन्दी भावार्थ- जैसे कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ बैठी होती हैं, वैसे ही इन राजाओं के भवन में क्षुद्र जन विद्यमान रहते हैं । जैसे शवयात्रा के नगाड़े सुने जाने पर उद्वेग उत्पन्न करते हैं, वैसे इनके विषय में सुनायी पड़ने पर आतंक फैल जाता है । जैसे महापातक कर्मों के प्रयास का चिन्तन करने पर भी मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे इनके विषय में सोचने पर भी मन बेचैन हो उठता है । प्रतिदिन इनके भीतर भरते जा रहे पापों के कारण इनके शरीर रूपी मूर्ति फूलती जाती है । ऐसी दशा वाले वे सैकड़ों दुर्व्यसनों के शिकार बनकर ।

वल्मीकतृणाग्रावस्थिति जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति । अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशित-ग्रास-गृध्रैरास्थान-नलिनी-बकैर्द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणम्

शब्दार्थ - वल्मीक - तृणाग्रावस्थिता = चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों के समान, वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि, तेषु अवस्थिताः इति। पतित् अपि आत्मानं न अवगच्छन्ति = अपने को गिरा हुआ होने पर भी नहीं जान पाते। जिस प्रकार चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों का गिरने पर पता ही नहीं चलता, वैसे ही ये राजा अनेक पाप कर्मों से पतित होने पर भी स्वयं को पतित नहीं मानते। अपरे तु = कुछ दूसरे राजा । इसका सम्बन्ध वाक्य के अन्त में आये हुए 'सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति' की क्रिया से है। स्वार्थनिष्पादनपरेः = अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे हुए । स्वस्य अर्थ स्वार्थः, तस्य निष्पादनम् स्वार्थनिष्पादनम् । स्वार्थनिष्पादनम् एवं परं येषां ते। धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैः = धन रूपी मांस का ग्रास पाने के लिए गृध्रों के समान, धन पर पिशित = मांस का आरोप और धूर्तों पर गृध्रों का आरोप होने से रूपकालंकार है। धनम् एव पिशितं धनपिशितम् तस्य ग्रासे गृध्रः, तैः। आस्थान-नलिनी-बकैः = राजा की बैठक रूपी कमलिनी का आश्रय लेकर जमे हुए धूर्त बगुले। यहाँ आस्थान पर कमलिनी का और धूर्तों पर बकों का आरोप है, रूपकालंकार है। बगुले कमलिनी के पत्तों के पीछे छिपकर बैठे रहते हैं और वे जिस प्रकार मछलियों का शिकार करते हैं, वैसे धूर्त राजा की सभा में आश्रय लेकर अवसर पाकर धन लूटते रहते हैं। आस्थीयते अत्र इति आस्थानम्, आस्थानम् एवं नलिनी आस्थाननलिनी, तस्यां बकैः। द्यूतं विनोदः इति = जुए के व्यसन को विनोद बताते हुए, वि+नुद्+घञ्। परदाराभिगमनम् वैदग्ध्यम् इति = परस्त्रीगमन को चतुराई बताते हुए। परेषां दाराः परदाराः, तेषाम् अभिगमनम् परदारभिगमनम् । अभि + गम् + ल्युट्। मृगया श्रमः इति = शिकार को परिश्रम का कार्य या व्यायाम बताते हुए श्रमः = श्रम् + घञ् । पानं विलासः इति = मदपान को विलास या मनोरंजन बताते हुए , पा + ल्युट् । प्रमत्ततां शौर्यम् इति = असावधानी को बहादुरी बताते हुए प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता । प्र+ मद् + क्त = प्रमत्त । प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता ।

शूरस्य भावः शौर्यम् । शूर+ ष्यञ् । स्वदारपरित्यागम् अव्यसनिता इति = अपनी पत्नी के परित्याग को व्यसन का अभाव या दोष का अभाव बताते हुए, स्वस्य दाराणां परित्यागः स्वदारपरित्यागः तम् । परि + त्यज् + घञ् । व्यसन या दोष का अभाव है, वैराग्य का गुण है। गुरुवचनावधीरणम् = गुरुजनों के वचनों का तिरस्कार । गुरुणां वचनानि, गुरुवचनानि, तेषाम् अवधीरणम् ।

हिन्दी भावार्थ - बाँमी की घास के अग्र भाग पर गिरी जल की बूँदों के समान अपना पतित होना नहीं जान पाते । कुछ दूसरे राजाओं को केवल अपने स्वार्थ साधने में तत्पर, धन रूपी मांस के टुकड़े को झपटने में गृध्र जैसे तथा राजसभा रूपी कमलिनी के पीछे (शिकार के लिए) छिपे बगुलों के समान धूर्त लोग यह समझाते हैं कि जुआ तो विनोद है, परस्त्रीगमन चतुराई है, शिकार खेलना व्यायाम है, मदपान करना मनोरंजन है, असावधानी वीरता है, अपनी पत्नी का परित्याग व्यसनहीनता है, गुरुजनों के वचन का तिरस्कार करना है ।

अपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्य-गीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधानावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, देवावमानं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि ।

शब्दार्थ - अपरप्रणेयत्वम् इति = दूसरों के कहने पर न चलना । दूसरों के कहने पर चलना अपनी बुद्धि की कमी या अक्षमता को द्योतित करता है और मूर्खों का लक्षण माना गया है । प्रणेतुं योग्यः प्रणेयः, परैः प्रणेयः परप्रणेयः, तस्य भावः परप्रणेयत्वम् । प्रणेयः प्र + नी + यत् । अपरप्रणेयत्व का अर्थ होता है अपने विवेक से बिना किसी दूसरे प्रभावित हुए स्वतन्त्र कार्य करना। अजितभृत्यताम् = सेवकों को अपने वश में न रख पाने को । भर्तुं योग्याः भृत्याः, न जिताः भृत्याः येन सः अजितभृत्यः, तस्य भावः। सुखोपसेव्यत्वम् इति = सुखपूर्वक सेवा करने योग्य होना उपसेवितुं योग्यः उपसेव्यः, सुखेन उपसेव्यः सुखेपसेव्यः, तस्य भावः। उपसेव्य-उप+सेव्+ण्यत् । नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याभिसक्तिम् = नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति को, नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्याश्च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः तासु अभिसक्तिम् । अभि + संज् + क्तिन् । रसिकता इति = रसिकता या कलाप्रियता बताकर, महापराधानावकर्णनम्= बड़े अपराधों को न सुनना महानुभावता है । महापराधावकर्णनम पाठ भी है जिसका अर्थ होगा बड़े अपराधों को सुनने में रुचि लेना । महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः, तेषाम् अनाकर्णनम् । पराभवसहत्वम् = अपमान को सह लेना । सहते इति सह (सह्+अच्), पराभवस्य सहः पराभवसहः, तस्य भावः पराभवसहत्चम् । क्षमा इति = क्षमा के रूप में । स्वच्छन्तां प्रभुत्वम् इति = स्वच्छन्द आचरण को प्रभुत्व के रूप में । स्वः छन्दः यस्य सः स्वच्छन्दः, तस्य भावः स्वच्छन्दता, ताम् । प्रभोः भावः प्रभुत्वम् । देवावमानम् = देवों का सम्मान न करना, देवस्य अवमानं देवावमानम् । महासत्त्वता = महाशक्तिशालित्व है । महत् सत्त्वं यस्य सः महासत्त्वः तस्य भावः । बन्दि-जन-ख्यातिम् = बन्दिजनों, चारणों द्वारा किये गये स्तुतिगान को । बन्दिनश्च ते जनाः बन्दिजनाः, तेषां ख्यातिः, ताम्। ख्या+क्तिन् । यशः इति = यश है इस रूप में । तरलताम् उत्साहः इति = चंचलता को उत्साह के रूप में । तरलस्य भावः तरलता, ताम् । तरल + लत् + टाप् । अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वम् इति = किसी के विषय में सही ज्ञान न होने को पक्षपातरहित होने के रूप में। किसी के गुण या अवगुण आदि विशेषताओं का ज्ञान न हो तो उसे पक्षपातरहित होना बताते हैं।

विशेषं जानाति इति विशेषज्ञः, तस्य भावः विशेषज्ञता । पक्षे पतति इति पक्षपाती, न पक्षपाती इति अपक्षपाती, तस्य भावः अपक्षपातित्वम् । दोषान् अपि = इस प्रकार राजा के दोषों को भी धूर्त गुण के रूप में बखनते हैं, और राजा को मूर्ख बनाते हैं ।

हिन्दी भावार्थ: - किसी के सिखाने-पढ़ाने पर न चलना है, सेवकों को वश में न रख पाना सुख से सेवा करने योग्य होना है, नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति होना कलाप्रियता या रसिकता है, बड़े अपराधों के विषय में न सुनना महानुभावता है, अपमान को सह लेना क्षमा है, मनमानी करना प्रभुता है, देवता का अपमान करना महान् शक्तिशालित्व है, बन्दिजनों की स्तुति ही यश है, चंचलता उत्साह है, किसी के विषय में विशेष न जानना निष्पक्षता है, इस प्रकार दोषों को भी ।

गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ताः निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्या-रोपितालीकाभिमानाः मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचित-चेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।

शब्दार्थ - गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः = गुणों के वर्ग में आरोपित करने वाले, गुणों में गिनाने वाले (धूर्तैः का विशेषण) अन्तः = मन ही मन । स्वयम् अपि विहसद्भिः = स्वयं भी उन राजाओं के ऊपर हँसते रहने वाले। वि+हस्+शतृ । प्रतारणकुशलैः धूर्तैः = ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा। प्रतारणे कुशलाः, तैः। प्रतारण = प्र+ तृ+ णिच् + ल्युट् । अमानुष - लोकोचिताभिः = मनुष्यों के विषय में घटित न हो सकने वाली स्तुतियों से छले जाते हुए, ठगे जाते हुए। मानुषाणाम् लोकानाम् उचिताः मानुषलोकोचिताः, न मानुषलोकोचिताः, अमानुषलोकोचिताः, ताभिः। प्र+तृ+णिच्+ शानच् कर्म में । वित्तमदमत्तचित्ताः = धन के मद से मतवाले चित्त वालें वित्तस्य मदः वित्तमदः, तेन मत्तं चित्तं येषां ते । निश्चेतनतया = चेतना खो देने के कारण, अज्ञान से ग्रस्त होकर, विवेकरहित होकर। निर्गता चेतना येभ्यः निश्चेतनाः, तेषां भावः। तथा एव इति = ऐसा ही है, धूर्तों के वचन को सत्य मानते हुए । आत्मनि आरोपितालीकभिमाना = अपने भीतर अभिमान का आरोप किये हुए। अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानं, आरोपितः अलीकाभिमानः यैः तथाभूताः। मर्त्यधर्माणः अपि = मरणशील मनुष्यों के धर्म वाले होने पर भी, जन्म-मृत्यु वाले मनुष्य होने पर भी । मर्त्यानां धर्मः मर्त्यधर्मः, मर्त्यधर्मः येषां तथाभूताः। दिव्यांशावतीर्णम् इव = स्वर्गीय अंशों के साथ अवतार लिये हुए के समान, मानो उन्होंने देवता के अंशों के साथ जन्म लिया हो । दिवि भवाः दिव्याः। दिव्याः ये अंशाः दिव्यांशाः, तैः अवतीर्णः, तम् । अव+तृ+क्त। उत्प्रेक्षालंकार । सदैवतम् इव = दैवी भाव से युक्त सा । यहाँ पर उत्प्रेक्षालंकार है । देवता एव दैवतानि, तैः सह वर्तमानम् सदैवतम्। आत्मानम् अतिमानषम् उत्प्रेक्षमाणाः = अपने को मनुष्य से ऊपर समझते हुए। अतिक्रान्तः मानुषान् अति अमानुषम्। उत्प्रेक्षमाणः = उत्,प्र+ईक्ष्+शानच् । प्रारब्ध-दिव्योचित-चेष्टानुभावाः = देवों के समान चेष्टायें और महात्म्य प्रदर्शित करते हुए। दिव्यानाम् उचिताः चेष्टाः अनुभावाश्च दिव्योचितचेष्टानुभावाः प्रारब्धाः दिव्योचितचेष्टानुभावाः यैः ते । सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति = सभी लोगों के लिए उपहास के पात्र बन जाते हैं । उपहसितुं योग्यः उपहास्यः, तस्य भावः, उपहास्यता, ताम् । जनस्य एकवचन है किन्तु उसका अर्थ बहुवचन का लिया जायेगा ।

हिन्दी भावार्थ- गुणों के बीच आरोपित करने वाले और मन ही मन स्वयं उनके ऊपर हँसने वाले, ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा मनुष्य लोक में घटित न होने योग्य स्तुतियों से वे ठगे जाते हैं और धन के मद से बौराये मन वाले वे राजा अविवेकहीन होने के कारण उन धूर्तों के कथनों को वैसा ही मानते हुए अपने में मिथ्या अभिमान भर लेते हैं, मरणशील मनुष्यों के धर्म से युक्त होने पर भी अपने को दिव्य अंश के साथ अवतार लिया हुआ सा और दैवी स्वरूप से सम्पन्न सा समझकर वे देवों के समान चेष्टाएँ और महत्त्व प्रदर्शित करने लगते हैं, जिससे वे सभी लोगों के उपहास के पात्र बन जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इषव: का क्या अर्थ है -

क. शत्रु ख. धनुष ग. बाध घ. तलवार

2. असमय में खिला हुआ पुष्प किसका सूचक है -

क. विनाश ख. उत्साह ग. कृपणता घ. वीरता

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

3. बन्दीजन ख्यातिं ..... इति।

4. तरलताम् ..... इत।

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न

1- किसके द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते है ?

2- किसके समान वे अपने बन्धु-बान्धवों को नहीं पहचानते है ?

3- असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर किसके विनाश के हेतु होते है ?

4- किस कुलों को दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं ?

5- किस रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं ?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है। चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्विियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं। अत: इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप प्रस्तु त इकाई के वर्ण्य

विषयों के माध्यम से इस इकाई में प्राप्त शिक्षाओं को बताते हुये सारांश भी अपने शब्दों में लिख सकते है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
लब्धप्रसरेण	अवसर पाकर।
एकेन अपि	एक होकर भी।
शतसहस्रताम् उपगतेन इव	मानो सौ हजार बने हुए।
मनसा	मन से।
आकुलीक्रियमाणा	आकुल बनाये जाते हुए।
विह्वलताम् उपयान्ति	छटपटाने लगते हैं।
ग्रहैः इव गृह्यन्ते	मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते
भूतैः इव अभिभूयन्ते	मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं।
मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते	मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं।
सत्त्वैः इव	दुष्टात्माओं
अवष्टभ्यन्ते	निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1-

1. ख 2. क 3. अभिभूयन्ते 4. हास्यास्पद

अभ्यास प्रश्न 2

1. ग 2. क 3. यश: 4. उत्साह

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न –

(1) वायु के द्वारा (2) मरणासन्न व्यक्तियों के समान (3) संसार के विनाश के हेतु (4) सम्भ्रान्त कुलों को (5) तिमिर नेत्ररोग के रोगी के समान

4. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये -

इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

2. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई-5 आत्मविडम्बनां..से..स्वभवनं आजगाम तक (अर्थ एवं व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 आत्मविडम्बनाम् से स्वभवनम् आजगाम् तक अर्थ एवं व्याख्या
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यासार्थ प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास नामक पुस्तक के कादम्बरी (शुकनासोपदेश) से सम्बन्धित खण्ड दो की पाचवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने लक्ष्मी के विभिन्न प्रभावों व स्वरूपों का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के अगले भाग के वर्ण्य विषयों का अध्ययन करेंगे।

शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते है कि युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए।

अत: प्रस्तुत इकाई में बताये गये तथ्यों का सम्यक् अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप ब्राह्मण, गुरू , राजा, आदि के कर्तव्यों और विभिन्न सम्बन्धों में किये जाने वाले विश्वासों की भली - भॉति व्याख्या कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिए गये उपदेश से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। इस तथ्य को समझा सकेंगे।
- वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं, इसके बारे में विस्तृत उत्तर दे सकेंगे।
- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये , इस वाक्य की पुष्टि उदाहरणों से कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख कर सकेंगे।
- इस इकाई के विभिन्न गद्यखण्डों को व्याख्यायित करेंगे।

5.3 आत्मविडम्बनाम् से स्वभवनम् आजगाम् तक अर्थ एवं व्याख्या

आत्मविडम्बनां चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताध्यारोपण-विप्रतारणादसद्भूत- संभावनोप -हताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कते । दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गुणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति।

शब्दार्थ - अनुजीविना जनेन = सेवकों द्वारा, अनुजीवति इति अनुजीवी, तेन। अनु + जीव् + इन्। क्रियमाणाम् = की जाती हुई, कृ+शानच् कर्म अर्थ में। आत्म-विडम्बनाम् = अपनी नकल को, अभिनन्दन्ति = पसन्द करते हैं, उससे उस सेवक पर प्रसन्न होते हैं। मनसा = मन ही मन। देवताध्यारोपण-विप्रतारणात् = देवता के अध्यारोपण के धोखे में पड़ने के कारण। देवतायाः अध्यारोपणम् देवताध्यारोपणम्, तदेव विप्रतारणम्, देवताध्यारोपणविप्रतारणम्, तस्मात्। असद्भूत-संभावनोपहताः च = अविद्यमान की सम्भावना करने से मूर्खता में पड़े हुए। जो देवत्व

उनमें नहीं है उसे अपने में समझ लेने के कारण जिनकी मति मारी गयी है । सती भूता इति सद्भूता, न सद्भूता असद्भूता, असद्भूता च संभावना असद्भूतसंभावना, तया उपहताः। अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् इव = मानो उनके भीतर दो दूसरी भुजाएँ प्रविष्ट हों । अपनी बाहुओं के भीतर प्रविष्ट दो और भुजाओं की सम्भावना करते हुए। भुजयोः द्वयम् भजद्वयम्, अन्तःप्रविष्टं अपरं भुजद्वयम् यस्मिन् तथाभूतम् । बाहुयुगलम् का विशेषण है । आत्मबाहुयुगलं संभावयन्ति = अपनी दोनों भुजाओं के विषय में संभावना कर लेते हैं कि उनके भीतर और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं और वे विष्णु के ही रूप हैं । त्वगन्तरित-तृतीयलोचनम् = त्वचा के पीछे तीसरा नेत्र छिपा हुआ है ऐसी आशंका कर लेते हैं । त्वचा अन्तरितम् तृतीयं लोचनम् यस्मिन् तत् (ललाटम् का विशेषण है)। स्वललाटम् = अपने ललाट के विषय में, स्वस्य ललाटम् स्वललाटम् । आशंकते = आशंका कर लेते हैं, समझ लेते हैं, संभावना करते हैं । अपने को शिव का रूप समझने लगते हैं। दर्शनप्रदानम् अपि = दर्शन देना भी दर्शनस्य प्रदानं दर्शनप्रदानम् । अनुग्रहम् गणयन्ति = कृपा करना मानते हैं । दृष्टिपातम् अपि = किसी पर दृष्टि डालना भी । दृष्टेः पातः दृष्टिपातः, तम् । पातः-पत्+घञ्। उपकारपक्षे स्थापयन्ति = उपकार के वर्ग में रखते हैं, किसी पर दृष्टि डालने को ऐसा समझते हैं जैसे उस पर उपकार कर दिये । स्थापयन्ति = स्था+णिच्+लट् लकार प्रथम पु0 बहुवचन उपकारस्य पक्षे उपकारपक्षे । उप + कृ + घञ् । संभाषणाम् अपि = वार्तालाप कर लेना भी । सम् + भाष् + ल्युट् । संविभागमध्ये कुर्वन्ति = धन का भाग देने के कार्य में जोड़ते हैं। ऐसा समझते हैं जैसे धन का हिस्सा ही दे दिया हो, कोई बड़ा पुरस्कार दे दिया हो। सम्, वि+भज्+घञ् । संविभागस्य मध्ये संविभागमध्ये ।

हिन्दी भावार्थः- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, मन ही मन देवता का अपने ऊपर आरोप किये जाने के धोखे के कारण अविद्यमान शक्तियों की संभावना करने से उनकी मति मारी जाती है और वे ऐसा समझने लगते हैं कि उनकी दोनों भुजाओं के भीतर दूसरी और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं । वे अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। किसी को दर्शन देना भी कृपा करना गिनते हैं, दृष्टि डाल देना भी उपकार करने में जोड़ते हैं। वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं ।

आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति । मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान् नार्चयन्त्यर्चनीयान् नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् अनर्थकायासान्तरितोपभोग सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्,

शब्दार्थ - आज्ञाम् अपि = किसी को आज्ञा देना भी । वरप्रदानं मन्यन्ते = ऐसा मानते हैं जैसे उसे वरदान दे दिया । वरस्य प्रदानं वरप्रदानम् । स्पर्शम् अपि = किसी को छू लेना भी, पावनम् आकलयन्ति = पवित्र कर देना मानते हैं । ऐसा समझते हैं जैसे उसे पवित्र कर दिया। स्पृश्+घञ्-स्पर्शः। मिथ्या-माहात्म्य-गर्व-निर्भराश्च = अपनी मिथ्या महत्ता के अहंकार में चूर होकर । महान् आत्मा यस्य सः महात्मा । तस्य भावः माहात्म्यम् । महात्मन्+ष्यञ्´ प्रत्यय । मिथ्या माहात्म्यं मिथ्यामाहात्म्यम्, तस्य गर्वः मिथ्यामाहात्म्यगर्वः, तेन निर्भराः। न प्रणमन्ति देवताभ्यः = देवों को प्रणाम नहीं करते हैं । न पूजयन्ति द्विजातीन् = ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। द्वे जाती येषां ते द्विजातयः, तान् । यहाँ ब्राह्मण से ही तात्पर्य है, यद्यपि द्विजाति में तीन उच्च वर्ण माने जाते हैं। न मानयन्ति मान्यान् = आदरणीय श्रेष्ठ जनों का आदर नहीं करते। मानयितुं योग्याः मान्याः ।

मान्+ण्यत् प्रत्यय। न अर्चयन्ति अर्चनीयान् = पूजा-सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते। अर्चयितुं योग्याः अर्चनीयाः, तान्। अर्च्+अनीयर्। न अभिवादयन्ति अभिवादनार्हान् = अभिवादन के योग्य लोगों का अभिवादन नहीं करते। अभिवादनस्य अर्हान् अभिवादनार्हान्। न अभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून् = गुरुजनों के आगमन पर उनके स्वागत-सम्मान में उठते नहीं हैं। अनर्थक-आयास-अन्तरित-उपभोग-सुखम् इति = निष्प्रयोजन कार्यों पर परिश्रम में उपभोगसुख को गँवा दिया ऐसा कहकर। न अर्थः यस्य तथाभूतः आयासः अनर्थकायासः, तेन अन्तरितम् उपभोगस्य सुखम् यस्य तथाभूतम्। तात्पर्य यह कि ये भोगपरायण राजा धर्माचरण, यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन आदि करने वाले विद्वानों की यह कहकर हँसी उड़ाते हैं कि व्यर्थ के कार्यों में इन्होंने भोग के अवसर खो दिये। उपहसन्ति = उपहास करते हैं, हँसी उड़ाते हैं। जरा-वैक्लव्यप्रलपितम् इति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम् = वृद्ध जनों के हितकारी उपदेश को वृद्धावस्था के वैक्लव्य या दुर्बलता के कारण प्रलाप के रूप में देखते हैं। विकलस्य भावः वैक्लव्यम्। जरया वैक्लव्यम् जरावैक्लव्यम् प्रलपितम् इति। वैक्लव्य-विकल+ष्यञ्´।

हिन्दी भावार्थः- आज्ञा देने को वर दे देने जैसा मानते हैं, स्पर्श कर लेने को पवित्र कर देने वाला समझते हैं, अपनी झूठी महत्ता के गर्व से भरे हुए वे देवों को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, सम्माननीय जनों का सम्मान नहीं करते, सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते, प्रणाम करने योग्य जनों को प्रणाम नहीं करते, गुरुओं के आने पर उनके आदर में उठते नहीं हैं। विद्वानों पर यह कहकर हँसते हैं कि व्यर्थ के (यजन, अध्ययन, अध्यापन) कार्यों में इन्होंने उपभोग के सुख को गँवा दिया और वृद्ध जनों के उपदेश को बुढ़ापे की दुर्बलता के प्रभाव से किये जाने वाले प्रलाप के रूप में देखते हैं।

आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यगुद्भावयति।

शब्दार्थ - आत्मप्रज्ञा-परिभवः इति = अपनी बुद्धि का तिरस्कार है ऐसा मानकर, आत्मनः प्रज्ञा आत्मप्रज्ञा, तस्याः परिभवः। परि+भू+अप्। सचिवोपदेशाय असूयन्ति = सचिवों के समझाने पर उनसे चिढ़ते हैं, जलते हैं। सचिवानाम् उपदेशः सचिवोपदेशः तस्मै। असूया से नाम धातु लट् लकार। हितवादिने कुप्यन्ति = हित वचन बोलने वाले पर कुपित होते हैं। हितं वदति इति हितवादी, तस्मै। हित+वद्+इन् प्रत्यय। सर्वथा = सभी प्रकार से। सर्व+थाल् प्रत्यय। तम् अभिनन्दन्ति = उसी का अभिवादन करते हैं या आने पर प्रसन्न होते हैं। तम् आलपन्ति = उसी से बातें करते हैं, तं पार्श्वे कुर्वन्ति = उसे ही अपने पास रखते हैं। तं संवर्धयन्ति = उसी को प्रोत्साहन देते हैं, आगे बढ़ाते हैं। तेन सह सुखम् अवतिष्ठन्ते = उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसी के साथ रहने में सुख का अनुभव करते हैं। तस्मै ददति = उसे ही देते हैं। तं मित्रताम् उपजनयन्ति = उसी से मित्रता बनाये रखते हैं। तस्य वचनं शृण्वन्ति = उसी की बातें सुनते हैं। तत्र वर्षन्ति = उसी पर धन की वर्षा करते हैं। तं बहु मन्यन्ते = उसी को महत्व देते हैं।तम् आप्तताम् आपादयन्ति = उसे ही विश्वासपात्र बना लेते हैं। आप्तस्य भावः आप्तता, ताम्। आपादयन्ति-आःपद + णिच् + लट्लकार। विश्वसनीयता पर पहुँचाते हैं। यः = जो।

अहर्निशम् = दिनरात, अहश्च निशा च अहर्निशे, तयोः समाहारः अहर्निशम्। द्वन्द्व समास। अनवरतम् = निरन्तर। न अवरतं यथा स्यात् तथा । उपरचितांजलि = अंजलि बाँधे हुए, हाथ जोड़े हुए। उपरचितःअंजलि येन सः। अधिदैवतम् इव = देवता के समान । विगतान्यकर्त्तव्यः = अन्य कार्यों को छोड़े हुए, विगतानि अन्यानि कर्त्तव्यानि यस्य सः। स्तौति = स्तुति करता रहता है, यो वा माहात्म्यम् उद्भावयति = या जो उनकी महत्ता को बताता रहता है,अनेक प्रकार के शब्दजाल बनाकर उनकी महत्ता का बखान करता रहता है । महात्मनः भावः माहात्म्यम् । महात्मन्+ष्यञ् प्रत्यय । उद्भावयति = उद् + भू + णिच् से लट् लकार ।

हिन्दी भावार्थ:- अपनी बुद्धि का निरादर समझकर सचिवों के उपदेश पर कुढ़ते हैं, हितकारी वचन बोलने वाले पर कोप करते हैं, सभी प्रकार से उसी का अभिनन्दन करते हैं, उसी से बातें करते हैं, उसे ही अपने पास रखते हैं, उसी को आगे बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसे ही देते हैं, उसी से मित्रता रखते हैं, उसी की बातें सुनते हैं, उस पर धन की वर्षा करते हैं, उसे महत्त्व देते हैं और उसे ही अपना विश्वासपात्र बना लेते हैं, जो दिन-रात निरन्तर हाथ जोड़े हुए उन्हें देवता के समान प्रदर्शित करते हुए अन्य कार्यों को छोड़कर उन्हीं की स्तुति करता है या उनकी महत्ता का बखान करता रहता है ।

किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः। तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्।

शब्दार्थ - किं वा तेषां साम्प्रतम् = उनके लिए भला क्या उचित है। येषाम् = जिनके लिए। अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणम् = अधिकांश अतिशय क्रूर कर्मों के उपदेश से भरे हुए। अतिशयेन नृशंसः अतिनृशंसः, अतिनृशंसः प्रायः भागः यस्य तथाभूतः उपदेशः, तेन निर्घृणम्। निर्गता घृणा यस्मात् तथाभूता । यहाँ घृणा का अर्थ दया है । कौटिल्य अर्थात् चाण्क्य के अर्थशास्त्र से तात्पर्य है जिसमें राजा के लिए प्रायः क्रूरतापूर्ण उपायों का उपदेश किया गया है । अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः = जिनका स्वभाव एकमात्र अभिचार क्रिया में लगे रहने के कारण क्रूर है। अभिचारस्य क्रियाः अभिचारक्रियाः, तया क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते तथाभूताः (पुरोधसः का विशेषण) उनका स्वभाव क्रूर ही होता है, क्योंकि वे दूसरों को नष्ट करने, मारने के लिए हिंसा भावना से प्रेरित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाएँ करते रहते हैं । पुरोधसः = पुरोहित। गुरवः = गुरु होते हैं, उनके शिक्षक होते हैं । पराभिसन्धानपरा मन्त्रिणः = दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री । परेषाम् अभिसन्धानम् पराभिसन्धानम् तदेव परं येषां ते । अभिसन्धान =वंचना, धोखा, उपदेष्टारः = उपदेश देने वाले होते हैं। नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां = सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी (लक्ष्मी के लिए) । नरपतीनां सहस्राणि नरपतिसहस्राणि, तैः भुक्ता अनन्तरम् उज्झिता इति नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिता, तस्याम्। लक्ष्म्याम् आसक्तिः = लक्ष्मी में आसक्ति होती है। मारणात्मकेषु शास्त्रेषु अभियोगः = दूसरों को मारने का ज्ञान देने वाले तन्त्र आदि शास्त्रों में ही लगाव होता है । 'मारणात्मकेषु शस्त्रेषु' पाठ भी है तब अर्थ होगा दूसरों का विनाश करने वाले शस्त्रों में। सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्तः = जन्मजात प्रेम के कारण जिनके हृदय आर्द्र और अनुरक्त होते हैं (भ्रातरः का विशेषण)। सह जातं यत् प्रेम

सहजप्रेम, तेन आर्द्रम् हृदयं येषां तथाभूताः, सहजप्रेमार्द्रहृदयाः। सहजप्रेमार्द्रहृदयाश्च अनुरक्ताश्च सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः। भ्रातरः = भाई, अपने भ्राता। उच्छेद्याः = नष्ट किये जाने योग्य होते हैं, उन्मूलन या मार डालने योग्य होते हैं, उच्छेतुं योग्याः उच्छेद्याः । उत्+छिद्+ण्यत् । तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे = तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्ट देने वाले सहस्रों कार्यों के कारण क्रूर या भीषण । राजतन्त्रे = राजतन्त्र में, राज्य के शासन में । एवं प्रायेण यत्र एवंप्रायः। अतिशयेन कुटिलाः अतिकुटिलाः। एवंप्रायातिकुटिलाः कष्टाश्च चेष्टाः एवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टाः, तासां सहस्राणि, तैः दारुणम् तस्मिन् ।

हिन्दी भावार्थ:- उन राजाओं की कौन-सी बात उचित है जिनके लिए प्रायः अतिशय कर्मों के उपदेश से ही भरे हुए कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रमाण है, हिंसक अभिचार क्रियाओं के कारण जिनका स्वभाव एकमात्र क्रूरता का है, ऐसे पुरोहित जिनके गुरु होते हैं, जिनको उपदेश देने वाले दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री होते हैं, सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी लक्ष्मी में जिनकी आसक्ति होती है, जिनका लगाव दूसरों का विनाश करने वाले शास्त्रों (या शस्त्रों) में होता है और सहज प्रेम से आर्द्र हृदय वाले अनुरक्त भाई जिनके लिए उन्मूलित किये जाने योग्य होते हैं, तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्टकारी है।

अभ्यास प्रश्न 1 -

बहुविकल्पीय

1. अनुजीविना जनेन इस पद का क्या अर्थ है -

क. मित्र ख . राजा ग. सेवक घ. सैनिक

2. ललाट के उपर किसकी सम्भावना की जाती है -

क. चन्दन की ख . गेरू की ग. धन की घ. तृतीय नेत्र की

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. ब्राह्मणों की ..... नहीं करते।

4. हितकारी वचन बोलने वाले पर ..... करते हैं।

राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणी च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालम्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः । यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसे कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्चयसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन,

शब्दार्थ - अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने = और इस घोर मोह अर्थात् अविवेक रूपी अन्धकार को उत्पन्न करने वाले यौवन में । महान् चासौ मोहः महामोहः, महामोहेन अन्धं कर्तुं शीलं यस्य तत् महामोहान्धकारि, तस्मिन् । कारी = कृ + णिन् प्रत्यय । कुमार = कुमार चन्द्रापीड! तथा प्रयतेथाः = ऐसा प्रयत्न करो कि । अब यहाँ सत्रह वाक्य कर्मवाच्य में दिये गये हैं । इनका अर्थ की स्पष्टता के लिए कर्तृवाच्य में अनुवाद किया जा सकता है । यथा जनैः नोपहस्यसे = लोगों द्वारा तुम्हारी हँसी न उड़ायी जाय, तुम लोगों के उपहास के पात्र न बनो। साधुभिः न निन्द्यसे = सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, सज्जन तुम्हारी निन्दा न करें । गुरुभिः न धिक्क्रियसे = गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं । सुहृद्भिः न उपालभ्यसे = मित्रों के लिए उपालम्भ के पात्र न बनो, मित्र तुम्हें कोसें नहीं । विद्वद्भिः न शोच्यसे = द्विानों के लिए तुम

शोचनीय न बनो। यथा च = और जिस प्रकार के आचरण से। विटैः न प्रकाश्यसे = विटों या कामुक पुरुषों द्वारा तुम्हारे दोषों का प्रचान न किया जाय। कुशलैः न प्रहस्यसे = अपनी कार्यसिद्धि में चतुर व्यक्ति तुम्हारी हँसी न उड़ायें। भुजङ्गैः न आस्वाद्यसे = लम्पटों द्वारा तुम्हारे धन का भोग न किया जाय। सेवकवृन्दैः न अवलुप्यसे = सेवकगण तुम्हारे धन की लूट-खसोट न करें। वनिताभिः न प्रलोभ्यसे = स्त्रियों द्वारा तुम्हें लुभाया या फाँसा न जाय। लक्ष्म्या न विडम्ब्यसे = राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे। मदेन न नर्त्यसे = मद अर्थात् अहंकार से तुम नाचने न लगो। न उन्मत्तीक्रियसे मदनेन = मदन अर्थात् कामवासना तुम्हें पागल न बना दे। अनुत्मत्तः उन्मत्तः सम्पद्यमानः क्रियते इति। उन्मत्त+कृ+च्वि+लट् लकार।

हिन्दी भावार्थ:-सहस्रों चेष्टाओं के कारण भीषण इस राज्यतन्त्र में और घोर अविवेक रूपी अन्धकार उत्पन्न करने वाले यौवन में, कुमार! इस प्रकार प्रयत्न करना कि लोगों की हँसी के पात्र न बनो, सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं, मित्र तुम्हें उपालम्भ न दें, विद्वानों के लिए तुम शोचनीय न बनो, और (ऐसी चेष्टा करो) जिससे विट या कामुक पुरुष तुम्हारे दोषों का प्रचार न करें, अपनी कार्यसिद्धि में कुशल पुरुष तुम्हें ठगने न पावें, लम्पट लोग तुम्हारे धन का उपभोग न करें, सेवकगण तुम्हारे धन को लूटें नहीं, धूर्त तुम्हें धोखा न दें, स्त्रियाँ तुम्हें फँसा न सकें, राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे, तुम मद अर्थात् अहंकार से नाचने न लगो, कामवासना तुम्हें पागल न बना दे,।

नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता यत्नेन समारोपित-संस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणम्।

शब्दार्थ - नाक्षिप्यसे विषयैः = विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाय। न अवकृष्यसे रागेण = विषयभोग का आकर्षण तुम्हें पतन की ओर न ले जाय। नापह्रियसे सुखेन = सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे। कामम् = निश्चय ही। भवान् प्रकृत्या एव धीरः = आप स्वभाव से ही धैर्यशाली हैं। पित्रा च = और पिता द्वारा भी। महता यत्नेन = बड़े यत्न के साथ। समारोपितसंस्कारः = आप में संस्कार डाले गये हैं। समारोपिताः संस्काराः यस्मिन् सः। तरलहृदयम् = चंचल मन वाले को, तरलं हृदयं यस्य सः तरलहृदयः तम्। अप्रतिबुद्धं च = बोधरहित व्यक्ति को ही, न प्रतिबुद्धः तम्। मदयन्ति धनानि = धन पागल बना देते हैं, उन्मत्त कर देते हैं। तथापि = फिर भी। यद्यपि आप वैसे नहीं हैं, फिर भी। भवद्गुणसन्तोषः = आपके गुणों से उपजे हुए सन्तोष ने, आपके गुणों को देखकर मुझे जो सन्तोष हुआ है, उस सन्तोष ने। भवतः गुणाः भवद्गुणाः, तैः सन्तोषः। माम् एवं मुखरीकृतवान् = मुझे इस प्रकार कहने के लिए प्रेरित किया है, मुझसे यह सब कहलवाया है। अमुखरं मुखरं सम्पद्यमानं कृतवान्। इतमेव च = और यही बात। पुनः पुनः = बार-बार। अभिधीयसे = आप से कही जा रही है। मैं आपसे यही बात बार-बार कह रहा हूँ। विद्वांसम् अपि = विद्वान् को। सचेतनम् अपि = चेतना से युक्त प्रबुद्ध व्यक्ति को भी। चेतनया सह विद्यमानः सचेतनः, तम्। महासत्त्वम् अपि = महान शक्तिशाली या मनस्वी को भी। महान् सत्त्वः यस्य सः महासत्त्वः, तम्। अभिजातम् अपि = उच्च कुल में उत्पन्न को भी। धीरम् अपि = धैर्यवान् पुरुष को भी। प्रयत्नवन्तम् अपि पुरुषम् = प्रयत्न करने वाले को भी, अपनी उन्नति हेतु

उद्योगशील पुरुष को भी । इयं दुर्विनीता लक्ष्मीः इति = यह दुर्विनीता अर्थात् वश में न रहने वाली लक्ष्मी । दुर्विनीता = दुर्,वि + नी + क्त + आप् । खलीकरोति = दुष्ट बना देती हैं अखलं खलं सम्पद्यमानं करोति इति । सर्वथा = सभी प्रकार से अनुभव करें । कल्याणैः = मंगलाचारों के साथ । पित्रा क्रियमाणम् = पिता द्वारा किये जाने वाले कर्म ।

हिन्दी भावार्थः- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे। निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ । विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले ।

अनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढ़ां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरम् च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम् ।

शब्दार्थ - अनुभवतु भवान् = आप अनुभव करें। सभी प्रकार से राज्याभिषेक के सुखों को भोगिए नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम् = नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल को। युवा राजा इति युवराजः, युवराजस्य भावः यौवराज्यम्, नवं च तत् यौवराज्यम् नवयौवराज्यम्, तस्मै अभिषेकः नवयौवराज्याभिषेकः, सः एव मंगलम् नवयौवराज्याभिषेकमंगलम् । कुलक्रमागताम् = कुलपरम्परा से चली आने वाली, कुलस्य क्रमः कुलक्रम: तस्मात् आगताम् कुलक्रमागताम् । उद्वह = वहन कीजिये । पूर्वपुरुषैः ऊढां धुरम् = पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी धुरा को, राज्य के भार को, गाड़ी के अग्रभाग को धुर् कहते हैं, जहाँ बैल जोते जाते हैं । राज्य का भार वहन करना भी एक प्रकार से मानो गाड़ी को खींचना ही है । पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः तैः । अवनमय = झुका दो, नीचे कर दो । अव + नी + णिच् + लोट् लकार । द्विषतां शिरांसि = शत्रुओं के सिरों को । द्विषन्ति इति द्विषन्तः तेषाम् । उन्नमय = ऊँचा करो । उत् + नी + णिच् + लोट् लकार। स्वबन्धुवर्गम् = अपने बन्धुओं के समूह को । बन्धूनां वर्गः बन्धुवर्गः, स्व चासौ बन्धुवर्गश्च स्वबन्धुवर्गः तम् । अभिषेकानन्तरम् च = और अभिषेक के बाद । अभिषेकात् अनन्तरम् अभिषेकानन्तरम् । प्रारब्धदिग्विजयः = दिग्विजय प्रारम्भ कर, दिशां विजयः दिग्विजयः, प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः। परिभ्रमन् = पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए, पर् , भ्रम्+शतृ। विजिताम् अपि तव पित्रा = आपके पिता द्वारा जीती गयी भी (वसुन्धराम् का विशेषण है)। विजिताम् = वि + जि + क्त + टाप्-विजिता, ताम् । सप्तद्वीपभूषणाम् = सात द्वीपों के अलंकार वाली, सप्त च ते द्वीपाः सप्तद्वीपाः, ते एव भूषणं यस्याः तथाभूता सप्तद्वीपभूषणा, ताम् । पृथ्वी को सप्तद्वीपा कहा गया है। पुराणों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों में है, जिनके नाम हैं- जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रोंच, शाक और पुष्कर । पुनः विजयस्व = फिर से जीतिए, दुबारा अपने अधीन कीजिए । वसुन्धराम् = पृथ्वी को। वसु का अर्थ धन है, पृथ्वी अपने भीतर अनेक प्रकार के धनों को धारण करती है, इस कारण इसे वसुन्धरा कहते हैं । वसूनि धारयति इति वसुन्धरा । अयं च ते कालः =

यही आपके लिए समय है। युवराज पद पर अभिषेक होते ही अपने प्रताप को स्थापित करने के लिए यही सर्वोत्तम समय है। प्रतापम् आरोपयितुम् = अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का, जमाने का। प्रताप राजा का अपनी प्रजा पर और दूसरे राजाओं पर प्रभाव है, जो सेना की शक्ति और राज्य की आर्थिक समृद्धि से स्थापित होता है। पूर्व में अपने पिता द्वारा जीते गये राजाओं को पुनः स्वयं जीतने के लिए शुकनास का उपदेश इस प्रताप को स्थापित करने के उद्देश्य से ही प्रेरित है।

हिन्दी भावार्थ:- नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए। यही आपके लिए (सर्वोत्तम) समय है अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का।

आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति, इत्येतावदभिधायोपशशाम। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभि-रमलाभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयों मुहूर्त्तं स्थित्वा स्वभवनम् आजगाम।

शब्दार्थ - आरूढ-प्रतापः राजा = जिसके प्रताप का प्रभाव स्थापित हो गया है, जम गया है, ऐसा राजा। आरूढः प्रतापः यस्य तथाभूतः। जिस राजा का प्रताप स्थापित और सुदृढ हो जाता है उसके आदेश का सभी पालन करते हैं यही बात आगे उपमा देते हुए कहते हैं। त्रैलोक्यदर्शी इव = तीनों लोकों को देखने वाले योगी के समान। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्। त्रिलोकी से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय हुआ है। त्रैलोक्यम् पश्यति इति त्रैलोक्यदर्शी। त्रैलोक्य+दृश्+णिन् प्रत्यय। सिद्धादेशः भवति = आज्ञाएँ सफल होती हैं, जिस प्रकार तीनों लोकों की दृष्टि वाला सिद्ध योगी जो कह देता है वह सत्य हो जाता है उसी प्रकार अपने प्रताप को जमा लेने वाले राजा के आदेश अनुल्लंघित और अमोघ होते हैं, उसकी आज्ञा का निश्चित रूप से पालन होता है। यहाँ उपमालंकार है। सिद्धः आदेशः यस्य सः सिद्धादेशः। इति एतावत् अभिधाय = इस प्रकार इतना कहकर जिस प्रकार त्रैलोक्यदर्शी सिद्ध योगी के वचन सत्य होते हैं, उसी प्रकार अपने प्रताप को सुदृढ़ कर लेने वाले राजा का आदेश अमोघ होता है। इस प्रकार इतना कहकर (शुकनास) चुप हो गये। अभि+धा+कत्वा(ल्यप्)। उपशशाम = चुप हो गये। शुकनास ने उपदेश देना समापत कर दिया। उप+शम्+लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन। उपशान्तवचसि शुकनासे = शुकनास के उपदेश के वचनों को समाप्त कर देने पर, वचन बोलने से विराम लेने पर। उपशान्तं वचः यस्य सः उपशान्तवचः तस्मिन्। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति हुई है। चन्द्रापीडः = राजकुमार चन्द्रापीड। चन्द्रापीड पर शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा और उसने कैसा अनुभव किया इसका वर्णन अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया गया है। ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः = उन निर्मल उपदेश के वचनों से। प्रक्षालितः इव = मानो धुले हुए समान प्र + क्षाल् + क्त। उन्मीलितः इव = खिले हुए के समान, जैसे कमल आदि खिल उठते हैं उस प्रकार से आनन्द से खिले हुए, उत् , मील्+क्त प्रत्यय। स्वच्छीकृतः इव = स्वच्छ बना दिये गये के समान। निर्मृष्टः इव = पोंछा गया-सा, माँजा

गया-सा। निर् + मृज् + क्त। अभिषिक्तः इव = नहलाया गया-सा। अभि + सिच् + क्त प्रत्यय। अभिलिप्त इव = मानो लेप कर दिया गया हो। अभि + लिप् + क्त। अलंकृत इव = मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो। अलम् + कृ + क्त प्रत्यय। पवित्रीकृत इव = मानों पवित्र कर दिया गया हो, अपवित्रः पवित्र सम्पद्यमानः कृतः, पवित्र+कृ+च्वि+क्त। उद्भासितः इव = चमकले हुए-सा, मानो चमक आ गयी हो। उत+भास्+क्त प्रत्यय। प्रीतहृदयः = प्रसन्न मन से युक्त होकर, प्रीतं हृदयं यस्य तथाभूतः, मन में आनन्द का अनुभव करते हुए। मुहुर्त्तम् स्थित्वा = कुछ देर रुककर। स्वभवनम् आजगाम = अपने भवन को लौट आया। आ + गम् + लिट् लकार। स्वस्य भवनम् स्वभवनम्। अपने महल में आ गया।

हिन्दी भावार्थः- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेश के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय

1. तुम उपहास के पात्र न बनो ऐसा किसने कहा -
   क. चन्द्रापीड ख. तारापीड ग. शूद्रक घ. शुकनास
2. पूर्वपुरूषैरूढां धुरा में धुरा का क्या अर्थ है -
   क. भार ख. उत्साह ग. लाभ घ. हानि

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. अवनमय ..... शिरांसि।
4. ऐसा राजा जिसका प्रताप ..... हो गया है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1- चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन किससे पागल बना देता है ?

2- किसने बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं ?

3- आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है यह किसने कहा ?

4- शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा ?

5- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड कहा चला गया ?

5.4-सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने से आपने यह जाना कि शुकनास के द्वारा अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेशों के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया। उपदेश इस प्रकार थे - विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे।

निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ। विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले। अत: उपर्युक्त वर्णनों के अनुशीलन से आपको शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेशों का अपने शब्दों में उल्लेख करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त है। इसीलिए आप इस इकाई से प्राप्त सभी शिक्षाओं को समझा सकेंगे।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
चन्द्रापीडः	राजकुमार चन्द्रापीड
ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः	उन निर्मल उपदेश के वचनों से
प्रक्षालितः इव	मानो धुले हुए
उन्मीलितः इव	खिले हुए के समान,
स्वच्छीकृतः इव	स्वच्छ बना दिये गये के समान
निर्मृष्टः इव	पोंछा गया-सा, माँजा गया-सा
अभिषिक्तः इव	नहलाया गया-सा
अभिलिप्त इव	मानो लेप कर दिया गया हो
अलंकृत इव	मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो
पवित्रीकृत इव	मानों पवित्र कर दिया गया हो,
उद्भासितः इव	चमकले हुए
प्रीतहृदयः	प्रसन्न मन से युक्त होकर,
मुहुर्त्तम् स्थित्वा	कुछ देर रुककर।
स्वभवनम् आजगाम	अपने भवन को लौट आया।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –

1. ग 2. घ 3. पूजा 4. क्रोध

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. घ 2. क 3. द्विषतां 4. स्थापित

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न -

(1) अहंकार से (2) पिता ने (3) शुकनास ने कहा
(4) अनेक प्रकार का (5) अपने महल

5. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चन्द्रापीड के व्यक्तित्व का उल्लेख अपने शब्दों में कीजिये।

2. इस इकाई पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये।

3. बाणभट्ट की गद्य शैली की विवेचना कीजिये।

4. सिद्ध कीजिये कि बाणभट्ट एक सफल गद्यकार है।

खण्ड- तीन (Section-C)
शिवराजविजयम्

इकाई .1 पं0 अम्बिकादत्तव्यास का परिचय एवं समय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पं0 अम्बिकादत्तव्यास का परिचय एवं समय
1.3.1 अम्बिकादत्तव्यास का कार्य क्षेत्र एवं शिक्षा
1.3.2 अम्बिकादत्तव्यास का साहित्यिक परिचय
1.4 'शिवराजविजय' का परिचय एवं प्रतिपाद्य
1.4.1 शिवराजविजय का कथानक
1.4.2 शिवराजविजय की ऐतिहासिकता
1.4.3 शिवराजविजय की रचना-शैली
1.4.4 शिवराजविजय के प्रमुख पात्रों का परिचय
1.4.5 शिवराजविजय का उद्देश्य
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित तृतीय खण्ड की प्रथम इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि पं0 अम्बिकादत्त व्यास का परिचय एवं स्थितिकाल के विषय में जानेंगे। साहित्याचार्य पं0 अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' नामक गद्य-काव्य की रचना की, जो काशी से 1901 ई0 में प्रकाशित हुआ। व्यास जी का स्थितिकाल 1858-1900 ई0 था। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे परन्तु इनके पितामह काशी में आकर बस गये थे। वहीं उनका अध्ययन सम्पन्न हुआ। पं0 अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलंकार से सजाया है। उन्होनें अनुकूल एवं समुचित अलंकार का संयोजन किया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- अम्बिकादत्त व्यास के स्थितिकाल के विषय में अध्ययन करेंगे।
- शिवराजविजय के ऐतिहासिकता के विषय में जान सकेंगे ।
- शिवराजविजय की भाषा शैली के विषय में अध्ययन करेंगे।
- महाराज शिवाजी के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह के विषय में अध्ययन करेंगे।

1.3 पं0 अम्बिकादत्तव्यास का परिचय एवं समय

साहित्याचार्य पं0 अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजय' नामक गद्य-काव्य की रचना की, जो काशी से 1901 ई0 में प्रकाशित हुआ। व्यास जी का स्थितिकाल 1858-1900 ई0 था। इनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे परन्तु इनके पितामह काशी में आकर बस गये थे। वहीं उनका अध्ययन सम्पन्न हुआ। 'बिहार-विहार' में उन्होंने 'संक्षिप्त निज वृतान्त' स्वयं लिखा है। मृत्यु के समय वे गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज पटना में प्रोफेसर थे। बिहार में ''संस्कृत संजीवनी समाज'' स्थापित कर उन्होंने संस्कृत शिक्षा प्रणाली का सुधार किया। व्यास जी ने छोटी-बड़ी मिलाकर संस्कृत और हिन्दी में कुल 75 पुस्तकें लिखी हैं। संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास का सौभाग्य 'शिवराजविजय' को प्राप्त है। जो अनुपम वाक्य-विन्यास, अलंकरण एवं शब्दश्लेष की दृष्टि से कादम्बरी से प्रभावित-रूप शिल्प की दृष्टि से बंग उपन्यासों के निकट है। पं0 अम्बिकादत्त व्यास बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे। 10 वर्ष की अवस्था में ही काव्य - रचना प्रारम्भ कर दी थी। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में व्यास जी ने धर्मसभा की परीक्षा में पुरस्कार प्राप्त किया और तैलंग अष्टावधान के 'सुकविरेषः' कहने पर भारतेन्दु जी ने ''काशीकविता वर्द्धिनी सभा'' की ओर से उन्हें 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की।बाल विवाह की प्रथा के कारण तेरह वर्ष की अवस्था में व्यास जी का विवाह हो गया। इनके पिता दुर्गादत्त पौरोहित्य कर्म से जीविकोपार्जन करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त परिवार का भरण-पोषण साधारण रूप से ही हो पाता था। दूसरी ओर व्यास जी का पारिवारिक जीवन भी सुखमय नहीं था। असमय में माता-पिता का देहावसान हो गया। यौवन की चौखट पर पाँव रखते ही उनके छोटे भाई ने अपनी पत्नी के सिन्दूर साफ कर दिये। इनकी छोटी बहन ने भी जीवन के

वसन्तकाल में इनका साथ छोड़ दिया। इनके बड़े भाई इनसे द्वेष भाव रखते थे। इन अपार कष्टों, असीम वेदनाओं और अनेक मानसिक आघातों को भी अपने अन्तस् में समेट कर अपने कर्त्तव्य-पथ पर हिमाचल की तरह अडिग रहे। उन्होंने शिव के समान सारे अशिव आसव का पान करके भी समाज को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का मिश्रित अमृत पिलाया।व्यास जी सं0 1937 में गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण करके 1940 में एक संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य के पद पर कार्य करने लगे। कुछ दिन बाद वहाँ से त्याग-पत्र देकर मुजफ्फरपुर चले गये। जिला स्कूल के प्रधानपण्डित के पद पर कार्य करने लगे।व्यास जी अप्रतिम प्रतिभाशाली थे। वक्ता और साहित्य स्रष्टा के साथ ही चित्रकारिता, अश्वारोहिता, संगीत और शतरंज में भी विशेष रुचि रखते थे। सितार, हारमोनियम, जल तरंग और मृदंग इनके प्रिय वाद्य थे। व्यास जी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा के ज्ञाता थे। न्याय, व्याकरण, वेदान्त और दर्शन में इनकी अच्छी गति थी। कविता कला में इतने प्रवीण थे कि एक घड़ी में सौ श्लोकों की रचना कर सकते थे। सौ प्रश्नों को एक साथ ही सुनकर उन सभी का उत्तर उसी क्रम में देने की अद्भुत क्षमता थी। इसीलिये इन्हें ''शतावधान' तथा 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी।व्यास जी की लगभग 80 रचनाओं में 'शिवराजविजयम्' (उपन्यास), 'सामवतम्' (नाटक) गुप्ता-शुद्धि-प्रदर्शनम्, अबोधनिवारण तथा 'बिहारी विहार' (हिन्दी काव्य) प्रमुख थे। 22 वर्ष की अवस्था में लिखा गया व्यास जी का 'सामवतम्' नाटक भाष्य, भाव और वर्ण्य की दृष्टि से अधिक उत्तम है। उसके विषय में डॉ0 भगवानदास ने लिखा है -''श्री अम्बिकादत्त व्यास जी का रचा 'सामवतम्' नामक नाटक दो बार पढ़ा। 'पुराणमित्येव हि साधु सर्वम्' ऐसा मानने वाले सज्जन प्रायः मेरे मत पर हँसेंगे तो भी मेरा मत यही है कि कालिदास रचित 'शकुन्तला' से किसी बात में कम नहीं है।

'सामवत्तम्' नाटक को सं0 1945 में मिथिलेश्वर को समर्पित करने के बाद ही शिवराजविजय की रचना आरम्भ कर दी और सं0 1950 में उसे पूरा कर दिया। सं0 1952 में बिहारी के दोहों पर आधारित कुण्डलियों में रचित 'बिहारी विहार' की रचना के बाद हिन्दी जगत् के मूर्धन्य कवियों के चर्चा के विषय बन गये। अम्बिकादत्त व्यास की सर्वश्रेष्ठ कृति उनका शिवराजविजय है। शिवराजविजय संस्कृत-गद्य-साहित्य में अन्यतम स्थान रखता है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के बाद व्यास जी का ही नाम आता है। यद्यपि अन्य बहुत से और भी गद्यकार हैं किन्तु साहित्यिक उत्कृष्टता, बौद्धिक प्रतिभा और सामाजिक आकलनों के वैशिष्ट्य के कारण व्यास जी प्रमुख गद्यकारों में परिगणित हैं। इस सबका अधिक श्रेय शिवराजविजय को है।दुःख का विषय है कि ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति दीर्घायु नहीं हो सका। बयालीस वर्ष की अवस्था में ही महाकवि का सम्मान प्राप्त कर व्यासजी सोमवार, मार्ग शीर्ष त्रयोदशी, सं0 1957 को अपने पीछे एक नववर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को असहाय छोड़कर पंचतत्त्व को प्राप्त हो गये। किन्तु उनका यशःशरीर अजर और अमर है।

1.3.1 पं0 अम्बिकादत्तव्यास का कार्य क्षेत्र एवं शिक्षा—

अंबिकादत्त व्यास जी की शिक्षा काशी में हुई। मात्र 12 वर्ष की उम्र में ही इनको 'काशी कविता वर्धनी सभा' ने 'सुकवि' की उपाधि से सम्मानित किया। अम्बिकादत्त व्यास जी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए। असाधारण विद्वान तथा प्रतिभा के कारण समकालीन विद्वनमंडली में 'भारत भास्कर', 'साहित्याचार्य' तथा 'व्यास' आदि उपाधियों से सम्मानित हैं। 42 वर्ष की उम्र में आपको 'महाकवि' का सम्मान प्राप्त हुआ।

आधुनिक संस्कृत रचनाकारों में सर्वाधिक ख्याति प्राप्त एवं प्रतिभा सम्पन्न साहित्याचार्य हैं। व्यास जी को19 वीं सदी का 'बाणभट्ट' माना जाता है।

1.3.1 पं0 अम्बिकादत्तव्यास का साहित्यिक परिचय—

अम्बिकादत्तव्यास जी ब्रजभाषा के कुशल और सरस कवि थे। इन्होंने कवित्त, सवैया, की प्रचलित शैली में ब्रजभाषा में रचना की थी। अंबिकादत्त व्यास जी जीवन पर्यन्त साहित्य आराधना में लीन रहे। आधुनिक काल में व्यास जी सबसे ज्यादा ख्याति प्राप्त एवं अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में काशी के साहित्यकारों में व्यास जी का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। अम्बिकादत्त व्यास जी ने गद्य और पद्य पर भी सम्यक रूप से विचार विमर्श किया है। अम्बिकादत्त व्यास जी ने 'वैष्णव पत्रिका' के नाम से सनातन धर्म की सेवा में संलग्न हुवे है बाद में 'पीयूष प्रवाह' नाम से साहित्य सेवा के क्षेत्र में अग्रसर हुए।

व्यास जी अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। वक्ता और साहित्य स्रष्टा के साथ ही चित्रकारिता, संगीत और शतरंज में भी उनकी विशेष रुचि थी। इन्हें वाद्य यन्त्रों का भी ज्ञान था। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। व्याकरण, न्याय, वेदान्त और दर्शन में इनकी विशेष रुचि थी। कविता कला में ये इतने प्रवीण थे कि एक घड़ी में 100 श्लोकों की रचना कर सकते थे। इसलिये संवत् 1938 में 'काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी' सभा में इन्हें 'घटिकाशतक' की उपाधि प्रदान की गई। 100 प्रश्नों को एकसाथ ही सुनकर उन सभी का उत्तर उसी क्रम में देने की अद्भुत क्षमता थी इसलिये इन्हें 'शतावधान' की उपाधि भी मिली थी। व्यास जी ने हिन्दी और संस्कृत में छोटी.बड़ी सब मिलाकर 80 पुस्तकों की रचना की। सहस्त्रनामरामायण, बालव्याकरण, मित्रालापः, रत्नाष्टकम्, सामवतम् नाटक, कथाकुसुमम्, गद्यकाव्यमीमांसा, गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, धर्माधर्मकलकलम्, द्रव्यस्तोत्रम्, शिवराजविजय आदि इनकी सस्कृत भाषा में प्रकाशित रचनाएं हैं अबोंधनिवारण, अवतारमीमांसा, आश्चर्यवृत्तान्त, ईश्वरेच्छा, बिहारी-विहार, भारतसौभाग्य, ललितानाटिका, विभक्तिविलास आदि इनकी हिन्दी भाषा में प्रकाशित रचनाएं हैं।

'शिवराजविजय' अम्बिकादत्त व्यास जी की सर्व श्रेष्ठत साहित्यिक कृति है। संस्कृत गद्यसाहित्य में शिवराजविजय का अन्यतम स्थान है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के बाद संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा पर यदि दृष्टि डालें तो और भी गद्यकारों के नाम प्राप्त होते हैं किन्तु बौद्धिक प्रतिभा, साहित्यिक उत्कृष्टता और सामाजिक परिदृश्यों के आकलन की विशिष्टता के परिणामस्वरूप व्यास जी का नाम प्रमुख गद्यकारों की श्रेणी में अंकित है।

1.4 'शिवराजविजय' का परिचय एवं प्रतिपाद्य

शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है इसमें वर्णित कथा ऐतिहासिक हैं, किन्तु व्यास जी ने अपनी प्रतिभा और कल्पना के सहारे उसे उच्च कोटि की साहित्यिकता प्रदान कर दी है। इसकी की रचना 1898 ई. में प्रारम्भ हुई, इसकी पूर्ति में 15 वर्ष का समय लगा। यह ग्रन्थ बंगला उपन्यास की धारा से प्रेरित है। व्यास जी ने अपनी इस रचना को स्वयं उपन्यास कहा है। शिवराजविजय तीन विरामों में विभाजित है। प्रत्येक विराम में चार-चार निःश्वास हैं। इसके नायक शिवाजी हैं तथा प्रतिनायक औरंगजेब है। इस ग्रन्थ में शिवाजी का चरित्र उदात्त रूप में वर्णित किया गया है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है।

शिवराजविजय की कथा अधिकांश रूप में मौलिक होते हुये भी उसमें साहित्यिक कल्पना का समावेश है। इसमें कथा-वस्तु की संघटना प्राच्य और पाश्चात्य शिल्प के समन्वय से की गई है। यद्यपि इसमें दो स्वतन्त्र धाराएँ समानान्तर रूप से प्रवाहित होती हैं- एक के नायक शिवाजी हैं तो दूसरी के नायक रघुवीरसिंह हैं, तथापि एक-दूसरे से पूर्ण स्वतन्त्र और निरपेक्ष नहीं। एक-दूसरे के पूरक हैं। एक का महत्त्व दूसरे से उद्भासित होता है। अतः दोनों परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। कथा में इतना प्रवाह और सम्प्रेषणीयता है कि पाठक की आकांक्षा उत्तरोत्तर वृद्धिगत होती जाती है। शिवराजविजय की सम्पूर्ण कथा तीन निःश्वासों में समाहित है।

व्यास जी के शिवराजविजय में इतिहास और कल्पना, आदर्श और यथार्थ अनुभव और कल्पना का सुन्दर समन्वय है। उनके सभी पात्र अपने चरित्र निर्वाह में पूरी तरह से खरे उतरते हैं। वीर शिवाजी, गौरसिंह, रघुवीरसिंह, यशवन्तसिंह, अफजलखाँ, शाइस्तखाँ तथा ब्रह्मचारी आदि सदा अपनी स्वाभाविकता और यथार्थता का निर्वाह करते हैं। इसमें न कहीं अतिशयता है और न कहीं न्यूनता या अस्पष्टता। शिवराजविजय वीर रस प्रधान काव्य है तथापि उपकारी रूप में सभी रसों का चित्रण है। व्यास जी ने अलंकार-विधान में सदैव सजगता दिखाई है। यद्यपि इनका वर्णन कहीं पर अलंकृत नहीं है तथापि अनावश्यक अलंकारभार से बोझिल भी नहीं है।गद्यकारों में सर्वाधिक अलंकार-विधान बाण ने किया है। यदि इस क्षेत्र में उनके साथ व्यास जी को देखा जाय तो अन्तर यह दिखेगा कि इनकी कृति अनपेक्षित अलंकार-भार से बोझिल नहीं है। शिवराजविजय की शैली अत्यन्त सरल, सरस प्रवाहमयी है। भाषा की सरलता और भाव की उत्कृष्टता का समन्वय ही कवि की प्रमुख विशेषता होती है। कविकथ्य जितना ही सरल और सुन्दर ढंग से कहा जाय, काव्य उतना ही हृदयग्राही और 'सद्यः परिनिवृतये' की भावना को प्राप्त करने वाला होता है। अस्तु, 'शिवराजविजय' भाषा और भाव दोनों ही दृष्टि से एक उत्तम कोटि का काव्य कहा जा सकता है। इसमें प्रतिभा की प्रौढ़ता, कल्पना की सूक्ष्मता, अनुभव की गहनता, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों की यथार्थता और रमणीयता पदावलियों की मधुरता, कथानक की प्रवाहमयता, आदर्श की स्थापना, शिव की भावना और सुन्दर की सुन्दरता निहित है। उपन्यास की दृष्टि से भी कथानक, पात्र, घटना, संवाद, अन्तर्द्वन्द, आकांक्षा आदि तत्त्वों से पूर्ण है और 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की कसौटी पर खरा उतरता है।

1.4.1 शिवराजविजय का कथानक—

इस उपन्याय में वीर शिवाजी ने दक्षिण में यवनों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न होकर स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। शिवाजी की अनवरत विजय से उद्विग्न होकर बीजापुर के शासक ने उनसे युद्ध करने के लिए अफजल खान को भेजा। अफजल खान ने भी भीमा नदी के तट पर अपना शिविर लगाया। बीजापुर के शासक सन्धि का आश्रय लेकर वीर शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे किन्तु उनकी इस गुप्त योजना के विषय का शिवाजी ने पहले ही पता लगा लिया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर से पत्र लेकर जा रहा था। रास्ते में उसने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण कर लिया किन्तु वह कन्या एक आश्रम के अध्यक्ष ब्रह्मचारी गुरु के शिष्यों गौरसिंह एवं श्यामसिंह द्वारा बचा ली गयी। गौरसिंह द्वारा वह यवन गुप्तचर मार डाला गया। गौरसिंह ने उसके वस्त्रों से बीजापुर का वह गुप्त सन्देश पत्र प्राप्त किया। उस पत्र द्वारा बीजापुर की गुप्त दुरभिसन्धि को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजल खान को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धि प्रस्ताव लेकर भेजे गए पण्डित गोपनाथ ने प्रताप दुर्ग की

तलहटी में अफजल खान से मिलने का शिवाजी का प्रबन्ध किया। गारै सिंह गायक का वषों धारण कर अफजल खान के शिविर में जाकर समस्त वृत्तान्त पता लगा लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगलों में तथा अफजल खान के शिविर के आस.पास छिपा दी। अफजल खान प्रातः.काल शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने वस्त्रों के अन्दर कवच तथा हाथों में बघनखा पहनकर गए। आलिंगन करने पर शिवाजी ने अफजल खान के कन्धों और गर्दन को फाड़कर उसे भूमि पर पटक दिया तथा शिवाजी की सेना ने यवनों की सेना को मारकर भगा दिया।

गौरसिंह ने जिस ब्राह्मण कन्या की रक्षा की थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने के पश्चात् यह ज्ञात हुआ कि वह कन्या गौरसिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देवशर्मा हैं। उसके बाद ब्रह्मचारी गुरु के अनुरोध करने पर गौरसिंह ने अपना वृत्तान्त सुनाया जो इस प्रकार है - गौरसिंह और श्यामसिंह उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् तीनों भाई बहन पुरोहित के संरक्षण में रहने लगे। एकबार शिकार खेलने गए हुए दोनों भाइयों को लुटेरों ने पकड़ लिया किन्तु किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढकर भाग निकले और एक हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। वहाँ भीमा नदी के तट पर शिवाजी से उनकी भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे। शाइस्ता खाँ ने पूना पर अधिकार कर लिया और वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया था। शिवाजी ने सिंहदुर्ग में अपना एक सन्देश रघुवीर सिंह द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास भेजा। आँधी पानी की उपेक्षा करता हुआ रघुवीर सिंह तोरण दुर्ग पहुँचकर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देखकर रघुवीर सिंह के हृदय में उसके प्रति प्रेमभाव उत्पन्न हुआ। शिवाजी के आदेशानुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खाँ के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिए देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी के द्वारा रघुवीर सिंह को एक मोदक खिलाकर गले में एक माला पहनवाई और प्रातः.काल आकर रात्रि में देखे गए स्वप्न का वृतान्त सुनाने के लिए कहा। प्रातः.काल दुर्गाध्यक्ष से सन्देश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और यवनों के साथ युद्ध में 'विजय' तथा आर्यों के साथ युद्ध में 'पराजय' यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में रघुवीर सिंह की पुनः सौवर्णी से मुलाकात हुई। उसके पश्चात् वह हनुमान जी का प्रसाद लेकर सिंहदुर्ग की ओर चल पड़ा।

एक बार शिवाजी पण्डित के वेष में पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आए और सन्देह करने पर पीछा करने वाले चाँद खाँ को शिवाजी ने मार गिराया। शिवाजी ने यशवन्त सिंह से पूना से दूर रहने का अनुरोध करके कुछ चुने हुए मित्रों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाइस्ता खाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया। चाँद खाँ शाइस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गए। शाइस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। वहीं दूसरी ओर रघुवीर सिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा को गिरफ्तार कर लिया था। किसी समय ब्रह्मचारी गुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्व वृत्तान्त बतलाया। वहीं दूसरी ओर रघुवीर सिंह की प्रेमिका सौवर्णी ने क्रूरसिंह के द्वारा किये जाने वाले अपमान की बात बताई। उसी समय संयोगवश क्रूरसिंह की नियुक्ति दूसरी जगह हो गई और सौवर्णी का कष्ट दूर हो गया। रोशनआरा भी शिवाजी के प्रति अपना प्रेम प्रकट कर रही थी किन्तु

शिवाजी ने कहा कि वे उसे पिता द्वारा दिए जाने पर ही स्वीकार करेंगे। उसी समय जयसिंह ने सेना सहित आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जगाने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से मुगलों की कुछ शर्तें मानकर वे सन्धि करने के लिए विवश हुए। इसी सन्धि के परिणामस्वरूप रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया गया। उसके पश्चात् बीजापुर के किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह की मदद से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया। किन्तु रहमत खाँ और क्रूरसिंह द्वारा रघुवीर सिंह को राजद्रोही बतलाये जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया।

रघुवीर सिंह ने राधास्वामी का वेष धारण किया और शिवाजी का उपकार करता रहा। साथ ही सौवर्णी का अपहरण करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी 1666 में औरंगजेब के राजदरबार में उपस्थित हुए। मार्ग में राधास्वामी द्वारा कई बार रोके जाने पर भी शिवाजी नहीं माना अन्ततः आरैगं जेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा बैठा दिया। परन्तु अपनी योजना और रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गए। उसके पश्चात् राधास्वामी ही रघुवीर सिंह है, यह जानकर शिवाजी ने उससे क्षमा-याचना की। तदनन्तर रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट आता है। उसे मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी भी विवाह में सम्मिलित हुए और वैवाहिक जोड़े को आशीर्वाद प्रदान किया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिए गए सभी किले जीत लिए गए हैं। बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे.धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहम्मद खाँ भगा दिया गया।

1.4.2 शिवराजविजय की ऐतिहासिकता—

आधुनिक समालोचकों की दृष्टि में ''शिवराजविजय'' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। वर्तमान समय में उपन्यास एक वह साहित्य विधा है, जो संसार के प्रायः सभी देशों में प्रचलित है। संसार के प्रायः सभी विद्वानों ने इसे मानव जीवन की अभिव्यक्ति स्वीकार किया है जिसमें मनुष्य जीवन के रहस्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। उपन्यासों में भी अनेक विधाएँ हैं, जिनमें ऐतिहासिक उपन्यास अधिक लोकप्रिय है। उपन्यासकार जब ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर अपने कथानक का निर्माण करता है तब वह ऐतिहासिक उपन्यास कहलाता है। इसमें काल विशेष से सम्बन्धित घटनाओं के साथ काल्पनिक घटनाओं का भी समावेश हो सकता है। कवि तद्युगीन देश-काल को ध्यान में रखकर ऐतिहासिक पात्रों के साथ कुछ सीमा में काल्पनिक पात्रों को भी रख सकता है। यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का भी समावेश होता है तथापि उसमें प्रमुख तथ्यों की उपेक्षा नहीं की जाती है। इसके साथ ही इसमें कवि अपने व्यक्तित्व को विशिष्ट कल्पनाओं से भूतकाल की चरित गाथाओं, सामाजिक व्यवहार और परम्पराओं को इस प्रकार से जीवित करता हैं कि उनको पढ़कर पाठक का हृदय प्राचीन गौरव से अनुप्राणित हो जाता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास में संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रकृति का प्रत्येक रहस्य, जीवन का हर एक पहलू विषय बनाया जा सकता है और इसका महत्व तथा गहराई उपन्यास के सफल होने में सहायक होते हैं। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही ऐतिहासिक कथाएँ लिखी जाती रही है। संस्कृत में प्रायः अधिकांश

महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा नाटयकाव्य भी ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर लिखे गये हैं परन्तु वर्णन की प्रधानता; आदर्श की प्रतिष्ठा तथा कल्पना के अतिरेक के कारण उन्हें ऐतिहासिक काव्य नहीं कहा जा सकता है, इनमें से प्रमुख हैं-राजतरंगिणी, विक्रमांकदेवचरित, नवसाहसांकचरित, पृथ्वीराजविजय तथा हर्षचरित आदि।संस्कृत भाषा में प्राचीनकाल से कथा साहित्य की अनेक विधाएँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित गद्यकाव्य को आख्यायिका कहा जाता था। परन्तु यथार्थवादी दृष्टि से औपन्यासिक कला का प्रचलन आधुनिक युग की देन है।

संस्कृत भाषा में 18 वीं सदीं उपन्यास-विधा की काव्य-रचना का प्रारम्भ नहीं हुआ था। इस नवीन, मनोरम तथा चमत्कारी मार्ग की ओर संस्कृतज्ञों की प्रवृति न होने देखकर व्यास जी संस्कृत साहित्य की इस दुर्बलता को दूर करने के लिए प्रवृत्त हुए और महाराष्ट्र केसरी वीर शिवाजी के चरित पर आधारित इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके संस्कृत साहित्य में एक नवीन काव्य-विधा का सूत्रपात किया। व्यास जी की 'गद्यकाव्य' मीमांसा भाषा' के अध्ययन से विदित होता है कि वे यूरोपीय सम्पर्क से प्रोत्साहित बंगला उपन्यासों की शैली से प्रभावित थे। उन्नीसवीं सदी में भारतीय जनता में सांस्कृतिक चेतना का पुनर्जागरण हुआ। पराधीनता और जातीय गौरव के विनाश ने निश्चित रूप से व्यास जी को विह्वल किया होगा। और उस समय स्वातन्त्र्य तथा जातीय गौरव का सन्देश देने वाले महाराष्ट्र जीवन प्रभात, राजसिंह तथा आनन्दमठ आदि उपन्यासों का अनुसरण करते हुए उन्होंने संस्कृत भाषा में ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके भारतीय जनता को जातीय एंव राष्ट्रीय गौरव का सन्देश दिया। कुछ आलोचकों ने कल्पना और इतिहास की विभाजक रेखा की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यासों के चार प्रकार माने हैं-

1. पूर्ण प्रामणिक तथा साहित्य से ओत-प्रोत।
2. ऐतिहासिक वातावरण से युक्त तथा कल्पित पात्र और घटनाओं से युक्त।
3. ऐतिहासिक पात्रों से युक्त किन्तु कल्पित घटनाओं से ओत-प्रोत।
4. ऐतिहासिक घटनाओं के सत्य का निदर्शन करने वाले।

उक्त विभाजन के अनुसार 'शिवराजविजय' को प्रथम श्रेणी का उपन्यास माना जा सकता है। इस श्रेणी के उपन्यास में इतिहास और कल्पना का समन्वय लेखक को करना होता है। शिवराजविजय में न तो कल्पना द्वारा इतिहास को विकृत किया गया है और न ही ऐतिहासिक यथार्थ के बाहुल्य से इसे नीरस अथवा घटना का द्योतक बनाया गया है। इस उपन्यास में लेखक ने ऐतिहासिक यथार्थता और कल्पना का इस प्रकार सम्मिश्रित चित्रण किया है कि दोनों को अलग-अलग पहिचानना कठिन है। इसमें ऐतिहासिक तथा कल्पित दोनों पात्रों का चरित देश काल के अनुरूप ही है। इसकी सभी प्रमुख घटनाएँ भी ऐतिहासिक तथा वास्तविक हैं। इस प्रकार इस उपन्यास की ऐतिहासिकता की समीक्षा हम - 1. पात्र-योजना, 2. चरित्र-चित्रण तथा 3. घटनाओं के वर्णन के आधार पर कर सकते हैं।

1.4.3 शिवराजविजय रचना-शैली—

व्यास जी ने शिवराजविजय में गद्य की प्राचीन परम्पराओं का पालन करते हुए उसकी अतिशयता से बचने की चेष्टा की है। वैदर्भी रीति का आश्रय लेते हुय अधिक समासों से उपन्यास का क्लिष्ट नहीं बनाया है। अलंकारों का भी प्रयोग उचित मात्रा में करके उससे काव्य

को बोझिल नहीं बनाया है। कहीं-कहीं पर नाटकीय मोड़ से उपन्यास को अत्यधिक मार्मिक एवं हृद्य बना दिया। जयसिंह द्वारा शिवाजी के सैनिकों को पारितोषिक दिये जाते समय रघुवीर का अपमानित किया जाना, आगरे में शिवाजी की कृत्रिम रुग्णता के अवसर पर मुरेश्वर का यवन चिकित्सक के रूप में आना आदि भावनात्मक घटनाओं के नाटकीय दृश्य शिवराजविजय की विशेषताएँ हैं।

1.4.4 शिवराजविजय के प्रमुख पात्रों का परिचय—

1. शिवाजी का परिचय—

अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में शिवाजी के आदर्श चरित्र का वर्णन किया है। शिवाजी धर्म की रक्षा करने वाले, राजनीति में कुशल, आदर्श व्यक्तित्वन के धनी हैं। अपनी संस्कृनति की रक्षा के लिए वे अपने प्राणों का बलिदान करने को भी तैयार हैं। शिवाजी राजनीति में निपुण थे और की परम्परा का अनुसरण करते हुये शठों के साथ शठता करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। शिवाजी ने गुप्तचरों का ऐसा जाल बिछाया हुआ था कि उन्हें शत्रुओं की गुप्त मन्त्रणाओं की सूचना मिल जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति शिवाजी के प्रति इतना निष्ठावान् था कि वह शिवाजी को देवतुल्य मानता था। संन्यासी वेष में गौरसिंह द्वारा द्वारपाल की परीक्षा, रघुवीर सिंह का भयंकर आँधी तूफान की परवाह न कर तोरण दुर्ग पहुँचना आदि अनेक ऐसे प्रसंग हैं जिनसे उनकी कुशल राजनीतिज्ञता का बोध होता है। शिवाजी की वीरता और उनके सिपाहियों की निर्भीकता एवं युद्ध कौशल से शत्रुसेना सदा भयाक्रान्त रहती थी।

2. गौरसिंह का परिचय —

अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में गौरसिंह एवं श्यामसिंह के त्याकग तथा उनकी वीरता का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। गौरसिंह बड़ी वीरता के साथ अपहृत बालिका को यवनों से छीनता है तथा यवन युवक की हत्या कर उसकी जेब से पत्र निकालता है जिससे अफजल खान की योजना का पता लग जाता है। गौरसिंह एक अच्छा सुभट है, राजनीति में प्रवीण है, योद्धाओं में अग्रणी है तथा अपने कार्य में दृढ, आलस्यरहित तथा सदैव सजग एवं तत्पर रहने वाला है।

3. रघुवीर सिंह का परिचय —

रघुवीर सिंह शिवाजी का एक विश्वस्त दूत है, इस पर तोरण के दुर्गाध्यक्ष को भी आश्चर्य होता है। रघुवीर सिंह विभिन्न कष्टों को सहते हुए तोरण दुर्ग की यात्रा करता है और मुख्य द्वार बन्द होने से पहले ही वहाँ पहुँच जाता है 'इतने कम समय में इतनी दूर आ गये' यह पूछने पर वह उत्तर देता है कि 'प्रभु (शिवाजी) का ऐसा ही आदेश था।' इस प्रकार शिवाजी के सेवक अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए शिवाजी के आदेशों का पालन करते थे।

4. अफजल खान का परिचय —

अफजल खान को बीजापुर के नवाब शाइस्ता खाँ ने शिवाजी को जीतने के लिए प्रेषित किया था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि वह शिवाजी को जीवित ही पकड़कर लाएगा किन्तु अन्य शासकों के समान वह भी विलासी अदूरदर्शी, आत्मश्लाघी तथा सूक्ष्म राजनीतिक दाँव-पेंच से अनभिज्ञ था। परिणामतः वह तानरंग (गौरसिंह) के सामने ही अपने सेनानायकों को आदेश देते समय अपनी सारी योजनाएं प्रकट कर देता है। इस प्रकार इनकें अत्याचारों को भी ऐतिहासिक तथ्यों के अनुकूल काव्यात्मक ढंग से चित्रण किया है।

1.4.5 शिवराजविजय का उद्देश्य—

संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार ये 6 उद्देश्य माने गये हैं -यशः प्राप्ति, धनप्राप्ति, व्यवहार-ज्ञान, दुःख-विनाश, आनन्द प्राप्ति तथा उपदेश। प्रायः इन्हीं उद्देश्यों के लिये काव्यों की रचना की जाती थी। काव्य-रचना उद्देश्य की दृष्टि से भी व्यास जी के शिवराजविजय में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने परम्परागत प्रयोजनों को रखते हुए भी देश, जाति और धर्म के गौरव की प्रतिष्ठा और इससे जनमानस को आप्लावित करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया- ''परं मया तु सनातन धर्मधूर्वह शिवराजवर्णनेन रशना पावितैव, प्रसंगतः सदुपदेश निर्देशैः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिक काव्य रुचीनि स्वमित्राणि रंजितान्येव ...''व्यास जी का दूसरा उद्देश्य यह रहा कि संस्कृत साहित्य में नवीन, मनोरम तथा चमत्कारपूर्ण मार्गों का आधान किया जाय। व्यास जी अपनी सशक्त लेखनी से शिवराजविजय उपन्यास विधा को स्रावित करके अपने उद्देश्यों में पूर्ण सफल हुए हैं।

बोध प्रश्न—1

अभ्यास प्रश्न 1

1. व्यास जी के पिता का नाम था ?
   - क. दुर्गादत्त
   - ख. राजाराम
   - ग. देवीदत्त
   - घ. कृष्णदत्त
2. व्यास जी का जन्मे सम्बन्धित वर्णन मिलता है ?
   - क. शिवराजविजय में
   - ख. बिहारी-विहार में
   - ग. सामवतम् में
   - घ. भारतसौभाग्य में
3. शतावधान की उपाधि से विभूषित हैं ?
   - क. पण्डिता क्षमाराव
   - ख. बाणभट्ट
   - ग. अम्बिकादत्त व्यास
   - घ. सुबन्धु
4. 'सामवतम्' रचना की विधा है ?
   - क. महाकाव्य
   - ख. आख्यायिका
   - ग. कथा
   - घ. नाटक
5. व्यास जी का जन्म कहाँ है ?
   - क. दिल्ली
   - ख. उदयपुर
   - ग. आगरा

घ. जयपुर

6. 'शिवराजविजय' का कथानक कितने विरामों में विभक्त हैं ?

क. चार विरामों

ख. दो विरामों

ग. तीन विरामों

घ. दश विरामों

7. 'शिवराजविजय' के प्रत्येक विराम में कितने निःश्वास है ?

क. तीन निःश्वास

ख. चार निःश्वास

ग. पांच निःश्वास

घ. छ: निःश्वास

8. शिवाजी का विपक्षी हिन्दू राजा कौन था ?

क. राजा जयसिंह

ख. राजा उदयसिंह

ग. राजा जयवर्मा

घ. राजा विजयसिंह

9. अफजल खान ने अपना शिविर लगाया ?

क. भीमा नदी के तट पर

ख. सिंह दुर्ग में

ग. प्रताप दुर्ग में

घ. बेतवा नदी के तट पर

10. गायक का वेष धारण करने वाला है ?

क. श्यामसिंह

ख. गौरसिंह

ग. रघुवीर सिंह

घ. खड्गसिंह

11. शिवाजी ने नगरी को अपनी राजधानी बनाया ?

क. आगरा

ख. दिल्ली

ग. सतारा

घ. कर्नाटक

12. शिवराजविजय विभक्त है ?

क. उच्छवासों में

ख. सर्गों में

ग. अङ्कों में

घ. विरामों में

13. शिवराजविजय के नायक हैं ?

क. शिवाजी
ख. गौरसिंह
ग. अफजल खान
घ. औरंगजेब

1.5 सारांश

इस इकाई में आपने अम्बिकादत्त व्यास रचित शिवराजविजय उपन्यास का परिचय प्राप्त किया। शिवराजविजय के प्राचीन गद्यकाव्यों में अथवा सम्पूर्ण श्रव्य काव्य में संवाद-योजना का कोई महत्त्व नहीं था। काव्यशास्त्रियों ने भी संवाद को काव्य के आवश्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं किया है। परन्तु आधुनिक युग में उपन्यास आदि में संवादों का विशेष महत्व स्वीकार किया गया है। अम्बिकादत्त व्यास के अनुसार संवाद उपन्यास के सर्वाधिक आनन्दमयी तत्त्वों में से एक है। व्यास जी ने शिवराजविजय में नाटकीय एवं प्रभावशाली संवादों की योजना करके संस्कृत-गद्य-काव्य के लिये एक नई दिशा प्रदान की।

शिवराजविजय को संस्कृत साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस इकाई के अन्तर्गत आपने व्यास जी के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों के विषय में जानकारी प्राप्त की। व्यास जी कुशाग्र बुद्धि एवं विलक्षण प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे। संस्कृत भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी कुल 80 रचनायें प्राप्त होती हैं जिनमें शिवराजविजय का अत्यन्त महत्त्व है। इस उपन्यास के नायक वीर शिवाजी हैं। इस इकाई में आपने शिवराजविजय उपन्यास के प्रमुख पात्रों यथा शिवाजी, रघुवीर सिंह, अफजल खान आदि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का भी अध्ययन किया। संन्यासी (गौरसिंह) तथा द्वारपाल (प्रहरी) के संवाद तथा तानरंग (गौरसिंह) एवं अफजल खाँ के संवाद अत्यन्त नाटकीय एवं रोचक हैं। शिवराजविजय के संवाद अत्यन्त स्वाभाविक एवं चरित्रों के अनुकूल हैं। इन सभी विषयों का वर्णन इस इकाई में किया गया है।

1.6 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
पुराणानि	पुराणों को
पिष्ट्वा,	पीसकर
आलिंगन	गले लगाना
निष्कासित	बाहर निकालना
यायूजकैः	याज्ञिकों के द्वारा
उच्छृंखलता	स्वच्छन्दता, निरंकुशता
अभिव्यंजना	विवेचना
मन्दिराणि	मन्दिरों को
तीर्थस्थानानि	तीर्थ स्थानों को
विदीर्य	फाड़कर

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क 2.ख 3.ग 4.घ 5.घ 6.ग

7.ख 8.क 9. क 10.ख 11.ग 12.घ 13.क

1.8 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन , वाराणसी
3.संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास - डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।
5. शिवराजविजय - डॉ. रमाशंकर मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

1. 9 उपयोगी पुस्तकें

1. शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1. 10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं0 अम्बिकादत्त व्यास के विषय में विस्तार से परिचय दीजिये ।
2. शिवराजविजय की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
3. शिवराजविजय का साहित्यिक मूल्यांकन कीजिए।

इकाई.2 संस्कृत गद्यकाव्य के उपन्यास शिवराजविजय का विहंगावलोकन

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शिवराजविजय का विहंगावलोकन
    2.3.1 शिवराजविजय की कथा वस्तु
    2.3.2 शिवराजविजय की भाषा शैली
    2.3.3 शिवराजविजय में अलंकार योजना
    2.3.4 शिवराजविजय में रस-योजना
    2.3.5 शिवराजविजय में काव्य-अभिव्यंजना
    2.3.6 शिवराजविजय में सामाजिक चित्रण
    2.3.7 शिवराजविजय की ऐतिहासकिता
    2.3.8 शिवराजविजय की औपन्यासिकता
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 उपयोगी पुस्तकें
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की द्वितीय इकाई है। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि पं0 अम्बिकादत्त व्यास का स्थितिकाल एवं कृतियाँ क्या है ? काव्य गद्यमय, पद्यमय अथवा गद्य-पद्य (मिश्रित) रूप में होता है। काव्य में गद्य की प्रधानता है क्योंकि गद्य मनुष्य की प्रारम्भिक भाषा है। मनुष्य जब बोलना प्रारम्भ करता है तो सर्वप्रथम गद्य ही बोलता है। भावों को जितना स्पष्ट रूप से गद्य के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है उतना पद्य के माध्यम से नहीं। सभी प्रकार के गद्य को काव्य नहीं कहा जा सकता है क्योंकि गद्य में भी काव्य के समान प्रत्येक शब्द को कुछ न कुछ विशेष चमत्कार से युक्त होना चाहिए। इसीलिये गद्यकाव्य को कवियों की कसौटी कहा गया है।

आधुनिक काल में अम्बिकादत्त व्यास विरचित शिवराजविजय संस्कृत के प्रथम उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध है। शिवराजविजय एक ऐतिहासिक उपन्यास है। यह उपन्यास तीन विरामों में विभक्त है तथा प्रत्येक विराम में चार-चार निःश्वास हैं। इस उपन्यास में भाषा, भाव, अलंकार, रस आदि साहित्यिक तत्वों का सुन्दर प्रयोग किया गया है। वीर रस प्रधान इस उपन्यास के नायक वीर शिवाजी हैं। अत: प्रस्तुत इकाई में आप शिवराजविजय का परिचय, उसकी कथावस्तु, घटनाक्रम, साहित्यिक मूल्यांकन आदि विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- अम्बिकादत्त व्यास और शिवराजविजय के महत्त्व पूर्ण बातों का अध्ययन करगें।
- अम्बिकादत्त व्यास के स्थितिकाल के विषय में अध्ययन करेगें
- अम्बिकादत्त व्यास के कृतियों के विषय में अध्ययन करेगें
- शिवराजविजय काव्य के विषय में अध्ययन करेगें
- महाराज शिवाजी के विषय में अध्ययन करेगें
- गौरसिंह के विषय में अध्ययन करेगें

2.3 शिवराजविजय का विहंगावलोकन

संस्कृत भाषा के आधुनिक साहित्यकारों में अम्बिकादत्त व्यास का नाम सर्वविदित है। इनकी रचनओं में प्राचीनता आरै नवीनता दोनों का सम्मिलित प्रयोग मिलता है। इन्होंने 'बिहारी-विहार' में संक्षिप्त निज वृत्तान्त स्वयं लिखा है। व्यास जी का जन्म जयपुर के समीप रावत जी का धूला नामक ग्राम में सनातनमतावलम्बी ब्राह्मण परिवार में चैत्र शुक्ल अष्टमी संवत् 1915 में हुआ। इनके पितामह राजाराम तथा पिता दुर्गादत्त् प्रसिद्ध कर्मकाण्डी और विद्वान् थे। व्यास जी प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। संस्कृत व हिन्दी में इनकी विशेष रुचि थी। व्यास जी के पिता श्री दुर्गात्तर जी कवि, विद्वान् और व्यवहारकुशल व्यक्ति थे। अतः उन्होंने व्यास जी को बाल्यकाल से ही अक्षरारम्भ के साथ ही अमरकोश, शब्दधातुरूपावली और व्यावहारिक पदार्थों के संस्कृत नाम मौखिक रूप से कण्ठस्थ कराने प्रारम्भ कर दिए। व्यास जी स्वयं भी कुशाग्र और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, अतः शीघ्र ही संस्कृत में इनका ज्ञान प्रौढ़ होता गया। परिणामतः 10 वर्ष की अवस्था में ही काव्य.रचना प्रारम्भ कर दी। चूँकि दुर्गादत्ता जी स्वयं

विख्यात कवि थे अतः उनके साथ रहने से व्यास जी का भी अन्य कवियों से सम्पर्क बढा। लगभग 12 वर्ष की अवस्था में व्यास जी ने धर्मसभा की परीक्षा में पुरस्कार प्राप्त किया और श्री तैलंग अष्टावधान के 'सुकविरेप' कहने पर भारतेन्दु जी ने 'काशी.कविता.वद्धिर्नी.सभा' की ओर से 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की। उन दिनों बाल विवाह की प्रथा का प्रचलन था। अतः 13 वर्ष की अवस्था में व्यास जी का भी विवाह हो गया। इनके पिता दुर्गादत्त पौरोहित्य कर्म से जीविकोपार्जन करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त परिवार का भरण,पोषण साधारण रूप से ही हो पाता था। दूसरी ओर व्यास जी का पारिवारिक जीवन भी सुखमय नहीं था। इनके 11 वर्ष की अवस्था में माता का तथा 17 वर्ष की अवस्था में पिता का देहान्त होने से व्यास जी पर गृहस्थी का भार आ पड़ा। संवत् 1937 में इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज से साहित्याचार्य की परीक्षा उत्ती र्ण की, साथ ही साथ अंग्रेजी का भी प्रौढ़ ज्ञान अर्जित किया। संवत् 1940 में मधुवनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष होकर बिहार गए वहाँ मैथिली भाषा का अध्ययन किया। उन्होंने संस्कृत भाषा की अभिनव प्रणाली का आविष्कार किया। उन्होंने बिहार संस्कृत समाज की स्थापना की, जो आज भी संस्कृत के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है। संवत् 1943 में ये मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के हेडपण्डित होकर कार्य करने लगे। संवत् 1944 में भागलपुर जिला स्कूल के हेडपण्डित हो गए। अन्तिम समय में एक.दो वर्षों के लिये पटना कॉलेज में भी अध्यापक रहे। संवत् 1950 में ये छुट्टी लेकर भारत भ्रमण पर निकले। व्यास जी अत्यन्त प्रतिभाशाली थे। वक्ता और साहित्य स्रष्टा के साथ ही चित्रकारिता, अश्वारोहिता, संगीत और शतरंज में भी उनकी विशेष रुचि थी। सितार, हारमोनियम, जल तरंग और मृदंग इनके प्रिय वाद्य यन्त्र थे। इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। व्याकरण, न्याय, वेदान्त और दर्शन में इनकी विशेष रुचि थी। कविता कला में ये इतने प्रवीण थे कि एक घड़ी में 100 श्लोकों की रचना कर सकते थे इसलिये संवत् 1938 में 'काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी' सभा में इन्हें 'घटिकाशतक' की उपाधि प्रदान की गई। 100 प्रश्नों को एकसाथ ही सुनकर उन सभी का उत्तर उसी क्रम में देने की अद्भुत क्षमता थी इसलिये इन्हें 'शतावधान' की उपाधि भी मिली थी। व्यास जी ने हिन्दी और संस्कृत में छोटी बड़ी सब मिलाकर 80 पुस्तकों की रचना की। रत्नाष्टकम्, सामवतम् नाटक, कथाकुसुमम्, गद्यकाव्यमीमांसा, गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, धर्माधर्मकलकलम्, द्रव्यस्तोत्रम्, सहस्त्रनामरामायण, बालव्याकरण, मित्रालापः, शिवराजविजय आदि इनकी सस्कृत भाषा में प्रकाशित रचनाएं हैं अबाध्निवारण, अवतारमीमांसा, आश्चर्यवृत्तातन्त , ईश्वरेच्छा, बिहारी-विहार, भारतसौभाग्य, ललितानाटिका, विभक्तिविलास आदि इनकी हिन्दी भाषा में प्रकाशित रचनाएं हैं। 'शिवराजविजय' अम्बिकादत्त व्यास जी की सर्व श्रेष्ठस साहित्यिक कृति है। संस्कृत गद्य.साहित्य में शिवराजविजय का अन्यतम स्थान है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के बाद संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा पर यदि दृष्टि डालें तो और भी गद्यकारों के नाम प्राप्त होते हैं किन्तु बौद्धिक प्रतिभा, साहित्यिक उत्कृष्टता और सामाजिक परिदृश्यों के आकलन की विशिष्टता के परिणामस्वरूप व्यास जी का नाम प्रमुख गद्यकारों की श्रेणी में अंकित है। अप्रतिम प्रतिभासम्पन्न संस्कृत साहित्य का यह कवि दीर्घायु नहीं हो सका। 42 वर्ष की अवस्था में महाकवि का सम्मान प्राप्त करने के उपरान्त व्यास जी सोमवार, मार्गशीर्ष त्रयोदशी, संवत् 1957 को अपने पीछे एक 9 वर्षीय पुत्र, एक कन्या और विधवा पत्नी को

असहाय छोड़कर पंचतन्त्र में विलीन हो गये, किन्तु व्यास जी अपने यश रूपी शरीर से पाठकों के अन्तःस्थल में आज भी जीवित हैं।

अम्बिकादत्त व्यास की सर्वश्रेष्ठ कृति उनका शिवराजविजय है। शिवराजविजय संस्कृत-गद्य-साहित्य में अन्यतम स्थान रखता है। बाण, दण्डी और सुबन्धु के बाद व्यास जी का ही नाम आता है। यद्यपि अन्य बहुत से और भी गद्यकार हैं किन्तु साहित्यिक उत्कृष्टता, बौद्धिक प्रतिभा और सामाजिक आकलनों के वैशिष्ट्य के कारण व्यास जी प्रमुख गद्यकारों में परिगणित हैं।

2.3.1 शिवराजविजय की कथा वस्तु—

'शिवराजविजय' का कथानक तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निःश्वास है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है- दक्षिण में मुसलमानों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। उस काल में दो-दो कोस पर आश्रम बने हुए थे, जो मुसलमानों की गतिविधि का परिचय रखते थे। शिवाजी की निरन्तर विजय से उद्विग्न होकर बीजापुर दरबार ने उनसे युद्ध करने के लिये अफजल खाँ को भेजा। उसी समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे। अफजल खाँ ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर शिविर डाल दिया। बीजापुर के शासक सन्धि का धोखा करके शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे, उनकी इस अभिसन्धि का शिवाजी को पता लग गया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर दरबार का पत्र ले जा रहा था। मार्ग में उसने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया, किन्तु वह कन्या एक आश्रम में अध्यक्ष- ब्रह्मचारि गुरु के शिष्यों-गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गयी, यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया तथा बीजापुर का गुप्त संदेश उसके वस्त्रों में से गौरसिंह को प्राप्त हुआ।

इस गुप्त संदेश को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजल खाँ को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धि-प्रस्ताव लेकर भेजे गये, पण्डित गोपीनाथ द्वारा प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफजल खाँ से मिलने का शिवाजी ने प्रबन्ध किया। गौरसिंह भी गायक के वेश में अफजल खाँ के शिविर में जाकर सम्पूर्ण षड्यन्त्र का भेद निकाल लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगल में तथा अफजल खाँ के शिविर के आस-पास छिपा दी। प्रातःकाल अफजल खाँ शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने कपड़ो के अन्दर कवच और हाथों में बाघनख नाम का हथियार पहनकर गये। परस्पर आलिंगन करने पर शिवाजी ने अफजल खाँ के कन्धों और गर्दन को फाड़कर उसे पटक दिया तथा उनकी सेना ने मुसलमानी सेना को मार कर भगा दिया।

गौरसिंह द्वारा जिस ब्राह्मण कन्या की रक्षा की गई थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर रहस्योद्घाटन हुआ कि वह कन्या गौरसिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देव-शर्मा है। तदनन्तर ब्रह्मचारि गुरू के अनुरोध पर गौरसिंह ने अपना वृत्तान्त सुनाया- वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद तीनों बहिन भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहते थे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़े गये। किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले और एक हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। यहाँ भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ता खाँ पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंह दुर्ग में अपना एक संदेश रघुवीरसिंह

द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास भेजा। आँधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण दुर्ग पहुँच कर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देखकर रघुवीर सिंह हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जागृत हुई। शिवाजी के आदेश के अनुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खाँ के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिए देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिला कर गले में एक माला डलवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृतान्त सुनाने के लिए कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में पराजय यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी सौवर्णी से पुनः भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान जी का प्रसाद लेकर सिंह दुर्ग की ओर चल पड़ा।

एक बार शिवाजी पण्डित के वेश में माल्यश्रीक के साथ शाइस्ता खाँ के साथ पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आये और संदेह करने पर पीछा करने वाला चाँद खाँ शिवाजी के द्वारा मारा गया। शिवाजी ने यशवन्त सिंह को पूना से दूर रहने के लिए अनुरोध करके कुछ चुने हुए साथियों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाहस्ता खाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया, चाँद खाँ और शाइस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गये। शाइस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। दूसरी ओर इसके पूर्व ही रघुवीर सिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा को गिरफ्तार कर लिया था।

एक समय ब्रह्मचारि गुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्व वृत्तान्त बताया। उधर रघुवीर सिंह की प्रेयसी सौवर्णी ने क्रूर सिंह द्वारा किये जाने वाले अपने अपमान की बात बताई। तभी संयोगवश क्रूर सिंह की नियुक्ति अन्यत्र हो गई और उसका कष्ट दूर हो गया। इधर रोशनआरा अपना प्रेम शिवाजी से प्रकट कर रही थी परन्तु उन्होंने कह दिया कि वे उसे पिता द्वारा जाने पर ही स्वीकार कर सकते हैं। तभी जयसिंह ने सैन्य आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया परन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से उसने मुगलों की कुछ शर्ते मानकर सन्धि करने को विवश हुए। इसी सन्धि के अनुसार रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया।उसके बाद बीजापुर के एक किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह को सहायता से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया। परन्तु रहमत खाँ और क्रूर सिंह द्वारा रघुवीर सिंह को राजद्रोही बताये जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि राजद्रोही वास्तव में क्रूरसिंह ही था। अपमानिक रघुवीर सिंह राधास्वामी का वेश धारण कर शिवाजी का उपकार करता रहा और सौवर्णी के अपहरण करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी 1666 में औरंगजेब के राजदरबार दिल्ली में उपस्थित हुए। मार्ग में राधास्वामी (रघुवीर सिंह) के कई बार रोकने का प्रयास करने पर भी शिवाजी नहीं माने। दरबार में उपस्थित होने के बाद औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा लगवा दिया। परन्तु स्वयं की योजना तथा रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गये। बाद में यह जानकर कि राधास्वामी ही रघुवीर सिंह हैं शिवाजी ने क्षमा याचना की।इसके बाद रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट आता है उसे मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी

ने विवाह में सम्मिलित होकर आशीर्वाद दिया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिये गये सभी किले जीत लिये गये हैं।बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहब्बत खाँ भगा दिया गया।

2.3.2 शिवराजविजय की भाषा शैली —

मनोगत भावों को परहृदय संवेद्य बनाने का प्रमुख साधन भाषा है और भाषा की क्रमबद्धता या रचना-विधान को ही सम्भवतः शैली भी कहा जाता है। अतः सामान्यतः 'भाषा-शैली' से ऐसा प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस आधार के साथ यह कहा जा सका है कि काव्य में मनोगत भावों को मूर्त रूप प्रदान करने का प्रमुख एवं सहज साधन 'शैली' है। 'शब्दार्थौ सहितो काव्यम्' के परिप्रेक्ष्य में यदि अर्थ काव्य की आत्मा है तो शब्द अर्थात् शैली काव्य का शरीर। अतः भाव की मनोहरता, स्थिरता और सूक्ष्मता शैली पर ही निर्भर होती है। डॉ0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार किसी कवि या लेखक की शब्द -योजना, वाक्यांशों का प्रयोग, उसकी बनावट और ध्वनि आदि का नाम ही शैली है। दण्डी के काव्यादर्श में - 'अस्त्यनेको गिराममार्गः सूक्ष्मभेदपरस्परम्' कहा है। इन भावनाओं के अनुसार स्थूलतः शैली के दो भेद किये जाते हैं - (1) समास शैली (2) व्यास शैली। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के आधार पर आजकल विद्वानों ने मार्ग (शैली) को चार प्रकार का माना है। किन्तु अनन्तर काल में इन्हें शैली न कहकर रीतियाँ कहा जाने लगा है। ये रीतियाँ चार हैं-

(1) वैदर्भी, (2) गौणी, (3) पांचाली, और (4) लाटी।

(1) कोमल वर्णों और असमानता अथवा अल्पसमासा, माधुर्यपूर्ण रचना वैदर्भी रीति है।

(2) महाप्राण-घोषवर्णा, ओजगुणसम्पन्ना तथा समास बहुला रचना गौणी है।

(3) वैदर्भी और गौणी का सम्मिश्रण पांचाली रीति है।

(4) वैदर्भी और पांचाली का सम्मिश्रण लाटी रीति है।

शिवराजविजय की भाषा सरल, सुबोध एवं स्पष्ट है। पदावलियों के प्रयोग वर्ण्य-विषय के अनुसार होने चाहिये। एक ही विधा प्रत्येक वर्णन को प्रभावमय नहीं बना सकती और व्यास जी ने ऐसा ही किया है। अतः कहा जा सकता है कि शिवराजविजय में उचित शब्दावलियों का प्रयोग, अर्थपूर्ण वाक्यविन्यास तथा अवसर के अनुकूल कोमल तथा कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है। व्यास जी ने अवसर के अनुकूल एक ओर दीर्घ समास बहुला पदावली का प्रयोग किया है। तो दूसरी ओर सरल लघु पदावली का। पूर्वोक्त रीतियों सन्दर्भ में शिवराजविजय में व्यास जी ने पांचाली रीति का आश्रय लिया है। इनके साक्ष्य में तथ्य द्रष्टव्य हैं- अफजल खाँ के शिविर का वर्णन करते हुए व्यास जी समस्त (दीर्घ) पदावली में कहते हैं- **''इतस्तु स्वतन्त्र यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाःनिर्झरवारिधारा – पूर – पूरित - प्रबलप्रबाह्यायाः, पश्चिम – पारावार – प्रान्तं – प्रसूत – गिरि – ग्राम – गुहा – गर्भ - निर्गताया अपि प्राच्य – पयोनिधि – चुम्बन - चंचुरायाः, रिंगत्-तरंग-भंगोद्भूतावर्त्तशत-भीमायाः भीमायानद्याः, अनवरत – निपतद् – वकुलकुल – कुसुम – कदम्ब – सुरभीकृतमपिनीरंवगाह्यमान – मन – मतंगज – मद – धाराभिः कटूकुर्वन्, हय – हेषा – ध्वनि –प्रतिध्वनि – वधिरीकृत – गव्यूति - मध्यगाध्वनीनवर्गः, पटं – कुटीर – कूटविहिन –शारदाम्भोधर - विडम्बनः**

निरपराधः – भारताभिजन – जन – पीडन – पातक - पटलैरिव समुद्धूयमाननोलध्वजैः रूपलक्षितः।

दूसरी ओर व्यास जी की लघुसमास शैली भी अत्यन्त भावपूर्ण और मार्मिक है। उसमें अभिवक्त की स्पष्टता और सूक्ष्मता निहित है-''एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभागस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य अवलम्बो रोलकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य।'' व्यास जी की इस रचना में समासरहित सुन्दर पदावलियों का प्रयोग भी अत्यन्त हृद्य है- **''वटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षवर्षीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुविशाललोचनश्चासीत्।''**

अम्बिकादत्त व्यास विद्वान् थे, भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था और भावाभिव्यक्ति की पूर्ण क्षमता थी। भाव के अनुकूल भाषा का संयोजन करने का ध्यान सदैव रखते थे। जैसा कोमल या कठोर भाव का वर्णन करना होता था उसी के अनुसार भाषा संयोजन करते थे। शान्त, स्निग्ध एवं नीरव-निशा का वर्णन देखिये- **''धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी चन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारमिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु चंचरीकेषु।''**

भावों की सरल एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिये उनकी भाषा द्रष्टव्य है- **''क्वचिद् हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रम् चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, श्रृंगवेरं श्रृंगवेरम्, रामहं रामहम्, मत्स्यण्डी, मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम् पललं पललमिति ''**

अस्तु, इस कृति के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने भाषा और शैली का प्रयोग भाव के अनुसार ही किया है। यत्र-तत्र व्याकरणिक शब्दों का भी प्रयोग उनकी विद्वत्ता की ओर संकेत करता है। सन्नत, यङन्त यङलुङन्त शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा-शैली उनके काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में पूर्णतः उपजीव्य है।

2.3.3 शिवराजविजय में अलंकार योजना—

कविताकामिनी का श्रृगांर है, अलंकार योजना। जिस प्रकार आभूषण से नारी का सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलंकार से काव्य का भी चमत्कार एवं हृदय-संवेद्यता बढ़ जाती है। अनलंकृत भाषा एवं रमणी दोनों चित्ताकर्षक नहीं होते। कुछ अर्थालंकार तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके विधान से काव्य के सर्वस्व वे ही प्रतीत होने लगते हैं। इसी कारण तो कुछ अलंकारवादियों ने अलंकार को ही काव्य की आत्मा मानना प्रारम्भ कर दिया। कुछ भी हो काव्य में अलंकार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अलंकार के अभाव में काव्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करने में कभी भी समर्थ नहीं हो सकता। पं0 अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सुरभारती को एक सुन्दर रमणी की भाँति अलंकार से सजाया है। अनुकूल एवं समुचित अलंकार का संयोजन किया है। बाण की कृति अलंकार के भार से बोझिल हुई प्रतीत होती है किन्तु व्यास की कृति विरलालंकार विभूषिता लावण्यमयी तन्वंगी के समान है। उन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का सावसर प्रयोग किया है। शब्दालंकार तो पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। अनुप्रास अलंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'भामिनी-भ्रु भंगभूरिभाव प्रभाव-पराभूतवैभवेषु भटेषु''

''चंचचन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्यचिल्लीभूत-चक्षुषका''।

यत्र-तत्र यमक का भी प्रयोग किया है - **''सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेणं पुंस्कोकिलान्, केशैरोलम्बकदम्बान्, ललाटेन कलाधरकलाम् लोचनाभ्याम् खंजनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नाम्''।**

व्यास जी ने परम्परा से हटकर नये उपमानों का भी प्रयोग किया है, ''विलक्षणोऽयं भगवान् सकलकलाकलापकलनः सकलकालनः करालः कालः।'' कवि की कल्पना का बहुत बड़ा सम्बल है- उत्प्रेक्षा अलंकार। बाण की तरह व्यास जी ने भी उत्प्रेक्षा की पर्याप्त संयोजना की है। एक मालोत्प्रेक्षा का उदाहरण द्रष्टव्य है - **''गगनसागरमीने इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव, विरहिनिवकृन्तेन रौप्यकुन्त प्रान्ते इव, पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव, शारदाभ्रसारे इव सप्तसप्ति सप्तिपादच्युते राजतखुरत्रे इव मनोहरतामहिला ललाटे इव, कन्दर्पकीर्तिलतांकरे इव, प्रजाजननयनकर्पूरखण्डे इव, तमीतिमिरकर्तनशाणोल्लीढनिस्त्रिंशे इव च समुदिते चेत्रखण्डे''।**

उपमा अलंकारों में प्रमुख माना जाता है क्योंकि उपमा एक प्रकार से वक्तव्य के कहने का ढंग है, जिसका व्यवहार सर्वाधिक होता है। साधर्म्य अलंकारों की माला में उपमा 'सुमेरु' है। उपमा का प्रयोग भी व्यास जी जैसा कि संस्कृत कवियों में प्रायः नहीं देखा जाता है। कवि ने नौका की उपमा एक कुम्भड़े की फांक से देते हुए लिखा है - ''कुष्माण्डफक्किकारया नौकया''।विरोधाभास व्यास जी का प्रिय अलंकार है। विरोधाभास के चित्रण में कवि, बाण की समानता करता हुआ दिखाई पड़ता है। शिवाजी के वर्णन में विरोधाभास की छटा बरवश पाठकों को आकृष्ट करती है- **खर्वामप्यखर्वपरिक्रमाम् श्याममपि यशः समूहश्वेतीकृत त्रिभुवनाम्, कुशासनर्वश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, पठनपाठनादि परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णाताम् स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, ध्वंकाण्ड व्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम् शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्....।''**

चित्तौड़गढ़ की स्त्रियों के वर्णन में श्लेष गर्भित विरोधाभास द्वारा अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया गया है- 'क्षत्रियकुलांगनाः कमला इव कमलाः, शारदा इव विशारदा, अनुसूयाइवानुसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्ड इव रुक्मिण्यः सुवर्णा इव सुवर्णाः, सत्य इव सत्यः।''इसके अतिरिक्त दीपक, श्लेष उदात्त, यथासंख्य आदि अलंकारों की भी योजना की है। डॉ0 भगवानदास कादम्बरी से तुलना करते हुए लिखते हैं - ''जहाँ वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थ पथिक सर्वथा मूल भटक कर खोजता है; उसका पता नहीं लगता, वहाँ शिवराजविजय के सुललित उद्यान में उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खोजता है; उसका पता नहीं लगता, वह शिवराजविजय के सुललित उद्यान में, उसकी सहज अलंकृत शैली में पाठक का मन खूब रमता है कादम्बरी के शब्दों की विकट अरण्यानी की तरह शिवराजविजय के शब्दसंसार को देखकर उसका मन घबरा नहीं उठता अपितु उसमें प्रविष्ट होकर उसके आनन्द को लेने की उत्सुकता को जगाता है।''अस्तु, व्यास जी ने अलंकारों का प्रयोग मात्र कविताकामिनी को सजाने के लिये ही किया है।

2.3.4 शिवराजविजय में रस-योजना—

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार रस ही काव्य को आत्मा है। यह सच भी है कि 'रसहीन' काव्य नहीं हो सकता है। अतः काव्य में रसयोजना होती ही है। यद्यपि रसों में उच्चावचता या श्रेणी विभाग नहीं होता है तथापि वर्ण्य की दृष्टि से रस की मुख्यता या गौणता अवश्य होती है। शिवराजविजय का प्रधान रस है 'वीर'। प्रायः अन्य अभी रस इसमें उपकारी रूप में निहित हैं। उद्देश्य के अनुसार इसमें वीर रस का विशेष रूप से चित्रण किया है। शिवाजी के शौर्य का जो अद्भुत वर्णन किया गया है वह अत्यन्त स्पृहणीय है। गौरसिंह अफजलखाँ से कहता है -**''को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासंचालनेचतुरः, स एव मल्लाविद्यामर्मज्ञः, स एव वाणविद्यावारिधिः' स एव वीरवारवरः पुरुषपौरुषपरीक्षकः, स एव दीनदुखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः। ''आगत एष शिववीरः इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्त विरोधिषु 'केचन मूर्चिछताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृतशास्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाकुंचितोदरा विशिथिलवाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साग्रेडं प्रणिपातपरम्परां रचयन्तो जीवन याचन्ते।** व्यास जी ने यत्र-तत्र श्रृगांर रस का भी चित्रण किया है। इन्होंने श्रृगांर का वर्णन अत्यन्त शिष्ट और सात्त्विक रूप में किया है, उसमें मादकता या उच्छृँखलता लेशमात्र की नहीं है - **''सा चावलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, वीराभरमन्थरापि तताज्ञया बलादिवप्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती' आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना स्वपादाग्रमेवा लोकयन्ती मोदकभाजनसमाजितं सव्येतरं करं तदग्रेप्रसारयत्। ..... पुनश्च सा अंचलकोणं कटिकच्छप्रान्ते आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्यं नतकन्धरस्य रघुवीरसिंहस्य ग्रीवायां चिक्षेप इषत्कम्पितगात्रयष्टिश्च शनैर्यथा निववृते।**

कहीं-कहीं करूण रस का अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया गया है - **''माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तब द्वादशवर्षदेशीयावेव आखेट व्यसनिनौ महार्हभूषणभूषितौ तुरगावरुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृतौ इति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानतस्य पुत्रीति स्वपुत्रीवमयैव सह नीता वर्द्धयसे च। अहह! ..... बारंबारम् बालैव सुन्दरकान्याविक्रय व्यसनिभिर्यवनवराकैरपह्रियसे।**

व्यास जी ने एकत्र वात्सल्य रस का भी अत्यन्त हृदयग्राही वर्णन किया है। डाकुओं के चंगुल में फंसे हुए गौरसिंह और श्यामसिंह अपनी भगिनी के विषय में सोचते हैं - **''हन्त ! हत भाग्या सा बालिका, या अस्मिन्नेय वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयवोरपि अदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं कदर्थयति। अहह! सततमस्मक्रोडैकक्रीडनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्रचकोरीम्, सततमस्मत् कण्ठरत्नमालाम् सतत्मस्मन्सह भोजीम् .....''** इस प्रकार पं0 अम्बिकादत्त व्यास के द्वारा रसों की योजना अत्यन्त परिपक्व और साधिकार है, मुख्यतः वीररस का चित्रण करते समय इसमें सभी रस वर्णन यत्किंचिद् रूप में उपलब्ध होते हैं।

2.3.5 शिवराजविजय में काव्य-अभिव्यञ्जना—

वस्तु एवं प्रकृति-चित्रण - काव्य में अभिव्यंजना का महत्त्व शिल्प की अपेक्षा अधिक होता है हृदयग्राही मार्मिक भावों की अभिव्यंजना ही काव्य की सफलता है। वस्तुघटना, भाव या

दृश्य का यथातथ्येन वर्णन करना ही कवि की विशेषता है। इसमें अम्बिकादत्त व्यास अत्यन्त निपुण और बहुमुखी है। संस्कृत कवियों में प्रकृति-वर्णन की परम्परा रही है। जितनी सफलता के साथ प्रकृति का चित्रण जिस कवि ने किया है, वह उतना ही अधिक सफल हुआ है। व्यास जी ने भी शिवराजविजय में प्रकृति नटी का सुन्दर अंकन किया है। यह अवश्य है कि वे कठोर प्रकृति की अपेक्षा कोमल प्रकृति के चित्रण में अधिक समर्थ सिद्ध हुए हैं। प्रकृति के कठोर रूप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- **''सुन्दरमस्मात्थानात् कोङ्कण देशः। मध्ये च विकटा अटव्य शतशः शैलश्रेणयः त्वरित धारा धुन्यः, पदे-पदे च भयानकभल्लूकानाम्बूकृत-संकलानाम्, मुस्तमूलोत्खननघुर्घुर्घोषित-घोर-घोणानाम्, घोणिनाम्, पंकपरिवर्तोन्मथितकासाराणां, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षणाम्, विकटकरटिकटविपाटन-पाटव-पूरितसहनानां सिंहानाम्, नासाग्र-विषाणशोणनच्छलविहिन-गण्डरौल-खण्डाना खंगिनाम् दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल पेपीयमान-दानधारा-धरन्धराणां-सिन्धुराणां।''**

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति के कठोर रूप के वर्णन में तो उतने सक्षम नहीं हो पाये हैं, किन्तु प्रकृति के मनोरम पक्ष के वर्णन में अत्यन्त सफल हुए हैं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त एवम् रात्रि आदि के वर्णन में व्यास जी ने अत्यन्त कुशलता का परिचय दिया है। सूर्यास्त का वर्णन करते हुए कवि कहता है- **जगतः प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि-सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य, सकलचराचरचक्षुः संचारशक्तिं शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज मण्डलेन पश्चिममाशां भूषयन्, वारुणी सेवनेनेव मांजिष्ठमांजिम रंजितः, अनवरत भ्रमणपरिश्रमश्रान्त इव सुषुप्सुः, म्लेच्छगणदुराचारदुःखाऽऽक्रान्त-वसुमतीवेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संजात निर्वेदः इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः, धर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नाषुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासनमिवविधित्सुः, ...अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चाक्षुषामगोचर एव संजात।''** आश्रम की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है- **''कदलीदलकुंजायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परमपवित्रपानीयं परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितं पतत्रिकुलकूजितपूजितं पयः पूरः-पूरितसर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झरझर्झर – ध्वनि – ध्वनित – दिगन्तरः फलपटलाऽऽस्वादचपलित - चंचुपतंगकुलाऽऽक्रमणाधिकविनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।।''**

व्यास जी ने रात्रि की नीरवता का अत्यन्त सटीक और स्वाभाविक वर्णन किया है। नीरव निशा का चित्र खींचते हुए लिखते हैं - **''धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्पमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनीकामिनीचन्दनविन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकालयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चंचरीकेषु।''** झंझावात का भी चित्रण इतनी सफलता के साथ किया है कि उन्हें पढ़कर आँधी की वास्तविकता उसके नेत्रों के सामने उपस्थित हो उठती है। उसका भयानक दृश्य व्यास जी के शब्दों में देखिये - **तावदकस्मादुत्थितो महान् झंझावातः, एकः सायं समयप्रयुक्तः स्वभाववृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः झंझावातोद्धूतैः रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुमपरागैः शुष्कपुष्पैश्च। पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वतश्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः**

अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात् उपत्यकाः, न कोऽपि सरलोमार्गः, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते। .....पदे-पदे दोधूयमाना वृक्षशाखाः सम्मुखमाध्नन्ति। परितः सहडहडाशब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्रवृक्षाणां, वाताघात संजात पाषाण पातानां प्रपातानाम्, महान्ध तमसेन ग्रस्यमान इव सत्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन-स्वनेन कवली कृतमिव गगनतलम्।''

इस प्रकार व्यास जी प्रकृति-चित्रण के साथ अन्य वस्तुओं के वर्णन में सचेष्ट रहे हैं। छाया-चित्र उपस्थित करने में भी व्यास जी ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। आजकल के शिविर का वर्णन व्यास जी के शब्दों में इस प्रकार है- **''आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्रपटेन प्रोंछ ललाटे सिन्दूरबिन्दुतिलकं विरचय्य, उष्णीषिकामपहाय, शिरशि सूचिरयूतांसौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रतामुष्णीषिकां संधार्यशरीरे हरितकौशेयकंचुकिकामायोज्य, पादयोः शोणपट्टनिर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मितेमहार्हे उपानाहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सहनेतुं सहचरहस्ते समर्प्य .....''**

पूर्वी बंगाल के वर्णन को पढ़कर पाठक ऐसा अनुभव करता है, जैसे वह नदी के तट पर खड़ा हुआ सारा दृश्य अपनी आँखों से देख रहा है - **''पूर्ववंगमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः। यत्र प्रान्तप्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्तीपद्मेव द्रवीभूता पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः पद्मा प्रवहति 'यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रुसेनानाशनकुशलाः ब्रह्मदेशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं क्षालयति। यत्र साम्लसुमधुररसपूरितानि फूत्कारोद्धूतभूतिज्वलदंगारविजित्वरर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारांगाण्युद्धवन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां तालनारिकेलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेशरसज्ञानां साम्रेडं कर्ण स्पृशति, यत्र भयंकराऽऽवर्त सहस्राऽऽकुलासुस्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः अरित्रं चालयन्तः, वडिशं योजयन्तः कुवेणीस्थाम्रियमाणा मत्स्यपरीवर्तानालोकमालोकमानन्दतः,.....।''**

सुन्दर सरोवर के किनारे दर्भासन पर बैठे सविधि पूजन करने वाले मुनिजनों का अतीव हृदयहारी चित्रण व्यास जी ने किया है- ''तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानां पक्षतिकण्डूतिकषणचंचलचुंपुटानां मल्लिकाक्षाणां, लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लांगरुहाणां सारसानां, भ्रमद्भ्रमरझंकारभारविद्रावितवितनिद्राणां कारण्डवनां च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ, तडाग तट एव पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एवमसृणपाषाणपट्टिकासु कुशासनानिमृगचमसिनानि उर्णासनानि च विस्तीर्योपविष्टानां.....।''

इस प्रकार व्यास जी ने शिवराजविजय में जिसका वर्णन किया है उसका यथारूप में चित्र खींचकर पाठक को भावविभोर कर दिया है। वस्तु या दृश्य वर्णन की कुशलता व्यास जी में कूट-कूटकर भरी है। वस्तु वर्णन में व्यास जी अपने पूर्ववर्ती गद्य कवियों की पंक्ति में विराजमन होते हैं।

2.3.6 शिवराजविजय में सामाजिक चित्रण—

संस्कृत गद्य काव्य में गद्य की अनेक विधाएँ निहित है और विविध भावों के वर्णन का भी समन्वय है। किन्तु शिवराजविजय के पूर्व जिन आख्यानों या कथाओं का वर्णन मिलता है, वे या तो चरित्र प्रधान हैं या दृश्य (बिम्ब) प्रधान। शिवराजविजय एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और चरित्रों का समग्र रूप से वर्णन किया गया है। 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' शिवराजविजय इस कथन की कसौटी पर खरा उतरता है।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय में मुगलकालीन समाज का सुन्दर चित्रण किया है। उस समय राजा अकर्मण्य, विलासी और विद्वेषी थे। हिन्दु जाति मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित थी। दूसरी ओर मुसलमानों का साम्राज्य भारत में निरन्तर बढ़ता जा रहा था और उसके साथ-साथ ही मुसलमानों के द्वारा हिन्दु कन्याओं का अपहरण और मूर्तियों के विध्वंस, पवित्र धर्म-ग्रन्थों के विनाश और अनाथ हिन्दुओं के प्रपीडन को अपना कर्त्तव्य समझते थे। हिन्दु राजा मुसलमान शासकों की दासता स्वीकार कर उनकी प्रशंसा में रत थे और उनकी कृपा पर जीवित थे।

ऐसी विषय परिस्थिति में महाराष्ट्राधीश्वर वीर शिवाजी ने अपने शौर्य पराक्रम और सदाचरण द्वारा हिन्दु जनता और हिन्दुत्व की रक्षा की तथा हिन्दुओं के अस्तंगत शौर्य को बड़ी कुशलता और वीरता से पुनर्जागृत किया। उन्होंने देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति आत्मविश्वास, स्वधर्मानुराग एवम् मातृभूमि की सेवा भाव का हिन्दु जनता में संचार किया। अति अनीति की पराजय सर्वदा होती है। जिस विलासिता और व्यसन के कारण हिन्दु राजाओं का पतन हुआ उसी विलास और भोगप्राचुर्य को कारण मुस्लिम शासकों का भी पराभव हुआ। हिन्दुओं पर उनका अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उनके अत्याचारों का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं - **''.....क्वचिद्दारा अपह्रियते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद्गृहनिपातः, श्रूयते अवलोक्यते च परितः।''**

मुसलमान शासक इतने मदान्वित और विलासी प्रवृति के हो चुके थे कि अफजल खाँ भी वीर शिवाजी जैसे शक्तिशाली और सर्वसमर्थ राजा को पराजित करने की प्रतिज्ञा विजयपुर नरेश के सामने करके आया था, सदैव भोग-विलास और नशे में चूर रहता था। जिसका वर्णन करते हुय व्यास जी कहते हैं - **''स प्रौढ़ि विजयपुराधीश महासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि शिवप्रतापं च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वारांगना, अद्य भ्रुकंसकः अद्य वीणावादनम् इति स्वच्छनदैरुच्छश्रृंखलाचरणैर्दिनानि गमयति।।''**

इसी का परिणाम था कि गायक (गौरसिंह) के समक्ष अफजल खाँ सगर्व अपनी भावी गोप्य योजना (शिववीर को सन्धिव्याज से पकड़ने) की घोषणा स्पष्ट रूप से कर देता है। इस प्रकार तत्कालीन मुस्लिम राजाओं में उसी वृत्ति का संचार हो रहा था जिसके कारण हिन्दु राजाओं की पराजय हुई थी। उस समय हिन्दु राजाओं में आपसी वैरभाव बढ़ा हुआ था, वेश्याओं और मदिरा के चक्कर में अपनी सम्पत्ति नष्ट कर चुके थे, मिथ्या प्रशंसा करने वाले चाटुकारों को ही सबसे निकट और हितैषी समझते थे और स्वार्थ की वृत्ति सर्वोपरि हो चुकी थी। इसी कारण तो भारतवर्ष सैकड़ों वर्ष तक पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा रहा। इसका वर्णन करते हुए व्यास जी कहते हैं।

''शनैःशनैःपारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहबन्धनेषुराजसु,भामिनी-भ्रूभंग – भूरिभाव – प्रभाव - पराभूतवैभवेषु भटेषु, स्वार्थचिन्तासन्तान वितानैकतानेषु

अमात्यवर्गेषु प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु''। ''इन्द्रस्त्वं कुवेरस्त्वं वरूणस्त्वमिति वर्णनमात्रसक्तेषु।''

किन्तु महाराष्ट्राधीश्वर, वीर शिवाजी उन हिन्दु राजाओं में अपवाद रूप थे; न तो उनमें उक्त प्रकार की कमजोरी थी और न ही स्वार्थ लिप्सा। वे एक वीर, पराक्रमी, राजनीति पारंगत एवं कुशल प्रशासक थे। उनकी क्षमता व्यूहरचना, ओजस्विता एवं धीरता अपूर्व थी। इसी कारण विशाल सेना वाले मुस्लिम शासक के विरूद्ध उन्होंने विजय प्राप्त की। उनके गुप्तचर गौरसिंह आदि तथा द्वारपाल के चरित्र एवं कार्यों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। गौरसिंह अपनी गुप्तचरीय व्यूहरचना का वर्णन करते हुए कहता है - **''भगवन् ! सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमंगीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानां धारितमुनिवेषणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमंच वलीकेषु गोपयित्वा स्थापिताः परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविता शक्तयः कुशपुंजान्तः स्थापिताः भुशुण्डयश्च समुल्लसन्ति। उंछस्य शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्गुदीपर्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र परिमार्गणस्य, कुसुमावाचयनस्यः तीर्थटनस्य सत्संगस्य च व्याजेन केचन जटिलाः, पेर मुण्डिनः इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः, संचरन्ति। विजयपुरादुड्डीयात्रागच्छत्या मक्षिकाया अप्यन्तः स्थितं वयं विद्मः, किं नाम एषां यवनहतकानाम्।'**

वीर शिवाजी सदैव योग्य और विश्वस्त व्यक्ति को ही गुप्तचर के रूप में नियुक्त करते थे। गुप्तचर की निपुणता, कार्यक्षमता, विश्वसनीयता और गम्भीरता आदि की परीक्षा लेने के बाद ही राजपक्ष के लोग गुप्तचरों को रहस्य की बातें बताते थे, केवल गुप्तचर होने मात्र से न तो उनकी सन्तुष्टि हो पाती थी और न ही वे उन्हें गुप्त सन्देशों के कहने योग्य समझते थे। तोरण दुर्ग का अध्यक्ष शिवाजी के गुप्तचर की परीक्षा लेकर ही उसे रहस्य की बात बताने के लिये तैयार होता है। **''नैतेषु विषयेषु कदापि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याभ्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषूचिद् विषयेषु समर्पयिषामि।''**

गौरसिंह गुप्तचर का कार्य करते हुये कभी ब्रह्मचारी बनता है तो कभी संन्यासी; कभी गायक बनता है तो कभी उत्कट योद्धा। और सर्वत्र अपना कार्य बड़ी कुशलता से करता है। दूसरी ओर शिवाजी के द्वारा नियुक्त सभी कर्मचारी अपना कार्य अत्यन्त निष्ठा-विश्वास और स्वामिहित भावना से करते थे। वे किसी के बहकावे या उत्कोच आदि के प्रलोभन में नहीं आते थे। स्वामी की आज्ञा के सामने ब्रह्मा तक के आदेश मानने को तैयार नहीं होते थे। स्वामी का आदेश ही उनके लिये ब्रह्मा का आदेश होता था। इसी प्रकार के आचरण की एक द्वारपाल की उक्ति द्रष्टव्य है - **सन्यासिन् ! सन्यासिन् !! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्माणोप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिक धर्म रक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनांच, संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चाप्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोंकणदेशभूमिः तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरशा वहामः।''**

महाराज शिवाजी एक स्वाभिमानी शासक थे। अपने शत्रु मुगल शासकों से सन्धि करना या उनकी अधीनता स्वीकार करना उन्हें स्वीकार न था। इस स्थिति में शत्रुओं से रक्षा एक मात्र उपाय युद्ध ही था। शत्रु से सन्धि करने की अपेक्षा अपने प्राणों को उत्सर्ग कर देना वे कहीं

अधिक श्रेयष्कर समझते थे। अपने इन विचारों पर सदैव दृढ़ रहे। शिवाजी के हृदय में यवनों से प्रतिशोध लेने की भावना कितनी प्रबल थी इसका एक सुन्दर उदाहरण देखिये - **''ये अस्मादिष्टदेव मूर्तीभङ्त्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य तीर्थस्थानानि पक्वणी कृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा, वेद पुस्तकानि विदीर्य च आर्यवंशीयान् वलाद्यवनीकुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरंजलिं बद्धवा लालाटिकतामंगी कुर्याम् ? एवं चेद् धिक् मां कुलकलंकक्लीबम्। या प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासे तां वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, बध्येय, ताडयेय वा तदैव धन्योऽहम् धन्यो च मम पितरौ। कथ्यतां भावदृशां विदुषामत्र कः सम्मतिः ?''**

इस प्रकार व्यास जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का सम्यक् चित्रण किया है। जिससे 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' कि उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है।

2.3.7 शिवराजविजय की ऐतिहासकिता–

शिवराजविजय में वर्णित अधिकांश घटनाएँ शिवाजी से सम्बद्ध है क्योंकि कथा के फल के अधिकारी प्रमुख पात्र हैं। इसकी कथा अफजल खाँ के पराजय से प्रारम्भ होकर है। इसमें निम्नलिखित प्रमुख घटनाएँ ऐसी हैं, जिसका स्रोत ऐतिहासिक है -

1.शिवाजी का अफजल खाँ से युद्ध।
2.शाइस्ता खाँ के पूना निवास पर शिवाजी द्वारा आक्रमण।
3.शिवाजी और भूषण कवि।
4.शिवाजी और शहजादा मुअज्जम।
5.शिवाजी द्वारा सूरत नगर की विजय।
6.शिवाजी और जयसिंह का संघर्ष तथा सन्धि।
7.शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति।
8.शिवाजी का महाराष्ट्र वापिस आना तथा सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करना।

1. शिवाजी और अफजल खाँ का युद्ध हुआ और अफजल खाँ मारा गया। यह एक ऐतिहासिक घटना है। इसका उल्लेख सभी इतिहासकारों ने किया है। ग्रान्ट डफ के अनुसार सन्धि के ब्याज के कपटपूर्ण ढंग से शिवाजी ने अफजल खाँ पर आक्रमण किया और वह विश्वासघात का शिकार हुआ। परन्तु अब शिवराजविजय के वर्णन के अनुरूप ही 'बीजापुर नरेश' द्वारा शिवाजी को धोखे से पकड़ने का षड्यन्त्र किया था- यह सिद्ध हो चुका है। साथ ही नवीन गवेषणाओं ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि प्रथम आक्रमण अफजल खाँ ने ही किया था तब शिवाजी ने अपने गुप्त शस्त्रों से उसे मार डाला।

2. शिवाजी ने शाइस्त खाँ के पूना निवास पर आक्रमण किया। ग्रान्ट डफ के अनुसार शाइस्ता खाँ मराठों की दुर्ग युद्ध की विभीषिका से पूना में किसी भी व्यक्ति का प्रवेश रोकने का प्रबन्ध किया था। तब शिवाजी ने बारात के माध्यम से पूना में प्रवेश की अनुमति प्राप्त करके 25 सैनिकों के साथ प्रवेश किया। मराठे सैनिकों ने पीछे की दीवार तोड़कर अन्दर किले में प्रवेश किया। जब इसकी जानकारी स्त्रियों द्वारा शाइस्ता खाँ को हुई तब वह खिड़की से निकल कर भागा परन्तु खड्ग के प्रहार से उसकी उँगली कट गई। फिर भी वह भाग गया परन्तु उसका पुत्र और अनेक रक्षक मारे गये। शिवाजी सैनिकों के साथ निर्विघ्न बाहर निकल आये और पूना से 2-4 मील दूर

मसालें जलाकर सिंह दुर्ग में प्रविष्ट हो गये। एक ऐतिहासिक घटना है और इसी रूप में व्यास जी ने भी इसका वर्णन किया है। कुछ इतिहासकारों ने इस घटना के कुछ अन्य रूप में वर्णित किया है।

3. शिवाजी और भूषण कवि का मिलन एक किंवदन्ती के अनुसार बतलाया जाता है। यद्यपि इन दोनों के समकालीन होने पर कुछ इतिहासकार सन्देह करते हैं परन्तु शिवराजविजय तथा कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार उनका समकालीन होना सिद्ध होता है।

4. इतिहास के अनुसार मुअज्जम ने जनवरी 1664 में शाइस्ता खाँ का स्थान ग्रहण किया था। शिवराजविजय के अनुसार मुअज्जम को शिवाजी के सैनिक कैद कर लेते हैं। परन्तु इतिहास के अनुसार उसके कैद की पुष्टि नहीं होती है।

5. इतिहास के अनुसार 5 जनवरी 1664 को शिवाजी ने स्वयं सेना लेकर सूरत नगर पर आक्रमण करके उसे जीत लिया था। परन्तु व्यास जी ने सूरत नगर को जीतने के लिये शिवाजी को न भेजकर सेनापति धीरेन्द्र सिंह को भेजा है।

6. इतिहास के अनुसार 30 सितम्बर 1664 को औरंगजेब ने जयसिंह और दिलेर खाँ को शिवाजी के दबाने के लिये भेजा था। युद्ध में शिवाजी पराजित हुये और उनकी अनेक शर्ते स्वीकार की तथा औरंगजेब के दरबार में जाने को सहमत हुए। जयसिंह के साथ इस संघर्ष और संन्धि की घटना को व्यास जी ने कुछ परिवर्तन करके लिखा है। इसमें युद्ध का वर्णन नहीं है तथा जयसिंह से पराजय की दुर्बलता को भी छिपाने के लिए देवशर्मा की भविष्यवाणी द्वारा ढकने का प्रयास किया गया है।

7. ग्रान्ट डफ के अनुसार शिवाजी पाँच सौ घुड़सवारों तथा एक हजार पदातियों के साथ दिल्ली जाकर औरंगजेब के दरबार में उपस्थित हुए। कुछ इतिहासकारों ने दिल्ली जाने को न लिखकर, आगरा जाने का उल्लेख किया है और शिवाजी ने वहीं मुगल सम्राट से भेट की।

8. औरंगजेब की कैद से वापस लौटने के बाद शिवाजी की उपस्थिति प्रताप दुर्ग में दिखाई गई है परन्तु इतिहास के अनुसार वे रायगढ़ में प्रकट हुए थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार शिवाजी ने दक्षिण पहुँचकर मुगलों को दिये हुए सभी किलों को जीत लिया। शिवराजविजय में भी ऐसा ही वर्णन है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उन्होंने 3 वर्ष तक पुरन्दर सन्धि का पालन किया उसके बाद युद्ध करके सभी किले जीते। इसी प्रकार जयसिंह की कारुणिक मृत्यु, मोहब्बत खाँ का मराठों द्वारा हराया जाना आदि व्यास जी द्वारा वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं।

इस प्रकार शिवराजविजय में वर्णित अधिकांश प्रमुख घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। यत्र-तत्र लेखक ने साहित्यिक आवश्यकता तथा नेतृगत एवं प्रतिनेतृगत चरित्रों की संगीत के लिये ऐतिहासिक कथा में परिवर्तन किया है, फिर भी इसकी ऐतिहासिकता पर आघात नहीं हुआ है।

1. चरित्र की दृष्टि से शिवराजविजय की ऐतिहासिकता - जैसा कहा गया है कि शिवराजविजय में ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। ऐतिहासिक पात्रों में शिवाजी, जयसिंह, औरंगजेब आदि पात्रों का चरित्र इतिहास के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। कुछ ऐतिहासिक पात्र ऐसे भी हैं, जिनके चरित्रों को कवि ने बहुत कुछ अंशो में काल्पनिक रूप में चित्रित किया है। इसी सन्दर्भ में यह भी कहना अनुचित न होगा कि व्यास जी ने काल्पनिक पात्रों को भी ऐतिहासिक चरित्रों के साथ इतना मिला दिया है कि वे भी ऐतिहासिक ही प्रतीत होते हैं।

अस्तु, शिवराजविजय एक ऐसा काव्य है जिसमें साहित्यिक कलात्मकता के आधान के बाद भी ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है। भारतीय काव्यशात्र के अनुसार ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक तत्व केवल इतिवृत्त के निर्वाह-मात्र के लिये नहीं होते, अपितु वे कथा के रस अथवा भावों के अनुकूल होते हैं। कवि की कल्पना इतिहास की मर्यादा को भंग नहीं करती, अपितु इतिहास-गत मुख्य कथानक से एक रूप हो जाती है। व्यास जी ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास मेंे मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया है।

2.3.8 शिवराजविजय की औपन्यासिकता –

संस्कृत साहित्य में कथा-आख्यायिका आदि विविध रूपों में गद्यकाव्य लिखे जाते रहे हैं जो कि कृष्णमाचार्य के अनुसार एक ही जाति के दो नाम हैं। संस्कृत में व्यास जी से पूर्व उपन्यास का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था यद्यपि नाटयशास्त्र आदि में उपन्यास शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है परन्तु इस अर्थ के लिये उसका प्रयोग नहीं हुआ - ''वज्रम् पुष्पमुपन्यासः वर्णसंहार इत्यादि।'' (दशरूपक) इस नवीन (काव्य विधा) उपन्यास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बंगला साहित्य में हुआ और उसी से हिन्दी में भी इसका प्रचलन हुआ।

पं0 अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान् थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। सम्भवतः उन्हीं से उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। व्यास जी की 'गद्यकाव्य मीमांसा भाषा' से यह प्रतीत होता है कि संस्कृत में उपन्यास के अभाव से वे दुःखी थे और उसकी पूर्ति हेतु 'शिवराजविजय' की रचना में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार संस्कृत साहित्य की गद्य परम्परा में शिवराजविजय एक नवीन एवं आधुनिक काव्य-विधा होने के कारण उन्हीं मानदण्डों के अनुसार इसकी आलोचना भी संगत होगी। आधुनिक समालोचनात्मक दृष्टि से उपन्यास के 6 तत्व माने गये हैं - 1. कथानक, 2. संवाद, 3. रचना-शैली 4. चरित्र-चित्रण, 5. देशकाल और 6. उद्देश्य। इन्हीं तत्वों के आधार पर शिवराजविजय की समीक्षा प्रस्तुत है।

कथानक—

कथानक उपन्यास का आधारस्तम्भ है। अन्य तत्व इसी के आश्रित होते हैं। व्यास जी ने अपनी काव्य-रचना के लिये ऐसी कथा का चयन किया जो भारतीय हिन्दू जन के लिये अत्यन्त हृदयग्राही था और उसके नायक शिवाजी देश, जाति एवं धर्म के उद्धारक के रूप में समादृत थे। व्यास जी ने प्राचीन गद्यकाव्य की परम्पराओं से कुछ अलग हटकर अपनी कथावस्तु की योजना की। शिवराजविजय का कथानक शिवाजी के ऐतिहासिक रूप को उपस्थित करने में समर्थ है। इसमें प्रासंगिक कथा के नायक रघुवीर सिंह का भी चरित्र कम विकसित नहीं है। जहाँ प्राचीन गद्यकाव्यों में कथानक की यथार्थता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था वहीं व्यास जी की प्रवृत्ति इससे भिन्न है। इसमें उन्होंने आधुनिक उपन्यास कला के अनुसार यथार्थता का पर्याप्त समावेश किया है। कथानक की दूसरी विशेषता होती है उसकी साकांक्षता एवं सम्प्रेषणीयता जिसका उपन्यास में विशेष महत्व है। व्यास जी ने इसकी ओर विशेष ध्यान दिया है। कहीं पर भी अनावश्यक विशेषणों तथा वर्णनों की भरमार से कथा-गति को शिथिल नहीं होने दिया है।

व्यास जी शिवराजविजय की कथा का प्रारम्भ ही बिल्कुल नये ढंग से किया है जो प्राचीन परम्पराओं से भिन्न है। सूर्योदय होने पर एक ब्राह्मण बटु कुटी से बाहर निकलकर पूजा के लिये फूलों का चयन प्रारम्भ करता है। काव्य की समाप्ति अवश्य कुछ प्राचीन मार्ग पर ही आधृत

प्रतीत होती है। शिवराजविजय का कथानक संगठित घटनात्मक की अपेक्षा शिथिल कथनात्मक ही अधिक है क्योंकि इसकी प्रत्येक घटनाएँ एक दूसरे का परिणाम न होकर स्वतन्त्र हैं। गौरसिंह का वृत्तान्त, वीरेन्द्र सिंह की कथा, रघुवीरसिंह और सौवर्णी की प्रेम-गाथा आदि पृथक्-पृथक् घटनाएँ हैं। लेखक ने उन्हें एक सूत्र में पिरोकर साकांक्ष बना दिया है।अस्तु कथानक की दृष्टि से शिवराजविजय संस्कृत जगत् से हट कर आधुनिकता का परिवेश लिये हुए संस्कृत जगत् में अवतरित हुआ है। व्यास जी ने बड़ी कुशलता के साथ काव्यात्मकता का पुट देकर भी उसकी ऐतिहासिकता को अक्षुण्ण रखा।

व्यास और बाण की तुलनात्मक समीक्षा—

कोई भी कवि या लेखक अपने पूर्ववर्ती साहित्यिक प्रवृत्तियों से बिल्कुल अछूता नहीं रह सकता है। व्यास जी के पूर्ववर्ती गद्यकारों में तीन प्रमुख थे- बाण, दण्डी और सुबन्धु। इन तीन गद्यकारों में बाण और सुबन्धु की रचना और भाव के चित्रण की शैली लगभग एक-सी रही है परन्तु दण्डी की भाषा-शैली तथा भावाभिव्यंजना दोनों ही पृथक् रही है। इन दोनों परम्पराओं के रहते हुए भी आधुनिकता से प्रभावित पं0 अम्बिकादत्त व्यास ने कुछ-कुछ अंशों में उक्त दोनों गद्य परम्पराओं का अनुकरण किया तथा कुछ अंशों में अपने उपन्यास को आधुनिक औपन्यासिक तत्वों से सजा कर एक नवीन विधा के रूप में प्रस्तुत किया। अतः शिवराजविजय को बाण और दण्डी के काव्यात्मक मानदण्डों तथा आधुनिक मानदण्डों का एक सम्मिश्रित रूप कहा जा सकता है। शिवराजविजय के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिवराज पर बाण की काव्य-शैली का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इसलिए समालोचकों ने व्यास जी को अभिनव बाण 'व्यासस्त्वभिनवो बाणः' कहकर उनकी प्रतिभा और काव्य-शैली का उचित मूल्यांकन किया है। यह सच कि अलंकृत गद्य-काव्य-परम्परा में बाण के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में व्यास जी को ही माना जा सकता है। बाण और व्यास की संक्षिप्त तुलना इस प्रकार है

बाण ने अनेकों ग्रन्थों की रचना की परन्तु अलंकृत गद्य शैली के प्रतीक कादम्बरी और हर्षचरित ही उनकी अमर कृतियाँ मानी जाती हैं। व्यास जी ने कुल तो लगभग 78 ग्रन्थों का प्रणयन किया है, परन्तु शिवराजविजय एकमात्र ऐसी कृति है जो उनकी यशोगाथा को विकसित करने वाली है। अतः इनकी तुलना करते हुए हम कह सकते हैं कि -

1. कथानक - हर्षचरित की कथा ऐतिहासिक है, कादम्बरी की कल्पित। इन दोनों कथानकों का समाहार करते हुए हर्षचरित के आधार पर व्यास जी ने हर्षवर्धन की भाँति महाराष्ट्र-केसरी वीर शिवाजी के ऐतिहासिक कथा को स्वीकार किया और कादम्बरी की प्रेमगाथा के अनुरूप सौवर्णी की प्रणय-कथा की कल्पना की। हर्षचरित की ऐतिहासिक कथा का संघटनात्मक कथानक है, शिवराजविजय की कथा का शिथिल कथनात्मक है। कादम्बरी में वर्णनों और विशेषणों के आधिक्य से कथा की गति मन्द पड़ जाती है परन्तु व्यास जी की कथा ऐसी नहीं है। कथा के संयोजन में दोनों लेखकों ने संश्लिष्टात्मकता पर विशेष ध्यान दिया है। बाण का कथानक परम्परावादी दृष्टिकोण से वर्णित है परन्तु व्यास जी के कथानक में नवीनता का प्रयोग है।

पात्र - बाण के पात्र ऐतिहासिक एवं कल्पित दोनों हैं। व्यास जी ने भी दोनों प्रकार के पात्रों की योजना की है। बाण के पात्रों में अतिशयता और अतिमानवीयता का आधार है परन्तु व्यास जी के पात्र इससे रहित हैं। वे यथार्थ के धरातल पर स्थित है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में बाण का

दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक और यथार्थवादी कम है। व्यास का दृष्टिकोण यथार्थवादी अधिक तथा आदर्शवादी कम है।

रचना शैली - बाण की भाषा शैली आलंकारिक, समासबहुल तथा जटिल पदविन्यासात्मिका है। व्यास जी की भाषा शैली भी आलंकारिक है परन्तु अलंकारों का प्रयोग उचित मात्रा में किया गया है। अधिक लम्बे समास नहीं हैं, पर विन्यास सरल है। नूतन शब्दों का प्रयोग भी व्यास जी ने बाण की अपेक्षा कम किया है। बाण के काव्य में विभिन्न शैलियों तथा रीतियों का निदर्शन होता है और यह विशेषता व्यास जी के काव्य में भी विद्यमान है किन्तु बाण के जितनी दक्षता और प्रौढ़ता इनके काव्य में नहीं है। बाण के काव्य में पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना का अभाव है। समग्र दृष्टि से बाण के काव्य में काल्पनिक चमत्कार और भावों के विशद वर्णन के लिए प्रयुक्त भाषा में जटिलता और दुरूहता है इसलिए तो बाण के काव्य को नारिकेलफल सम्मितम् वचः कहा गया है। परन्तु व्यास जी के काव्यों में इस प्रकार की जटिलता नहीं है। उनकी भाषा बड़ी ही सुबोध तथा प्रवाहमयी है। इसी दृष्टि से डा0 भगवानदास ने लिखा है - ''.....वासवदत्ता और कादम्बरी के शब्दों की अरण्यानी में तो बेचारा अर्थपथिक सर्वथा भूल भटक कर खो जाता है, उसका पता नहीं लगता। कविता के गुणों में प्रसाद गुण एक मुख्य गुण है; वह इन दो काव्याभासों में मिलता नहीं- विपरीत इसके 'शिवराजविजय' में भाषा उत्तमोत्तम ओजस्विनी भी, अर्थपूर्ण भी, सुबोध्य भी, यथास्थान, यथावसर उद्दाम भी, कोमल भी है।''

विविध वर्णन - महाकवि बाण पृथ्वी से आकाश तक के वर्णन के लिए प्रसिद्ध हैं। भावतत्व हो या वस्तु, बाण की लेखनी से अछूता नहीं रह गया है। इसी दृष्टि से 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्-'' की उक्ति प्रसिद्ध है। व्यास जी विविध वर्णनों के चक्कर में उतना नहीं पड़ते हैं। कथानक की यथार्थता को प्रदर्शित करने के लिए जितना अपेक्षित होता है, उतना ही वर्णन करते हैं।

प्राकृतिक चित्रण भी बाण बड़ी विशदता के साथ करते हैं। पहाड़ हो या नदी, जंगल हो या सरोवर, पशु हो या पक्षी, सभी का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता के साथ करते हैं। प्राकृतिक चित्रण व्यास जी ने भी किया है, परन्तु उनके चित्रण की इतनी विशदता तथा सूक्ष्मता नहीं है । बाण और व्यास दोनों ने प्रकृति के कोमल और कठोर दोनों पक्षों का चित्रण किया है।

जीवन के गहन अनुभवों की जितनी मार्मिक अभिव्यंजना बाण ने की है, उतनी व्यास जी नहीं कर सके हैं। सौन्दर्य और प्रेम की जैसी जीवन्त प्रतिमाएँ कादम्बरी और महाश्वेता हैं। वैसी सौवर्णी और रोशनआरा नहीं हैं। चन्दापीड जैसा प्रेमी शिवराजविजय में कोई नहीं है। फिर भी प्रणय की उदार भावना की अभिव्यंजना दोनों में समान रूप से की है।बाण ने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षिणी शक्ति, कल्पना और ज्ञान से मानवीय भावों और प्रवृत्तियों के विशद चित्रण में, विविध वस्तुओं के प्रतीक प्रकाशन में तथा सिद्धान्तों के सुस्पष्ट प्रतिपादन में अत्यन्त सफल और सिद्धहस्त हैं। यद्यपि ऐसा प्रयास व्यास जी ने भी किया है और बहुत अंशों में सफल हुए हैं, परन्तु बाण की समानता नहीं कर सके हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि व्यास बाण के अनुगामी है। उनकी बहुत सी परम्परागत विशेषताओं का अनुकरण करके अपने काव्य को अलंकृत किया है। जहाँ तक कलावादिता के प्रत्येक क्षेत्र में व्यास को बाण से पीछे रह जाने की बात है उसका एक कारण यह भी है कि व्यास जी शुद्ध रूप से केवल बाण अनुगामी नहीं रहे हैं अपितु उपन्यास की

आधुनिक प्रवृत्तियों को विशेष रूप से ध्यान में रखकर काव्य लिख रहे थे। अतः दोनों के दृष्टिकोण में भी अन्तर था।

दण्डी और व्यास की तुलनात्मक समीक्षा –

महाकवि दण्डी के दो गद्यकाव्य माने जाते हैं- 1. अवन्तिसुन्दरीकथा और 2. दशकुमारचरित। अवन्तिसुन्दरी कथा के अपूर्ण तथा सन्देहास्पद होने के कारण उनकी काव्य शैली का मापदण्ड दशकुमारचरित ही माना जाता है। इसमें दस राजकुमार अपने-अपने पर्यटनों, अनुभवों तथा पराक्रमों का मनोहारी वर्णन करते हैं। इसमे झूठ, कपट, चोरी, जुआ, मार-काट की भरमार है। सभी राजकुमार उचित-अनुचित का विचार छोड़कर अपनी कार्यसिद्धि के लिये प्रयास करते हैं। सम्भवतः इसीलिए चन्द्रशेखर पाण्डेय तथा शान्तिकुमार आदि इसे धूर्तों का रोमांस मानते हैं। दण्डी का दशकुमारचरित छठीं शताब्दी के भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण करने में समर्थ हुआ है। इसमें समाज के दोषों को बड़ी निर्ममता के साथ अनावृत्त किया गया है। वस्तुतः दशकुमारचरित का कथानक अपने ढंग का एक अनोखा कथानक है। इसकी कथा आदर्श की अपेक्षा यथार्थ पर आधारित है।

महाकवि दण्डी पण्डित मण्डली के बीच में होते हुए भी, कलावादियों के प्रभाव से प्रभावित रहते हुए भी तथा रूढ़ीवादी प्रवृत्तियों में पलते हुए भी इनसे मुक्त रहकर स्वतन्त्र विचारधारा और चिन्तन के अनुरूप उन्होंने परम्परागत मार्ग से हटकर एक विचित्र ढंग की योजना की, जिसके पात्र आदर्श चरित न होकर यथार्थ के उद्धाता कहे जा सकते हैं और कथानक के चित्रण में अवान्तर कथाओं के द्वारा किसी प्रकार का अवरोध उत्पन्न नहीं किया गया है और न ही भाषा की जटिलता, पाण्डित्य प्रदर्शन तथा काल्पनिक चमत्कारों से किसी प्रकार की दुर्बोधता का आधान हुआ है। बाण, दण्डी तथा सुबन्धु की विवेचना करते हुए डॉ0 भोला शंकर व्यास कहते हैं - ''सुबन्धु और बाण का खास ध्यान परिश्रम साध्य रीति की ओर अधिक है, पर दण्डी का ध्यान केवल अभिव्यंजना पक्ष की ओर नहीं है, वे कथा के विषय को कम महत्व नहीं देते। सुबन्धु ने एक छोटी-सी कहानी लेकर कला का आलवाल खड़ा कर दिया है, पर दण्डी के पास विषय की कमी नहीं है और उनकी अभिव्यंजना-शैली इतनी गठी हुई है कि वह विषय को लेकर आगे बढ़ती है। सुबन्धु और बाण दोनों ही कवियों की रीति पक्ष बड़ी तेजी से, बड़ी सज-धज से आगे बढ़ता है और विषय पीछे घसिटता रहता है, दोनों कदम-व-कदम मिलाकर चलते नहीं दिखाई देते। दण्डी के 'दशकुमारचरित' में कथा या विषय की परिणति नहीं देखी जाती है। ''वे सरल प्रवाहमय भाषा के सिद्ध प्रयोक्त है, संवाद सूक्ष्म और तात्विक होते हैं। शाब्दी या आर्थी क्रीड़ा के फेर में अधिक नहीं पड़ते।''

दण्डी की उपर्युक्त विशेषताएँ व्यास जी के शिवराजविजय में भी पाई जाती हैं। दण्डी और व्यास के काव्यात्मक दृष्टिकोण में पर्याप्त साम्य है यदि इन दोनों में अन्तर है तो केवल इतना कि व्यास जी ने ऐसे कथानक को अपने काव्य का आधार बनाया है जो ऐतिहासिक है, उत्कृष्ट चरित्रयुक्त है, अनुकरणीय है यथार्थ होते हुए भी आदर्श का प्रेरक है परन्तु दण्डी का कथातत्व सामाजिक यथार्थता से युक्त होते हुए भी न तो अनुकरणीय है, न उत्कृष्ट है न ही आदर्श का प्रेरक है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि दण्डी के कथानक में सत्यम् और सुन्दरम् के होते हुए भी शिवम् का पोषण नहीं हो पाया है। जब कि व्यास जी सत्यम्, शिवम् सुन्दरम् का पूर्ण पोषक है शिवराजविजय और दशकुमारचरित दोनों में ही भिन्न-भिन्न घटनाओं को परस्पर सम्बद्ध करके

एक सूत्र में पिरोया गया है।रचना शैली की दृष्टि से दण्डी और व्यास में पर्याप्त समानता है। दण्डी के समान ही व्यास जी की भी शैली सरस एवं प्रभावपूर्ण है। लम्बे-लम्बे समासों वाली, श्लेष और उत्प्रेक्षाओं से भरी, विराधाभास एवं श्लेषमूलक परिसंख्या से विभूषित तथा अलंकारों के भार से बोझिल कवित्व भरी शैली का दण्डी के समान व्यास जी में भी अभाव है।वस्तुतत्व एवं भावतत्व के विविध वर्णन भी व्यास ने दण्डी के समान ही किया है, जो कथा में अवरोधक न होकर पोषक ही है। प्रकृति-चित्रण भी दोनों ने प्रायः समान रूप में ही किया है। दोनों का प्रकृति-चित्रण नातिदीर्घ तथा प्रभावशाली है।कलावादिता की ओर अधिक अभिरूचि न दण्डी की है और न व्यास की ही। शाब्दी और आर्थी क्रीड़ा के प्रति दोनों उदासीन हैं। शिवराजविजय में शाब्दी क्रीडा का नितान्त अभाव है, जब कि दण्डी ने शब्दविन्यास पर अवश्य कुछ ध्यान दिया, तभी तो वे पदलालित्य की योजना कर सके हैं 'दण्डिनः पदलालित्यम्।दण्डी और व्यास दोनों ने ही पात्रों की योजना समान रूप से की है। दोनों के ही पात्र धरती पर रहने वाले सामाजिक प्राणी है, मानवीय भावनाओं से युक्त हैं, तथा चरितगत यथार्थता से मण्डित हैं। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि दण्डी और व्यास में जितना साम्य है, उतना बाण और व्यास में नहीं। फिर भी वस्तुतत्व का अन्तर इतना महत्वपूर्ण है कि व्यास को अभिनव दण्डी न कहकर अभिनव बाण ही कहा गया। व्यास को दण्डी का अनुगामी न मानकर बाण का ही अनुगामी माना गया।

अभ्यास प्रश्न -

1- कहॉ के केसरी वीर शिवाजी इतिहास प्रसिद्ध राजा हैं ?

2- शिवाजी का बालमित्र कौन है?

3- शिवराजविजय में कौन ऐतिहासिक पात्र आवश्यक प्रतीत होते हैं?

4- शिवाजी का विरोधी कौन है?

5- शिवाजी का विपक्षी हिन्दू राजा कौन था?

2.4 सारांश

इस इकाई में शिवराजविजय के ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्रों का वर्णन किया गया है । ऐतिहासिक पात्रों में शिवाजी, जयसिंह, औरंगजेब आदि पात्रों चरित्र इतिहास के अनुरूप ही चित्रित किया गया है। कुछ ऐतिहासिक पात्र एसे भी हैं, जिनके चरित्रों को कवि ने बहुत कुछ अंशों में काल्पनिक रूप में चित्रित किया है। पं0 अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के विद्वान् थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। सम्भवतः उन्हीं से उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई होगी। व्यास जी की 'गद्यकाव्य मीमांसा भाषा' से यह प्रतीत होता है कि संस्कृत में उपन्यास के अभाव से वे दुःखी थे और उसकी पूर्ति हेतु 'शिवराजविजय' की रचना में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार संस्कृत साहित्य की गद्य परम्परा में शिवराजविजय एक नवीन एवं आधुनिक काव्य-विधा होने के कारण उन्हीं मानदण्डों के अनुसार इसकी आलोचना भी संगत होगी।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
निपतन्ति	गिरते हैं

पालयन्ते	भागते हैं
शुष्कमुखा	शुखे हुए मुख
शिववीरः	शिवाजी
कथं	क्यों
आगतः	आया
भ्रमेणापि	भ्रमण करने पर भी
भारतवर्षीया यूयम्	भारत में रहने वाले तुम लोग

2. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

1- महाराष्ट्र के केसरी वीर शिवाजी इतिहास प्रसिद्ध राजा हैं।

2- माल्यश्रीक शिवाजी का बालमित्र है।

3-शिवराजविजय में गोपीनाथ ऐतिहासिक पात्र आवश्यक प्रतीत होते हैं।

4- शिवाजी का विरोधी औरंगजेब है।

5- शिवाजी का विपक्षी हिन्दू राजा जयसिंह था।

2.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत,वाराणसी

2.8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत,वाराणसी

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं0 अम्बिकादत्त व्यास के विषय में परिचय दीजिये।

इकाई .3 शिवराजविजयम् : प्रथम नि:श्वास
विष्णोर्माया भगमती..... से .....विरराम तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 विष्णोर्माया से विरराम तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)
3.4 सारांश
3.5 शब्दावली
3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.8 उपयोगी पुस्तकें
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह तृतीय इकाई है। लेखक ने प्रारम्भ में भागवत् की सूक्तियों को स्थान दिया है। इसमें भगवान् विष्णु की माया शक्ति के प्रभाव का उल्लेख किया गया है। यह मंगल सूचक है। दुष्ट विनाश यवन शासक के विनाश को सूचित करता है तथा सज्जन संरक्षण के द्वारा शिवराज विजय की सूचना प्राप्त होती है।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि योगिराज कौन थे ? योगिराज के पूजे जाने पर ही 'महामुनि उठ गये हैं, और यहाँ आये हैं ऐसा कानों कान सुनकर बहुत से लोग चारों ओर उपस्थित हो गये हैं। एक कन्या को सुन्दरी जानकर कोई यवन का लड़का नदी के किनारे से माता के हाथ से छीनकर रोती हुई (इस कन्या को) लेकर भाग गया। उसके बाद कुछ दूर जाकर, जब तक (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया, तब तक अचानक काल रूपी कम्बल के समान एक भालू वन प्रान्त से आ गया।

अर्थात् समाधि से उठे हुए योगिराज भारत की दुर्दशा को देखकर यह कहने लगे कि विक्रम के राज्य में यह कैसा अनर्थ हो रहा है, तब ब्रह्मचारियों के गुरू कहते हैं कि विक्रम का राज्य बीते तो सत्रह सौ वर्ष हो चुके हैं । तब सोमनाथ के मन्दिर का वर्णन करते हुए कहते है आज तो उस (सोमनाथ) तीर्थ का नाम भी कोई स्मरण नहीं करता है, परन्तु उस समय उसका वैभव अलौकिक था। निश्चित रूप से वहां बहुमूल्य मूँगों, पद्मरागों, मणियों और मोतियों से जटित कपाटों, खम्भों, देहलियों, दीवारों छज्जों, कपोतों के दरबों को मथकर, रत्न समूह को लेकर, दो सौ मन सोने की सीकड़ में लटकने वाला प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाला विशाल सोमनाथ मन्दिर था। इन सबका अदभुत् वर्णन इस इकाई किया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- भगवान विष्णु की माया नाम की शक्ति ऐश्वर्य से सुशोभित है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- भगवान् विष्णु के विषय में बता सकेंगे।
- श्याम वटुक एवं गौर वटुक के विषय में आप बता सकेंगे।
- योगिराज के विषय में बता सकेंगे।
- कन्या को कौन लेकर भागा, इसके विषय में आप बता सकेगें।
- भारत पर मुगल शासकों ने कैसा अत्याचार किया, इसके विषय में आप अध्ययन करेंगे।
- सोमनाथ मन्दिर के विषय में बता सकेंगे।
- सोमनाथ मन्दिर को किसने तोड़ा ? इसके विषय में आप अध्ययन करेंगे।
- महमूद गजनवी के विषय में बता सकेंगे।
- शहाबुद्दीन के विषय में आप बता सकेंगे।

3.3 विष्णोर्माया से विरराम तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

।। शिवराज विजय प्रथमो विराम: ।।

''विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितज्जगत्''(भागवतम् 10/1/25)

''हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयादविमुच्यते''(भाग. 10/1/31)

हिन्दी अनुवादः भगवान विष्णु की माया नाम की शक्ति ऐश्वर्य से सुशोभित है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण भुवन को मोहग्रस्त किया गया है। दुष्ट हिंसा करने वाला अपने पाप से मारा गया और सज्जन व्यक्ति समत्व बुद्धि के कारण भयः से मुक्त हो गया।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— विष्णोः = विष्णु की, माया = माया सत्वप्रधाना शक्ति का नाम है, भगवती = (भग+मतुप=ङीप्) ऐश्वर्यशालिनी, यया = जिस सत्वप्रधाना माया शक्ति के द्वारा, सम्मोहितम् = मोह ग्रस्त कर दिया गया है। जगत् = सम्पूर्ण भुवन, हिंस्र = हिंसक, स्वपापेन = अपने पाप से, विहिंसितः = मारा गया, खलः = दुष्ट, साधुः = सज्जन, समत्वेन = समत्व बुद्धि से अर्थात् राग द्वेष आदि भावना से रहित होकर। भयात् = भय से, विमुच्यते = मुक्त हो जाता है।

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्द्धसङ्खया, असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्तिं च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनःगायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन् निजपर्णकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रबटुः।

हिन्दी अनुवादः— पूर्व दिशा में भगवान् सूर्य का यह लाल प्रकाश है। यह भगवान सूर्य आकाश-मण्डल के रत्न, तारामण्डल के चक्रवर्ती राजा, पूर्व दिशा के कुण्डल, ब्रह्माण्ड रूपी गृह के दीपक, कमल समूह के प्रिय चक्रवाक मण्डल के दुःख को हरने वाले, भ्रमर समूह के आश्रय, सांसारिक सम्पूर्ण व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी हैं। यही भगवान् सूर्य दिन-रात को उत्पन्न करते हैं, ये ही वर्ष को बारह हिस्सों में विभक्त करते हैं, यही भगवान सूर्य छः ऋतुओं के कारण हैं, यही उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग को स्वीकार करते हैं, इन्हीं भगवान् सूर्य के द्वारा युगभेद (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) किया गया है, इन्हीं के द्वारा कल्पों का विभाजन किया गया है, इन्हीं के आश्रय से विधाता की अन्तिम परार्द्ध नाम की संख्या पूरी होती है। यही संसार का बार-बार सृजन, पालन-पोषण एवं नाश करते हैं, वेद इन्हीं की स्तुति करते हैं, गायत्री इन्हीं का गुणगान करती हैं, ब्रह्मरत ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हीं की पूजा करते हैं, श्री रामचन्द्र के वंश के मूल ये भगवान् सूर्य धन्य हैं, ये भगवान सूर्य सम्पूर्ण लोगों के लिए पूज्यनीय हैं, उगते हुये भगवान सूर्य को प्रणाम करता हुआ, गुरु सेवा में निपुण कोई विप्र बालक अपनी पर्ण कुटी से बाहर निकला।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— पूर्वस्यां = पूर्व दिशा में, भगवतः = ऐश्वर्यशाली, भग का तात्पर्य ऐश्वर्य अर्थात् जिसके पास भग हो, मारीचिमालिनः = किरणों की माला वाला, मरीचि अर्थात् किरण, खेचर चक्रस्य = तारामण्डल या नक्षत्र मण्डल, आखण्डल दिशः = आखण्डल = इन्द्र अर्थात् इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा, ब्रह्माण्ड भाण्डस्य = ब्रह्माण्ड रूपी घर ब्रह्माण्डमेवभाण्डम्, प्रेयान् = अति प्रिय, पुण्डरीक पटलस्य = पुण्डरीकाणां पटलस्य (षष्ठी तत्पु)

अर्थात् कमलों का समूह, रोलम्बकदम्बस्य = रोलम्बानां कदम्बस्य (षष्ठी तत्पु) भ्रमर समूह, रोलम्ब = भ्रमर, कदम्ब = समूह, सर्व व्यवहारस्य = सांसारिक सम्पूर्ण कार्यों का, इनः = स्वामी, अहो रात्रम् = अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम् (द्वन्द्व समास) दिन-रात, कल्प भेदाः = कल्पों के भेद, एक सहस्र युग की काल सीमा को कल्प कहते हैं, चकर्ति = बार-बार सृजन करता है, कृ+यङ्+लट्, प्र.पु. ए.व., विभर्ति = बार-बार भरण-पोषण करता है, भृज्+यङ्+लट् प्र.पु., जहर्ति = बार-बार संहार करता है, हृ+यङ्+लट्+प्र.पु. ए.व., अहरहः = प्रतिदिन, उपतिष्ठनो = उप+स्था (पूजा करना) + लट् (आत्मने पद), प्रणम्य = प्रणाम करने योग्य, प्र+नम्+यत्, भास्वन्तम् = उदित होते हुए, सूर्य को प्रणमन् = प्रणाम करता हुआ, प्र+नम्+शत्ट प्रत्यय, निज-पर्णकुटीरात् = अपने छोटे पर्ण कुटी से, कश्चित् = कोई, गुरुसेवनपटुः गुरु की सेवा में निपुण, गुरोः सेवायाम् पटुः, विप्र बटुः = ब्राह्मण बालक।

समास: मरीचि मालिनः = मरीचीनां माला यस्य सः मरीचि माली तस्य (बहुव्रीहि)।

विशेष: — अरुण को सूर्य का सारथी भी कहा गया है। आकाश में जो यह प्रकाशदिखाई पड़ता है उसे अरुण कहा गया है। अभिज्ञान शाकुन्तल में इसी तथ्य को प्रकाशित किया गया है। ब्रह्मा का दिन-रात मुनष्यों कल्प अर्थात स्थिति एवं प्रलय काल है।

''अहो! चिररात्राय सुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोऽतिवातिः, सन्ध्योपासन-समयोऽयमस्मद्गुरुचरणानाम्, तत्सपदि अवचिनोमि कुसुमानि'' इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्त्तुमारेभे।

हिन्दी अनुवाद: — ओह ! खेद है, मैं बहुत देर तक सोता रहा, निद्रा रूपी जाल में बंध कर अत्यन्त पुण्य पूर्ण समय व्यतीत कर दिया, हमारे गुरुजी के सन्ध्या पूजन का समय है, अतः शीघ्र ही पुष्पों को तोड़ता हूँ। इस प्रकार विचार करता हुआ (उस ब्राह्मण-पुत्र ने) एक केले के पत्ते को तोड़कर तिनके के टुकड़ों से उसे जोड़कर दोना बनाकर पुष्पों का चुनना प्रारम्भ कर दिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — अहो ! = आश्चर्य युक्त खेद है, चिररात्राय = बहुत देर तक, अहम् = ब्राह्मण बालक मैं, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव = निद्रा रूपी जाल में फँसकर ही, महानपुण्यमयःसमयः = महान् पुण्यमय समय, अतिवाहितः = बिता दिया, सन्ध्योपासन समयो = सन्ध्योपासना का समय, अस्मद् गुरुचरणानाम् = हमारे पूज्य गुरुजी का, तत् = अतः, सपदि = शीघ्र, अवचिनोमि = चुनता हूँ, कुसुमानि = फूलों को, चिन्तयन् = सोचता हुआ चिन्त+शतृ, कदली दलमेकं = एक केले के पत्ते को, आकुञ्च्य = तोड़कर, आ+कुञ्च+क्त्वा+ल्यप्, सन्धाय = जोड़कर, सम्+धा+क्त्वा+ल्यप्, आरेभे = प्रारम्भ कर दिया, आङ्+रम्भ्+लिट्+तिप्।

समास: — स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव = स्वप्न एव जालम्, तस्य परतन्त्रेणैव (तत्पुरुष), कदलीदलम् = कदल्याःदलम् (षष्ठी तत्पुरुष), तृणशकलैः = तृणानां शकलैः (षष्ठी तत्पुरुष), पुष्पावचयम् = पुष्पाणां अवचयः (षष्ठी तत्पुरुष)।

बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी। वयसा षोडशवर्षदेशीय कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चाऽऽसीत्।

हिन्दी अनुवाद: — वह ब्रह्मचारी आकृति से सुन्दर, रंग से गोरा और जटाओं से ब्रह्मचारी प्रतीत होता था। उसकी अवस्था सोलह वर्ष में कुछ कम थी, शंख के समान कण्ठ वाला, चौड़े ललाट वाला, सुन्दर भुजाओं वाला तथा विशाल नेत्रों वाला था।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — असौ = वह, बटुः = ब्रह्मचारी, आकृत्या = आकृति से, सुन्दरः = सुन्दर, वर्णेन = रंग से, गौरः = गोरा, जटाभिः = जटाओं से, ब्रह्मचारी = बटु, वयसा = अवस्था से, षोडसवर्षदेशीयः = लगभग सोलह वर्ष की अवस्था वाला, कम्बु कण्ठः = शंख के समान कण्ठ वाला, आयत ललाटः = चौड़े ललाट वाला, सुवाहुः = सुन्दर भुजाओं वाला, विशाल लोचनः = विशाल नेत्रों वाला।

समास: — कम्बुकण्ठः = कम्बुः इव कण्ठो यस्स सः (बहुव्रीहि), आयत ललाटः = आयतं ललाटं यस्यासौ (बहुव्रीहि), सुबाहू = शोभनौ बाहू यस्य सः (बहुव्रीहि), विशाल लोचनः = विशाले लोचने यस्य सः (बहुव्रीहि)।

अलंकार: — कम्बु कण्ठ में लुप्तोपमा अलंकार, ब्रह्मचारी के सुन्दर अंग प्रत्यंगों का नैसर्गिक एवं उदात्त वर्णन किया गया है। अतः उदात्त अलंकार है।

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीय परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित पूजित पयः पूरितं सरः आसीत्। दक्षिणतश्चैकों निर्झर-झर्झर-ध्वनिध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वाद चपलित-च´चुपतङ्गपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक- विनत-शाख-शाखि समूह व्याप्तः सुन्दरकन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

हिन्दी अनुवाद:— केले के पत्तों से घिरे हुए होने के कारण कुंज के सदृश प्रतीत होने वाली इस पर्णकुटी के चारो तरफ पुष्पवाटिका थी। पूर्व में अतिशय पावन जल वाला, सहस्र कमलों से सुशोभित, पक्षिगण के कलरव से परिपूर्ण, अतिशय जल से भरा हुआ सरोवर था। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित करने वाला, फल-समूह के आस्वादन से चंचल चोंचों वाले पक्षियों के आक्रमण से अतिशय झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों के समूह से भरा हुआ तथा सुन्दर गुफाओं वाला एक पर्वत का टुकड़ा था।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — कदलीदल कुञजायितस्य = केले के पत्तों से घिरे होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाले, कुञ्ज+क्यङ्+क्त, समन्तात् = चारों तरफ, पूर्वतः = पूर्व के ओर पूर्व+तस्, पुष्प वाटिका = फूलों का उपवन, परम पवित्र पानीयम् = अतिशय पावन जल वाला, परस्सहस्र-पुण्डरीक पटल परिलसितम् = हजारों श्वेत कमलों के समूह से शोभित, पुण्डरीक = श्वेत कमल, पटल = समूह, परिलसितम् = सुशोभित, पतत्रिकुल कूजित-पूजितम् = पतात्रि = पक्षी, कुल = समूह, कूजित = कलरव, पूजितम् = सुशोभित अर्थात् पक्षी-समूह के कलरव से सुशोभित, पयःपूरितं सर = जल से भरा हुआ तालाब, दक्षिणतः = दक्षिण+तस् दक्षिण की ओर, एको = एक, निर्झर-झर्झर-ध्वनि ध्वनित दिगन्तरः = निर्झर = झरना, झर्झर ध्वनि = झर्झर की आवाज, ध्वनित = मुखरित, दिगन्तरः = दिशाओं के मध्य अर्थात् झरने की झर्झर ध्वनि से मुखरित दिशाओं वाला, फल पटलाऽऽस्वादचपलित-चञ्चुषतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक = फल पटल = फल-समूह, आस्वाद = खाने से, चपलित = चंचल, चंचु = चोंच, पतंग = पक्षी, कुल = समूह अर्थात फलों के आस्वादन से चंचल चोचों वाले पक्षी समूह के आक्रमण से अधिक, विनत शाखा-शाखि समूह व्याप्तः = झुकी हुई डालियों वाले वृक्ष समूह से व्याप्त, विनय = झुकी हुई, शाखि = वृक्ष, सुन्दर कन्दरः = सुन्दर गुफाओं वाला, पर्वत खण्डः = पर्वत का टुकड़ा (पहाड़ी)।

समास: — पुष्पवाटिका = पुष्पाणां वाटिका (षष्ठी तत्पुरुष), परमपवित्र-पानीयम् = परमं पवित्रं पानीयं यस्य तत् (बहुव्रीहि), निर्झर-झर्झर ध्वनि ध्वनित दिगन्तरः = निर्झरस्य झर्झर ध्वनिना ध्वनितम् दिगन्तरम् यस्यसः (बहुव्रीहि), फलपटलास्वाद चपलित चञ्चु पतंग = फलानां पटलस्य आस्वादेन चपलिताः चंचवः येषां ते च ते पतंगाः, तेषां कुलस्य आक्रमणेन अधिक विनताः शाखाः येषां ते च ते शाखिनः तेषां समूहेन व्याप्तः (तत्पुरुष एवं बहुव्रीहि), सुन्दरकन्दराः = सुन्दराः कन्दराः यस्य सः (बहुव्रीहि), पर्वतखण्ड = पर्वतस्य खण्डः (षष्ठी तत्पुरुष)।

विशेष: — प्रकृति का मनोरम चित्रण किया गया है।

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जमुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनोतिः तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु-रुषित इव श्यामः, चन्दनचर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्धपटलैरु-निद्रयन्निव निद्रा-मन्थराणि कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि मिलिन्द-वृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् निवारयन् गौरबटुमेवमवादीत्।

हिन्दी अुनवाद: — जैसे ही यह ब्रह्मचारी बालक भ्रमर समूह को उड़ाकर पुष्पों की कलियों को तोड़ता है, तब तक उसी का सहपाठी सह अवस्था वाला, कस्तूरी के चूर्ण से धूसरित सा श्यामल रंग वाला, चन्दन से सुभोभित ललाट वाला, कपूर और अगरु के चूर्ण से व्याप्त वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, निद्रा से आलस्य करते हुए तथा कलियों के भीतर सोये हुए भ्रमर समूह को सुगन्ध-समूह से मानो जगाता हुआ अचानक निकट पहुँचकर उस गौर बालक को रोकता हुआ इस प्रकार कहा -

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — अलिपुञ्जम् = भ्रमरों का समूह, उद्धूय = उड़ाकर उद्+धूञ्+ल्यप्, कुसुम कोरकान् = फूलों की कलियों को, सतीर्थ्यो = साथ अध्ययन करने वाला अर्थात् सहपाठी, तत्समानवया = उसके समान अवस्था वाला, कस्तुरिका-रेणु-रुषित इव = कस्तूरी के चूर्ण से सना हुआ सा, चन्दन चर्चित भालः = चन्दन के लेप से सुशोभित ललाट वाला, कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरित-वक्षो-बाहुदण्डः = कपूर एवं अगरु के चूर्ण से सुशोभित वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, सुगन्धपटलैरुन्निद्रयन्निव = सुगन्ध समूह से मानो जगाता हुआ, निद्रामन्थराणि = निद्रासे आलस्य करते हुए, कोरक निकुरम्बकान्तराल सुप्तानि = कलियों के समूह के भीतर सोते हुए, मिलिन्द वृन्दानि = भ्रमर-समूह, झटिति = सहसा, समुपसृत्य = समीप जाकर सम+उप+सज्+ल्यप्, निवारयन् = रोकता हुआ, गौरवटुम् = गौर ब्रह्मचारी बालक।

समास:— अलि पुञ्जम् = अलीनां पुञ्जम् (षष्ठी तत्पुरुष), कुसुमकोरकान् = कुसुमानां कोरकान् (षष्ठी तत्पुरुष), सतीर्थ्यो = समाने तीर्थे गुरौ वसति, चन्दन चर्चित भालः = चन्दनेन चर्चितम् भालम् यस्य सः (बहुव्रीहि)।

अलंकार: — कस्तूरिका .....श्यामः में उत्प्रेक्षा अलंकार है, उन्निद्रयन्निव = उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अलं भो अलम् ! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम् यावनत्रासेन निःशब्दं रुदतीम्, परमसुन्दरीम्, कलित-मानवदेहामिव सरस्वती सान्त्वयन् मरन्दमधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यायत्रयमनैषीः सेमयधुना स्वपिति, उद्बुद्धय च पुनस्तथैव रोदिष्यति,

तत्परिमार्गणीयान्येतस्याः, पितरौ गृहं च -''इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद् वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टिः।

हिन्दी अनुवाद: — हे मित्र अब रहने दीजिए! मैंने पहले ही पुष्प तोड़ लिए हैं, तुम तो देर रात तक जागते रहे, इसलिए तुमको शीघ्र नहीं उठाया, गुरुजी यहाँ सरोवर के तट पर सन्ध्योपासना कर रहे हें, मैने सभी पूजन-सामग्री उनके पास रख दी है और जिस, (कन्या को) लगभग सात वर्ष की, यवनों के त्रास से सुबक-सुबक कर रोती हुई, अति सुन्दरी-मानव शरीर धारण करने वाली सरस्वती के समान कन्या को ढाढ़स बंधाते हुए पुष्परस से मधुर जल को पिलाते हुए, कन्दमूल के टुकड़ों को खिलाते हुए तुमने रात्रि के तीन प्रहर बिता दिये थे, वही (कन्या) इस समय सो रही है, जागकर पुनः उसी प्रकार रुदन करेगी। इसलिए उसके माता-पिता एवं घर का पता लगाना चाहिए।यह सुनकर गर्म निःश्वास लेकर जैसे ही उसने भी कुछ कहना चाहा, तब तक अचानक पर्वत-शिखर पर दोनों की दृष्टि पड़ी।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — भो = सम्बोधन वाचक पद है, अलम् = पर्याप्त, अवचितानि = अव+चित्+क्त = चुनलिए गये, चिरम् = देर तक, अव्यय पद, रात्रौ = रात्रि में, अजागरीः = जागते रहे, जागृ+लङ् (म.पु. ए.व.), क्षिप्रं = शीघ्र, न उत्थापितः = नहीं उठाये गये, उत्+स्था+पृक्+णिच्+क्त, गुरुचरणः = गुरुजी, तडाग तटे = सरोवर के तट पर, सन्ध्यामुपासते = सन्ध्योपासना कर रहे हैं, उप+आस्+लट् आत्मने पद, संस्थापिता = (सम+स्था+णिच्+पुक्+क्त) (स्त्रीलि) रख दिया, सप्तवर्ष कल्पाम् = लगभग सात वर्ष अवस्था वाली ईषद् असमाप्ति के अर्थ में, यावनत्रासेन = यवन+अण् = यवन = यवन के भय के कारण, निःशब्दम् = शब्द रहित, रुदतीम् = रुद्+शतृ+ङीप्, कलितमानवदेहाम् = मानव शरीर धारण करने वाली, मरन्दमधुरा = पुष्परस के मिश्रण से मीठा, अपः = जल, पाययन् = पिलाता हुआ, पा+णिच्+शतृ, कन्दखण्डानि = कन्द के टुकड़ों को (ऋषियों का भोज्य पदार्थ), भोजयन् = खिलाते हुए भुज+णिच्+शत्, त्रियामायाः = रात्रि के, यामत्रयम् = तीन प्रहर, अनैषीः = बिता दिया था, नी+लुङ् (म.पु., ए.व.), स्वापिति = सो रही है, उदबुद्धय = जगकर उद्+बुध+ल्यप्, रोदिष्यति = रोयेगी, परिमार्णणीयानि = खोजना चाहिए परि+मृज्+अनीयर, एतस्याः = इसके, पितरौ = माता-पिता को, निःश्वस्य = निःश्वास लेकर निः+श्वस्+ल्यप्, वक्तुम् = बोलने के लिए वच्+तुमुन्, इयेष = इच्छा की इस्+लिट्, पर्वत शिखरे = पर्वत की चोटी पर, निपतात् = पड़ी पत्+लिट्।

समास: — तडागस्य तटे (षष्ठी तत्पुरुष), यावनत्रासेन = यावनश्चासौत्रासः, निःशब्दम् = निर्गतः शब्दः यथा तथा निःशब्दम्, कलितमानव-देहाम् = कलितः मानवः देहः यया सा तां (बहुव्रीहि), पितरौ = माता च पिता च (द्वन्द्व), पर्वतशिखरे = पर्वतस्य शिखरे (तत्पुरूष)।

अलंकार: — कलितमानवदेहमिव = उत्प्रेक्षा अलंकार।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महानकन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति, विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारिबटुभ्यामदर्शि।

हिन्दी अनुवाद: — उस पर्वत पर एक विशाल कन्दरा थी। उसी में एक महामुनि समाधि में लीन थे। उन्होंने कब समाधि लगाई कोई भी नहीं जानता है। ग्राम प्रधान तथ ग्रामीणजन बीच-बीच में आकर उनकी आराधना करते थे, प्रणाम करते थे एवं स्तुति करते थे। कोई उन्हें कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य तथा दूसरे मार्कण्डेय समझते थे। वही महामुनि इस समय पर्वत शिखर से उतरते हुए ब्रह्मचारी बालकों द्वारा देखे गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — महाकन्दरः = विशाल गुफा, समाधौ = समाधि में, तिष्ठति स्म = बैठे थे, अंगीकृतवान् = स्वीकार किया, कोऽपि = कोई भी, न = नहीं, वेत्ति = जानता है विद्+लट्+तिप्, ग्रामणी = गाँव का प्रधान, ग्रामीण ग्रामाः = ग्रामवासियों का समूह, समागत्य = आकर सम+आ+गम्+ल्यप्, पूजन्ति = पूजा करते हैं पूज्+लट्, प्र.पु.व.व., प्रणमन्ति = प्रणाम करते हैं प्र+नम्+लट्, प्र.पु.व.व., स्तुवन्ति = स्तुति करते हैं स्तुञ्+लट्, प्र.पु.व.व., विश्वसन्ति स्म = विश्वास करते थे (स्म लगा देने से भूतकाल की क्रिया बन जाती है), अवतरन् = उतरते हुए अव+तृ+शतृ, आदर्शि = देखे गये दृश्+लुङ् आत्मने पद।

समास: — महामुनिः = महान् चासौ मुनिः (कर्मधारय), ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः = ग्रामण्यः च ग्रामीणाः च तेषां ग्रामाः। द्वन्द्व एवं तत्पुरुष समास।

अलंकार:— ''ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः'' में अनुप्रास अलंकार है। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति ..... आदि वाक्य में उल्लेख अलंकार है।

''अहो! प्रबुद्धो मुनिः! प्रबद्धो मुनि! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम्, सत्कार्योऽयम्'' इति तौ सम्भ्रान्तो बभूवतुः।अथ समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्य-नियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरबटौ छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीषु, 'इत आगम्यताम् सनाथ्यतामेष आश्रमः, इति सप्रणाममभिगम्यवदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाष्टपीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह उपाविशच्च।

हिन्दी अनुवाद:— ''अहो! मुनि जग गये ! मुनि जग गये ! इधर ही आ रहे हैं। इधर ही आ रहे हैं, ये सत्कार-योग्य हैं, ये सत्कार योग्य है।'' इस प्रकार कहते हुए वे दोनों प्रसन्नता से विह्वल हो गये। इसके पश्चात् सन्ध्यावन्दन आदि कार्यों को समाप्त कर लेने वाले गुरु के आ जाने पर, उनकी आज्ञा से नित्य नियमों (स्नान पूजनादि) को सम्पादित करने के लिए गौर बटु के चले जाने पर छात्रों की सहायता से स्वागत योग्य सामग्रियों के प्रस्तुत हो जाने पर 'इधर आइए, इस आश्रम को सनाथ करें' ऐसा सभी लोगों के द्वारा प्रणामपूर्वक आकर बोलने पर, योगिराज आकर मुनि के द्वारा निर्दिष्ट काठ के आसन (चौकी) पर उसी प्रकार आरूढ़ हुए और बैठ गये जिस प्रकार सूर्य उदयाचल पर (स्थित होकर विराजमान होते हैं।)

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— अहो = आश्चर्य सूचक, प्रबुद्धो = जग गये प्र+बुध+क्त, इत एव = इधर ही, सत्कार्य = सत्कार के योग्य, सम्भ्रान्तौ = प्रसन्नता से विह्वल हुये, अथ = इसके बाद, समापितसन्ध्यावन्दनादि क्रिये = सन्ध्या वन्दनादि कार्यों को समाप्त कर लेने वाले (गुरौ का विशेषण), गुरौ = मुनि के, समायाते = आ जाने पर सम+आ या+क्त (सप्तमी, एकवचन), तदाज्ञया = उनकी आज्ञा से, नित्यनियमसम्पादनाय = स्नान पूजन आदि नित्य नियम को सम्पन्न करने कि लिए, प्रयाते = चले जाने पर, प्र+या (जाना) + क्त (सप्तमी एकवचन), छात्रगणसहकारेण = छात्रों की सहायता से, प्रस्तुततासु = प्रस्तुत हो जाने पर, स्वागतसामग्रीषु =

स्वागत सामग्री के, आगम्यताम् = आइए, सनाथ्यताम् = सनाथ कीजिए, सप्रणामम् = प्रणाम के साथ, अभिगम्य = आकर, अभि+गम+ल्यप्, वदत्यु = बोलने पर, निखिलेषु = सभी लोगों के, योगिराजः = योगियों के राजा, तन्निर्दिष्टकाष्टपीठं = उनके द्वारा निर्दिष्ट काठ की चौकी पर, भास्वान् इव = सूर्य के समान, उदयगिरिं = उदयाचल, आरुरोह = आरुढ़ हुए, आ+रुह+लिट्, उपाविशत् = बैठे गये, उप+आ+विश्+लङ् प्र.पु.ए.व.।

समास:— समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये = समापिता सन्ध्या वन्दनादि क्रिया येन सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), छात्रगणसहकारेण = छात्रगणस्य सहकारेण (षष्ठी तत्पुरुष), सप्रणामम् = प्रणामेन सहितम् (अव्ययी), योगिराजः = योगिनां राजा (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार: — उपमा अलंकार।

अभ्यास प्रश्न-1

1-प्रश्न-भगवान् सूर्य किस दिशा में उदित होते है?

2-प्रश्न- पूर्व दिशा में भगवान् सूर्य का प्रकाश कैसा है?

3-प्रश्न- दिन-रात को उत्पन्न कौन करता है?

4-प्रश्न- भगवान् सूर्य तारामण्डल के चक्रवर्ती क्या है?

5-प्रश्न- किसके द्वारा युगभेद (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) किया गया है ?

तस्मिन् पूज्यमाने, ''योगिराडुत्थित'' इति ''आयात'', इति च आकर्ण्य कर्णपरम्पराया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम् सान्द्रां जटाम्, विशालान्यंगानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

हिन्दी अनुवाद:— उस योगिराज के पूजे जाने पर ही 'महामुनि उठ गये हैं, और यहाँ आये हैं ऐसा कानों कान सुनकर बहुत से लोग चारों ओर उपस्थित हो गये हैं। (उस महामुनि के) गठे हुए शरीर, घनी जटा, विशाल अंगों, अंगार के समान नेत्रों एवं मधुर तथा गम्भीर वाणी का वर्णन करते हुए आश्चर्य चकित जैसे हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— तस्मिन् = उस योगिराज के, पूज्यमाने = पूज+य+शानच् पूजे जाने पर, योगिराट् = महामुनि, उत्थितः = उठ गये हैं, इति = ऐसा, आयातः = आये हुए हैं, कर्णपरम्परया = कर्ण परम्परा से अर्थात् कानों कान, आकर्ण्य = सुनकर, बहवो जनाः = बहुत से लोग, सुघटितम् = सुगठित, सान्द्रां = सघन, विशालान्यङ्गानि = विशाल अंगों को, अंगारप्रतिमेनयने = अंगार के समान नेत्रों, मधुरां = मीठी, गम्भीरां = गम्भीर, वाचं = वाणी की, वर्णयन्तः = वर्णन करते हुए अथवा प्रशंसा करते हुए, चकिता इव = आश्चर्य युक्त जैसे, सञ्जाताः = हो गये।

समास: — योगिराट् = योगिनां राजा (षष्ठी तत्पुरुष), कर्णपरम्परया = कर्णयोः परम्परया (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार:— अंगारप्रतिमे नयने = उपमा अलंकार चकिता इव, सञ्जाताः = इव पद उत्प्रेक्षा वाचक हैं।

विशेष:— योगिराज के नेत्र अंगार के सदृश थे। अंगार शब्द से तेज का बोध होता है अर्थात् योगिराज के नेत्र तेज से परिपूर्ण थे।

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीरात् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्। ततः ''किमिति ? कुतः इति ? केयमिति ? कथमिति

?'' पृच्छा-परवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम् -

हिन्दी अनुवादः— तत्पश्चात् योगिराज को सम्यक् पूजकर जब तक गुरु ने कुछ बोलने की इच्छा की तब तक पर्ण कुटी से उसी बालिका का करुण रुदन सुनाई पड़ा। तब 'यह क्या है ?' 'यह कहाँ से आई ?' 'यह कौन है ?' 'यह कैसे आई ?' इस प्रकार योगिराज के प्रश्न करने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने कन्या को शान्त करने के लिए श्याम वर्ण वाले ब्रह्मचारी को आदेश देकर कहा-

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— अथ = इसके बाद, सम्पूज्य = सम्यक् पूजा करके सम् पूज्+क्त्वा+ल्यप्, ईहितम् = चेष्टा किया ईह्+क्त, कुटीरात् = कुटी से, किमपि = कुछ भी, पृक्षापरवशे = पूछने की इच्छा के अधीन होने पर, आलपितुं = कहने के लिए, आ+लप्+तुमुन, अश्रूयत् = सुनाई पड़ा श्रु धातु लङ् लकार प्र.पु.ए.व., ब्रह्मचारी गुरुणा = ब्रह्मचारी के गुरु द्वारा, सान्त्वायितुं = सान्त्वना देने के लिए, सान्त्व+णिच्+तुमुन्, आदिश्य = आदेश देकर, आ+दिश्+क्त्वा+ल्यप्, सकरुणरोदनम् = करूण क्रन्दन।

समासः— सकरुणरोदनम् = करुणया सहितम् इति सकरुणम् सकरुणं च तद् रोदनम्, पृच्छा परवशे = पृच्छया परवशः पृच्छा परवशः तस्मिन् (तत्पुरुष), ब्रह्मचारि गुरुणा = ब्रह्मचारिणः गुरु इति ब्रह्मचारिगुरु तेन ब्रह्मचारिगुरुणा (तत्पुरुष)।

भगवन! श्रूयताम् यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तनकृत्ये, अत्रेव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीरे-स्पर्शेन मन्दमन्दमादोल्यमानासु, व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषु इव मौनमाकलयत्सु पतंगकुलेषु, कैरव-विकासहर्षप्रकाशमुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान निःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतम् क्रन्दनमश्रौषम्।

हिन्दी अनुवादः भगवन् ! यदि उत्सुकता है तो सुनिए। कल सांयकालीन कार्यों को सम्पन्न कर लेने पर मैं यहीं कुश के आसन पर बैठा हुआ था, चारों तरफ छात्रगण आसीन थे, मन्द-मन्द पवन के स्पर्श से लताएँ कम्पित हो रही थीं, रजनीरूपी कामिनी (युवती) के ललाट पर स्थित चन्दन बिन्दु के समान चन्द्रमा उदित हो रहा था, ज्योत्सना के बहाने आकाश मानो अमृत की धारा बरसा रहा था, हम लोगों की नीति विषयक चर्चा को सुनने के लिए पक्षियों के समूह ने मौन धारण कर लिया था, कुमुद पुष्पों के विकसित हो जाने पर प्रसन्नता की अभिव्यक्ति से भौंरें गुंजार कर रहे थे, (तभी) अस्पष्ट अक्षरों वाला, कम्पन युक्त, निःश्वास वाला, अवरूद्ध कंठ वाला, घरघराहट ध्वनि वाला, चीत्कार मात्र, दीनता से युक्त अतिशय ध्यान से सुनाई पड़ने के कारण, बहुत दूर स्थित होने का अनुमान हो रहा था, ऐसा विलाप सुनाई पड़ा।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— श्रूयताम् = सुनें, कुतूहलम् = उत्सुकता, ह्यः! = बीता हुआ कल, सम्पादित-सायन्तनकृत्ये = सायंकालीन कार्यों को सम्पन्न कर लेने पर, कुशास्तरणम् = कुश का आसन, समासीनेषु = बैठ जाने पर सम+आस्+शानच्, धीर समीरस्पर्शेन = मन्द पवन के स्पर्श से, मन्द-मन्दमान्दोल्यमानासु = मन्द-मन्द हिलने वाली, व्रततिषु = लताओं के, समुदिते = उदित होने पर सम+उद्+इ+क्त, इन्दौ = चन्द्रमा के, यामिनी-कामिनी-चन्दन विन्दौ इव = रजनी

रूपी युवती के लंलाट पर स्थित चन्दन बिन्दु के समान, कौमुदी कपटेन = ज्योत्सना के छल से, सुधाधाराम् = अमृत की धारा, वर्षति इव = मानो वर्षा कर रहा है, अस्मन्नीतिवार्तां = हम लोगों की नीति से सम्बन्धित वार्ता को, शुश्रूषु = सुनने की इच्छा से श्रु+सन्+उ, इव = मानो, पतंग कुलेषु = पक्षियों के समूह के, मौनम् = चुप्पी को, आकलयत्यु = धारण करने पर आ कल+शतृ (सप्तमी व.व.), कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेषु = कुमुद पुष्पों के खिल जाने के कारण प्रसन्नता को प्रकट करने से गुंजार करने पर, चंचरीकेषु = भ्रमरों के, अस्पष्टाक्षरम् = स्पष्टता रहित अक्षरों वाला, कम्पमाननिःश्वासम् = कम्पन युक्त निःश्वास वाला, कम्प् शानच, श्लथत्कण्ठम् = अवरूद्ध कण्ठ वाला, घर्घरित स्वनम् = घर्घर ध्वनि, चीत्कार मात्र = क्रन्दन मात्र, दीनतामयम् = दीनता से भरे हुए, अत्यवधानश्रव्यत्वात् = अतिशत ध्यान से सुनाई पड़ने के कारण, अनुमितदविष्ठम् = बहुत दूर का अनुमान होने वाला दूर+इष्ठन्+ता, क्रन्दनम् = रुदन, अश्रौषम् = सुना श्रू+लुङ् लकार उ.पु.ए.व.।

समासः— सम्पादितसायन्तनकृत्ये = सम्पादितं सायन्तनकृत्यं येन सः इति सम्पादितसायन्तनकृत्यः तस्मिन् (बहुव्रीहि समास), कुशास्तरणम् = कुशानां, आस्तरणम् = (षष्ठी तत्पुरुष), 'अधिशीङ् स्थासां कर्म' सूत्र से अधि एवं स्था धातु के योग के कारण द्वितीय विभक्ति हुई है। सुधाधाराम् = सुधायाः धाराम् (षष्ठी तत्पुरुष), अस्पष्टाक्षरम् = अस्पष्टानि अक्षराणि यस्मिन् तत (बहुव्रीहि), कम्पमान निःश्वासम् = कम्पमानानिःश्वासा यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि)।

विशेषः— समासीनेषु छात्रेषु, कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेपु चेचरीकेषु आदि कई वाक्यों में यस्य च भावेन भाव लक्षणम् सूत्र से सप्तमी विभक्ति का प्रयोग किया गया है।

अलंकारः— समुदिते .....पतंगकुलेषु में उत्प्रेक्षा अलंकार; यामिनी कामिनी - यहाँ यामिनी में कामिनी का आरोप किया गया है अतः रूपक अलंकार है।

तत्क्षणमेव च ''कुत इदम् ? किमिदमिति दृश्यताम् ज्ञायताम्'' इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। ताञ्च चन्द्रकलयेव निर्मिताम् नवनीतेनेव रचिताम् मृणालगौरीम् कुन्दकोरकाग्रदतीम् सक्षोभं रुदतीमवलोक्यास्माभिरपि न पारित निरोद्धुं नयनवाष्पाणि।

हिन्दी अनुवादः— उसी समय, यह करुण विलाप कहाँ से ? यह क्या है, देखों और पता लगाओ ? यह आदेश देकर छात्रों को भेज देने पर, कुछ ही समय बाद एक छात्र भयभीत तीव्रता के साथ गर्म एवं लम्बा सांस लेती हुई, बाघ से सूंघी गयी मृगी के समान, अश्रुधाराओं से स्नान की हुई, कम्पन युक्त एक कन्या को गोद में उठाकर ले आया और बहुत देर तक खोजने पर भी उस कन्या की सखी अथवा साथी नहीं मिला। चन्द्रकलाओं से मानो बनाई गयी, मक्खन से मानो रची गयी, कमल नाल के समान गौर वर्ण वाली कुन्द पुष्प की कली के अग्रभाग के समान दाँतों वाली, व्याकुलता के साथ रोती हुई उस कन्या को देखकर हम लोग भी आँसुओं को रोकने में समर्थ न हो सके।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— तत्क्षणमेव = उसी समय, दृश्यताम् = देखिए दृश्+लोट् लकार (प्र.पु., ए.व.), ज्ञायताम् = जानिए ज्ञा+लोट् लकार (प्र.पु., ए.व.), विसृष्टेषु = भेज देने पर, छात्रेषु

= छात्रों के, भीता = डरी हुई भी+क्त+टाप्, निःश्वसती = निःश्वास लेती हुई, निस्+श्वस्+शतृ (स्त्री), मृगीव = मृगी के समान, व्याघ्राघाता = बाघ सेूघी गई, स्नाता = नहाई हुई, स्ना+क्त+टाप्, संवेपथुः = कम्पन युक्त, स+वेपृ+अथुच्, निधाय = रखकर, नि+धा+ल्यप्, समानीता = ले आयी गयी, सम्+आ+नी+क्त+टाप्, चिरान्वेषणेनापि = (चिर+अन्वेषणेन+अपि) बहुत समय तक खोजने पर भी, सहचरी = सखी, सह+चर्+अच्+ङीस् (स्त्री), सहचर = साथी, न = नहीं, प्राप्तः = प्राप्त हुआ प्र+अप्+क्त, ताम् = उस कन्या को, चन्द्रकलाया = चन्द्रमा की कला से, निर्मिताम् = बनाई गई, नवनीतेन = मक्खन से, मृणाल गौरीम् = कमल नाल के समान गौर वर्ण वाली, कुन्दकोरकाग्रदतीम् = कुन्द पुष्प की कली के अग्रभाग के समान दाँतो वाली, कोरक = कली, सक्षोभं = व्याकुलता से युक्त, रुदतीं = रोती हुई, रुद्र+शतृ+ङीप्, अवलोक्य = देखकर, अव लोक्+ल्यप्, अस्माभिः = हम लोगों के द्वारा (अस्मद् शब्द तृतीया व.व.), नयन वाष्पाणि = आँसुओं को, निरोद्धुम् = नियन्त्रित करने के लिए, नि+रुध+तुमुन्, नपारितम् = पार न पा सकें।

समास: वेगेन सहितम् (तत्पुरुष), व्याघ्राघाता = व्याघ्रेन आघाता (तृतीया तत्परुष), अश्रुप्रवाहैः = अश्रूणां प्रवाहै (षष्ठी तत्पुरुष), सहचरी = सहचरति इति सहचर स्त्रीलिंग में ङीस् प्रत्यय लगाकर सहचरी बना, चन्द्रकलया = चन्द्रस्य कला इति चन्द्रकला तया, मृणालागौरीम् = मृणालस्य इव गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम् = कुन्दस्य कोरकाणाम्, अग्राणि इव दन्ताः यस्याः सा, ताम् (बहुव्रीहि), सक्षोभम् = क्षोभेन सहितम् (तत्पुरुष), नयन-वाष्पाणि = नयनस्य वाष्पाणि (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार: — चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम् में उत्प्रेक्षा अलंकार है। मृणालगौरीम् तथा कुन्दकोरकाग्रदतीम् में लुप्तोपमा अलंकार है।

अथ ''कन्यके। मा भैषीः पुत्रि ! त्वाम् मातुः, समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मास्मकोमलमिदं शरीरं शोकज्वालालीढं कार्षीः'' इति सहस्त्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, ''बालिके ! कथय क्व ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्नश्रमप्रान्ते समायात ? किं ते कष्टम् ? कथमारोदीः कि वाच्छसि ? किं कुर्मः ?'' इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन-विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रूद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्-एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति।

हिन्दी अनुवाद: — इसके बाद हे बालिके ! भयभीत मत हो पुत्री तुमको (तुम्हारी) माता के पास पहुँचा देंगे। हे पुत्रि ! दुःखी मत हो। हे देवि कुछ खाओ, दुग्ध पिआ, ये सब तुम्हारे भाई हैं, जो तुम कहोगी, वही हमें करेंगे, रोने से अपने प्राणों को संशय में मत डालों, इस कोमल शरीर को शोक की ज्वाला से मत जलाओ, इस प्रकार हजारों प्रकार से समझाने पर समझी और कुछ दूध पिया। तत्पश्चात् मैंने गोद में उठाकर हे बालिके! बोलो, तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं ? कैसे इस आश्रम प्रान्त में आगमन हुआ ? तुमको क्या दुःख है ? क्यों रो रही हो ? क्या चाहती हो ? हम सब क्या करें ? इस प्रकार पूछी गयी अबोधता के कारण वाणी की चतुराई को न जानने वाली, डर के कारण अस्पष्ट वचनों वाली, लज्जा के कारण अतिशय मन्द स्वर वाली, चिन्ता के कारण

भरे हुए कण्ठ वाली अत्यधिक डरी हुई जैसी, किसी प्रकार हम लोगों को बताया कि वह अति निकट के ही गाँव में निवास करने वाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — कन्यके = हे बालिके, कन्यका शब्द सम्बोधन ए.व., भैषी = मत डरो भी+लुङ् प्र.पु.ए.व., दुहितः = पुत्रि, प्रापयिष्यामः = पहुँचा देंगे, प्र+अप्+णिच्+लिट् उत्तम पुरूष व.व., मा वह = मत करो, भुङक्ष्व = खाओ भुज् आत्मने पद, लोट् लकार म.पु.ए.व., पिब = पिओ, संशयपदवी = संदेह की पदवी, आरोपयः = प्राप्त करो, मा स्म के योग में लङ् लकार म.पु.ए.व., शोकज्वालावलीढम् = शोक की अग्नि से युक्त अव्+लिढ्+क्त, कार्षीः = करो, क्+लुङ् म.पु.ए.व., सहस्रधा = अनेक प्रकार, बोधनेन = समझाने से सम्बुद्धा = समझ गई, पीतवती = पी, पा+क्तवतु+ङीप्, क्रोडे = गोद मे, क्रोड शब्द सप्तमी ए.व., उपवेश्य = बैठाकर, उप+विश+णिच्+ल्यच्, पितरौ = माता और पिता, आरोदीः = रोई रुद लुङ् म.पु.ए.व., पृष्टा = पूछी गई, मुग्धतया = भोलापन के कारण मुग्धता शब्द तृतीया ए.व., अपरिकलितवाक्पटवा = बोलने की चतुराई से रहित, विशिथिलवचनविन्यासा = अस्पष्ट शब्दों में बात करने वाली, समायाता = आयी, सम+आ+या+क्त, लज्जया = लज्जा शब्द तृतीया ए.व., अतिमन्दस्वरा = अत्यधिक मन्द स्वरों वाली, रूद्धकण्ठा = अवरूद्ध कण्ठ वाली, (रूद्ध = रुध्+क्त), चकित चकिता = अत्यन्त चकित हुई, नेदीयसि = अति निकट के ही आन्तिक+इयसुन्, वसतः = निवास करने वाले, वस्+शतृ, षष्ठी ए.व., तनया = पुत्री।

समास: — संशयपदवी = संशयस्य पदवीं (षष्ठी तत्पुरुष), शोकज्वालावलीढम् = शोकस्य ज्वालया अवलीढम् (तत्पुरुष), अपरिकलितवाक् पाटवा = अपरिकलितम् वाक्पाटवम् यया स (बहुव्रीहि), अतिमन्दस्वरा = अति मन्दः स्वरो चस्याः सा (बहुव्रीहि), विशिथिल वचन विन्यासा = विशेषेण शिथिलः वचनानां विन्यासः यस्याः सा (ब्रहुवीहि), रुद्धकण्ठाः = रुद्धः कण्ठः यस्याः सा (बहुव्रीहि)। अलंकार: शोकज्वालावलीढम् में शोक रूपी ज्वाला से युक्त यहाँ रूप अलंकार है।

विशेष: — भयग्रस्त ब्राह्मण कन्या का स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवनतनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य बिभीषिकयाऽस्याः क्रन्दनकोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपजगात। दृष्ट्वैव यवनतनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेय पलाशपलाशिश्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यवाद् भयेन पुनारोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छात्रेणैवाऽनीतेन'' ति।

हिन्दी अनुवाद: — और इस कन्या को सुन्दरी जानकर कोई यवन का लड़का नदी के किनारे से माता के हाथ से छीनकर रोती हुई (इस कन्या को) लेकर भाग गया। उसके बाद कुछ दूर जाकर, जब तक (उसने) छुरा दिखाकर भय से इसके रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया, तब तक अचानक काल रूपी कम्बल के समान एक भालू वन प्रान्त से आ गया। उसे देखते ही वह यवन का लड़का वहीं इस कन्या को छोड़कर एक सेमर के वृक्ष पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण कन्या पलाश वृक्षों की पंक्ति में घुस कर घुणाक्षरन्यास से इधर ही आ गई, ज्यों ही डर से पुनः रोना आरम्भ किया त्यों ही मेरा छात्र ही इसे ले आया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — एनां = इस कन्या को, सुन्दरी = सौन्दर्य से भरी हुई, आकल्य = समझकर, आ+कल्+ल्यप्, कोऽपि = कोई, यवनतनयः = मुसलमान का लड़का, नदीतटात् = नदी के तट से, क्रन्दती = रोती हुई (कन्या को) क्रन्द+शतृ, नीत्वा = लेकर नी+क्त्वा, अपससार = पलयित हो गया, अप सृ लिट् लकार प्र.पु. ए.व., ईषद = कुछ, अध्वानम् = मार्ग को, अतिक्रम्य = जाकर, अति+क्रम+ल्यप्, असिधेनुकाम् = छुरिका (छुरी), सन्दर्श्य = दिखाकर सम+दृश+णि+ल्यप्, विभीषिकया = डर से, विभीषिका शब्द तृतीया ए.व, क्रन्दन कोलाहलम् = रोने की ध्वनि को, शमयितुम् = शान्त करने के लिए, शम+णि+तुमुन्, इयेष = इच्छा की, इष् (इच्छा के अर्थ में) + लिट् लकार प्र.पु., ए.व., तावत् = तभी, अकस्मात् = सहसा, काल कम्बल = काले कम्बल के समान, भल्लूकः = भालू, वनान्वात् = वन प्रान्त से, उपजगाम = आ गया, उप+गम्+लिट्, त्यक्त्वा = छोड़कर, त्यज्+क्त्वा, शाल्मलीतरुम् = सेमर के पेड़ पर, आरुरोह = चढ़ गया, आ+रुह+लिट्, प्र.पु.ए.व. विप्रतनया = ब्राह्मण-कन्या, पलाशपलाशिश्रेण्यां = पलाश के पत्तों के बीच में, प्रविश्य = प्रवेश कर, प्र+विश+ल्यप्, घृणाक्षरन्यायेन = घुणाक्षर न्याय से (आशातीत कार्य सिद्धि), इतएव = इधर ही, समायाता = आ गयी, सम+आ+या+क्त+टाप्, आरोदितुम् = रोने के लिए, रुद्+इ+तुमुन्, आरब्धवती = प्रारम्भ कर दिया, आ+रभ+क्तवतु+ङीप्, अस्मच्छात्रेण = मेरे विद्यार्थी के द्वारा, अनीता = लाई गई, आ+नी+क्त+टाप्।

समास: — यवनतनयः = यवनस्य तनयः (षष्ठी तत्पुरुष), नदीतटात् = नद्याः तटं = नदी तटम् तस्याः (षष्ठी तत्पुरुष), क्रन्दनकोलाहलम् = क्रन्दनस्य कोलाहलम् (षष्ठी तत्पुरुष), काल कम्बलः = कालश्चसौ कम्बलः (कर्मधारय समास) अथवा कालस्य कम्बलः (षष्ठी तत्पुरुष), पलाशपलाशि श्रेण्यां = पलाशाः, ते पलाशिनः तेषां श्रेणी, तस्याम् (तत्पुरुष)

अलंकार: — पलाशपलाशिश्रेण्यां = यमक अलंकार।

विशेष: — घुणाक्षरन्याय = घुन जब लकड़ी को छेदता है, तब यदा-कदा अक्षरों जैसी आकृति बन जाती है, अर्थात् कभी-कभी ऐसे कार्य सिद्ध हो जाते हैं, जिसके विषय में सोचा भी न गया हो।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच - ''विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचारणामुपद्रवः ?''

तः स उवाच –

''महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम् ? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जय-जय ध्वनिः ? क्व सम्प्रति तीर्थे-तीर्थे घण्टानादः ? क्वाद्यापि मठे-मठे वेद घोष ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धू ये धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यतेः ''क्वचिन्मन्दराणि भिद्यन्ते क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि-लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिदरुधिरधारा, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः'' इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

हिन्दी अनुवाद: उसको सुनकर मानो क्रोध की ज्वाला से जलते हुए योगी ने कहा - ''विक्रम के राज्य में भी कैसे यह दुराचारियों का पाप से भरा हुआ उपद्रव ? तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारी के गुरु

बोले - महात्मन् ! विक्रम का राज्य इस समय कहाँ ? वीर विक्रम को तो भारत भूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष बीत गये। अब मन्दिरों में जयनाद कहाँ ? तीर्थ-स्थानों में घण्टों का निनाद अब कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? आज वेदों को फाड़कर रास्तों में फेंक दिये जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उडाकर अग्नि में जला दिये जाते हैं, पुराणों को पीसकर जल में डाल दिये जाते हैं, भाष्यों को नष्ट करके भाड़ों में भस्म कर दिये जाते हैं, कहीं पर मन्दिरों को तोड़ दिया जा रहा हैं, कहीं तुलसी के वन काटे जा रहे हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण कर लिया जा रहा है, कहीं धन लूट लिये जा रहे हैं, कहीं करुण क्रन्दन सुनाई पड़ते हैं। कहीं खून की धारा, कहीं अग्निदाह तो कहीं घर गिरा दिये जा रहे हैं, इस समय चारों ओर यही सुनाई देता है और दिखाई पड़ता है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — पातकमयः = पाप से युक्त, पातक+मयट्, महात्मन् = महानुभाव, तदाकर्ण्य = उसको सुनकर, कोपज्वालाज्वलित इव = क्रोध की ज्वाला से मानो जलते हुए, प्रवोच = बोले, विक्रम राज्येऽपि = विक्रम के राज्य में भी, भारतभुवं = भारत भूमि को, विरहय्य = छोड़कर, वि रह+ल्यप्, गतस्य = गये हुए का, गम्+क्त (षष्ठ ए.व.), सप्तदश शतकानि = सत्रह सौ, व्यतीतानि = व्यतीत हो गये, वि+अत+क्त, मन्दिरे-मन्दिरे = प्रत्येक मन्दिरों में, मठे-मठे = प्रत्येक मठों में, वेद-घोषः = वेदों की ध्वनि, विच्छिद्य = फाड़कर, वि+छिद्+ल्यप्, वीथीसु = मार्गों में, विक्षिप्यन्ते = फेंक दिये जाते हैं, उद्धूय = उड़ाकर, उद्+धूञ्+ल्यप्, धूमध्वेषु = अग्नि में, ध्मायन्ते = झोंके जा रहे हैं, ध्मा लट् लकार, पिष्ट्वा = पीसकर पिष्+क्त्वा, पात्यन्ते = डाले जा रहे हैं, भाष्यणि = भाष्यों को, भ्राष्ट्रेषु = भाड़ों में, भर्ज्यन्ते = जलाये जा रहे हैं, भृजी+यक् (भाव कर्म) लट्, भिद्यन्ते = तोड़े जा रहे है, भिद्+यक्+लट्, छिद्यन्ते = काटे जा रहे हैं, दाराः = स्त्री, दृ (विदारणे)+णि+घञ्, लुण्ठ्यन्ते = लूटे जाते है, आर्तनादाः = करूणक्रन्दन, रुधिरधाराः = खून की धारा, गृह निपातः = घरों का नाश, इत्येव = ऐसा ही, श्रूयते = सुनाई पड़ता है, अवलोक्यते = दिखाई देता है।

समास: — महात्मन = महान् आत्मा यस्य सः सम्बोधन में (बहुव्रीहि), भारतभुवन् = भारतस्य भूः ताम् भारतभुवम् (तत्पुरुष), घण्टानादः = घण्टायाः नादः (तत्पुरुष), कोपज्वालाज्वलितः = कोपस्य ज्वालया ज्वलितः (तत्पुरुष), धूमध्वजेषू = धूम एव ध्वजो यस्य सः धूध्वजः तेषु धूमध्वजेषु (बहुव्रीहि), तुलसीवनानि = तुलस्याः वनानि (षष्ठी तत्पुरुष), रुधिरधाराः = रूधिरस्य धाराः (षष्ठी तत्पुरुष), अग्निदाहः = अग्निाना दाहः (तृतीया तत्पुरुष), गृह-निपातः = गृहाणां निपातः (षष्ठी तत्पुरुष)।

अलंकार:— 'कोपज्वाला ज्वलित इव' उत्प्रेक्षा अलंकार है।

विशेष:— 'दारा' शब्द का प्रयोग सर्वदा बहुवचन में होता है 'दारयति हृदयम् इति दाराः यहाँ प्रसाद गुण, वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।

तदाकर्ण्य दुखितश्चकितश्च योगिराडुवाच - ''कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्यपदलाञ्छनो वीरविक्रमः। अद्यापि तद् विजयपताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनाऽपि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत्कथमद्य वर्षाणाम् सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि'' इति ? ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम् -

हिन्दी अनुवाद: — उसे सुनकर दुःखी और आश्चर्यचकित होकर योगिराज ने कहा - यह कैसे ? कल ही आदित्य उपाधि से अलंकृत श्रीमान् वीर विक्रम पर्वत पर रहने वाले शकों को जीतकर महान् जयघोष के साथ अपनी राजधानी आये हैं।आज भी मानो उनकी (वीर विक्रम की) विजय पताकाएं मेरे नेत्रों के समक्ष फहरा रही हैं, अब भी उनके नगाड़े, तुरही आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि मानो मेरे कर्ण छिद्रों को भर रही हैं, तो फिर कैसे आज सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तत्पश्चात् सब लोगों के स्तब्ध हो जाने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम करके कहा -

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — तदाकर्ण्य = यह सुनकर, ह्या एव = कल ही, पर्वतीयान् = पर्वत वासियों को, शकान् = शकराजाओं को, विनिर्जित्य = जीतकर, वि+निर्+जी+ल्यप्, महता = बहुत बड़े (महत् शब्द तृतीया ए.व.), स्वराजधानीम् = अपनी राजधानी को, आदित्यपदलाञ्छनः = आदित्य उपाधि से सुशोभित, अद्यापि = आज भी, तदविजय पताका = उसकी विजय पताकाएं, चक्षुषोरग्रतः = चक्षुषोः+अग्रत+नेत्रों के सामने, समुद्धूयन्ते = उड़ रही है सम्+उद्+धूञ्+लट् आत्मने पद, पटह गोमुखादीनां = नगाड़े एवं तुरही आदि वाद्ययन्त्रों के, निनादः = ध्वनि, कर्णशष्कुली = कर्णविवर, पूरयति इव = मानो भर रहे हैं, ततः = उसके बाद, सर्वेषु स्तब्धेषु = सभीके स्तब्ध हो जाने पर, प्रणम्य = प्रणाम करके, प्र+नम्+क्त्वा+ल्यप्।

समास: जयघोषेण = जयस्य घोषेण (षष्ठी तत्पुरुष), आदित्य पद लाञ्छन = आदित्यं पद लाञ्छनं यस्य सः (बहुव्रीहि), तद्विजयपताका = तस्य विजयस्य पताका (षष्ठी तत्पुरुष), पटहगोमुखादीनाम् = पटहश्च गोमुखश्च आदिर्येषां तेषां (द्वन्द्व एवं बहुव्रीहि समास), कर्णशष्कुलीम् = कर्णस्य शष्कुलीम् (षष्ठी तत्पुरुष),

अलंकार: — अद्यापि ..... पूरयतीव में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

भगवन्बद्धसिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैःप्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशैन्द्रियैरनाहतनाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्वा, तेजः पुञ्जमविगण्य, सहस्रदलकमलास्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवा-दृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम् न सा संस्था नगराणाम् न सा आकृतिर्गिरीणाम, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति।

हिन्दी अनुवाद: — भगवान् ? सिद्धासन लगाकर, निःश्वास को रोककर, कुण्डलिनी को जागृत कर, दशों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, अनाहतनाद के तन्तु का आश्रय ग्रहण करके आज्ञाचक्र को सम्यक् रूप से लक्ष्य करके, चन्द्रमण्डल को भेदकर चन्द्रमण्डल से सम्बन्धित तेज पुञ्ज का तिरस्कार करके, सहस्र दलों वाले कमल के भीतर प्रवेश करके, परमात्मा का दर्शन कर उसी में रमण करने वाले, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले आनन्द मात्र स्वरूप वाले, ध्यान में लीन आप जैस महायोगियों के द्वारा समय की गतिशीलता नहीं जानी जाती है, उस समय आपके द्वारा जो पुरुष देखे गये, (अब) उनकी पचासवीं पीढ़ी का व्यक्ति भी नहीं दिखाई पड़ रहा है। आज न तो नदियों की वे धाराएं है, नगरों की वह स्थिति नहीं है, पर्वतों की वह आकृति नहीं है, वनों की वह सघनता नहीं है। अधिक मैं क्या कहूँ, इस समय भारतवर्ष दूसरे जैसा हो गया है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — बद्धसिद्धासनै = सिद्धासन लगाने वाले, निरुद्ध निःश्वासैः = श्वासों को रोकने वाले, निरुद्ध = नि+रुध+क्त, प्रबोधित कुण्डलिनीकैः = कुण्डालिनी को जगाने वाले,

विजितदशेन्द्रियैः = दशों इन्द्रियों को जीत लेने वाले, अनाहतनादतन्तुम् = अनाहतनाद के तन्तु का, अवलम्ब्य = आश्रय लेकर, आज्ञाचक्रं = आज्ञा चक्र को, संस्पृश्य = सम्यक स्पर्श करके, सम्+स्पृश+क्त्वा+ल्यप्, चन्द्रमण्डलं = चन्द्रमण्डल को, भित्वा = भेदकर भिद्+क्त्वा, तेजपुञ्जम् = तेज समूह को, अविगणय्य = न समझकर, अ+वि+गण्+ल्यप्, रममाणै = विहार करते हुए, रम+शानच्, मृत्यञ्जयैः = मृत्यु को जीतने वाले, मृत्यु+जि+खच् मुम् का आगम, सहस्रदलकमलस्यान्तः = सहस्रदलों वाले कमल के भीतर, प्रविश्य = प्रवेश कर, प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्, परमात्मानं = परमात्मा को, साक्षात्कृत्य = साक्षात्कार करके, आनन्दमात्रस्वरूपैः = आनन्द मात्र स्वरूप वाले, ध्यानावस्थितैः = ध्यान में लीन, भवादृशैः = आप जैसों के द्वारा, न ज्ञायते = नहीं जाना जाता है, कालवेगः = समय का वेग, अवलोकिताः = देखे गये हैं, भवता = आपके द्वारा, पञ्चाशतमोऽपि = पचासवाँ भी, न = नहीं, अवलोक्यते = दिखाई पड़ रहा है, अद्य = आज, तानि = वे, स्रोतोसि = धाराएँ, नदीनां = नदियों की, संस्था = स्थिति, नगराणाम् = नगरों की, सा = वह (स्त्रीलिंङ्), आकृतिः = आकृति, गिरीणाम् = पर्वतों की, षष्ठी (व.व.), सान्द्रता = सघनता, सान्द्र+तल, विपिनानाम् = वनों की, किमधिकं = अधिक क्या, कथयामि = कहूँ, अधुना = इस समय, अन्यादृशमेव = अन्य जैसा ही, सम्पन्नमास्ति = हो गया है।

समास: — बद्धसिद्धासनैः = बद्धं सिद्धासनं यैः तैः (बहुव्रीहि), निरुद्धनिःश्वासैः = निरुद्धाः निःश्वासाः यैस्तैः (बहुव्रीहि), प्रबोधितकुण्डलिनीकैः = प्रबोधिता कुण्डलिनी यैस्तैः (बहुव्रीहि), विजितदशेन्द्रियैः = विजितानि दशेन्द्रियाणि यैस्तैः (बहुव्रीहि), अनाहतनादतन्तुम् = अनाहतश्चासौनादः (कर्मधारय), तस्य तन्तुम् (षष्ठी तत्पुरुष), सहस्रदलकमलस्य = सहस्रदलं यत् कमलम् तस्य (कर्मधारय), ध्यानावस्थिताः = ध्याने अवस्थिताः (सप्तमी तत्पुरुष)।

विशेष: — सिद्धासन = योगसाधना में लगाये जाने वाला आसन, कुण्डलिनी = एक शक्ति है, जिसे योगी लोग जगाकर मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं, अनाहतनाद = सुषुम्ना नाड़ी के मध्य में स्थित चतुर्थ कमल को अनाहत कहा जाता है, उसी कमल से उत्पन्न नाद (ध्वनि) केा अनाहत नाद कहा जाता है, आज्ञा चक्र = दोनों भौंहो के मध्य इसकी स्थिति मानी गयी है, योगी लोग उसी को लक्ष्य करके ध्यान लगाते हैं, चन्द्रमण्डल = आज्ञा चक्र से परे सोलह दलों वाला कमल चक्र, सहस्रदल कमल = इसकी स्थिति मस्तिष्क में मानी गयी है, यही परमात्मा का निवास माना जाता है।

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मित्वेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद - ''सत्यं न लक्षितो मया समयवेगः। यौधिष्ठरे समय कलितसमाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रमसमये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् संक्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति।''

हिन्दी अनुवाद: — यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुए से चारो तरफ देखकर योगी बोले - सच्ची बात है, मेरे द्वारा समय का वेग नहीं देखा गया। युधिष्ठिर के काल में समाधि लगाकर विक्रमादित्य के समय में उठा था और पुनः विक्रमादित्य के समय में समाधि लगाकर इस दुराचार से भरे हुये काल में मैं उठा हूँ। मैं पुनः जाकर समाधि में लीन हो जाऊँगा, किन्तु थोड़े में तब तक बतलाइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है ?

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— इदम् = इस कथल को, आकर्ण्य = सुनकर, आ+कर्ण+क्त्वा+ल्यप्, किञ्चिद् = कुछ, स्मित्वा = मुस्कराकर, इव = मानो, परितः = चारों तरफ, अवलोक्य = देखकर, अव+लोक+क्त्वा+ल्यप्, जगाद् = बोले (गद्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व), न लक्ष्तिो = नहीं देखा गया, मया = मेरे द्वारा, समय वेगः = समय का प्रवाह, यौधिष्ठिरे = युधिष्ठिर से सम्बद्ध, युधिष्ठिर+अण्, समये = समय में, कलित समाधि = समाधि लगाने वाला, वैक्रम = विक्रम से सम्बद्ध विक्रम+अण्, उदस्थाम् = उठा, उत्+स्था+लुङ उ.पु. ए.व. गत्वा = जाकर, गम्+कत्वा, कलयिष्यामि = धारण करूँगा (कल+लृट् लकार उ.पु. ए.व.), आकलय्य = आ+कल+ल्यप्, लगाकर, दुराचारमये = दुराचारों से युक्त, उत्थितो = उठा, उद्+स्था+क्त, संक्षिप्य = संक्षेप करके, सम्+क्षिप्+ल्यप्।

समास: — समयवेगः = समपस्य वेगः (षष्ठी तत्पुरुष), कलित समाधिः = कलितः समाधिः येन सः (बहुव्रीहि)।

तत्संश्रुत्य भारतवर्षीयदशा-संस्मरण-संजात-शोको हृदयस्थ-प्रसादसम्भारोद्गिरण-श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण ''मा स्म धर्मध्वंसनघोषणैर्यो-गिराजस्य धैर्यमवधीरय'' इति कण्ठं रुन्धतो वाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य;, उष्णं निःश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्याम् परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत-''भगवन् ! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुणदान-वोदन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयम्, हृदयम्, यत्संस्मृत्य यावनान्परस्सहस्त्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाऽभिमन्यामहे''-

हिन्दी अनुवाद: — उसे सुनकर भारतवर्ष की दशा का स्मरण करके उत्पन्न शोक वाले, मानो हृदय में स्थित हर्ष समूह को प्रकट करने के श्रम से अत्यधिक मन्द स्वर वाले, ''धर्म को नष्ट करने वाली वार्ताओं से योगिराज के धैर्य को मत विचलित करो'' इस प्रकार कण्ठ को अवरूद्ध करने वाले आँसुओं का विचार न करके नेत्रों को पोछकर, गर्म निःश्वास लेकर, दीनता पूर्ण नेत्रों से चारो ओर देखकर ब्रह्मचारी के गुरु ने बोलना प्रारम्भ कर दिया - ''भगवन् ! (मेरी) यह जिह्वा वज्र से निर्मित है, जो भयंकर राक्षसों के वृतान्त की चर्चा से फट नहीं जाती, (मेरा) हृदय लोहे से बना हुआ है, जो यवनों के हजारों अत्याचारों को याद करके सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त नहीं हो जा रहा है और भस्म होकर राख नहीं हो जाता है। हम लोगों को धिक्कार है, जो आज भी जी रहे हैं, श्वाँस ले रहे हैं, घूम रहे हैं और स्वयं को आर्यवंशी समझ रहे हैं।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — तत्संश्रुत्य = उसको सुनकर, सम्+श्रु+क्त्वा+ल्यप्, भारतवर्षीय दशा संस्मरण = भारत वर्ष की दशा का स्मरण, संजातशोको = उत्पन्न शोक वाले, हृदयस्थप्रसादसम्भारी = हृदय के स्थित प्रसन्नता का समूह, उद्गिरण = प्रकट करने में, उद्+गृ+ल्युट्, इव = उत्प्रेक्षा वचक, अतिमन्थरेण = अत्यन्त, मन्द, स्वरेण = स्वर से, मा = निषेध सूचक, धर्म ध्वंसन घोषणैः = धर्म विनाशक चर्चाओं से, ध्वंसनम् = ध्वंस+ल्युट्, अवधीरय = विचलित करो, अव+धृ+लोट् म.पु.ए.व., वाष्पान् = आँसुओं को, अविगणय्य = न गिनकर, अ+वि+गण+ल्यप्, प्रमृज्य = पोंछकर, प्र+मृज्+ल्यप्, निःश्वस्य = श्वाँस लेकर, निर्+श्वस्+ल्यप्, कातराभ्याम् = दीनता से पूर्ण, नयनाभ्यात् = नेत्रों से, परितः = चारों तरफ, अवलोक्य = देखकर, प्रवक्तुम् = बोलने के लिए, प्र+वच्+तुमुन्, आरभ्त् = आरम्भ किया, आ+रभ्+लङ् लकार, दम्भोलि = वज्र, घटिता = बनी हुई, रसना = जिह्वा, दारुण = भयंकर,

दानव = राक्षस, उदन्त = वृत्तान्त, उदीरणैः = वर्णनों से, न = नहीं, दीर्य्यते = विदीर्ण हो रहा है, द्व+भावकर्म यक्+लट्+तिप्, लौह सारमयम् = लौह निर्मित, संस्मृत्य = स्मरण करके, सम्+स्मृ+कत्वा+ल्यप्, यावनान् = यवनों के द्वारा किये गये, परस्सहस्रान् = हजारों, दुराचारान् = अत्याचारों को, शतधा = सैकड़ो टुकड़ों में, न भिद्यते = नहीं विभक्त कर रहा है, भस्मसात् = भस्म (जलकर राख नहीं हो जा रहा है), धिक् = धिक्कार है, अस्मान् = हम सबको, जीवामः = जी रहे हैं, श्वसिमः = श्वास ले रहे हैं, विचरामः = घूम रहे हैं, आत्मनः = स्वयं को, आर्य वंश्याः = आर्य वंशज, अभिमन्यामहे = मानते हैं।

समास: — भारतवर्षीयदशासस्मरणसंजातशोको = भारतवर्षीया दशायाः संस्मरणेन् संजातः शोकः यस्य सः (बहुव्रीहि), हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्रगिरणश्रमेण = हृदये तिष्ठति, हृदयस्थः हृदयस्थः, यः प्रसादः हृदयस्थ प्रसादः तस्य सम्भारो, तस्य उद्गिरणे यः श्रमः तेन (तत्पुरुष), दम्भोलि घटिता = दम्भोलिना घटिता (तत्पुरुष), दारुणदानवोदन्तोदीरणैः = दारुणाः ये दानवाः तेषाम् उदन्तस्य उदीरणैः (तत्पुरुष)।

विशेष: — धिगस्मान् धिक् के योग में द्वितीय विभक्ति हुयी है। अस्मान् शब्द अस्मद् शब्द का द्वितीयाः वर्ष है।

अलंकार: हृदयस्थप्रसादसंम्भारोद्गिरणश्रमेणेव = उत्प्रेक्षा अलंकार है, कातराभ्यामिव = उपमा अंलकार है, ये अद्यापि ..... अभिमन्यामहे तक दीपक अलंकार है।

उपक्रममुममाकर्ण्य अवलोक्य च मुर्नेविमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चितरोमकञ्चुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्चस्वरम्, अवागच्छत् 'सकलानर्थमयः, सकलवञ्चनामयः, सकलपापमयः सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः'' इति, अतएव तस्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि'' इति च विचिन्त्य –

''मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकलकालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयःपूर-पूरितान्यकूपारतलानि मरूकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्ड्क फेरु-शश-सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदी करोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-श्रङ्काटक-चत्वरोद्यान-तडागगोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यताम् कदाचिदस्मिन्नेव भारतेवर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्षवाताऽऽतप-हिम-सहानि-तपांसि अतापिषत। सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदां विदीर्य्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते; मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्यःपात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेततन्माहत्म्यं तस्येव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराज्यवृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रुषते में हृदयम्'' - इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

हिन्दी अनुवाद: — इस उपक्रम (प्रस्तावना) को सुनकर, हल्दी के रस से धुले गये जैसे मुनि के उदासमुख, आँसुओं को बहाते हुए नेत्रों, अत्यधिक रोमांचित शरीर, काँपते हुए अधर, टूटते हुए स्वर को देखकर जान गये कि यह सम्पूर्ण वृत्तान्त सभी अनर्थों से भरा हुआ, सम्पूर्ण वंचनाओं, सभी पापों तथा सम्पूर्ण उपद्रवों से युक्त है। अतएव, उसको याद करने मात्र से ही इनका हृदय दुःख से भर जा रहा है, इसलिए मैं इनको निरर्थक इन्हें उदास एवं कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता हूँ। यह सोचकर (बोले) - हे मुनि, सम्पूर्ण कला-कलापों के रचयिता तथा सभी का संहार करने

वाला, भंयकर महाकाल अद्भुत हैं। वे ही कभी जल धाराओं से भरे हुए समुद्र तलों को रेगिस्तान बना देते हैं, सहस्रों सिंहो, बाघों, भालुओं, गैंडों, सियारों, खरगोशों से व्याप्त जंगलों को नगर बना देते हैं, मन्दिरों, राजमहलों, धनाढ्यों के निवासों, चौराहों, प्राङ्गणों, उपवनों, सरोवरों तथा गोशालाओं से युक्त नगरों को जंगलों में परिवर्तित कर देते हैं। देखिये, कभी इसी भारत देश में यज्ञकर्त्ताओं ने राजसूय आदि यज्ञ किये थे, कभी यहीं वर्षा, आँधी, धूप एवं ठन्ढ आदि को सहकर तपस्याएँ की गयी थीं। इस समय मुसलमान गायों की हत्या कर रहे हैं। वेदों को फाड़ रहे हैं। स्मृति-ग्रन्थ कुचले जा रहे हैं, मन्दिर घोड़ों के निवास स्थान बनाये जा रहे हैं, पतिव्रताओं का सतीत्व भंग किया जा रहा है। सन्तों को कष्ट पहुँचाया जा रहा है। यह सब कुछ उसी महाकाल का महात्म्य है। (तब) धीरों में अग्रणी होते हुए भी (आप) क्यों धैर्य छोड़ रहे हैं ? शान्ति धारण करके अत्यधिक संक्षेप में यवनराज्य के वृत्तान्त को कहिए। (मैं) नहीं जान पा रहा हूँ कि आवश्यक न होते हुए भी मेरा हृदय इस वृत्तानत को सुनना चाहता है। यह कहकर योगिराज चुप हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — उपक्रमम् = भूमिका या प्रस्तावना, विमनायमानम् = उदास, वि+मन्+क्यच्+शानच्, हरिद्राद्रव = हल्दी के रस से, क्षालितम् = धुले हुए, इव = समान, वदनं = मुख को, निपत द्वारि बिन्दुनी = आँसुओं को गिराते हुए, अञ्चित-रोमञ्चुकं = रोमांचित, शरीरम् = शरीर को, कम्पमानधरम् = कांपते हुए अधर वाले, कम्प+शानच्, भज्यमानम् = टूटते हुए, भज्+यक्+शानच्, अवागच्छत् = अव+गम्+लङ् लकार, सकलानर्थमयः = सम्पूर्ण अनर्थों से व्याप्त, अनर्थ+मयट्, सकलवञ्चनामयः = सभी वंचनाओं से युक्त, सकलपापमयः = सभी पापों से युक्त, सकलोपद्रवमयः = सभी उपद्रवों से व्याप्त, तत्स्मरणमात्रेणपि = उन वृत्तान्तों के स्मरण मात्र से ही, खिद्यते = दुःखी हो रहे हैं, जिग्लापयिषामि = उदास नहीं करना चाहता हूँ, ग्लै+पुक्+णिच्+सन्+लट् लकार उ.पु.ए.व., चिखेदयिष्यामि = कष्ट देना नहीं चाहता हूँ, खिद्+णिच्+सन्+मिप्, विचिन्त्य = सोचकर, वि+चिन्त्+ल्यप्, सकल कला कलापकलनः = सम्पूर्ण कलाकलापों के स्रष्टा, सकलकालनः = सभी का संहार करने वाला, करालः = भयंकर, कालः = महाकाल, पयःपूर पूरतानि = जल धाराओं से भरे हुए, अकूपार = समुद्र, मरूकरोति = रेगिस्तान बना देते हैं, भल्लूक = भालू, गण्डक = गैंडा, फेरु = सियार, शश = खरगोश, अरण्यानि = जंगलों को, प्रसाद = राजमहल, हर्म्य = अट्टालिका (धनाढ्यों का महल), श्रृंगारक = चौराहों, चत्वर = प्राङ्गण, उद्यान = उपवन, तडाग = सरोवर, गोष्ठीयानि = गोशालाओं, काननी करोति = जंगल बना देता है, निरीक्ष्यताम् = देखिए, निर+ईक्ष+लोट् लकार, कदाचित् = कभी, अस्मिन्नेव = इसी, भारतेवर्षे = भारत वर्ष में, यायजूकैः = यज्ञकर्ताओं द्वारा, व्ययाजिषत = वि+यज्+लङ्, प्र.पु.ए.व., वर्ष = वर्षा, वात = हवा (आँधी), आतप = धूप, हिम = बर्फ (ठन्ढ), सहानि = सहने वाले, तपांसि = तपस्याएं, अतापिषत = तपे जाते थे, तप+लुङ् लकार, म्लेच्छ = यवन, गावो = गाय, हन्यन्ते = मारी जाती हैं, हन्+यक्+लट् लकार प्र.पु. व.व., विदीर्यन्ते = फाड़े जाते हैं, वि+दृ+यक्+लट्, प्र.पु.व.व., स्मृतयः = स्मृतियाँ, समृद्यन्ते = रौंदी जा रही हैं, मन्दुरीक्रियन्ते = मन्दुर = घोड़ों का निवास स्थान, घुड़साल बनाये जा रहे हैं, सत्यः = सती स्त्रियाँ, पात्यन्ते = पतित बनायी जा रही हैं, सन्तः = सज्जन, सन्ताप्यन्ते = पीड़ित किये जा रहे हैं, धीरधौरेयो = धीरों में श्रेष्ठ, विधुरयसि = छोड़ रहे हो, आकलय्य = आ+कल+ल्यप्, अतिसंक्षेपेण = अत्यधिक संक्षेप से, कथयित्वा = कहकर, शुश्रूषते = सुनने की इच्छा कर रहा

है, श्रु+सन्+तन्, तूष्णीम् = शान्ति को, अवतस्थे = धारण किया, अव+स्था+लिट् लकार प्र.पु., ए.व.।

समास:— हरिद्राद्रवक्षालितम् = हरिद्रायाः द्रवेन क्षालितम् (तत्पुरुष), निपतद्वारिबिन्दुनी = निपतन्तः वारिविन्दवः याम्याम् ते (बहुव्रीहि), अञ्चितरोम कञ्चुकम् = अञ्चितः रोमकञ्चुकः यस्य तत् (बहुव्रीहि), सकल कला कलाप कलनः = सकलानां कलानां कलापस्य कलनः (तत्पुरुष), पयपूर पूरितानि = पयसापूरेण पूरितानि (तत्पुरुष), अकूपारतलानि = अकूपाराणाम् तलानि (तत्पुरुष), मरुकरोंति = अमरुं मरुं करोति इति मरुकरोति (तत्पुरुष), धीरधौरेयो = धीरेषु धौरेयो (तत्पुरुष), यवनराज्य-वृत्तान्तम् = यवनराज्यस्यवृत्तान्तम् (तत्पुरुष)।

अलंकार:—''हरिद्राद्रवक्षालितमिव = उत्प्रेक्षा अलंकार है। ''सकल कला कलापन कलनः सकल कालनः करालः कालः'' में अनुप्रास अलंकार है, सभंग पर्द यमक अलंकार भी दृष्टिगत होता है।

विशेष:—भारत वर्ष की पहले की दशा एवं तत्कालीन स्थिति के सुन्दर वर्णन के साथ विषमालंकार भी है।

अभ्यास प्रश्न - 2

1-प्रश्न- महामुनि को पर्वत शिखर से उतरते हुए किसने देखा?

2-प्रश्न- उस योगिराज के पूजे जाने पर कौन उठ गये ?

3-प्रश्न- कन्या को लेकर कौन भाग गया ?

4-प्रश्न-क्या दिखाकर भय से कन्या के रुदन की ध्वनि को शान्त करने का प्रयत्न किया।

5-प्रश्न-भालु को देखते ही यवन का लड़का किस पर चढ़ गया?

अथ स मुनिः - ''भगवन् ! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये शनैःशनैः पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेह- बन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रू भङ्ग-भूरिभाव प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ चिन्ता-सन्तान वितानैकतान्नेण्मात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, ''इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्'' इतिवर्णनामात्रसक्तेषु बुद्धजनेषु कश्चन् गजिनीस्थाननिवासी महामदो यवजि ससेन्: प्राविशद् भारतवर्षे। स च प्रजानः विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा-विभिद्य परश्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्। एवं स ज्ञातास्वादः पौनः पुन्येन द्वाद्वशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश चूडायित सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार।

हिन्दी अनुवाद:— इसके बाद उस मुनि ने कहना आरम्भ किया - भगवन् ! धैर्य, हर्ष, प्रताप, तेज, शक्ति, पराक्रम, शन्ति, लक्ष्मी, मित्रता, धर्म, विद्या के साथ ही पूज्य विक्रमादित्य के स्वर्ग चले जाने पर धीरे-धीरे आपसी विरोध के कारण राजाओं में प्रेम बन्धनों के शिथिल हो जाने पर योद्धाओं के कामिनियों के कटाक्षों एवं हावभाव (अदाओं) के प्रभाव से सम्पत्तियों के नष्ट हो जाने पर, मन्त्रियों के एक मात्र स्वार्थ की चिन्ता में लीन हो जाने पर, नृपों के प्रशंसा मात्र में प्रेम रखने पर, ''आप इन्द्र हैं, आप वरूण हैं, आप कुबेर हैं'', इस प्रकार के वर्णनों में (प्रशंसात्मक उच्चारणों में) विद्वज्जनों के आसक्त हो जाने पर, गजनी स्थान का रहने वाला कोई महा अहंकारी, यवन सेना के साथ भारत वर्ष में प्रवेश किया और उसने प्रजा को लूटकर, मन्दिरों को

ध्वंस करके, मूर्तियों को तोड़कर, सैकड़ों लोगों को गुलाम बनाकर, सैकड़ों ऊटों पर रत्नों को रखकर अपने देश ले गया। इस प्रकार (लूटने का) स्वाद चख लेने वाल वह यवन शासक बार-बार आकर भारतवर्ष को बारह बार लूटा। अपने उन्हीं आक्रमणों में एक बार गुजरात देश के अलंकार स्वरूप सोमनाथ तीर्थ को भी धूलि में मिला दिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— मुनिः = ब्रह्मचारी के गुरु ने, धैर्येण = धैर्य से, प्रसादेन = प्रसन्नता से, प्रतापेन = प्रताप से, तेजसा = तेज से, वीर्येण = शक्ति से, विक्रमेण = पराक्रम से, शान्त्या = शान्ति से, श्रिया = लक्ष्मी से, सौख्येन = सुख से, धर्मेण = धर्म से, विद्यया = विद्या से, तत्रभवति = पूज्य, सनाथितवाति = सनाथित करने पर (चले जाने पर), शनैःशनैः = धीरे-धीरे, पारस्परिक विरोधः = आपसी वैमनस्य, विशिथिलीकृत स्नेह बन्धनेषु = प्रेम बन्धनों को शिथिल कर देने पर, भामिनीभ्रूभङ्गभूरिभाव प्रभाव पराभूत वैभवेषु = भामिनि = कामिनी, भ्रूभङ्ग = कटाक्ष, भूरिभाव = हाव-भाव, पराभूत = नष्ट, वैभवेषु = सम्पत्तियों के अर्थात् कामनियों के कटाक्षों एवं हाव-भावों के प्रभाव से नष्ट सम्पत्तियों वाले, भटेषु = योद्धाओं के, स्वार्थ चिन्ता-सन्तान वितानैकतानेषु, सन्तान = समूह, वितान = विस्तार एकतानेषु = एकमात्र, अर्थात् एक मात्र स्वार्थ की चिन्ताओं के विस्तार में तत्पर हो जाने पर, कश्चन् = कोई, प्राविशद् = प्रवेश किया, विलुण्ठ्य = लूटकर, वि+लुण्ठ+ल्यप्, निपात्य = गिराकर, नि+पत्+णिच्+ल्यप्, विभिद्यः = तोड़कर, वि+भिद्+क्त्वा+ल्यप्, परश्शतान् = सैकड़ों, दासीकृत्य = दासी बनाकर दास+च्वि प्रत्यय, उष्ट्रेषु = ऊँटों पर, आरोप्य = लादकर, आ+रोप्+ल्यप्, पौनः पुन्येन = बार-बार करके, अलुलुण्ठत् = लूटा लुण्ठ+लङ् प्र.पु.ए.व., अनैषीत् = ले गया, णीञ् (प्रापणे) लुङ् लकार, प्र.पु. ए.व., स्वसंरम्भे = अपने आक्रमण में, गुर्जरदेश चूडायितम् = गुजरात देश का अलंकार, चूडायितम् = चूड़ा+क्यच्+इ+ऋत, धूली चकार = धूलि में मिला दिया।

समास:— पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु=पारस्परिक विरोधेन विशिथिलीकृतानि स्नेह बन्धनानि यैः तेषु (बहुव्रीहि), भामिनी भ्रू भङ्ग भूरि भाव प्रभाव पराभूत वैभवेषु = भामिनीनां भ्रू भंगानां, भूरिभावनां चा प्रभावेण पराभूतानि वैभवानि येषां तेषु (बहुव्रीहि), अमात्यवर्गेषु = अमात्यानां वर्गेषु (तत्पुरुष), गजिनी स्थान निवासी = गजिनी स्थानस्य निवासी (तत्पुरुष), ज्ञातास्वादः = ज्ञातः आस्वादः येन सः (बहुव्रीहि), गुर्जरदेशचूडायितम् = गुर्जरदेशस्य चूडायितम् (तत्पुरुष)।

विशेष:— राजाओं के भोग विलास, चाटुकारिता-प्रेम, पारस्परिक विरोध अमात्यों के स्वार्थ आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है।

अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते:, परं तत्समये तु लोकात्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्यराग-माणिक्य मुक्ता फलादि जटितानि कपाटानि स्तम्भान्, गृहावग्रहणी:, भित्ती:, वलभी: विटङ्कान च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वयमणसुवर्ण श्रङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य चकितीकृतावलोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य संगृह्य, महादेवमूर्तावपि, गदामुदतूतुलत।

हिन्दी अनुवाद: — आज तो उस (सोमनाथ) तीर्थ का नाम भी कोई स्मरण नहीं करता है, परन्तु उस समय उसका वैभव अलौकिक था। निश्चित रूप से वहां बहुमूल्य मूँगों, पद्मरागों, मणियों और मोतियों से जटित कपाटों, खम्भों, देहलियों, दीवारों छज्जों, कपोतों के दरबों को मथकर, रत्न समूह को लेकर, दो सौ मन सोने की सीकड़ में लटकने वाला प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों

के नेत्रों को चकित कर देने वाली विशाल घंटा को बलात ग्रहण करके महादेव की मूर्ति पर भी उसने गदा उठाई।

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— तत्तीर्थस्य = उस सोमनाथ तीर्थ का, स्मर्यतेः = स्मरण किया जाता है, स्मृ+लट् लकार, लोकोत्तरम् = अलौकिक, वैभव = सम्पत्ति महार्ह = बहुमूल्य, वैदूर्य = मूँगा, पद्मरागमाणिक्य-मुक्ता फलादि = पद्मराग, हीरे, मणियाँ मुक्ताफल आदि, जटितानि = जड़े गये, कपाटानि = किवाड़ियों को, स्तम्भान् = खम्भों को, गृहावग्रहणीः = देहली, भित्तीः = दीवारा, वलभीः = छज्जा, विटङ्कानि = कबूतरों के दरबों को, निर्मथ्य = मथकर, निर+मथ् +ल्यप्, रत्ननिचयम् = रत्नों के समूह को, आदाय = लेकर, आ+दा+ल्यप्, शतद्वयमणसुवर्ण-श्रृंखलावलम्बिनीं = शतद्वय = दो सौ, मण = मन, सुवर्ण = सोना, श्रृंखला = जंजीर, अवलम्बिनी = लटकने वाली, अर्थात् दो सौ मन सोने की जंजीर में लटकने वाली, चंचत् = प्रकाशित, चाकचाक्य = चकमकाहट, चकितीकृता = चकित कर देने वाली, अवलोचक = दर्शक, लोचन निजयां = नेत्र समूह अर्थात् प्रकाशमान चकमकाहट से दर्शकों के नेत्रों को चकित कर देने वाली (घंटा का विशेषण), महाघण्टां = विशाल घंटा को, प्रसह्य = शक्ति पूर्वक प्र+सह्+ल्यप्, संगृह्य = ग्रहण कर, उदतूतुलत् = उठाई, उत्+तुल+लङ् प्र.पु.ए.व.।

समास:— महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग, माणिक्य मुक्ताफलानिजटितानि = महार्हाः वैदूर्याः, पद्मरागाः, माणिक्याः मुक्ताफलानि च ते तैः जटितानि (तत्पुरुष), गृहावग्रहणीः = गृहस्य अवग्रहणीः (तत्पुरुष), रत्न निचयम् = रत्नानां निचयम् (तत्पुरुष), शतद्वयमणसुवर्ण श्रंखलावलम्बिनीम् = शतद्वयमण सुवर्ण श्रंखलायम् अववलम्बिनीम् (तत्पुरुष), महादेवमूर्तावपि = महादेवस्य मूर्तावपि (तत्पुरुष)।

अलंकार:— इस गद्यांश में सोमनाथ मन्दिर के ऐश्वर्य का वर्णन किया गया है, अतः उदात्त अलंकार है।चञ्चच्चाकचक्य चकिती में अनुप्रास अलंकार है।

अथ ''वीर गृहीतमखिलं वित्तं, पराजिता आर्य्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, संचतममलं यशः, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्माँस्ताडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलयः, किन्तु त्यजेमामकिंचित्करीं जडांमहादेव-प्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गुहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्तिं स्प्राक्षीः'' इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; ''नाहं मूर्तीर्विक्रीणामि; किन्तु भिन्ह्मि' इति संगर्ज्य जनतायाः हाहाकार-कल-कलमाकर्णयन् घोरगदया मूर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

हिन्दी अनुवाद:— तत्पश्चात् हे वीर ! तुमने सम्पूर्ण धन ले लिया, आर्यों की सेना को पराजित कर दिया, हम सबको बन्दी बना लिया, निर्मल यश एकत्रित कर लिया, इतने पर भी तुम्हारा क्रोध यदि शान्त नहीं हो रहा है, तो हम सबको प्रताड़ित करो, मारो, विदीर्ण करो, काट डालो, पर्वत से नीचे फेंक दो जल में डुबो दो, खण्ड-खण्ड कर डालो, कतर डालो, जला डालो किन्तु (आपका कुछ न बिगाड़ने वाली) इस जड़ प्रतिमा को छोड़ दो यदि इस प्रकार स्वीकार न हो, तो हम लोगों से और अधिक दो करोड़ सोने की मुद्राएं ले लो, रक्षा करो, इस भगवान् शिव की

प्रतिमा का स्पर्श मत करो। इस प्रकार पुजारियों के बार-बार कहने पर, रोने पर, पैरांे पर गिरने पर, जमीन पर लोटने और प्रणाम करने पर ''मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ किन्तु तोड़ता हूँ'' इस प्रकार गर्जन कर लोगों के हाहाकार की ध्वनि को सुनता हुआ भयंकर गदा से मूर्ति को तोड़ दिया और गदा प्रहार के साथ ही अनेक अरब पद्म मुद्राओं के मूल्य के रत्न मूर्ति के बीच से निकल गये ओर चारों तरफ बिखर गये और वह मुँह जला उन रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँट की पीठ पर लादकर सिन्धु नदी को पार करके अपनी विजय पताकाओं से युक्त 'गजिनी' राजधानी में प्रवेश किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— गृहीताम् = ले लिया ग्रह+क्त, अखिलम् = सम्पूर्ण, पराजिता = पराजित हो गयी, पर+आ+जि+क्त, आर्य सेना = आर्यों की सेना, बन्दी कृताः = बन्दी बना लिए गये, बन्द+च्वि+कृ+क्त, सञ्चितम् = सञ्चित किया गया, अमल = निर्मल, इतोऽपि = इतने पर भी, शाम्यति = शान्त होता है, ताडय = पीटो, मारय = मारो, भिन्दि = काट डालो, भिदि+लोट् लकार म.पु.ए.व., पातय = गिरा दो पत्+णिच्+लोट् म.पु.ए.व., माजय = डुबो दो, खण्डय = टुकड़े-टुकड़े कर डालो, कर्तय = कतर दो, अकिञ्चित करीम् = कुछ न करने वाली, जडाम् = अचेतन, स्वीकरोषि = स्वीकार करते हो, गृहाण = ग्रहण करो, अस्मतो = हमसे, अन्यदपि = और भी, सुवर्ण कोटिद्वयम् = दो करोड़ सोने की मुद्राएं, त्रायस्व = रक्षा करो त्रै+म.पु.ए.व., भगवन्मूर्तिम् = भगवान् शिव की प्रतिमा, मा स्प्राक्षीः = स्पर्श मत करो, स्पृश+लुङ् लकार, साग्रेडम् = बार-बार, पूजकवर्गेषु = पुजारियों के कथयत्सु = कहने पर, कथ+शतृ, रुदत्सु = रोने पर रुद + शतृ, पतत्सु =पैरों पर गिरने पर, पत्+शतृ, विलुण्ठत्सु =जमीन पर लोटने पर वि+लुण्ठ+शतृ, प्रणमत्सु = प्रणाम करने पर, प्र+नम+शतृ, विक्रीणामि = बेचता हूँ, भिनद्मि = तोड़ता हूँ, संगर्ज्य = गर्जन करके, अतुत्रुटत् = तोड़ दिया, त्रुट् लुङ् लकार प्र.पु.ए.व., गदापातसमकालमेव = गदा प्रहार के समय ही, अनेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि = अनेक अरब पद्म मुद्राओं के मूल्य वाले, मूर्तिमध्यात् = मूर्ति के बीच से, उच्छलितानि = उछल गये, अवाकीर्यन्त = बिखर गये, अव+कृ+लङ्, दग्धमुखः = मुंह जला, क्रमेलकपृष्ठेषु = ऊँट के पीठ पर, क्रमेलक = ऊँट, आरोप्य = लादकर, उत्तीर्य = उतारकर, उद्+तृ+ल्यप्, विजयध्वजिनीम् = विजय की पताका वाली, प्राविशत् = प्रवेश किया, प्र+विश्+लङ् लकार।

समास:— आर्यसेना = आर्याणां सेना (तत्पुरुष), सुवर्णकोटिद्वयम् = सुवर्णस्य कोटिद्वयम् (तत्पुरुष), महादेव प्रतिमा = महादेवस्यप्रतिमा (तत्पुरुष), पूजकवर्गेषु = पूजकानां वर्गेषु (तत्पुरुष), गदापातसमकालम् = गदापातस्य समकालम् (तत्पुरुष), अनेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि = अनेकानि अर्बुदपद्मानि, मुद्राः येषां तानि (बहुव्रीहि), दग्धमुखः = दग्धं मुखं यस्य सः (बहुव्रीहि)।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (1087) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणाँस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षप्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर द्वादशशतमितेऽब्दे (1250) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

हिन्दी अनुवाद: — इसके बाद समयक्रम से विक्रम संवत् 1087 शोक एवं कष्ट के साथ महमूद गजनवी के प्राण छोड़ देने पर, गोर देश का रहने वाला कोई शहाबुद्दीन नाम का (मुसलमान)

पहले गजिनी देश पर आक्रमण करके महमदू गजनवी के वंश को धर्मराज के लोक के मार्ग का पथिक बनाकर, सभी प्रजाओं को पशुओं के सदृश मारकर, उनके रक्त से गीली मिट्टी से गोर देश में बहुत से घरों का निर्माण करके चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश करके ठन्डें रक्त वाले (युद्ध न चाहने वाले) भारतवासियों को भी तलवार से मारते हुए संवत् 1250 में दिल्ली को घुड़सवार सेना से घेर लिया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — अथ = तत्पश्चात्, कालक्रमेण = समयक्रम से, वैक्रमाब्दे = विक्रम संवत्, सशोकं = शोक के साथ, सकष्टम् = कष्ट के साथ, प्राणान् = प्राणों को, त्यक्तवति = छोड़ देने पर, त्यज्+क्तवतु सप्तमी ए.व., अध्वनीनम् = पथिक, पशुमारम् = पशु के सदृश मौत से, पशु+मृ+णमुल्, मारयित्वा = मारकर, तद्रुधिरद्रिमृदा = उन्हीं के रक्त से गीली मिट्टी से, निर्माय = निर्माण करके, निर्+मा+कत्वा+ल्यप्, चतुरङ्गिण्य = चतुरङ्गिणी, अनीकिन्या = सेना के साथ, अनीक+इनिः, प्रविश्य = प्रवेश करके, प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्, शीतलशोणितान् = ठन्डे रक्त वाले (युद्ध न चाहने वाले), असयन् = तलवार से मारता हुआ, असि+णिच्+शतृ, अश्वयाम्बभूव = अश्वों से घेर लिया, अश्व+णिच्+आम्+भू+लिट् लकार प्र.पु., ए.व.।

समास:— कालक्रमेण = कालस्यक्रमः कालक्रमः तेन (तत्पुरुष समास), धर्मराजलोकध्वनीनं = धर्मराजस्य लोकः। तस्य अध्वनी अध्वनीनम् (तत्पुरुष), तद्रुधिरार्द्रमृदा = तेषां रूधिरेण आर्द्रा मृत् तया (बहुव्रीहि), शीतल-शोणितान् = शीतलं शोणितं येषां तान् (बहुव्रीहि)।

अलंकार:— 'पशुमारं मारयित्वा' में लुप्तोपमा लंकार है।

विशेष:— इस स्थल में भाग्य की परिवर्तनशीलता को स्थान दिया गया है।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोध-ज्वर-ग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः रिङ्गतरङ्गभङ्गा गङ्गाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।स एव प्राधान्येन भारते यवनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत्। तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीननामा प्रथम भारतसम्राट् संजातः।

हिन्दी अनुवाद: — तत्पश्चात् दिल्ली के नृप पृथ्वीराज एवं कान्यकुब्ज के सम्राट जयचन्द को पारस्परिक विरोध रूपी ज्वर से पीड़ित राजनीति को न समझने वाले तथा भारत के आने वाले दुर्भाग्य को जानकर बिना परिश्रम के दोनों (नृपों को) को मारकर वाराणसी तक निर्विघ्न तथा कीड़ों और मल से रहित (निर्मल) श्रेष्ठ रत्न के समान सम्पूर्ण जनपदों से युक्त महान राज्य को अपने अपने अधिकार में कर लिया । उसके द्वारा वाराणसी में हड्डियों के बहुत से पर्वत बना दिये गये, चंचल लहरों वाली गंगा भी रूधिर से लाल करके शोण नदी (लाल रंग) जैसी बना दी गयी, सहस्राधिक देवों के मन्दिर धराशायी कर दिये गये।वही मुख्य रूप से भारतवर्ष में यवनों के राज्य का बीजारोपक हुआ। उसी का कोई खरीदा हुआ कुतुबुद्दीन नाम का दास भारतवर्ष का प्रथम सम्राट हुआ।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — पारस्परिक विरोध ज्वरग्रस्तम् = आपसी विरोध के ज्वर से ग्रस्त, विस्मृतराजनीतिम् = राजनीति को स्मरण न करने वाले, भारतवर्ष दुर्भाग्यमाणम् = भारतवर्ष की आने वाली दुर्भाग्य को, विशस्य = मारकर, वि+शस्+ल्यप्, अनायासेन = बिना परिश्रम के

(सरलता से), उभौ अपि = दोनों को भी, अस्थि गिरयः = हड्डियों के पहाण, पर्यन्तम् = चारों ओर, अखण्डम् = सम्पूर्ण, मण्डलं = जनपद, अकण्टकम् = निष्कण्टक, अकीटकिट्टं = कीट एवं मैल रहित, प्रचिताः = प्र+चि+क्त = बना दिये गये, रिङ्गत्तरंगभंगा = चंचल लहरों वाली, शोणितशोणा = रक्त से लाल, शोणीकृता = शोन नदी के रूप में बना दी गयी (शोन नदी का जल लाल होता है), परस्सहस्राणि = हजारों, देवमन्दिराणि = देवों के मन्दिर, भूमिसात्कृतानि = भूमि पर गिरा दिये गये, प्राधान्येन = मुख्य रूप से, यवनराज्याङ्कुर = यवन राज्य का बीज, आरोपक = आरोपण करने वाला, सञ्जातः = हुआ, सम्+जनी+क्त, क्रीतदासः = खरीदा हुआ गुलाम।

समास: दिल्लीश्वरम् = दिल्ल्याः ईश्वरम् (तत्पुरुष), कान्यकुब्जेश्वरम् = कान्यकुब्जस्य ईश्वरम् (तत्पुरुष), पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम् = पारस्परिकः विरोधः एवं ज्वरः तेन ग्रस्तम् (तत्पुरुष), विस्मृतराजनीतिं = विस्मृता राजनीतिः येन तम् (बहुव्रीहि), राजनीतिं = राज्ञां नीतिः राजनीतिः ताम् (तत्पुरुष), महारत्नम् = महत् तत् रत्नम् (कर्मधारय), रिङ्गत्तरंगभंगा = रिङ्गत्तः तरङ्गाः तेषाम् भङ्गाः यस्याः सा (बहुव्रीहि), देवमन्दिराणि = देवानाम् मन्दिराणि (तत्पुरुष), यवनराज्याङ्कुरा = यवनराज्यस्य अङ्कुरस्य, आरोपकः (तत्पुरुष), भारतसम्राट् = भारतस्य सम्राट् (तत्पुरुष)।

अलंकार:— 'महारत्नमिव' = उपमा अलंकार, 'शोणितशोणाशोणीकृता' = अनुप्रास अलंकार।

विशेष:— 'राजाओं की आपसी फूट से ही हिन्दुओं की पराजय हुई' इस तथ्य को उद्घाटित किया गया है।

तमारभ्याद्यावधि राक्षस एव राज्यमकार्षुः। दानवा एव च दीनानदीदलन। अभूतकेवलं अकबरशाह-नामा यद्यपि गुढशत्रुर्भारतवर्षस्यतथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्री मूर्तिमदिव कलियुगं गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु, मत्स्येषु, मगधेषु, अङ्गेषु, वङ्गेषुः कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवल दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

हिन्दी अनुवाद: — उसी कुतुबुद्दीन से लेकर आज तक राक्षसों (मुसलमानों) ने ही शासन किया। दानवों ने ही दीन भारतीयों को मारा। केवल अकबर नाम का बादशाह यद्यपि भारत का गुप्त शत्रु था फिर भी वह शान्ति प्रिय एवं विद्वज्जनों को सम्मान देने वाला था। इसी (अकबर) का प्रपौत्र साक्षात् कलिकाल के समान तथा शरीर धारण करने वाले अधर्म, सदृश, आलमगीर उपाधि धारी औरंगजेब इस समय दिल्ली के स्वामित्व को कलंकित कर रहा है। इसी के ध्वज कैकय मत्स्य, मगध, अंग, वंग एवं कलिङ्ग राज्यों में फहरा रहे हैं। केवल दक्षिण देश में अब भी इसका पूर्ण अधिकार नहीं हो पाया है।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — तमारम्भ = उसी कुतुबुद्दीन से लेकर, अद्यावधि = आज दिन तक, राक्षसाः एव = यवनों ने ही, अकार्षुः = किये कृ+लुङ्+प्र.पु.व.व., दीनान् = दीनों को, अदीदलन् = दला (मारा) दल+लङ् लकार प्र.पु.ब.व., गूढ शत्रुः = छिपा हुआ शत्रु, शान्तिप्रियः = शान्ति प्रेमी, विद्वत्प्रियः = विद्वानों को आदर देने वाला, अस्यैव = इसका ही, मूर्तिमत् = साक्षात्, कलियुगमिव = कलिकाल जैसा, गृहीत विग्रहः = शरीरधारी, विग्रह = शरीर, आलमगीरोपाधिधारी = 'आलमगीर' उपाधि धारण करने वाला, अवरङ्गजीवः =

अवरङ्गजेब, दिल्ली वल्लभतां = दिल्ली का शासन, कलङ्कयति = कलङ्कित कर रहा है। कैकयेषु = पंजाब प्रान्त में, मत्स्येषु = राजस्थान प्रान्त में, मगधेषु = दक्षिण बिहार में, अङ्गेषु पूर्वी बिहार में, वङ्गेषु = बंगाल प्रदेश में, कलिङ्गेषु = उड़ीसा प्रान्त में, दोधूयन्ते = फहरा रहे हैं धूञ्+यङ्, प्र.पु.ब.व., संवृत्तः = हो गया, सम्+वृतु+क्त, दक्षिण देशे = महाराष्ट्रादि दक्षिण प्रान्तों में।

समास: — गूढ़शत्रुः = गूढ़ः च असौ शत्रुः (कर्मधारय), शान्तिप्रयः = शान्तिः प्रिया यस्मै सः (बहुव्रीहि), गृहीतविग्रहः = गृहीतः विग्रहः येन सः (बहुव्रीहि), दिल्लीवल्लभतां = दिल्ल्याः वल्लभः, तस्य भावः ताम् (तत्पुरुष)।

अलंकार: — 'मूर्तिमदिव कलियुगः' में उत्प्रेक्षा अलंकार, 'गृहीतविग्रह इव चाधर्मः' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाष्ट्रकेशरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिण-देशशासकत्वेन ''शास्तिखान'' नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्र देशरत्नम् यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र -सिन्दूर- दान-देदीप्यायमानदोर्दण्डः, मुकुटमणिमहाराष्ट्राणाम, भूषणं भटानां, निधिर्नीतानाम् कुलभवनम् कौशलानाम पारावारः परमोत्साहानम्, कश्चन् प्रातः स्मरणीयः स्वधर्माऽऽग्रह ग्रह-ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम्। ''कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्!'' इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य, आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशासन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः। इयमेव वर्तमानादशा भारतवर्षस्य। किमधिकम् विनिवेदयामो योगवलावगतसकलगोप्यत-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु'' इति कथयित्वा विरराम।

हिन्दी अनुवाद: — दक्षिण प्रदेश निश्चित रूप से अधिक पर्वतों वाला है और सघन जंगलों से भरा हुआ है। इस कारण चिर प्रयास से भी वह महाराष्ट्र केशरी को जीतने में समर्थ न हो सका, अब अपने को दक्षिण देश के शासक के रूप में उसी के आत्मीय शाहस्त खाँ को भेजा जा रहा है ऐसा सुना जा रहा है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के रक्त को पीने की इच्छा से व्याकुल कृपाण वाले, वीरता रूपी कामिनी की माँग में सुन्दर और गाढ़ा सिन्दूर-दान करने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, महाराष्ट्र के मुकुटमणि, वीरों के अलंकार, नीतियों के निधि, निपुणताओं के आश्रय, परम उत्साहों के सागर, प्रातः स्मरणीय, अपने धर्म को पालने करने में दृढ़, अवतार लेने वाले शिव को समान कोई शिवाजी पूना नगर के निकट ही सिंह दुर्ग में सेना के साथ निवास कर रहे हें। विजयपुर (बीजापुर) के राजा से इस समय उनका वैर बढ़ा हुआ है। 'या तो कार्य पूरा होगा या शरीर का नाश होगा' ऐसी इनकी सारगर्भित बहुत बड़ी प्रतिज्ञा है। साध्वी स्त्रियों, सत्पुरुषों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष की आशाओं के विस्तार के यही आश्रय हैं। भारतवर्ष की यही आज की दशा है। ''योग शक्ति से अतिशय गोपनीय सम्पूर्ण वृत्तान्तों को जानने वाले योगिराज से अधिक क्या कहूँ'' यह कहकर ब्रह्मचारी के गुरु चुप हो गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — दक्षिण देशः = महाराष्ट्र प्रान्त, पर्वत बहुलः = बहुत पर्वतों वाला, अरण्यानी संकुलः = घने जंगलों वाला, अरण्य+आनुक्+ङीषु, चिरोद्योगेन = चिर प्रयासों से,

अशकत् = समर्थ हुआ शक्+लङ् प्र.पु.ए.व., महाराष्ट्र केशरिणः = महाराष्ट्र के केशरियों को, हस्तयितुम् = हस्तगत करने में, हस्त+य+तुमुन्, आत्मीयः = स्वजन, दक्षिणदेशशासकत्वेन = दक्षिण देश के शासक के रूप में, महाराष्ट्र देशरत्नम् = महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनशोणितपिपासाऽऽकुलकृपाणः = यवन = मुसलमान, शोणित = रुधिर, पिपासा = पीने के इच्छा से, आकुल = व्याकुल, कृपाणाः = तलवार, यवनों के रूधिर को पीने की इच्छा से व्याकुल कृपाण वाले, वीरता सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमानदोर्दण्डः = सीमन्तिनी = स्त्री, सीमन्त = मांग, सान्द्र = गाढ़ा, देदीप्यमान = चमकते हुए, दोर्दण्डः = भुजाएँ अर्थात् वीरता रूपी युवती की मांग से सुन्दर और गाढ़ा सिन्दूर-दान से देदीप्यमान भुजाओं वाले, पारावारः = समुद्र, स्वधर्माग्रह ग्रहग्रहिलः = अपने धर्म को दृढ़ता पालन करने वाला, स्वधर्म = सनातन धर्म, ग्रहिलः = अतिशत दृढ़, धृतावतारः = अवतार लेने वाले, पुष्यनगरात् = पूना नगर से, नेदियसि = अति निकट, सिंह दुर्गे = सिंह दुर्ग में, विजयपुराधीश्वरेण = बीजापुर के राजा के साथ, प्रबृद्धम = बढ़ा हुआ प्र+वृध्+क्त, कार्यं वा साधयेयं = या तो कार्य सिद्ध होगा, देहं वा पातपेयम् = या शरीर का नाश होगा। सारगर्भा = सारगर्भित, त्रैवर्णिकस्य = द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य), आशा सन्तानवितानस्य = आशाओं के विस्तार के, सन्तान = समूह, वितान = विस्तार, विनिवेदयामः = निवेदन करें, किमधिकम् = अधिक क्या, योग-बलावगत सकल-गोप्यतम-वृत्तान्तेषु = योग बल से अवगत सम्पूर्ण अतिशत गोपनीय वृत्तान्तों वाले (योगिराज का विशेषण), विरराम = चुप हो गये, विः रम्+लिट, प्र.पु. ए.व.।

समास: — यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुल कृपाणः = यवनानां शोणितस्य पिपासाकुलः कृपाणः यस्य सः (बहुव्रीहि), महाराष्ट्रदेशरत्नम् = महाराष्ट्र देशस्य रत्नम् (तत्पुरुष), वीरतासीमन्तिनीसीमन्त सुन्दर सान्द्र सिन्दूर दान देदीप्यमान दोर्दण्डः = वीरता एव सीमन्तिनी तस्याः सीमन्ते, सुन्दर सान्द्र सिन्दूरस्य दानेन देदीप्यमानः दोर्दण्डः यस्य सः (बहुव्रीहि), मुकुटमणिः = मुकुटस्य मणिः (तत्पुरुष समास), स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः = स्वधर्मस्य आग्रहग्रहे ग्रहिलः (तत्पुरुष), धृतावतारः = धृतः अवतारः येनः सः (बहुव्रीहि), विजयपुराधीश्वरेण = विजयपुरस्य अधीश्वरेण (बहुव्रीहि) तत्पुरुष, योगबलावगतसकल-गोप्यतमवृत्तान्तेषु = योगस्य बलेन अवगताः सकलाः गोप्यतमाः वृत्तान्ताः यैः तेषु (बहुव्रीहि समास)।

अलंकार: — 'वीरता सीमन्तिनीः' में वीरता के ऊपर सीमन्तिनी (कामिनी) का आरोप है। अतः रूपक अलंकार है। 'शिव इव धृतावतारः' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

अभ्यास प्रश्न-3

1-प्रश्न-भारत में सबसे पहले प्रवेश किसने किया

2-प्रश्न- सोमनाथमूर्ति को किसने तोडा?

3-प्रश्न- सोमनाथमन्दिर कहॉ स्थित है?

4-प्रश्न- शहाबुद्दीन किस देश का रहने वाला था?

5-प्रश्न- दिल्ली के राजा कौन था?

3.4 सारांश

इस इकाई में भगवान् सूर्य के अनेक प्रकार का वर्णन किया गया है। पर्णकुटी केले के पत्तों से घिरे हुए होने के कारण कुंज के सदृश प्रतीत होने वाली इस पर्णकुटी के चारों तरफ पुष्पवाटिका थी। पूर्व में अतिशय पावन जल वाला, सहस्र कमलों से सुशोभित, पक्षिगण के

कलरव से परिपूर्ण, अतिशय जल से भरा हुआ सरोवर का वर्णन किया गया है। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को ध्वनित करने वाला, फल-समूह के आस्वादन से चंचल चोंचों वाले पक्षियों के आक्रमण से अतिशत झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों के समूह से भरा हुआ तथा सुन्दर गुफाओं वाला एक पर्वत का टुकड़ा था।

इस इकाई में मुनि तथा कन्या का विशेष वर्णन किया गया है। भारत की दशा को देखते हुए योगी ने कहा - विक्रम के राज्य में भी कैसे यह दुराचारियों का पाप से भरा हुआ उपद्रव ? तत्पश्चात् वे ब्रह्मचारी के गुरु बोले - महात्मन् ! विक्रम का राज्य इस समय कहाँ ? वीर विक्रम को तो भारत भूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष बीत गये। अब मन्दिरों में जयनाद कहाँ ? तीर्थ-स्थानों में घण्टों का निनाद अब कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? मठों में आज भी वेदों की ध्वनि कहाँ ? आज वेदों को फाड़कर रास्तों में फेंक दिये जा रहे हैं, धर्मशास्त्रों को उडाकर अग्नि में जला दिये जाते हैं, पुराणों को पीसकर जल में डाल दिये जाते हैं, भाष्यों को नष्ट करके भाड़ों में भस्म कर दिये जाते हैं, कहीं पर मन्दिरों को तोड़ दिये जा रहे हैं, कहीं तुलसी के वन काटे जा रहे हैं, कहीं स्त्रियों का अपहरण कर लिया जा रहा है, कहीं धन लूट लिये जा रहे हैं, कहीं करुण क्रन्दन सुनाई पड़ते हैं। मुसलमानों ने भारत पर किस प्रकार अत्याचार किया इन सबका वर्णन किया गया है। कुतुबुद्दीन से लेकर आज तक राक्षसों (मुसलमानों) ने ही शासन किया। दिल्ली के राजा पृथ्वीराज एवं कान्यकुब्ज के सम्राट जयचन्द को पारस्परिक विरोध रूपी ज्वर से पीड़ित राजनीति को न समझने वाले तथा भारत के आने वाले दुर्भाग्य को जानकर बिना परिश्रम के दोनों (नृपों को) को मारकर वाराणसी तक निर्विध्न तथा कीड़ों और मल से रहित (निर्मल) श्रेष्ठ रत्न के समान सम्पूर्ण जनपदों से युक्त महान राज्य को अपने अपने अधिकार में कर लिया। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

3.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अहो	आश्चर्य सूचक
प्रबुद्धो	जग गये
इत एव	इधर ही
सत्कार्य	सत्कार के योग्य
सम्भ्रान्तौ	प्रसन्नता से विह्वल हुये
गुरौ	मुनि के
समायाते	आ जाने पर
तदाज्ञया	उनकी आज्ञा से
प्रयाते	चले जाने पर
छात्रगणसहकारेण	छात्रों की सहायता से
प्रस्तुततासु	प्रस्तुत हो जाने पर
स्वागतसामग्रीषु	स्वागत सामग्री के
पातकमयः	पाप से युक्त
महात्मन्	महानुभाव
तदाकर्ण्य	उसको सुनकर

प्रवोच	बोले
विक्रम राज्येऽपि	विक्रम के राज्य में भी
भारतभुवं	भारत भूमि को
विरहय्य	छोड़कर
गतस्य	गये हुए का
सप्तदश शतकानि	सत्रह सौ
व्यतीतानि	व्यतीत हो गये
मन्दिरे-मन्दिरे	प्रत्येक मन्दिरों में
मठे-मठे	प्रत्येक मठों में
वेद-घोषः	वेदों की ध्वनि
तमारम्भ	उसी कुतुबुद्दीन से लेकर
अद्यावधि	आज दिन तक
राक्षसाः एव	यवनों ने ही
अकार्षुः	किये
दीनान्	दीनों को
अदीदलन्	दला (मारा)
गूढ शत्रुः	छिपा हुआ शत्रु
शान्तिप्रियः	शान्ति प्रेमी
विद्वत्प्रियः	विद्वानों को आदर
अस्यैव	इसका ही
मूर्तिमत्	साक्षात्
कलियुगमिव	कलिकाल जैसा
गृहीत विग्रहः	शरीरधारी
विग्रह	शरीर
अवरङ्गजीवः	अवरङ्गजेब,
दिल्ली वल्लभतां	दिल्ली का शासन
कलङ्कयति	कलङ्कित कर रहा है

3. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर -

अभ्यास-1

1- पूर्व दिशा में 2- लाल 3- भगवान सूर्य 4- राजा 5- भगवान् सूर्य के द्वारा

अभ्यास-2

1- ब्रह्मचारी ने 2- महामुनि 3- यवन का लड़का 4- छुरा दिखाकर 5- सेमर के वृक्ष पर

अभ्यास-3

1- मुहम्मद गजनी ने 2-गजनवी 3- गुजरात में 4- गोर देश का 5- पृथ्वीराज

3.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय ,अम्बिकादत्तव्यास, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी
2-संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी

3. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाषक
शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास, चौखम्भा संस्कृत,भारती, वाराणसी

3. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पर्णकुटी का वर्णन कीजिये।
2. कन्या के विषय में परिचय दीजिये।
3.सोमनाथ मन्दिर के विषय में परिचय दीजिये।
4. इकाई का सारांश निज शब्दों में लिखिए।

इकाई 4. तदाकर्ण्य विविध .....से .....स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 तदाकर्ण्य.....से .....स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या
4.4 सारांश
4.5 शब्दावली
4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 उपयोगी पुस्तकें
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित खण्ड तीन की चतुर्थ इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने भगवान् सूर्य के अनेक प्रकार का वर्णन, मुनि तथा कन्या का विशेष वर्णन, विक्रम के राज्य में दुराचारियों का पाप से भरा हुआ उपद्रव वर्णन, यवनों का भारत पर किये गये अत्याचार के वर्णन को जाना।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि शिवाजी कैसे थे उनका विशेष वर्णन किया गया है। इसके बाद यवन, युवक गौर सिंह से प्रश्न करते हुए कहता है कि कल रात्रि में तुम्हारी कुटिया में रोती हुई जो ब्राह्मण कन्या आई थी (उसे) तुरन्त दे दो, तब कदाचिद् दयावश तुमको जीवित भी छोड़ दूँ, अन्यथा क्षण भर में मेरी तलवार रूपी सर्पिणी के द्वारा डस लेने पर तुम्हारी कथा मात्र ही बच जायेगी। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- अफॅजल खा के विषय में बता सकेंगे।
- शिवा जी के विषय में बता सकेंगे।
- श्याम बटुक के विषय में बता सकेंगे।
- यवन युवक के विषय में बता सकेंगे।

4.3 तदाकर्ण्य.....से .....स्वकुटीरं प्रविवेश तक व्याख्या

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर वदनो योगिराजों मुनिराजं तत्सहचराँश्च निपुणं निरीक्ष्य तेषामपि शिववीरान्तरङ्गतामङ्गीकृत्य, मुनिवेशव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोररीकृत्य ''विजयतां शिववीरः सिद्धयन्तु भवतां मनोरथाः'' इति मन्दं व्याहार्षीत्।

हिन्दी अनुवादः — इस वृत्तान्त को सुनकर विविध भाव भंगिमाओं से चमकते हुए मुख वाले योगिराज ने मुनिराज तथा उनके साथ रहने वाले लोगों को निपुणता (सम्यक् रूप से) से देखकर तथा उन लोगों की भी शिव वीर (वीर शिवाजी) का अन्तरंगता जानकर तथा मुनि-वेश के बहाने से अपने धर्म की रक्षा का व्रत लिये हैं, यह हृदय में धारण कर ''वीर शिवाजी विजय को प्राप्त करें, आप लोगों की इच्छाएं पूर्ण हों'' ऐसा धीरे से कहा।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— विविधभावभङ्गभासुरवदनः = अनेक भाव-भङ्गिमाओं से देदीप्यमान मुख वाले, भासुर = देदीप्यमान, वदन = मुख, आकर्ण्य = सुनकर, आ+कर्ण+क्त्वा+ल्यप्, तत्सहचरान् = उनके साथियों को, निपुणं = सम्यक् रूप से, निरीक्ष्य = देखकर, निर्+ईक्ष्+ल्यप्, शिववीरान्तरङ्गतां = वीर शिवाजी की अन्तरंगताको, अङ्गीकृत्य = स्वीकार करके, मुनिवेशव्याजेन = मुनिवेश के बहाने से, स्वधर्मरक्षा व्रतिनः = अपने धर्म की रक्षा का व्रत लिये हुये, उररीकृत्य = हृदय में धारण कर (जानकर), व्याहार्षीत् = प्रसन्नता व्यक्त की, वि+आ+हृ+लुङ् लकार, प्र.पु. ए.व.।

समासः— विविधभावभङ्गभासुरवदनः = विविधानां भावानां भङ्गैः भासुरं वदनं यस्य सः (बहुव्रीहि), योगिराजः = योगिनाम् राजा इति योगिराजः (तत्पुरुष), तत्सहचरान् = सहचरन्ति

इति सहचराः तेषां सहचराः तान् (तत्पुरुष), शिववीरान्तरङ्गताम् = शिववीरस्य अन्तरङ्गताम् (तत्पुरुष), मुनिवेशव्याजेन = मुनिवशस्य व्याजेन (तत्पुरुष), स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = स्वस्य धर्मस्य रक्षायाः व्रतिनः (तत्पुरुष)।

अथ ''किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ ''अवगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, दैवादापद्ग्रस्तोऽपि च सखिसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति' इति समभाणीत। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य पुनः किञ्चिद्विचार्य्येव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य रोरुध्यमानैरपि, किञ्चिदुद्गतैर्बाष्पाबिन्दुभिराकुलनयनो ''भगवन्! प्रायो दुर्लभोयुष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छा आच्छादयति माम्'' इति न्यवेदीत्। स च ''आम ! ऊरीकृतम् जीवति सः सुखेनैवाऽऽस्ते'' इत्युदतीतरत्। अथ ''तं कदा द्रक्ष्यामि'' इति पुनः पृष्टवति ''तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि'' इत्यभिधाय बहूनिसान्त्वनावचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशौलान्, अधित्यकाञ्चारुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वतकन्दरे तपस्तप्तुँ जगाम।

हिन्दी अनुवादः— इसके बाद ''मैं कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ'' इस प्रकार धीरे से कहकर जटाधारण करने वाले ऋषि के जिज्ञासापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले - 'ज्ञात हो गया यवन के संग्राम में (शिवाजी की) विजय ही होगी, दुर्भाग्यवश विपत्ति ग्रस्त होने पर भी मित्रों की सहायता से अपना उद्धार कर लेंगे। मुनि ने भी 'जान लिया' ऐसा कहकर पुनः कुछ सोचकर ही और स्मरण कर लम्बे और गर्म श्वाँस लेकर अत्यधिक नियन्त्रित किये जाने पर भी कुछ निकल आये हुए आँसुओं की बूँदों से व्याकुल नेत्रों वाले (उस मुनि ने) निवेदन किया - 'भगवन् ! प्रायः आप जैसे महात्माओं का दर्शन दुर्लभ होता है, अतः दूसरा प्रश्न पूछने की इच्छा भी मुझे घेर रही है उस योगिराज ने ''अच्छा ! मालूम हो गया वह जीवित है सुखपूर्वक ही है'' ऐसा उत्तर दिया। इसके पश्चात् 'उनको कब देखूँगा ऐसा मुनि के पुनः पूछने पर ''उसके विवाह के समय में देखोगे'' ऐसा कहकर बहुत से सान्त्वना से भरे हुए वचनों को गम्भीर स्वर से कहकर तुरन्त ही पर्वत की अधोभूमि (घाटी), पर्वत की गिरी हुई बड़ी-बड़ी शिलाओं एवं पर्वत के उन्नत भागों पर चढ़कर पुनः उसी पर्वत की कन्दरा में तप करने के लिए चले गये।

शब्दार्थ एवं व्याकरणः— किमपि = कुछ भी, पिपृच्छिषामी = प्रश्न पूछना चाहता हूँ, प्रच्छ+सन्+लट् उ.पु. ए.व., शनैः = धीरे से, अभिधाय = कहकर, अभि+धा+ऋत्वा+ल्यप्, बद्धकरसम्पुटे = हाथ जोड़ लेने पर, सोत्कण्ठे = जिज्ञासा से युक्त, जटिलमुनौ = जटाधारण करने वाले मुनि के, जटा+इलच् प्रत्यय, सखि साहाय्येन = मित्रों की सहायता से, आत्मानम् = स्वयं को, उद्धरिष्यति = उद्धार कर लेंगे, उद्+हद्+णिच्+लृट लकार प्र.पु. ए.व., समभाणीत् = कहा सम्+भण्+लुङ् लकार प्र.पु., ए.व., उदीर्य = कहकर, विचारर्य्येव = जैसे कुछ विचार करके, स्मृत्वेव = जैसे कुछ याद करके, दीर्घमुष्णम् = दीर्घ एवं गर्म, निःश्वस्य = निःश्वास लेकर, रोरुध्यमानैरपि = बहुत अधिक नियन्त्रित करने पर भी रुध्+शानच्, वाष्पबिन्दुभिः = आँसुओं की बूँदों से, आकुलनयनो = व्याकुल नेत्रों वाले (मुनि का विशेषण), युष्मादृक्षाणाम् = आप जैसे महात्माओं का, अपरा = दूसरी, पृच्छा = पूछने की इच्छा, पृच्छ्+सन्+टाप् (स्त्रीलिङ्ग), आच्छादयति = घेर रही है, आ+छद+लट् लकार, प्र.पु.ए.व., न्यवेदीत् = निवेदन किया नि+विद्+लुङ् प्र.पु. ए.व., आम् = अच्छा, हाँ, ऊरीकृतम् = स्वीकार किया, समझ लिया,

उदतीतरत् = उत्तर दिया, उद्+तृ+लुङ्, प्र.पु. ए.व., द्रक्ष्यामि = देखूँगा = दृश्+लृट्+उ.पु., ए.व., अभिधाय = कहकर, अभि+धा+ऋत्वा+ल्यप्, सान्त्वना वचनानि = सान्त्वना से भरे हुए वचनों को, सपदि = शीघ्र, उपत्यकाम् = पर्वत की तलहटी या घाटी, गण्डशैलन् = पर्वत की गिरी हुई चट्टानें, अधित्यकाम् = पर्वत की उन्नत भूमि, आरुहय = चढ़कर, तपस्तप्तुम् = तप करने के लिए, जगाम = चले गये, गम्+लिट् प्र.पु. ए.व.।

समास: — बद्धकरसम्पुटे = बद्धः करयोः सम्पुटः येन सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), आपद्ग्रस्तोऽपि = आपद्भिः ग्रस्तोऽपि (तत्पुरुष), बाष्पबिन्दुभिराकुल-नयनो = बाष्पाणां बिन्दुभिः आकुले नयने यस्यासौ (बहुव्रीहि), सान्त्वनावचनानि = सान्त्वनानां वचनानि (तत्पुरुष), पर्वतकन्दरे = पर्वतस्य कन्दरे (तत्पुरुष)।

अलंकार: — इस गद्यांश में 'विचार्य्येव, स्मृत्वेव' स्थल पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

ततः शनैः शनैर्निर्यतिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्माक्षिके, मुनिगौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अफजलखानस्य विषये यावत् किमपि प्रष्टुमियेष, तावत्, पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्यान्यमनस्के इव मुनौ गौरबटुरपितेनैव ध्वनिना कर्णयोराकृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य पर्य्यट्य 'कोऽयम्' ? इति च साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, मन्ये मार्जारः कोऽपि'' इति मन्दं-मन्दं गुरवे निवेद्य पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्'' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुररुपन्यस्तुमारेभे।

हिन्दी अनुवाद: — तत्पश्चात् धीरे-धीरे अपरिचित लोगों के चले जाने पर, मक्षियों से रहित (निर्जन) हो जाने पर मुनि ने गौर ब्रह्मचारी को बुलाकर, बीजापुर (विजयपुर) के अधिपति की आज्ञा से वीर शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए सेना सहित प्रस्थान करने वाले अफजल खाँ के विषय में ज्यों ही कुछ पूछने की इच्छा, तभी किसी के पैरों के चलने की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसको सुनकर मुनि के अन्यमनस्क जैसे हो जाने पर गौर ब्रह्मचारी भी उसी ध्वनि के कानों को आकृष्ट किये जाते हुए के समान उठकर चतुराई से चारों ओर देखकर, घूमकर यह कौन है ? इस प्रकार बार-बार बुलाकर, किसी को भी न देखकर, पुनः लौटकर, मैं समझता हूँ कि कोई बिल्ली है, इस प्रकार मन्द-मन्द गुरु जी निवेदन करके पुनः उसी प्रकार बैठ गया और मुनि से 'कोई दूसरा न सुने' ऐसी शंका के साथ थोड़ी देर रुककर पुनः बोलना प्रारम्भ किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण:— निर्यातषु = चले जाने पर, निर्+या+क्त सप्तमी व.व., अपरिचितजनेषु = अपरिचित लोगों के, संवृत्ते = हो जाने पर, सम्+वृत्+क्त सप्तमी ए.व., निर्माक्षिके = मक्खियों का अभाव (निर्जन), आहूय = बुलाकर, विजयपुराधीश्राज्ञया = बीजापुर के राजा की आज्ञा से, योद्धुम् = युद्ध करने के लिए युध्+तुमुन्, इयेष = इच्छा की, इष्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व., प्रष्टुम् = पूछने के लिए प्रच्छ+तुमुन्, पादचार ध्वनिम् = पैरों के चलने की ध्वनि, अश्रौषीत् = सुनी श्रु+लुङ् प्र.पु. ए.व., अवधार्य = जानकर, अव+धृ+णिम्+ल्यप्, अन्यमनस्के इव = अन्यमनस्क जैसे, समुत्थाय = उठकर, सम+उद्+स्था+ल्यप्, निरीक्ष्य = देखकर निर्+ईक्ष्, पर्यट्य = घूम कर, परि+अट् (गतौ)+ल्यप्, साम्रेडम् = बार-बार, व्याहृत्य = कहकर वि+आ+हृ+ल्यप्, अनवलोक्य = न देखकर, अन्+अव्+लोक+ल्यप्, मार्जरः = बिडाल (बिल्ला), तथैव = उसी प्रकार, उपविवेश = बैठ गया, उप+विश+लिट् प्र.पु. ए.व., इतरः = दूसरा, मा श्रौषीत् = न सुन ले श्रु+लुङ् प्र.पु. ए.व., विरम्य = रूककर, वि+रम्+क्त्वा+लयप्,

उपन्यस्तुम् = कहने के लिए, उप+नि+अस्+तुमुन्, आरेभे = आरम्भ किया, आ+रभ्+लिट् लकार प्रथम पुरुष ए.व.।

समास:— निर्मक्षिकं= मक्षिकाणाम् अभावः निर्मक्षिकम् तस्मिन् निर्मक्षिके (अव्ययीभाव समास), विजयपुराधीशाज्ञया = विजयपुरस्य अधीशस्य आज्ञया (तत्पुरुष), ससेनम् = सेनया सहितम् (अव्ययीभाव), पादचारध्वनिम् = पादयोः चारस्य ध्वनिः तम् (तत्पुरुष)।अलंकार: 'अन्यमनस्के इव मुनौ' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

''वत्स गौरसिंह ! अहमत्यन्त तुष्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाकी अफजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्चब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्''। तावत् पुनरश्रूयतमर्मरः पादक्षेपश्च। ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टम्, यत् कुटीरनिकटस्थनिष्टक-कदलीकूटे द्वित्रास्तवोऽतित कम्पन्ते इति।

हिन्दी अनुवाद: — पुत्र गौर सिंह ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, जो तुमने अकेले ही अफजल खाँ के तीन घोड़ों और उसके द्वारा गुलाम बनाये गये पाँच ब्राह्मण-पुत्रों को छुड़ाकर ले आये हो, तुम ऐसे कैसे न होंगे ? राजपुत्र देश के रहने वाले क्षत्रियों का ऐसा ही कुल होता है। तभी पुनः मर्मर (ध्वनि) और पैरों का संचरण सुनाई पड़ा, इसके बाद रुककर मुनि ने स्वयं उठकर उन्नत एक शिलापीठ पर आरूढ़ होकर, चातुर्य के साथ चारों तरफ देखते हुए भी पैरों के चलने की ध्वनि का कोई कारण नहीं देखा। अतः पुनः एकाग्राचित्त से भली-भाँति देखते हुए गौर सिंह ने देखा कि कुटिया के समीप स्थित गृह वाटिका के केलों के समूह में दो या तीन वृक्ष अत्यधिक हिल रहे हैं।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — तुष्यामि = प्रसन्न हूँ, एकाकी = अकेले, त्रीन् = तीन, अश्वान् = घोड़ो को, द्वितीया व.व., ब्राह्मण तनयान् = ब्राह्मण के पुत्रों को, द्वितीय व.व., मोचयित्वा = छुड़ाकर, मुच्+णिच्+कत्वा, अनीतवानासि = ले आये हो, आ+नी+क्तवतु, ईदृशम् = ऐसा, इदम्+दृश+कञ्, कथं = कैसे, भवेः = हो, भू+विधिलिङ् म.पु. ए.व., राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम् = राजपूतदेश में रहने वाले क्षत्रियों का, अश्रूयत = सुना, मर्मरः = मर्मर ध्वनि, पादक्षेपः = पैरों का संचरण, विरम्य = रुककर, वि+रम्+ल्यप्, प्रोच्चम् = उन्नत, शिलापीठ = शिलाखण्ड, आरुह्य = आरूढ़ होकर, आ+रुह्+क्त्वा+ल्यप्, निपुणतया = निपुणता के साथ, पश्यन् = देखता हुआ, अवलोकयामास = देखा, चरणाक्षेपशब्दस्य = चरणों के रखने की ध्वनि, एकतानेन = एकाग्रचित्त से, निरीक्षमाणेन = देखने वाले, निर्+ईक्ष्+शानच् तृतीया ए.व., दृष्टम् = देखा गया, दृश्+क्त, कुटीर निकटस्य = कुटिया के निकट, षष्ठी ए.व., निष्कुट = वह वाटिका, कदली कूटे = केले के समूह में, सप्तमी ए.व., द्वित्रा = तीन-तीन, अतितराम् = अधिकतर, अति+तरप्, कम्पन्ते = हिल रहे हैं।

समास: — ब्राह्मणतनयान् = ब्राह्मणस्य तनयान् (तत्पुरुष), राजपुत्र-देशीयक्षत्रियाणाम् = राजपुत्रदेशी यानाम् क्षत्रियाणाम् (तत्पुरुष), पादक्षेपः = पादयोः क्षेपः (तत्पुरुष), शीलापीठम् = शिलायाः पीठम् (तत्पुरुष), चरणाक्षेपशब्दस्य = चरणयोः आक्षेपः, तस्यशब्दः = तस्य (तत्पुरुष), कुटीर निकटस्थ निष्कुट कदली कूटे = कुटीरस्य निकटे स्थिता ये निष्कुटकाः तेषु कदलीनां कूटे (तत्पुरुष)।

अलंकार: — राजपूत देशीय क्षत्रियों की वीरता से गौर सिंह की वीरता का प्रतिपादन किया गया है। अतः अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीरवलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्तहस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः, कपोलतलविलम्बमानान् चक्षुश्चुम्बिनः, कुटिलकचान् वामकराङ्गु लिभिरपसारयन् मुनिवेषोऽपि किञ्चित् कोपकषायितनयनः, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणो महादेवमाराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररसद्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्चलता-प्रतान-वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भत्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धानं हरित-कञ्चुकं श्याम-वसनानद्ध-कटितट-कर्बुराधोवसनम्काकासनेनोपविष्टम्,रम्भालवाललग्ना-धोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली-किसलयानि मलिनयातम्,नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन कन्यकापहरणपङ्ककलङ्ककलङ्किताननम्, विंशतिवर्षकल्पं यवनयुवकम्। ततः परस्परम् चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य, उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेव संजाताः परस्परमालापाः।

हिन्दी अनुवाद: — ''वही शंका का स्थान है'' ऐसा अंगुली से निर्दिष्टकर कुटीर के पटल प्रान्त में छिपा कर रखी हुई तलवारों में से एक तलवार को खींचकर, खाली हाथ वाले ही मुनि के द्वारा अनुगमन किये जाता हुआ, कपालों तक लटकते हुए नेत्रों का स्पर्श करने वाले घुंघराते केशों को बाये हाथ की अंगुलियों से हटाता हुआ, मुनि के वेश में स्थित होता हुए भी कुछ क्रोध के कारण रक्त नेत्रों वाला, हाथ में कांपती हुई दया करने में कृपण (क्रूर) तलावार को धारण करने वाल, भगवान् शंकर की आराधना करने के लिए इच्छुक तपस्वी का वेश धारण करने वाले अर्जुन के समान, शान्त एवं वीर रस दोनों रसों में नहाये हुये (गौर सिंह) शीघ्र उसके निकट पहुँचा, (और वहाँ), लता-तन्तुओं के विस्तार से घिरे हुए कदली के तीन खम्भों (पेड़ों) के मध्य सिर पर नीले वस्त्र के टुकड़े को बांधने वाले हरे रंग का कंचुक (कुर्त्ता) धारण करने वाले काले वस्त्र से बाँधे हुए कटिभाग वाले, विविध रंगो वाले अधो वस्त्र (लुंगी) को पहने हुए, दोनों घुटनों के बीच में ठुड्डी डालकर बैठने वाले (काकासन), केले के थाल्हे पर स्थित अधोमुख वाली तलवार की मुठिया पर दोनों हाथों का उलटे रखे हुए, लहसुन की दुर्गन्ध से युक्त निःश्वासों के केले के किसलयों को (कोमल पत्तों को) मलिन बनाते हुए, नया उगते हुए, नया उगते हुए मूँछ की रेखा के बहाने से कन्या के अपहरण रूपी कीचड़ के कलंक से कलंकित मुख वाले, लगभग बीस वर्ष की अवस्था वाले यवन-युवक को देखा। तत्पश्चात् आपस में नेत्रों के मिलने पर ''मैंने देख लिया है ऐसा निश्चित करके, उछलकर, म्यान से कृपाण खींचकर लड़ने के लिए इच्छुक वह भी (मुसलमान युवक) सामने खड़ा हो गया। उसके बाद उन दोनों में इस प्रकार परस्पर वार्तालाप हुआ।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — तदेव = वही, संशयस्थानम् = संदेह का स्थान, निर्दिश्य = निर्देश करके, निर्+दिश्+ल्यप्, कुटीरवलीके = कुटीर की छज्जे में (पटल प्रान्त में), गोपयित्वा = छिपाकर, गुप्+णिच्+क्त्वा, स्थापितानाम् = रखी हुई (असीनाम् का विशेषण), षष्ठी व.व., असीनाम् = तलवारों में से (षष्ठी), आकृष्य = खींचकर, आ+कृष+क्त्वा+ल्यप्, रिक्त हस्तेनैव = खाली हाथ ही, पृष्ठतः = पीछे-पीछे, अनुगम्यमानः = अनुगमन किया जाता हुआ, अनु

गम्+णिच्+शानच्, कपोलतलविलम्बमानाम् = कपलों तक लटकने वाले षष्ठी व.व. (कचान् का विशेषण), चक्षुश्चुम्बिनः = नेत्रों का स्पर्श करने वाले (केशों का विशेषण) षष्ठी, व.व., कुटिलकचान् = घुंघराले केशों वाले, षष्ठी व.व., वामकराङ्गुलिभिः = बायें हाथ की अंगुलियों से, तृतीया व.व., अपसारयन् = दूर हटाता हुआ, अप+सृ+णिच्+शत्, किञ्चित कोपकषायितनयनः = कुछ क्रोध से लाल नेत्रों वाला, करकम्पित कृपा कृपण-कृपाणः = हाथ में काँपती हुई निर्दय तलवार को धारण करने वाला, आरिराधयिषुः = आराधना करने के लिए इच्छुक, आ+राधि+सन्+उ, तपस्विवेषोऽर्जुन इव = तपस्वी वेष वाले अर्जुन के समान, सपादि = तुरन्त, तन्निकटे = उसके समीप, समागतवान् = आया, सम्+आ+गम्+क्तवतु, अपश्चत् = देखा, दृश+लङ् प्र.पु.ए.व., लता प्रतान वितान वष्ठित रम्भा स्तम्भ त्रितयस्य = प्रतान = तन्तु, वितान = विस्तार, वेष्टित = घिरे हुए, रम्भा = केला, स्तम्भ = खम्भा (पेड़), त्रितयस्य = तीन, लता तन्तुओं के विस्तार से घिरे हुए तीन केले के वृक्षों के, नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूद्धनिम् = नीले वस्त्र के टुकड़े से बँधे हुए सिर वाले, हरित कञ्चुकम् = हरा कुर्त्ता धारण करने वाले, श्यामवसनान-द्धकटितटकर्बुराधोवसनम् = श्याम = काला, वसन = वस्त्र, आनद्ध = बँधे हुए, आ+नध्+क्त, कटितर = कटिभाग, कर्बुर = विविध रंग वाले, काले वस्त्र से बँधे हुए कटिभाग एवं अनेक रंगों वाले अधोवस्त्र (लुङ्गी) को पहनने वाले, काकासनेनोपविष्टम् = काकासन लगाकर बैठे हुए, रम्भालवाललग्नाधोमुख खड़गत्सरुन्यस्त विपर्यस्त हस्त युगलम् = रम्भा = केला, आलवाल = थाल्हा, लग्न = स्थित, अधोमुख = नीचे मुख वाली, खड्ग = तलवार, त्सरु = मुठिया, न्यस्त = रखे गये, विपर्यस्त = उल्टे, हस्त युगलम् = दोनों हाथों वाले अर्थात् केले के थाल्हे में स्थित अधोमुख वाले कृपाण की मुठिया के ऊपर उल्टे दोनों हाथों को रखने वाले, लशुन = लहसुन, कदली किसलयानि = केले के किसलयों (पत्तों) को, मलिनयन्तम् = मलिन बनाते हुए, नवाङ्किरतश्मश्र श्रेणिच्छलेन = नया उगते हुए मूछों की रेखा के बहाने, श्मश्रु = मूँछ, श्रेणि = रेखा, छलेन = बहाने, कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कलङ्कितानन्म् = कन्यका = कन्या, अपहरण = अपहरण, पङ्क = कीचड़ अर्थात् कन्या के अपहरण रूपी कीचड़ के कलङ्क से कलङ्कित मुख वाले (यवन युवक का विशेषण), विंशतिवर्ष कल्पम् = लगभग बीस वर्ष की आयु वाले, निश्चित्य = निश्चित करके, उत्प्लुत्य = उछलकर 'उत्+प्लुङ्+ल्यप्, युयुत्सुः = युद्ध करने के लिए इच्छुक, युध्+सन्+उ, अवतस्थे = स्थित हो गया, अव+स्था+लिट् (प्र.पु.ए.व.), संजाताः = हुई।

समास: — संशयस्थानम् = संशयस्य स्थानम् (षष्ठी तत्पुरुष), कुटीरवलके = कुटीरस्य वलीके (षष्ठी तत्पुरुष), रिक्तहस्तेन = रिक्तः हस्तः यस्य सः तेन (बहुव्रीहि), कुटिलकचान् = कुटिलाः च ते कचाः तान् (कर्मधारय), कोपकषायितनयनः = कोपेन कषायिते नयने यस्य सः (बहुव्रीहि), करकम्पितकृपाकृष्णकृपाणः = करे कम्पितः कृपाकृपणः कृपाणः यस्य सः (बहुव्रीहि), लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयम् = लतानां प्रतानानाम् वितानेन वेष्टितम् रम्भास्तम्मानां त्रितयम् (तत्पुरुष समास), नीलवस्त्र खण्ड वेष्टित मूर्द्धानम् = नीलं च यत् वस्त्रं कर्मधारय) तेन वेष्टितः मूर्द्धा यस्य सः तम् (बहुव्रीहि), श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम् = श्यामवसनेन आनद्धम् कटितटे कर्बूराधोवसनम् यस्य तम् (बहुव्रीहि), काकासनेन = काकानाम् आसनेन (षष्ठी तत्पुरुष), रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्त विपर्यस्तहस्तयुगलम् = रम्भायाः आलवाले लग्नस्य अधोमुखस्य खड्गस्य त्सरौ न्यस्तं विपर्यस्तम् हस्त युगलम् यस्य सः तम् (बहुव्रीहि),

नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन = नवाङ्कुरितायाः श्मश्रु-श्रेण्याः छलेन (तत्पुरुष), यवनयुवकं = यवनस्य युवकं (तत्पुरुष)।

अलंकार: — ''तपस्विवेशोऽर्जुनइव'' में उपमा अलंकार है। 'करकम्पित कृपा कृपण कृपाणो' में अनुप्रास अलंकार है।काकासन = कौओं का आसन, अर्थात् दोनों घुटनों के मध्य में ठुड्डी को रखकर बैठे जाने वाला आसन।

गौरसिंहः - कुता रे यवनकुलकलङ्क!

यवनयुवकः - आः! वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः? भारतीयकन्दरि-कन्दरेष्वपि वयं विचरामः, श्रृङ्गलाङ्गूलविहीनानां हिन्दुपदव्यवहार्याणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः - (सक्रोधं विहस्य) वयमपि स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः शिवस्य गणाः अत्रैव निवसामः। तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतङ्गायितोऽसि।

यवनयुवकः - अरे रे वाचाल ! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मणतनयां सपदि प्रयच्छथ, तत् कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजङ्गिन्या दष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवर्त्स्यथ।

हिन्दी अनुवादः — गौर सिंह - हे यवन कुल कलंक ! (तुम) कहाँ से आया।

यवन युवक - अरे ! हम भी कहाँ से आये, यह पूछने की बात है। भारत की पर्वत कन्दराओं (गुफाओं) में भी हम विचरण करते हैं, (तथा) सींग और पूँछ से हीन, हिन्दू पद व्यवहार वालों (हिन्दू नामधारी) तुम्हारे जैसे पशुओं की शिकार-क्रीडा से आनन्द लेते हैं।

गौर सिंह - (क्रोध के साथ हंसकर) अपने गोद में आये हुए जीवों के ऊपर
जीवन बिताने वाले शिव के गण यहीं रहते हैं, तो आज का प्रभात शुभ रहा,
स्वयं ही तुम प्रचण्ड दावाग्नि में पतंग के समान आ गये हो।

यवन युवक - अरे रे वाचाल ! कल रात्रि में तुम्हारी कुटिया में रोती हुई जो ब्राह्मण कन्या आई थी (उसे) तुरन्त दे दो, तब कदाचिद् दयावश तुमको जीवित भी छोड़ दूँ, अन्यथा क्षण भर में मेरी तलवार रूपी सर्पिणी के द्वारा डँस लेने पर तुम्हारी कथा मात्र ही बच जायेगी।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — आः = दुःख सूचक, यवन कुलकलङ्क = यवन वंश के कलङ्क, वयमपि = हम भी, प्रष्टव्याः = पूछना चाहिए, प्रच्छ+तव्य, भारतीय कन्दरिकन्दरेषु = भारतीय = भारत के, कन्दरि = पहाड़, कन्दरेषु = गुफाओं में अर्थात् भारत के पहाड़ों की गुफाओं में, श्रृंगलाङ्गूल विहीनानाम् = श्रृंग = सींग, लाङ्गूल = पूँछ, सींग और पूँछ से रहित, आखेट क्रीडया = शिकार के खेल से, रमामहे = आनन्द मनाता हूँ, स्वङ्कागतसत्ववृत्तयः = स्व = अपने, अङ्क = गोद, आगत = आये हुए, सत्व = जीव, वृत्ति = जीवन साधन, अपनी गोद में आये हुए जीवों के ऊपर जीवन यापन करने वाले, दीर्घदाव दहने = प्रचण्ड दावाग्नि में, पतङ्गायितोऽसि = पतङ्ग के सदृश आचरण कर रहे हो। रुदतीम् = रोती हुई, रुद्+शतृ, समायाताम् = आयी हुई, सम्+आ+या+त (स्त्रीलिंग), प्रयच्छथ = दे दो, तत्कदाचित् = तो कदाचित्, त्यजेयम् = छोड़ देना चाहिए, मदसि भुजङ्गिन्या = मेरी तलवार रूपी सर्पिणी द्वारा, दंष्ट्राः = डंसे गये, दंश+क्त, क्षणात् = क्षण भर में, कथावशेषाः = मात्र बची हुई कथा वाले, संवर्त्स्यथ = रहोगे, सम्+वृतु+लृट् लकार, म.पु.ए.व.।

समास:— भारतीयकन्दरिकन्दरेषु = भारतीयाः कन्दरिणः तेषां कन्दरेषु (तत्पुरुष), स्वाङ्कागत सत्ववृत्तयः = स्वाङ्के आगताः सत्वाः एव वृत्तयः येषां ते (बहुव्रीहि), सुप्रभातम् = शोभनं प्रभातम् प्रादि समास।

अलंकार:— 'पतंगायितोऽसि' में उपमा अलंकार, 'मदसिभुजङ्गिन्या' में असि पर भुजङ्गिणी का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्य्याप्तोऽयं गौरसिंहः इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेकं विकटखड्गमाकृष्य त्सरौ गृहीत्वा कन्यकां रक्षन् तदध्युषितकुटीर निकट एव तस्थौ।

गौरसिंहस्तु ''कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवनवधव्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम स्प्रष्टुम् ? तद्यावत्तव कवोष्णशोणित-तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत कूर्दनं वा उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद्विधेहि'' इत्युक्त्वा व्यालीढमर्य्यादया सज्जः समतिष्ठत।

हिन्दी अनुवाद:— इस कल कल ध्वनि को सुनकर श्यामबटु भी कन्या के पास से उठकर और देखकर इस क्षुद्र यवन को मारने के लिए गौर सिंह अकेला ही पर्याप्त है, यह सोचकर कोई दूसरा कन्या का अपहरण करने के लिए न आ जाय, अतः छज्जे से एक भयंकर तलवार खींचकर उसकी मुठिया पकड़कर कन्या की रक्षा करता हुआ कन्या से अधिष्ठित उसी कुटिया के निकट ही स्थित रहा।गौर सिंह ने 'कुटिया के भीतर कन्या है' और यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीते जी उसे (कोई) देख नहीं सकता, छूने को कौन कहे ? इसलिए जब तक कुछ गर्म रक्त की प्यासी यह तलवार नहीं चलती है, तब तक ही जो भी उछल-कूद करना चाहते हो, वह कर लो। यह कहकर युद्ध विधान की मर्यादा से (पैंतरा बनाकर) तैयार हो गया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — कलकलम् = कलकल ध्वनि (कोलाहल), कन्यासमीपात् = कन्या के समीप से, उत्थाय = उठकर उद्+स्था+क्त्वा+ल्यप्, हन्तुम् = मारने के लिए, हन्+तुमुन्, यवन वराकः = क्षुद्र यवन, पर्याप्तः = पर्याप्त हैं, परि+अप+क्त, मास्मगमत् = न पहुँच जाय (स्म के योग में लङ् लकार), अपजिर्हीषु = अपहरण करने के लिए इच्छुक, अप+हृ+सन्+उ, वलीकात् = छज्जे से, विकटखड्गम् = कठोर तलवार, त्सरौ = मुठिया को, गृहीत्वा = पकड़कर, रक्षन् = रक्षा करता हुआ, रक्ष्+शतृ, अध्युषित कुटीर निकट = उस कन्या से अधिष्ठित के समीप (अधि+वस्+क्त), तस्थौ = स्थित हो गया, स्था+लिट् लकार, प्र.पु.ए.व.), कुटीरान्तः = कुटिया के भीतर, यवनवधव्यसनिनि = यवनों के वध का व्यसनी (मयि का विशेषण) सप्तमी ए.व., मयि = मेरे, सप्तमी ए.व., जीवति = जीने पर, न शक्या = सम्भव नहीं है, शक्+यत्+टाप्, द्रष्टुम = देखने के लिए, (दृश+तुमुन), स्प्रष्टुम् = छूने के लिए (स्पर्श करने का प्रश्न ही नहीं), कवोष्णशोणित तृषितः = कवोष्ण = कुछ गर्म, शोणित = रक्त, तृषित = प्यासी अर्थात् कुछ गर्म रक्त की प्यासी, चन्द्रहासः = तलवार, कूर्दनम् = कूदना, उत्फालम् = उछलना, यत् = जो, चिकीर्षसि = करना चाहते हो, कृ+सन्+लट्, म.पु.ए.व., विधेहि = करो, व्यालीढमर्य्यादया = युद्धविधान के विशेष ढंग से (पैंतरे बाजी के साथ), सज्जः = तैयार हो गया, समतिष्ठत् = स्थित हो गया, सम्+स्था+लङ्, प्र.पु.ए.व.।

समास: — कन्या समीपात् = कन्यायाः समीपात् (षष्ठी तत्पुरुष), विकट खड्गम् = विकटः चासौ खड्ग तम् (कर्मधारय), तदध्युषितकुटीर-निकटे = तया अध्युषितस्य कुटीरस्य निकटे (तत्पुरुष), यवनवधव्यसिनि = यवनानां वधः एव व्यसनम् यस्य सः तस्मिन् (बहुव्रीहि), कवोष्णशोणिततृषितः = कवोष्णस्य शोणितस्य तृषितः (तत्पुरुष), व्यालीढमर्य्यादया = व्यालीढस्य मर्यादया (तत्पुरुष)।

विशेष: — इस गद्यांश में गौर सिंह एवं श्याम बटु की वीरता एवं विवेक का चित्रण किया गया है।

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान कृपाणमार्गानङ्गीनकृतवतः, दिनकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारै श्चक्षूंषि मुष्णतः, यवनयुवकहतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलितक्लेदसंजातस्वेदजलजालं विशिथिलकचकुलभालं भग्नभ्रू भयानक भालं शिरश्चिच्छेद।

हिन्दी अनुवाद: — उसके बाद गौर सिंह ने दाँये-बाँये सैकड़ों कृपाण मार्ग को स्वीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये गये चकमकाहट से चंचल कृपाण के चमत्कारों से चकाचौंध नेत्रों वाले उस दुष्ट यवन-युवक के श्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त बिखरे हुए केशों वाले टेढ़ी-मेढ़ी भौंहों से भयंकर ललाट वाले शिर को अपनी तलवार से अचानक इस प्रकार काट दिया, कि किसी ने भी उसका (गौर सिंह का) प्रयत्न नहीं देख पाया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: दक्षिणान् = दायें, वामान् = बायें, परश्शतान् = सैकड़ों, कृपाणमार्गान् = तलवार के मार्गों (तलवार चलाने के तीरकों को), अङ्गीकृतवतः = अङ्गीकार करने वाले (यवन-युवक का विशेषण) षष्ठी ए.व., दिनकर = सूर्य, कर = किरण, चतुर्गुणीकृतं चाकचक्यैः = चौगुनी किये जाते हुए चकमकाहटों से, चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कारैः = चलती हुई तलवार के चमत्कारां से, चन्द्रहास = तलवार, चक्षूंषि = नेत्रों को, मुष्णतः = चुरा लेने वाले अर्थात् चौंधिया देने वाले, मुष्+तासिल् प्रत्यय, हतक = दुष्ट, स्वासिना = अपनी तलवार से, कलितक्लेदसंजातस्वेद जलजालम् = कलित = व्याप्त, कल्+क्त, क्लेद = परिश्रम, संजात = उत्पन्न, स्वेद जल = पसीने की बूँदे, जालम् = समूह अर्थात् परिश्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त, विशिथिल-कच-कुल-मालम् = अस्त व्यस्त केश समूह की पंक्तियों वाले, विशिथिल = बिखरे हुए, कचकुल = केश समूह, मालम् = माला (पंक्ति), भग्नभ्रूभयानकभालम् = टेढ़ी-मेढ़ी भौहों के कारण भयंकर ललाट वाले, अकस्माद = अचानक, शिरः = शिर को, चिच्छेद = काट दिया, छिद्+लिट् लकार प्र.पु. ए.व.।

समास:— कृपाणमार्गान् = कृपाणस्य मार्गन् (तत्पुरुष), दिनकर स्पर्श चतुर्गुणीकृत चाकचक्यैः = दिकरस्य कराणां स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतं चाकचक्यं यैः तैं (बहुव्रीहि), अनुपलक्षितोद्योगः = अनुपलिक्षतः उद्योगः यस्य सः (बहुव्रीहि), कलितक्लेदसं जातस्वेद जलजालम् = कलितेन क्लेदेन संजातस्य स्वेदजलस्य जालः यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि)।

अलंकार: — चञ्चच्चन्द्रहास एवं भग्नभ्रूमभयानक भालम् में अनुप्रास अलंकार।

अथ मुनिरपि दाडिम-कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढरुधिरदिग्धायां ज्वल-दङ्गारचितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमानभारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरं शोणितसङ्घातव्याजेनान्तः स्थितरजोराशिमि-

वोदगिरन्तं कलितसायन्तनघनाऽऽडम्बरविभ्रमं सततताम्रचूडभक्षणपातकेनेव ताम्रीकृत छिन्नकंधरं यवनहतकमवलोक्य सहर्ष ससाधुवादं सरोमोद्गमञ्च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृज्येन मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषा-दिकमन्विष्याऽऽनीतम् पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश।

हिन्दी अनुवाद: — इसके बाद मुनि भी, अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढ़े खून से लिप्त एवं जलते हुए अंगारों से व्याप्त चिता के समान पृथ्वी पर सोते हुए, अलग होती हुई भारत - भूमि का मानो आलिङ्गन करते हुए, निर्जीव होते हुए शरीर के बन्धों को हिलाते हुए, रक्त समूह के बहाने से (शरीर के) भीतर स्थित रजोगुण के समूह को उगलते हुए से, सायङ्ाकलीन मेघाडम्बर के विलास को धारण किये हुए, मानो मुर्गा खाने के पास से लाल हुए और कटी हुई ग्रीवा वाले दुष्ट युवक को देखकर प्रसन्नतापूर्वक साधुवाद देते हुए रोमाचिंत होकर गौरसिंह को आलिङ्गन करके, भौहों के संकेत से आदेश दिये गये सेवक के द्वारा मृतक के कुर्ते, कटिबन्ध तथा पगड़ी आदि को ढूंढकर लाये गये एक पत्र को लेकर गणों के साथ अपने कुटिया में प्रवेश किया।

शब्दार्थ एवं व्याकरण: — अथ = इसके बाद, मुनिरपि = मुनि भी, दाडिम = अनार, कुसुमास्तरण = फूलों का बिछौना, दाडिम कुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढरुधिरदिग्धायाम् = गाढ़े रक्त से लिप्त, दिग्ध = लिप्त, ज्वलदङ्गारचितायाम् = जलते हुए अङ्गारों से व्याप्त, ज्वलत् = जलते हुए, चितायाम् = व्याप्त, चितायाम् = चिता में, सप्तमी ए.व., शयानम् = सोते हुए शीङ्+शानच् प्रत्यय, वियुज्यमानभारतभुवम् = अलग होती हुई भारत भूमि को, वि+युज्+शनच्, आलिङ्गन्तम् = आलिङ्गन करते हुए (यवन युवक का विशेषण) निजीर्वीभवदङ्गबन्ध चालनपरम् = निर्जीव होते हुए अंग बन्धों को हिलाते हुए, अङ्गबन्ध = अंगो के जोड़ (गांठें), शोणितसंघातव्याजेन = रक्त समूह के बहाने से, अन्तःस्थित रजोराशिम् = हृदय में स्थित रजोगुण-समूह को, उद्गिरन्तम् = गिराते हुए (उगलते हुए) उद्+गिर्+शतृ, कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रम् = सायंकालीन मेघाडम्बर के विलास से व्याप्त, कलित = व्याप्त, सायन्तन = सायंकाल, विभ्रम = विलास, ताम्रचूडभक्षणपातकेन = मुर्गा खाने के पाप से, ताम्रचूड = मुर्गा, ताम्रीकृत = लाल हुये, छिन्नकन्धरम् = कटी हुई ग्रीवा वाले, ससाधुवादम् = साधुवाद के साथ (प्रशंसा करते हुए), सरोमोद्गमञ्च = रोमाञ्च के साथ, आश्लिष्य = आलिङ्गन करके, आ+श्लिष्+ल्यप्, भ्रूभङ्गमात्राज्ञप्तेन = भौंहों के संकेत मात्र से आदेश दिये गये, भ्रु = भौंह, भङ्ग = भङ्गिमा, आज्ञप्तेन = आदिष्ट (आदेश दिये गये), मृतक कञ्चुक कटिबन्धांष्णीषादिकम् = मृतक (यवन युवक) के कुर्ते, कटिबन्ध, पगड़ी आदि को, कञ्चुक = कुर्ता, उष्णीष = पगड़ी, अन्विष्य = ढूंढकर, आदाय = लेकर, सगणः = गणों के साथ, स्वकुटीरम् = अपनी कुटी में, प्रविवेश = प्रवेश किया।

समास: — दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = दाडिमस्य कुसुमानाम् आस्तरेण आच्छन्नायाम् (तत्पुरुष), ज्वलदङ्गारचितायाम् = ज्वलाः अङ्गारैः चितायाम् (तत्पुरुष), गाढरुधिरदिग्धायाम् = गाढेन रुधिरेन दिग्धायाम् (तत्पुरुष), शोणितसंघातव्याजेन = शोणितस्य संघातस्य व्याजेन (तत्पुरुष), कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रयम् = कलितः, सायन्तनस्य घनाडम्बरस्य विभ्रमः येन सः तम् (बहुव्रीहि), छिन्नकन्धरम् = छिन्नं कन्धरं यस्य सः तम् (बहुव्रीहि)।

अलंकार:— 'ज्वलदङ्गार-चितायां चितायामिव' में यमक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है। 'वियुज्यमान-भारतभुवमालिङ्गन्तमिव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

।। इति प्रथमो निश्वास: ।।

अभ्यास प्रश्न -1

1-प्रश्न- पुत्र गौर सिंह ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, यह वाक्य किसने कहॉ?

2-प्रश्न-क्षुद्र यवन को किसने मारा?

3-प्रश्न- दुष्ट यवन को गौर सिंह ने किससे काट दिया?

4-प्रश्न- बीस वर्ष की अवस्था वाले यवन-युवक को किसने देखा?

5-प्रश्न- यवन-युवक की अवस्था कितनी वर्ष थी?

4.4 सारांश

इस इकाई में गौर सिंह की वीरता का वर्णन करते हुए उसके बाद गौर सिंह ने दाँये-बाँये सैकड़ों कृपाण मार्ग को स्वीकार करने वाले, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चौगुनी किये गये चकमकाहट से चंचल कृपाण के चमत्कारों से चकाचौंध नेत्रों वाले उस दुष्ट यवन-युवक के श्रम के कारण उत्पन्न स्वेद बिन्दुओं से व्याप्त बिखरे हुए केशों वाले टेढ़ी-मेढ़ी भौंहों से भयंकर ललाट वाले शिर को अपनी तलवार से अचानक इस प्रकार काट दिया, कि किसी ने भी उसका (गौर सिंह का) प्रयत्न नहीं देख पाया। इन सबका वर्णन इस इकाई में किया गया है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
अथ	इसके बाद
मुनिरपि	मुनि भी
दाडिम	अनार
कुसुमास्तरण	फूलों का बिछौना
दिग्ध	लिप्त
ज्वलत्	जलते हुए
चितायाम्	व्याप्त
चितायाम्	चिता में
शयानम्	सोते हुए

4. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- शिवाजी ने 2- गौर सिंह ने 3- तलवार से 4- गौर सिंह 5- बीस वर्ष

4.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत,भारती वाराणसी

2-संस्कृत साहित्य का इतिहास बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन कस्तूरवानगर

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत,भारती वाराणसी

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.शिवाजी के विषय में परिचय दीजिये।

इकाई. 5 शिवराजविजयम् : द्वितीय नि:श्वास रात्रिर्गमिष्यंति ...से... यवनयुवकान तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 रात्रिर्गमिष्यति ...से... यवनयुवकान तक (मूल, अर्थ, व्याख्या)
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित खण्ड तीन की पंचम इकाई है। इस इकाई में आप द्वारपाल एवं सन्यासी के वार्ता प्रसंग को पडेंगे। तथा गौरसिंह कैसा था। गौरसिंह सन्यासी के वेश धारण कर साधुवेश में शिववीर से मिलने का वर्णन। अफजल खाँ के दमन विषयक वार्ता का वर्णन तथा गोपीनाथ विषयक वार्ता को इस इकाई के माध्यम से अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- निर्देशात्मक मंगलाचरण के माध्यम से विषय से परिचित हो सकेंगे।
- अफजल खाँ के विषय में अध्ययन करेंगे।
- द्वारपाल के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह के सन्यासी वेश विषयक वार्ता का अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह का शिववीर से मिलन वर्णन के वारे में जान सकेंगे।
- स्वदेश प्रेम को स्वाभाविक बताया गया है। इस विषय में अध्ययन करेंगे।
- यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से प्राप्त पत्र के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गोपीनाथ नामक पण्डित के विषय में अध्ययन करेगें।
- गौरसिंह ने यवन शिविरमण्डल में प्रवेश किया इसके विषय में अध्ययन करेगें।

।। अथ द्वितीयो निश्वासः ।।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त! हन्त!! नलिनीं गज उज्जहार।। (स्फुटकम्)

हिन्दी अनुवादः— "रात्रि जायगी, सवेरा होगा, सूर्य उदित होगा और कमल खिलेगा" कमल कलिका के अन्दर बन्द हुआ भ्रमर इस प्रकार सोच ही रहा था-दुःख है कि उसी समय कमल को हाथी ने उखाड़ दिया।

हिन्दी व्याख्याः— उदेष्यति = उचित होगा। पङ्कजश्रीः = कमल की शोभा, पङ्कात् जातः पङ्कजः तस्य श्रीः, 'पङ्कज' शब्द योगरूढ़ शब्द है। इत्थम् = इस प्रकार। द्विरेफे = भ्रमर के, कुछ आचार्यों के अनुसार 'द्विरेफ' पद लाक्षणिक है। 'द्वौ रेफौ यस्मिन्निति द्विरेफः-अर्थात् दो 'रकार' वाले पद को द्विरेफ कते हैं-इस प्रकार द्विरेफ से भ्रमर का बोध होता है और भ्रमर से 'भौरा' का अर्थबोध होता है। कुछ आचार्य द्विरेफ को योगरूढ़ पद मानते हैं और यह सीधे ही भ्रमर का अर्थबोध कराता है, जैसा कि कोश का निर्देश है-"द्विरेफ पुष्प लिङ्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः"। उज्जहार = उखाड़ दिया, 'उत्+हृ+लिट्(तिप्)।

टिप्पणीः— प्रस्तुत पद स्फुट है। इसके भाव में द्वितीय निश्वास की कथा प्रतिबिम्बित होती है। अतएव व्यास जी ने इसको यहाँ पर उद्धृत किया है। इस पद को वस्तु निर्देशात्मक मंगलपरक भी माना जा सकता है-'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये, ग्रन्थान्ते च मंगलमाचरणीयम्' इस सिद्धान्त के अनुसार।

इतस्तु स्वतन्त्र-यवनकुल-भृज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यगरस्य समीपे एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाः, निर्झरवारिधारा-पूरपूरित-प्रबल-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्तप्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्यपयोनिधि चुम्बन-चुञ्चचुरायाः, रिङ्गत-तरङ्ग-भङ्गोद्-भूतावर्त्त-शत-भीमायाः, भीमायाः नद्याः, अनवरत-निपतद्-बकुल-कुल-कु-सुमकदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धराभिः कटूकुर्वन्; हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीनवर्गः, - पटकुटीरकूट-विहित-शारदाम्भोधर-विडम्बनः, निरपराध-भारताऽभिजन जनपीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमान-नीलध्वजै-रुपलक्षितः, विजयपुरेश्वरस्यान्यतमः सेनानीः अपजलखानः प्रतापदुर्गादविदूर एव शिववीरेण सहाऽऽहवद्यूतेन चिक्रीडिषुः ससेनस्तिष्ठति स्म।

हिन्दी अनुवादः— इधर तो यवनकुल से शासित विजयपुर नरेश के द्वारा प्रेषित, पूना नगर के समीप ही बड़े-बड़े पर्वतखण्डों को प्रक्षालित करने वाली, झरनों की जलधाराओं से पूर्ण प्रबल-प्रवाह वाली, पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती पर्वत श्रेणियों की गुफाओं के मध्य से निकली हुई भी पूर्वी समुद्र को चूमने के लिये उतावली (ऊँची-ऊँची) उठने वाली लहरों के भङ्ग से (उत्पन्न) सैकड़ों भँवरों (आवर्ती) से भीषण 'भीमा' (नामक) नदी के - अनवरत गिरने वाले बकुलों के पुष्प समूह से सुगन्धित जल को भी जलक्रीड़ा करने वाले मद से मतवाले हाथियों की मद-धारा से कटु बनाता हुआ; घोड़ों के हिनहिनाहट की ध्वनि की प्रतिध्वनि से दो कोस के मध्य के यात्रियों को बहरा कर देने वाला, वस्त्रकुटीर समूह (कपड़े के तम्बू) से शरद के बादलों को विडम्बित करने वाला, निरपराध भारतीय जनता के उत्पीड़न से उत्पन्न पाप समूह के समान फहराने वाली नीली पताकाओं से पहचाना जाने वाला, बीजापुर नरेश का अन्यतम सेनानी अफजल खाँ शिववीर के साथ युद्धरूपी जुआ खेलने की इच्छा से प्रताप दुर्ग के निकट ही सेना सहित रुका हुआ था।

हिन्दी व्याख्याः— स्वतन्त्रयवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः =स्वेच्छाचारी यवनकुल के द्वारा शासित विजयपुर नरेश के द्वारा प्रेषित (अफजलखाँ का विशेषण)। स्वतन्त्रम् यद् यवनकुलम् तेन भुज्यमानस्य विजयपुरस्य अधीशेन प्रेषितः (तत्पु0), भुज्यमान = 'भुज्+शानच्' = भोग किया जाता हुआ। पुण्यनगरस्य = पूनानगर के। प्रक्षालितमण्डशैलमण्डलायाः = पर्वत से टूटकर गिरे हुए शिलाखण्डों को प्रक्षालित करने वाली (नदी का विशेषण), प्रक्षालित = धोये गये, गण्डशैल पर्वत से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर। 'प्रक्षालितानि गण्डशैलानाम् मण्डलानि यया तस्याः (बहुब्रीहि)'। निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहायाः = झरनों की जलधारा समू से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली (नदी का विशेषण)। निर्झराणाम् वारिधारापूरैः पूरितः प्रबलः प्रवाहः यस्यास्तयाः (बहुब्रीहि)। पश्चिमपारावारप्रान्तगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गतायाः = पश्चिमी समुद्र के किनारे की पर्वत श्रेणियों की गुफाओं के मध्य से निकलने वाली (नदी का विशेषण), पारावार = समुद्र, प्रान्त = तट पर, ग्राम = समूह, गुहा = गुफा, गर्भ = मध्य, निर्गता =निकली हुई। पश्चिमश्चासौ पारावारः तस्य प्रान्ते गिरीणां ग्रामस्तस्य गुहाः तासा गर्भतः निर्गतायाः (तत्पु0)। प्राच्यपयोनिधिचुम्बनचञ्चचुरायाः = पूर्वी समुद्र के चुम्बन के लिये उतावली। 'प्राच्यः पयोनिधिस्तस्य चुम्बने चञ्चचुरायाः' (तत्पु0); प्राच्यः = प्राच्यां भवः प्राच्यः (पूर्व में स्थित), पयोनिधि = समुद्र, पयसाम् निधिः पयोनिधिः। चञ्चुरा = चञ्चल (उतावली)। रिङ्त्सरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशतभीमायाः = चञ्चल तरङ्गों के भङ्ग से उत्पन्न सैकड़ों आवर्तो

(भँवरों) के कारण भयानक (नदी का विशेषण), रिङ्गत् = सञ्चरणशील, तरङ्ग = लहर, भङ्ग = टूटने से, उद्भूत = उत्पन्न, आवर्त = भँवर, शत = सैकड़ों, भीमा = भयानक। 'रिङ्गताम् तरङ्गणाम् भङ्गेः उद्भूताः आवर्तानां शतास्तैः भीमायाः' (तत्पु0)। 'अनवरत....सुरभीकृतम्' = निरन्तर गिरने वाले बकुल पुष्प समूह से सुगन्धित, अनवरतं निपतताम् बकुल कुलस्य कुसुमानां कदम्बेन सुरभीकृतम् (तत्पु0)। वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः = जलक्रीड़ा (स्नान) करने वाले मतवाले हाथियों की मदधारा से, वगाहमान = जलक्रीड़ा करने वाले, 'अव+गाह् (विलोडने)+शानच्' 'अव' के 'अ' का विकल्प से लोप हो जाता है - ''वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः''। मतङ्ग = हाथी। मद = हाथी से बहने वाला जल। ''बगाहमानानाम् मत्तमदङ्गजानां मदधाराभिः (तत्पु0)। कटूकुर्वन् = कटु बनाता हुआ। ''हयहेषा.....वर्गः = घोड़ों की हिनहिनाहट की ध्वनि की प्रतिध्वनि से बहरा कर दिया गया है दो कोस के मध्य के यात्रियों का वर्ग जिसके द्वारा (अफजलखाँ का विशेषण), हेषा = घोड़े की हिनहिनाहट (ध्वनि), प्रतिध्वनि = ध्वनि के कारण उठने वाली ध्वनि, बधिरीकृत = बहराकर दिया गया है, 'बधिर + च्वि + कृ + क्त', गव्यूति = दो कोस, 'गो + यूति' (निपातन से), मध्य =मध्य के, मध्येगच्छतीति मध्यगः, अध्यनीन = पथिक, वर्ग = समूह। हयानां हेषाध्वनिः तेषां प्रतिध्वनिभिः बधिरीकृतः गव्यूतिमध्यमः अध्वनीनानां वर्गः येन सः (बहुब्रीहि)। 'पटकुटीरीविडम्बनः' = वस्त्र की कुटी (तम्बू) के समूह से शरद के मेघों को विडम्बित कर दिया है जिसने (अफजलखाँ का विशेषण), पुटकुटीर = तम्बू या खेमा, कूट = समूह, शारद = शरत्कालीन, अम्भोधर = बादल, विडम्बना = उपहास। पटकुटीराणां कूटैः विहिता शारदानां अम्भोधराणां विडम्बना येन सः (बहुब्रीहि)। 'निरपराध....पटलैः' = निर्दोष भारत के अभिजन (निवासी) लोगों के उत्पीड़न के पाप समूह के। निरपराधाः = भारतताभिजानाः ये जनास्तेषां पीडनेन पातकपटलैः (तत्पु0)। समुद्ध्यमाननीलध्वजैः = फहराने वाली नीली पताकाओं से। समुद्धूयमानाः नीलध्वजाः तैः (कर्मधारय)। समुद्धूयमान = 'सम् + उत् + धूञ् + शानच्'। उपलक्षितः = प्रतीत होने वाला। अन्यतमः = अनेकों में एक। सेनानी = सेनापति, 'सेना + आनुक् + ङीष् (स्त्री)'। अविदूरे = समीप में। आहवद्यूतेन = युद्धरूपी जुआ से। 'आहवः एव द्यूतस्तेन', आहव = युद्ध। चिक्रीडिषुः = खेलने की इच्छा वालार, 'क्रीड् + सन् + उ'। तिष्ठति स्म = स्थित था, 'स्म' के योग में 'लिट्' के स्थान पर 'लट्' का प्रयोग होता है ''लट् स्मे''।

टिप्पणी:— (1) ''निरपराध.....नीलध्वजैः''-निरपराध भारतीयों के उत्पीडन से उत्पन्न पाप राशि की सम्भावना अफजलखाँ के नीलध्वज में की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(2) अनुप्रास अलङ्कार की समायोजना से वर्णन में सजीवता है।

(3) भीमा नदी का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है।

(4) पश्चिमी समुद्र के किनारे के पर्वतों से निकली नदी पूर्व के समुद्र के चुम्बन के लिये उतावली' इससे पाश्चात्य रमणियों का प्राच्य सम्पर्क रूप आधुनिक व्यवहार परिलक्षित होता है।

(5) हयहेषाध्वनिप्रतिध्वनि' में यद्यपि 'हेषा' घोड़े के शब्द को कहते हैं तथापि उस पूर्व 'हय' शब्द का निर्देश स्पष्टार्थ साहित्यिक है, यथा - 'संकीचकैर्मारुनपूर्णरन्ध्रैः'' (रघुवंश)।

अथ जगतः प्रभातजालमाकृष्य, कमलानि सम्मुद्रi, कोकान् सशोकी कृत्य, सकल-चराचर-चक्षुःसञ्चार-शक्ति शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निजमण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी-सेवनेनेव माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्त इव

सुषुप्सुः, म्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःखाऽऽक्रान्त-वसुमतीवेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस -दर्शन-सञ्जातनिर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः, धर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासनमिव विधित्सुः, "नास्ति कोऽपि मत्कुले; यः सकण्ठग्रहं धर्म-ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञियादस्माद् भारतगर्भान्निस्सारयेत्" इति चिन्ताऽऽक्रान्त इव कन्दरि-कन्दरेषु प्रविविशुर्भगवान्, भास्वान्, क्रमशः क्रूरकरानपहाय, दृश्य-परिपूर्ण-मण्डलः संवृत्य, श्वेतीयभूय, पीतीभूय, रक्तीभूय च गगनधरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाऽण्डाकृतिमङ्गीकृत्य, कलि-कौतुक- कवलीकृत-सदाचार-प्रचारस्य पातक-पुञ्-पिञ्जरितधर्मस्य च यवन-गण-ग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुषामगोचर एव संजातः।

हिन्दी अनुवादः— इसके बाद जगत् के प्रकाश समूह को खींच करके, कमलों को सम्पुटित करके, चक्रवाकों को शोकमग्न करके, सम्पूर्ण जड़-चेतन के नेत्रों की सञ्चार शक्ति को शिथिल करके, कुण्डल के समान अपने मण्डल से पश्चिम दिशा को विभूषित करते हुए, मानो वारुणी (मन्दिरा तथा पश्चिम दिशा) के सेवन से मंजीठी की लालिमा से लाल हुए, मानो निरन्तर भ्रमण से श्रान्त होकर सोने को इच्छुक, मानो म्लेच्छों के दुराचार के दुःख से आक्रान्त पृथ्वी की वेदना को समुद्रशायी (भगवान्) से निवेदन करने के इच्छुक, मानो वैदिक धर्म के ध्वंस को देखकर निर्वेद (वैराग्य) भाव को प्राप्त होकर दुर्गम पर्वतों में प्रवेश करके तपस्या करने के इच्छुक, मानो धूप से संतप्त हुए समुद्र-जल में स्नान करने के इच्छुक, "मेरे कुल में ऐसा कोई नहीं है, जो धर्मध्वंसी इन दुष्ट यवनों को यज्ञ के योग्य इस भारत भूमि से गला पकड़कर बाहर निकाल दे"। इस चिन्ता से व्याकुल हुए से पर्वत की गुफाओं में प्रवेश करने के इच्छुक, भगवान् सूर्य क्रमशः कठोर किरणों को छोड़कर, अपने सम्पूर्ण मण्डल को दृश्य बनाकर, (क्रमशः) सफेद, पीला और फिर लाल होकर, आकाश और पृथिवी के द्वारा दोनों ओर से आक्रान्त हुए से अण्डाकार बनकर, कलियुक के प्रभाव से विनष्ट सदाचार वाले पाप पुञ्ज से पीले पड़े हुए धर्म वाले तथा यवनों से ग्रस्त भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए, संसार को घोर अन्धकार में गिराते हुए नेत्रों से अदृश्य हो गये।

हिन्दी व्याख्याः— प्रभाजालम् = दीप्ति समूह को। आकृष्य = खींचकर। सम्मुद्रि = सम्पुटित करके, 'सम + मुद् + ल्यप्'। कोकान् = चक्रवाकों को। सशोकीकृत्य = शोकमग्न करके, स (सह) + शोक + च्वि + कृ + ल्यप्'। सकलचराचरचक्षुःसञ्चारशक्तिम् = सम्पूर्ण जड़ चेतन के नेत्रों की दर्शन शक्ति को, 'सकलस्य चराचरस्य चक्षुषाम् सञ्चारस्य शक्तिम् (तत्पु0)। शिथिलीकृत्य = शिथिल करके, 'शिथिल + च्वि + कृ + ल्यप्'। निजमण्डलेन = अपने मण्डल से। पश्चिमाम् आशाम् = पश्चिम दिशा को, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशश्च हरितश्च ताः" (अमरकोष)। भूषयन् = विभूषित करता हुआ, 'भूष् (अलंकरणे) + णिच् + शतृ (प्रथमा ए0व0)'। वारुणीसेवनेन = पश्चिम दिशा में जाने से अथवा मदिरा के सेवन से, वारुणी = पश्चिम दिशा तथा मदिरा - 'सुरा प्रत्यक् च वारुणी' (अमरकोष)। इसका आशय यह है कि सूर्य पश्चिम दिशा में जाने से वैसे ही रक्ताभ हो रहा है मानो वह मदिरा (वारुणी) का सेवन किये हो। इव = उत्प्रेक्षावाचक। माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः = 'मंजीठ' की लाली से लाल। 'मंजिष्ठ' एक प्रकार के वृक्ष का द्रव है, जो लाल होता है। लोक में इसे 'मंजीठ' कहते हैं। मञ्जिष्ठायाः अयं माञ्जिष्ठः-'मञ्जिष्ठ + अण् ? 'माञ्जिष्ठश्चासौ मञ्जिमा तेन रञ्जितः (तत्पु0)। मञ्जिम = लालिमा, रञ्जित = रक्त। अनवरतभ्रमणपरिश्रमश्रान्त इव =

निरन्तर परिभ्रमण के परिश्रम से परिश्रान्त हुए से। 'अनवरतं यत् भ्रमणं तस्य परिश्रमस्तेन श्रान्तः, (तत्पु0)। सुषुप्सु = सोने का इच्छुक। म्लेच्छगणदुराचारदुःखाकान्तवसुमतीवेदनाम् = यवनों के दुराचारों से आक्रान्त पृथिवी की वेदना को। म्लेच्दगण = यवनों, दुराचार = अत्याचार, दुःखाक्रान्त = कष्ट से पीड़ित, वसुमती = पृथिवी, वेदना = पीड़ा। "म्लेच्छगणस्य दुराचारैः दुःखाक्रान्तायाः वसुमत्या वेदनाम् (तत्पु0)"। इव = मानो। समुद्रशायिनि = समुद्र में शयन करने वाले, समुद्र शेते इति समुद्रशायौ तस्मिन्-समुद्र + शीङ् + इन् (सप्तमी, ए0व0)। निविवेदयिषुः = निवेदन करने का इच्छुक, 'नि + वि + विद् + सन् + उ (प्रथमा, ए0व0)। वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेदः = वैदिक धर्म के विनाश के दर्शन से उत्पन्न वैराग्य वाला। निर्वेद = वैराग्य। "वैदिकधर्मस्य ध्वंसस्तस्य दर्शनेन सञ्जातः निर्वेद यस्य सः" (बहुब्रीहि)। इव = उत्प्रेक्षावाचक। गिरिगहनेषु = दुर्गम पर्वतों में। तपश्चिकीर्षुः = तपस्या करने का इच्छुक। चिकीर्षुः = करने का इच्छुक - "कृ + सन् + उ (प्रथमा ए0व0)। धर्मतापतप्तः = धूप की गर्मी से संतप्त। सिस्नासुः = स्नान करने की इच्छा वाला, 'स्ना + सन् + उ (प्रथमा ए0व0)'। अवगत्य = जानकर, 'अव + गम् + ल्यप्'। विधित्सु = करने का इच्छुक, 'वि + धा + सन् + उ (प्रथमा)'। मत्कुले = मेरे कुल में। सकण्ठग्रहम् = कण्ठग्रहणपूर्वक (अर्ध चन्द्र देकर), "कण्ठस्य ग्रहस्तेन सहितमिति, (अव्य0)"। धर्मध्वंसिनः = धर्म का विनाश करने वाले। यवनहतकान् = दुष्ट यवनों को। यज्ञियात् = यज्ञ करने के योग्य, 'यज्ञ + घ (इय)' "यज्ञतर्वग्भ्यां धखौ" सूत्र से 'घ' प्रत्यय तथा 'घ' को 'इय' हुआ है। भारतगर्भात् = भारत के गर्भ (भूमि) से। निस्सारयेत् = निकाल दे - 'निस् + सृ + णिच् + लिङ् (प्र0पु0, एकवचन)। कन्दरिकन्दरेषु = पर्वतों की गुफाओं में। कन्दरिन् = पर्वत, 'कन्दरिणाम् = कन्दरेषु' (तत्पु0)। प्रविविक्षुः = प्रवेश करने की इच्छा वाला, 'प्र + विश् + उ (प्रथमा)'। भास्वान् = सूर्य। क्रूरकरान् = कठोर किरणों को। अपहाय = छोड़कर। दृश्यपरिपूर्णमण्डलः =देखने योग्य है सम्पूर्ण बिम्ब जिसका, 'दृश्यम् सम्पूर्णम् मण्डलम् यस्य सः (बहुब्रीहि)। श्वेतीभूय = सफेद होकर। पीतीभूय = पीला होकर। रक्तिभूय = लाल होकर। उक्त तीनों पदों में 'च्वि' प्रत्यय तथा 'ल्यप्' हुआ। आक्रम्यमाण इव = आक्रान्त हुए के समान, 'आ + क्रम् + य + शानच् (प्रथमा)। अण्डाकृतिम् = गोलाकार। अङ्गीकृत्य = अङ्गीकार करके। कलिकौतुककवली कृतसदाचारप्रचारस्य = कलियुग के प्रभाव से नष्ट कर दिया गया है सदाचार का प्रचार जिसके। कौतुक = कौतूहल, कवलीकृ = विनष्ट। "कलिकौतुकेन कवलीकृतस्य सदाचारस्य प्रचारः यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि)। पातकपुञ्जपिञ्जरितधर्मस्य = पाप राशि से पीले किये गये धर्म वाले। पातक = पाप, पुञ्ज = समूह, पिञ्चरित = पीला किया गया। 'पातकानां पुञ्जः तेन पिञ्जरितः धर्मः यस्य सः तस्य (बहुब्रीहि)'। यवनगणग्रस्तस्य = यवनों से ग्रस्त, यवनानां गणस्तेन ग्रस्तस्तस्य (तत्पु0)। स्मारयन् = स्मरण करता हुआ, 'स्मारि + शतृ'। पातयन् = गिराता हुआ, 'पत् + णिच् + शतृ (प्रथमा)। अगोचरः = अदृश्य, चरतीति चरः, गवाम् (इन्द्रियाणाम्) चरः गोचरः, न गोचर इति अगोचरः 'नञ् + गो + चर् + अच् (प्रथमा)'। सञ्जातः = हो गया, 'सम् + जनि + क्त (प्रथमा एकवचन)।

टिप्पणी:— (1) सम्पूर्ण खण्ड अनुप्रास के चमत्कार से चमत्कृत है।

(2) कवि की प्रतिभ आकलन कल्पना से होती है। उत्प्रेक्षा अलंकार की मुख्य कल्पना होती है। "कुण्डेलेनेव..... प्रविविक्षु" में मालोत्प्रेक्षा से काव्य अनुप्राणित होकर अत्यन्त रोचक एवं

मनोहारी है। 'वारुणी सेवनेनेव' में श्लेषानुप्राणित उत्प्रेक्षा है। 'क्रमशः क्रूरकरान् ..... अङ्गीकृत्य' में सूर्य का स्वाभाविक चित्रण होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

(3) 'सन्नन्त' शब्दों का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है।

(4) पीड़ित पृथ्वी की वेदना उसके पति विष्णु से कहने की कल्पना में 'पत्नी के दुःख को पति से कहने का' भाव व्यंजित होता है।

(5) समास एवं व्यास दोनों प्रकार के वर्णन में व्यास जी पटु दिखाई पड़ते हैं।

(6) सूर्यास्त का वर्णन अत्यन्त मनोहारी ढंग से किया गया है।

ततः संवृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु भुशुण्डीं स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागतञ्च विदधानः, प्रतापदुर्ग-दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेपध्यवनिमिवाऽश्रौषीत्। ततः स्थिरीभूय पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽवतमसवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन् गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्-"कः कोऽत्र भोः ?" इति।अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरश्रावीति भूयः साक्षेपमवोचत्-"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति बधिरः ?"

हिन्दी अनुवादः— तदनन्तर, कुछ अंधेरा हो जाने पर तथा मानो धूप से होने वाले धुँआ से दिशाओं के व्याप्त हो जाने पर, बन्दूक कन्धे पर रखकर इधर उधर टहलता हुआ, भली-भाँति (चारों ओर) देखता हुआ प्रताप दुर्ग के द्वारपाल ने किसी के पैरों की ध्वनि सुनी। तब रुककर, सामने देखता हुआ, दीपक का प्रकाश होने पर भी हल्का अँधेरा होने के कारण किसी आने वाले को न देखकर (वह) गंभीर स्वर में बोला "अरे! कौन है यहाँ ? कौन है यहाँ ?" एक क्षण के बाद पुनः वही पाद ध्वनि सुनाई पड़ी। तब क्रोधपूर्वक बोला - "यह कौन बहरा है, जो मुझे उत्तर न देता हुआ मरने की इच्छा में चला आ रहा है।"

हिन्दी व्याख्या: — संवृत्ते = हो जाने पर, 'सम् + वृत् + क्त (सप्तमी)'। किञ्चिदन्धकारे = कुछ अन्धकार के, 'यस्यभावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति। हरित्सु = दिशाओं के, "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्चताः" (अमरकोष), उक्त नियम से सप्तमी। भुशुण्डीम् = बन्दूक को। निधाय = रखकर। निपुणम् = अच्छी तरह से। निरीक्षमाणः = देखता हुआ, 'निर् + ईक्ष + शानच्' (प्रथमा)। आगतप्रत्यागञ्च = गमनागमन (गस्त लगाना)। विदधान = करता हुआ 'वि + दध् + शानच्'। प्रतापदुर्गदौवारिकः = प्रताप नामक किले का द्वारपाल, 'प्रताप दुर्गस्य दौवारिकः (तत्पु0)"। पादक्षेपञ्चनिम् = पैरों की आहट। अश्रौषीत् = सुना, 'श्रु + लुङ् (तिप्)'। स्थिरीभूय = रुक कर, स्थिर से 'च्वि' प्रत्यय। पुरतः = सामने। अवतमसवशात = धुँधलेपन के कारण 'अवतमसस्य वशात्' (तत्पु0)। अवतमास् से समासान्त 'अच्' प्रत्यय हुआ है- 'अवसमन्धेभ्यस्तमसः'। क्षणानन्तरम् = थोड़ी देर बाद। अश्रावि = सुनाई पड़ी। साक्षेपम् = क्रोधपूर्वक। अवोचत् = बोला। अनुत्तरयन् = उत्तर न देता हुआ, 'अन् + उत् + तृ + शतृ (प्रथमा)'। मुमूर्षुः = मरने की इच्छा वाला, 'मृ + सन् + उ (प्रथमा ए0व0)। समायाति = आ रहा है, 'सम् + आ + या + लट् (तिप्)'। बधिरः = बहरा।

टिप्पणी : — (1) 'धूपधूमेनेव' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) द्वारपाल को अति सचेष्ट दिखाया गया है।

ततो "दौवारिक ! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि ?" इति वक्तारमपश्यतैवाऽऽकर्णि मन्द्रस्वरमेदुरा वाणी। अथ "तत्किं नाज्ञायि अद्यापि भवता

प्रभुवर्य्याणामादेशो यद् दौवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिः पृष्टोऽपि प्रत्युत्तरमददद् हन्तव्य इति" इत्येवं भाषमाणेन द्वाःस्थेन "क्षम्यतामेष आगच्छामि, आगत्य च निखिलं निवेदयामि" इति कथयन् द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षुबटुनाऽनुगम्यमानः, कोपि काषायवासाः, धृत-तुम्बी-पात्रः, भस्मच्छुरित-ललाटः, रुद्राक्ष-मालिकासनाथित-कण्ठः, भव्यमूर्तिः सन्यासी दृष्टः। ततस्तयोरेवमभूदालापः-

हिन्दी अनुवादः — तब, "द्वारपाल! शान्त हो, क्यों व्यर्थ में मरने वाला और बहरा कहते हो", इस प्रकार (द्वारपाल) बोलने वाले को बिना देखे ही गम्भीर स्वर में स्निग्ध वाणी सुनी। इसके बाद (द्वारपाल ने कहा) 'तो क्या आप अभी तक महाराज शिवाजी के इस आदेश को नहीं जानते हैं कि द्वारपाल या पहरेदार के द्वारा तीन बार पूछने पर भी उत्तर न देने वाले को गोली मार दी जाय।' द्वारपाल के इतना कहने पर - "क्षमा करो, यह मैं आ रहा हूँ।" आकर सब कुछ बताऊँगा" ऐसा कहते हुए एक बारह वर्षीय भिक्षु बालक से अनुगम्यमान कषाय वस्त्रधारी, तुम्बी पात्र लिये हुए, मस्तक पर भस्म लपेटे हुए, रुद्राक्ष की माला गले में पहने हुए, भव्य मूर्ति वाले किसी सन्यासी को (द्वारपाल ने) देखा। तब दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ -

हिन्दी व्याख्याः— दौवारिकः = द्वारपाल, 'द्वारे भ्ज्ञवः दौवारिकः-द्वार + ठञ् (इक्)'। 'दौवारिक.....वदसि' सन्यासी का वचन है, जो दिखाई नहीं पड़ रहा था। वक्तारम् = वक्ता को, 'वच् + तृच् (द्वितीया ए0व0)'। अपश्यता = न देखते हुए, 'नञ् + पश्य + शतृ (तृतीया ए0व0)'। आकर्णि = सुनी गई। मन्द्रस्वरमेदुरा = गम्भीर स्वर से स्निग्ध, मन्द्र = गम्भीर, मेदुरा = स्निग्ध, या "सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुरः" (अमरकोष)। 'मन्द्रस्वरेण मेदुरा, (तृ0 तत्पु0)। न अज्ञायि = नहीं मालूम है, 'ज्ञा + लुङ् (भवकर्म प्रक्रिया)।" प्रभुवर्य्याणाम् = आदरणीय स्वामी का (आदर सूचक ब0व0)। प्रहरिणा = पहरेदार के द्वारा। त्रिः = तीन बार। प्रत्युत्तरम् = उत्तर को। अददत् = न देने वाला। हन्तव्यः = मार दिया जाना चाहिए, 'हन् + तव्यत् (प्रथमा ए0व0)।' भाषमाणेन = कहने वाले 'भाष् + शानच् (तृ0 ए0व0)।' द्वारःस्थेन = द्वार पर स्थित (द्वारपाल का विशेषण)। क्षम्यताम् = क्षमा कीजिये। निखिलम् = सब कुछ। द्वादशवर्षेण = बारह वर्ष वाले। भिक्षुबटुना = भिक्षुबालक के द्वारा, भिक्षुश्चासो बटुस्तेन'। अनुगम्यमानः = पीछा किया जाता हुआ, 'अनु + गम् + यक् + शानच्' (सन्यासी का विशेषण)। कषायवासाः = कषाय वस्त्र धारण किये हुए। धृततुम्बीपात्रः = तूम्बीपात्र को लिये हुए, 'धृतम् तूम्बीपात्रम् येन सः (बहुव्रीहि)। भस्मच्छुरितललाटः = मस्तक पर भस्म (राख) लगाये हुए। रुद्राक्षमालिका सनाथितकण्ठः = रुद्राक्ष की माला से विभूषित कण्ठ वाला, रुद्राक्षमालिकया सनाथितः कण्ठः यस्य सः (बहुव्रीहि)'। आलापः = परस्पर वार्तालाप। अभूत् = हुआ। तयोः = सन्यासी और द्वारपाल का।

टिप्पणीः— (1) क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग न होने पर भी द्वारपाल और सन्यासी के परस्पर अभिभाषण को एक ही वाक्य में समेटने के प्रयास में आशुबोधिता नहीं रह सकी है।

(2) कर्मवाच्य का प्रयोग बहुलता से किया गया है।

सन्यासी - कथमस्मान् सन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्तिरस्करोषित ?

दौवारिकः - भगवन् ! भवान् सन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददेवाऽऽयातीत्याक्रुश्यते।

सन्यासी - सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि, सन्यासिनः, ब्रह्मचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्याः, आत्मानम परिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः।दौवारिकः -

सन्यासिन्! सन्यासिन्! बहुक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च सन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च सन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेशभूमिः, तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा बहामः।

हिन्दी अनुवादः— सन्यासी -हम सन्यासियों को कठोर भाषण से तुम क्यों अपमानित करते हो ?द्वारपाल - भगवन्! आप सन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम के सेवी हैं, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ; परन्तु आप स्वामी के आदेश का उल्लंघन करके अपना परिचय दिये बिना ही चले आ रहे हैं इसलिये क्रुद्ध हो रहा हूँ।

सन्यासी - सत्य है, (तुम्हारा) यह अपराध क्षमा किया, आज से सन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पण्डितों, स्त्रियों, और बालकों से कुछ भी नहीं पूछना। अपना परिचय न देने पर भी उन्हें प्रवेश करने देगा।

द्वारपाल - सन्यासी! सन्यासी! बहुत कह चुके अब रुको, हम द्वारपाल लोग ब्रह्मा की भी आज्ञा नहीं मानते हैं। किन्तु जो वैदिक धर्म के रक्षा के व्रती हैं जो सन्यासियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के सन्यास, ब्रह्मचर्य और तपस्या के विघ्नों के नाशक हैं, तथा जिसके द्वारा यह कोङ्कण देश की भूमि वीरप्रसविनी (वीरों को पैदा करने वाली) कही जाती है, उन्हीं महाराज वीर शिवाजी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं।

हिन्दी व्याख्याः— कठोरभाषणैः = कठोर वचनों से। तिरस्करोपि = तिरस्कृत करते हो। तुरीयाश्रमसेवी = चतुर्थ आश्रम में रहने वाले, भारतीय संस्कृति के अनुसार 1, ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ और 4. सन्यास ये चार आश्रम हैं। इसमें चतुर्थ आश्रम सन्यास है। प्रणम्यते = प्रणाम किया जाता है ‘प्र + नम् + य + क्त’। उल्लङ्घ्य = उलङ्घन करके ‘उत् + लङ्घि + ल्यप्’। अददत् = न देते हुए। आक्रुश्यते = क्रुद्ध होता हूँ ‘आ + क्रुश् + यक् + त्’। क्षान्तः = क्षमा किया। अद्यावधि = आज से। अपरिचाययन्तमपि = परिचय न देने पर भी। प्रवेष्टव्याः = प्रवेश करने देना चाहिये, ‘प्र + विश् + तव्यत्’ (प्रथमा बहुब्रीहि)। बहूक्तम् = बहुत कह चुके। विरम = रुकिये। प्रतीक्ष् = प्रतीक्षा करता हूँ। वैदिकधर्मरक्षाव्रती = वैदिक धर्म के रक्षा व्रती, ‘वैदिक धर्मस्य रक्षायाः व्रती। (तत्पु0) सन्यासिनां, ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च के क्रम से सन्यास्य, ब्रह्मचर्य तपसश्च के साथ अनवय होता है। अन्तरायाणाम् = विघ्नों के, विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः (अमरकोष)। वीरप्रसविनी = वीर पुत्र पैदा करने वाली। उच्यते = कही जाती है। वहामः = धारण करते हैं।

टिप्पणी: — (1)‘‘सन्यासिनाम्....तपसश्च’’ में यथासङ्ख्य अलङ्कार है।

सन्यासी - अथ किमप्यस्तु, पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीरनिकटे जिगमिषावः।

दौवारिकः - अलमालप्यापि तत्, प्राह्णे महाराजस्य सन्ध्योपासनसमये भवादृशानां प्रवेशसमयो भवति; न तु रात्रौ ?

सन्यासी - ततिंक कोऽपि न प्रविशति रात्रौ ?

दौवारिकः - (सापेक्षम्) कोऽपि कथं न प्रविशति ? परिचिता वा प्राप्त-परिचयपत्रा वा आहूता वा प्रविशन्ति, न तु भवादृशाः; ये तुम्बीं गृहीत्वा द्वाराद्-इति कथयन्नेव तत्तेजसेव घर्षितो मध्य एव विरराम।

सन्यासी - (स्वागतम्) राजनीति-निष्णातः शिववीरः। सर्वथा दौवारिकता-योग्य एवायं द्वारपालः स्थापितोऽस्ति। परीक्षितमप्येनमेकस्मिन् विषये पुनः परीक्षिष्ये तावत्। (प्रकटम्) दौवारिक! इत आयाहि, किमपि कर्णे कथयिष्यामि।

दौवारिकः - (तथा कृत्वा) कथ्यताम्।

हिन्दी अनुवादः— सन्यासी - अच्छा, कुछ भी हो, रास्ता दिखाओ, हम दोनों शिववीर के पास जाना चाहते हैं।

दौवारिक - उसकी तो बात भी न करें, आप जैसे लोगों के मिलने का समय पूर्वाह्न में महाराज के सन्ध्या-पूजन के समय होता है, रात्रि में नहीं।

सन्यासी - तो क्या कोई रात्रि में प्रवेश नहीं करता है ?

दौवारिक - (क्रोध पूर्वक) कोई क्यों नहीं प्रवेश करता है ? परिचित, परिचय पत्र प्राप्त करने वाले अथवा आमन्त्रित (व्यक्ति) प्रवेश करते हैं, न कि आप जैसे, जो तूम्बी लेकर एक द्वार से दूसरे द्वार- इतना कहते ही मानो उस (सन्यासी) के तेज से घबड़ा कर बीच में रुक गया।

सन्यासी - (अपने मन में) शिववीर राजनीति में पारंगत है। सर्वथा द्वार-रक्षक के योग्य ही द्वारपाल नियुक्त किया गया है। यद्यपि इसकी परीक्ष ले चुका हूँ तथापि एक और विषय में पुनः परीक्षा लूँगा। (प्रकट रूप में) दौवारिक यहाँ आओ, कुछ कान में कहूँगा।

दौवारिक - (वैसा करके) कहिए।

हिन्दी व्याख्याः— निर्दिश = बताओ, 'निर् + दिश + लोट (सिप्)'। जिगमिषावः = जाना चाहते हैं, 'गम + सन् + लट् (वस)'। अलमालप्यापि = यह कहने की भी बात नहीं है। सन्यासी की वार्ता के निषेध के लिये द्वौवारिक ने 'अलम्' का प्रयोग किया है, 'अलम्' के योग में 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है-आ + लप् + क्त्वा (ल्यप्) = आलप्य'-''अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा'' से क्त्वा प्रत्यय हुआ है। माघ ने भी ऐसा प्रयोग किया है-''आलप्यालमिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरत्''। प्राह्ने = दिन के पूर्व भाग में। तूम्बील = 'तूम्बी' को। प्रकृत में 'तूम्बी' भिक्षापात्र के अर्थ में प्रयुक्त है। प्राप्तपरिचयपत्राः परिचय पत्र प्राप्त करने वाले, 'प्राप्तम् परिचयपत्रम् यैस्ते। (बहुब्रीहि)। आहूताः = आमन्त्रित। तत्ेजसा = सन्यासी के तेज से। घर्षित = भयभीत हुआ। विरराम = रुक गया। राजनीतिनिष्णातः = राजनीति में कुशल, 'राजनीतौ निष्णातः (तत्पुरुष)'। निष्णातः = 'नि + स्णा + क्त (प्रथमा)'। दौवारिकतायोग्यः = द्वाररक्षक कर्म के लिये उचित। परीक्षिप्ये = परीक्षा करूँगा। स्वगतम् = मन में सोचना। इत आयाहि = इधर आओ। प्रकटम् = प्रकट रूप में।

टिप्पणीः — (1)द्वारपाल एवम् सन्यासी का अत्यन्त रोचक वार्ता का संयोजन किया गया है। साथ ही द्वारपाल की कर्त्तव्य-परायणता निर्दिष्ट है।

(2)'तत्तेजसेव घर्षितः' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

सन्यासी - निरीक्षस्व त्वमधुना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन् जीविकां निर्वहसि, त्वं सहस्र वाऽयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते।

दौवारिकः - आम्, अग्रे कथ्यताम्।

सन्यासी - वयञ्च सन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्वं रसायन्-तत्वं।

दौवारिकः - स्यादेवम्, अग्रे अग्रे ?

सन्यासी - तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धेः तदधुनैव परिष्कृतं पारद-भस्म तुभ्यं दद्याम्, यथा त्वं गुञ्जामात्रेणापि द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याकलुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।

हिन्दी अनुवादः— सन्यासी देखो, तुम इस समय द्वारपाल हो, प्राणों की चिन्ता न करके जीविका प्राप्त करते हो, तुम हजार या दस हजार रुपये कभी भी इकट्ठा करोगे, यह किसी प्रकार से भी सम्भव नहीं है।

दौवारिक - ठीक, आगे कहिए।

सन्यासी - हम तो सन्यासी हैं, जंगलों और पर्वत की गुफाओं में विचरण करते हैं, सभी रसायन तत्त्वों को जानते हैं।

दौवारिक - ऐसा हो सकता है, आगे-आगे कहिये।

सन्यासी - यदि तुम मुझको प्रवेश करने से न रोको, तो इसी समय तुम्हें परिष्कृत (शोधित) पारद भस्म दूँ, जिससे तुम रत्ती भर से भी मनों ताँबे को सोना बना सकते हो।

हिन्दी व्याख्या:— निरीक्षस्व = देखो। दौवारिकोऽसि = द्वारपाल ही। प्राणात् = प्राणों को, 'प्राण' शब्द नित्य बहुवचन होता है। अगणयन् = न गिनते हुए, 'नञ् + गण् + शतृ (प्रथमा ए0व0)'। जीविकाम् = जीवन निर्वाहार्थ्ज्ञ धन। निर्वहसि = प्राप्त करते हो। न सम्भाव्यते = सम्भव नहीं है। आम् = स्वीकृति सूचक। रसायनतत्वम् = रसायन तत्व को। 'रसायन' आयुर्वेदिक शब्द है। औषधियों से बनाये गये भस्म को रसायन कहते हैं। कुछ रसायन ऐसे भी होते हैं जिनसे ताँबे आदि को सुवर्णादि के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। विज्ञः = जानते हैं। परिष्कृतम् = शोधित। पारदभस्म = विशेष प्रकार का रसायन। गुञ्जामात्रेण = रत्ती भर से ही। न प्रतिरुन्धेः = नहीं रोकते हो, 'प्रति + रुधि विधिलिङ् (सिप्)'। जाम्बूनदम् = सुवर्ण। विधातुम् = बनाने में। शक्नुयाः = समर्थ हो सकते हो।

टिप्पणी:— (1)सन्यासी द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिये सुवर्ण बनाने वाली पारद भस्म देने का लोभ देता है। यह राजनीति का एक अंग है।

जित होता है कि तुम अत्यन्त कष्ट से जीविका प्राप्त करते हो।

दौवारिकः - हहो ! कपटसन्यासिन्! कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनञ्च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाताः, ये उत्कोचलोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः।(सन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?

सन्यासी - (स्मित्वेद) अथ त्वं मां कं मन्यसे ?

दौवारिकः - अहं तु त्वामस्यैव ससेनस्याऽऽयातस्य अपजलखानस्य-

सन्यासी - (विनिवार्य मध्य एव) धिग् धिग्।

दौवारिकः - कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये। तदादेशं पालयिस्यामि प्रभुवर्यस्य (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे, स एवाभिज्ञाय त्वया यथोचितं व्यवहरिष्यति।

ततः सन्यासी तुः-"त्यज, नाङ्पुनरायास्यामि, नाहं पुनरेवं कथयिष्यामि, महाशयोऽसि दयस्व दयस्व" -इति सहस्रधा समचकथत्, तथापि दौवारिकस्तु तमाकृष्य नयन्नेव प्रचलितः।

हिन्दी अनुवाद:— दौवारिक - अरे! क्यों तू विश्वासघात और स्वामी से वंचना का उपदेश दे रहा है ? वे कोई और ही जार जात (स्वामी को धोखा देने वाले तथा 'घूस' लेने वाले) होते हैं, जो उत्कोच (घूस) के लोभ से स्वामी को छल कर अपने को प्रगाढ़ नरक में गिराते हैं, हम सब महाराज शिवाजी के गण (सेवक) ऐसे नहीं हैं। (सन्यासी का हाथ पकड़ कर) इधर आओ और सच-सच बताओ तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? अथवा किसके द्वारा भेजे गये हो ?

सन्यासी - (मुस्कराता हुआ सा) तो तुम मुझे क्या समझते हो ?

दौवारिक - मैं तो तुमको इसी सेनासहित आये हुये अफजल खाँ का -

सन्यासी - (बीच में ही रोककर) धिक्कार है, धिक्कार है।

दौवारिक - अथवा किसी अन्य का गुप्तचर समझता हूँ। तो मैं अपने प्रभु के आदेश का पालन करूँगा। (हाथ खींचकर) दुर्गाध्यक्ष के समीप आओ। वे तुम्हें पहिचान कर जैसा उचित समझेंगे वैसा व्यवहार करेंगे।

तब सन्यासी ने हजारों बार कहा - "छोड़ दो मैं पुनः नहीं आऊँगा।" मैं ऐसा फिर नहीं करूँगा, आप उदार हैं, दया करिये! दया करिये।" तब पर भी द्वारपाल उसे खींचकर ले जाने लगा।

हिन्दी व्याख्या - हंहो = आश्चर्य सूचक अध्याय। स्वामिवञ्चनं च = और स्वामी को ठगना। शिक्षयसि = सिखा रहे हो। जारजाताः = हरामजादे, पति के जीवित रहने पर स्त्री जब दूसरे पुरुष से संसर्ग करती है, तो उससे उत्पन्न संतति जारजात' कहलाती है-"अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्त्तरि गोलकः"। 'जारजात' स्वामिप्रवंचको एवम् उत्कोचलोभियों की निन्दा के लिये प्रयुक्त हुआ। उत्कोचलोभेन = 'घूस' के लोभ से। वञ्चयित्वा = ठगकर के। आत्मानम् = अपने को। अन्धतमसे = घोर नरक में, पुराणों में अनेक प्रकार के नरकों का वर्णन है उनमें से 'अन्धतमस' भी अन्यतम नरक है, जहाँ प्राणी को अति घोर यातनायें दी जाती हैं। पातयन्ति = गिराते हैं। ससेनस्य = सेना के सहित, 'सेनया सहितः तस्य (तत्पु0)'। आयातस्य = आये हुए (अफजलखान का विशेषण), 'आ + या + क्त (षष्ठी एक वचन)'। विनिवार्य = रोककर, वि + नि + वृ + क्त्वा (ल्यप्)'। गूढचरम् = गुप्तचर (जासूस)। पालयिष्यामि = पालन करूँगा। दुर्गाध्यक्षसमीपे = दुर्ग के अध्यक्ष के पास, दुर्ग (किला) की सम्पूर्ण सुरक्षा एवं उचित व्यवस्था करने वाला दुर्गाध्यक्ष होता था, वह अपने विषय पर पूर्ण अधिकार रखता था। अभिज्ञाय = जानकर, अभि + ज्ञा + ल्यप्। व्यवहरिष्यति = व्यवहार करेगा। त्यज = छोड़ दो। आयास्यामि = आऊँगा। महाशयोऽसि = विशाल हृदय वाले हो। दयस्व = दया करो। सहस्रधा = अनेकों बार। समचकथत् = कहा। नयन्नेव = ले जाता हुआ ही। प्रचलितः = चल पड़ा।

टिप्पणी:— (1) द्वारपाल के चरित्र को बहुत प्रभावशाली ढङ्ग से प्रस्तुत किया गया है। उसकी सजगता सराहनीय है। उसकी निर्लुब्धता प्रशंसनीय है।

(2) संवाद योजना अच्छी एवं स्वाभाविक है।

अथ यावद् द्वारस्थ-स्तम्भोपरि संस्थापितायां काच-मञ्जूषाया जाज्वल्यमानस्य प्रबल-प्रकाशस्य दीपस्य समीपे समायातः, तावत्सन्यासिनोक्तम्-"दौवारिक! अपि मां पूर्वमपि कदाऽप्यद्राक्षीः ?" ततो दौवारिकः पुनस्तं निपुणं निरीक्षमाणो मन्द्रेण स्वरेण, अरुणापाङ्गाभ्यां लोचनाभ्याम्, गौरतरेण वर्णेन, चुम्बितयौवनेन वयसा, निर्भीकण हारिणा च मुखमण्डलेन पर्यचिनोत्। भुशुण्डी-समुत्तेलन-किण-कर्कश-करग्रहमपहाय, सलज्ज, इव च नम्रीभूय, प्रणमन्नुवाच-"आः ! कथं श्रीमान्गौरसिंह आर्यः ? क्षम्यतामनुचितव्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य"। तदवधार्य तस्य पृष्ठे हस्तं विन्यस्यन् सन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत-"दौवारिक ! मया बहुशः परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि चेति। त्वादृक्षा एव प्रभूणं पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयञ्च विजयन्ते! तव प्रामाणिकता जानीत एवाऽत्रभवान् प्रभुवर्य्यः, परमहमपि विशिष्य कीर्तयिष्यामि। निर्दिश तावत् कुत्र श्रीमान् ? किञ्चानुतिष्ठति ?

हिन्दी अनुवाद: —- इसके बाद जब द्वार पर स्थित खम्बे के ऊपर रखी हुई काँच की पेटिका में जल रहे तीव्र प्रकाश वाले दीपक के समीप में आया, तब सन्यासी ने कहा - "द्वारपाल! क्या तुमने इसके पहले भी मुझको कभी देखा था ?" तब द्वारपाल पुनः उस सन्यासी को अच्छी प्रकार से

देखकर, (सन्यासी) के गम्भीर स्वर से, रक्त नेत्र प्रान्त वाले नयनों से, अधिक गौरे रंग से प्राप्त होने वाली युवावस्था से तथा निर्भीक और मनोहर मुखमण्डल से उसे पहचान लिया। बन्दूक के उठाने से पड़े हुए घट्टों से कठोर हाथ को (सन्यासी के हाथ से) अलग करके लज्जित हुआ सा नम्र होकर प्रणाम करते हुए बोला - ''अरे ! क्या आप श्रीमान् गौरसिंहजी आर्य हैं ? इस बेचारे गँवार के अनुचित व्यवहार को क्षमा कीजिये।'' यह सुनकर द्वारपाल के पीठ पर हाथ फेरता हुआ सन्यासी वेशधारी गौरसिंह बोला-द्वारपाल ! मैं तुम्हारी अनेक बार परीक्षा ले चुका और यह समझ लिया कि तुम यथायोग्य पद पर ही नियुक्त किये गये हो तुम्हारे समान लोग की स्वामी के पुरस्कार प्राप्त करने वाले होते हैं और दोनों लोकों को जीतते हैं। तुम्हारी प्रामाणिकता को प्रभुवर शिवाजी जानते ही हैं, फिर भी मैं विशेष रूप से तुम्हारी प्रशंसा करूँगा। तो बताओ कहाँ हैं श्रीमान् ? और क्या कर रहे हैं।

हिन्दी व्याख्या: — द्वारस्थस्तम्भोपरि = द्वार पर स्थित खम्बे के ऊपर, स्तम्भ = 'खम्बा'। द्वारे स्थितः यः स्तम्भः तस्य उपरि'। संस्थापितायाम् = रखी हुई। काचमञ्जूषायाम् = काँच की पेटिका अथवा बड़ी 'लालटेन' के समान दीपमञ्जूषा। जाज्वल्यमानस्य = जलने वाले, (दीपक का विशेषण)।' ज्वल् + शानच्। (यङन्त, षष्ठी एकवचन)'। प्रवलप्रकाशस्य = तीव्र प्रकाश वाले। समायातः = आया। अद्राक्षीः = देखा था, दृश् + लुङ् (सिप्)'। निपुणम् = भली प्रकार से। निरीक्षमणः = 'निर + ईक्ष + शानच्'। मन्द्रेण = गम्भीर। अरुणापाङ्गभ्याम् = ईषद् रक्त नेत्र प्रान्त वाले (नेत्र का विशेषण), अरुणौ अपाङ् ययोस्तौ, ताभ्याम् (बहुब्रीहि)'। गौरतरेण = अधिक गौर (वर्ण का विशेषण)। चुम्बितयौवनेन = यौवन के प्रारम्भिक (वयसा का विशेषण), 'चुम्बितं यौवनम् येन, तत् येन (बहुब्रीहि)'। वयसा = अवस्था से। निर्भीकेण = निडर। हारिणा = मनोहर। मुखमण्डलेन = मुखमण्डल से। पर्यचिनोत् = पहचान लिया, 'परि + चिञ् (संज्ञाने) + लङ् (तिप्)'। भुशुण्डी समुत्तोलनकिणकर्कशकरग्रहम् = बन्दूक के उठाने से बने हुये चिह्न के कारण कठोर हाथ की पकड़ को। भुशुण्डी = बन्दूक, समुत्तेलन उठाना, किण = बने हुये घट्टे, कर्कश = कठोर, करग्रह = हाथ की ग्रहण (पकड़) 'भुशुण्ड्याः समुत्तोलनेन यः किणः तेन कर्कशः यः करः तस्य ग्रहम्' (तत्पु0)। सलज्ज इव = लज्जित हुए के समान। नम्रीभूय = नम्र होकर, नम्र से 'च्वि' प्रत्यय। प्रणमन् = प्रणाम करता हुआ, 'प्र + नम् + शतृ'। क्षम्यताम् = क्षमा कीजिये। ग्राम्यवराकस्य = बेचारे गँवार का, 'ग्रामे भवः ग्राम्यः, ग्राम्यश्चासौ वराकः, ग्राम्यवराकः तस्य (तत्पु0)'। तदवधार्य = यह सुनकर, 'अव + धृ + ल्युप्'। विन्यस्यन् = फेरता हुआ। समवोचत् = बोला, सम् + वच् लङ् (तिप्)'। बहुशः = अनेक बार। परीक्षितोऽसि = परीक्षित हो चुके हो। ज्ञातोऽसि = जान लिये गये हो। यथायोग्ये = यथोचित। नियुक्तोऽसि = नियुक्त किये गये हो। त्वादृशाः = तुम्हारे समान। पुरस्कारभाजनानि = पुरस्कार प्राप्त करने वाले। लोकद्वयञ्च = इहलोक और परलोक दोनों कोक। विजयन्ते = जीतते हैं, 'वि + जि लट् (झ)'। 'वि उपसर्ग के कारण आत्मनेपद हुआ है 'विपराभ्यांजेः'। विशिष्य = विशेष प्रकार से। कीर्तियिष्यामि = कहूँगा। निर्दिश = बताओ। अनुतिष्ठति = कर रहे हैं।

टिप्पणी: — (1)काचमंजूषा-शीशे की बनी हुई पेटिका होती है, जिसके अन्दर दीपक जलता रहता है, 'लैम्प' का बड़ा रूप समझा जा सकता है। द्वारपाल के फाटक पर खम्बे के ऊपर वही जल रहा था।

(2) गौरसिंह इसके पूर्व भी जा चुका था और परिचित था किन्तु इस समय वह केवल द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिये सन्यासी का वेष धारण करके गया था और द्वारपाल उसकी परीक्षा में पूरी तरह खरा उतरा। इसमें राजनीतिक भावना निहित है।

अभ्यास प्रश्न -1

1- रात्रि जायेगी, तो क्या होगा,?

2- सूर्य उदित होगा तो क्या खिलेगा' ?

3- कमल को किसने उखाड़ दिया?

4- द्वारपाल का परीक्षण किसने किया?

5- द्वारपाल का चरित्र कैसा था ?

ततः पुनर्बद्धाञ्जलेदौवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य प्रधानद्वारमुल्लङ्घ्यî, नेदीयस्यामेकस्यां निम्बतरु-तलःवेदिकायां सहचरं समुपवेश्य, तुम्बीमेकतः संस्थाप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरण-काषायवसनं चैकतो निम्बशाखायामवलम्बय्य, पट-खण्डेन पक्षमणोः कपोलयोः कर्णयोर्भ्रुवोशिचबुके नासायां केशप्रान्तेषु च छुरितामिव विभूति प्रोञ्छय स्कन्धयोः पृष्ठे च लम्बमानान् मेचकान् कुञ्चितान् कचानाबध्य, सहचरपोटलिकात उष्णीषमादाय, शिरसि चाऽऽधाय, सुन्दरमुत्तरीयं चैकं स्कन्धयोर्निक्षिप्य, दौवारिक-निर्देशानुसारं श्रीशिववीरालंकृतामट्टालिकां प्रति प्रतिष्ठत्।

हिन्दी अनुवादः— तदन्तर हाथ जोड़े हुए, द्वारपाल के द्वारा कान में कुछ कही गई बात को सुनकर (गौरसिंह) प्रधान द्वार को लाँघ कर पास के ही एक नीम के वृक्ष के नीचे चबूतरे पर (अपने) सहचर (बालक) को बैठाकर तुम्बी को एक ओर रखकर अपने अँगरखे को ढकने वाले कषाय (गेरुए) वस्त्र को एक ओर नीम की शाखा में टाँगकर, रुमाल से पलकों, गालों, कानों, भौहों, दाढ़ी, नासिका और बालों में लगी हुई भस्म को पोंछकर पीठ और कन्धों पर लटकते हुए काले-काले घुँघराले बालों को सँवार कर, सहचर की गट्ठर से एक पगड़ी निकाल कर, सिर पर रखकर, एक सुन्दर उत्तरीय कन्धों पर डालकर द्वारपाल के निर्देश के अनुसार श्री शिववीर के द्वारा अलंकृत अट्टालिका की ओर चल दिया।

हिन्दी व्याख्याः— बद्धाञ्जलेः - हाथ जोड़े हुए (द्वारपाल का विशेषण) 'बद्धा अञ्जलिः येन सः तस्य' (बहुव्रीहि)। कथितम् = कहे हुए को (द्वारपाल के कथन को)। प्रधानद्वारम् = मुख्य द्वार को। उल्लङ्घ्यî = पार कर के, 'उत्+लँघि+ल्यप्'। नेदीयस्याम् = अति निकट के ही। निम्बतरुतलःवेदिकायाम् = नीम के पेड़ के नीचे के चबूतरे पर, 'निम्बस्य तरोः तले या वेदिका तस्याम् (तत्पु0)'। वेदिका = चबूतरा। सहचरम् = साथ के बालक को, 'सह चरतीति सहचरः तम्।' 'चर + अच्'। समुपवेश्य = बैठाकर, 'सम् उप+विश्+ल्यप्'। एकतः = एक ओर। संस्थाप्य =रखकर, सम्+स्थापि+ल्यप्। स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम् = अपने अङ्गरक्षिका (अंगरखा) को ढकने वाले गेरुए वस्त्र को। 'स्वस्य अङ्गरक्षिका तस्याः आवरण रूपं यत् काषायवसनम् तत् (तत्पु0)'। निम्बशाखायाम् = नीम की डाल में। अवलम्ब्य = लटकाकर। पटखण्डेन = वस्त्रखण्ड (रूमाल) से। पक्षमणोः = पलकों के। 'अक्षिलोम्नौः पक्ष्माक्षि लोम्नि' (अमरकोष)। चिबुके = ठोड़ी में। छुरिताम् = व्याप्त। विभूतिम् = भस्म को। प्रोञ्छ्यî = पोंछकर 'प्र+उक्षि (उञ्छे+ल्यप्'। लम्बमानान् = लटकने वाले (बालों का विशेषण)। मेचकान् = कृष्णवर्ण के, 'नीलसितश्यामकालश्यामल मेचकाः' (अमरकोष)। कुञ्चितान् = टेढ़े मेढ़े या

घुँघराले। कचान् = बालों को, आबध्य = बाँधकर। उष्णीषम् = पगड़ी को। आधाय = रखकर या बाँधकर। उत्तरीयम् = दुपट्टे को। निक्षिप्य = डालकर, 'नि+क्षिप्++ल्यप्। दौवारिकनिर्देशानुसारम् = द्वारपाल के निर्देश के अनुसार। श्रीशिववीरालंकृताम् = श्रीवीर शिवाजी से अलंकृत, 'श्री शिववीरेण अलंकृताम्'। अट्टालिकाम् प्रति = अट्टालिका की ओर। प्रतिष्ठत् = प्रस्थापन किया।

टिप्पणी - गौरसिंह सन्यासी के वेष के समग्र प्रसाधन को अलग करके सहचर के साथ ही छोड़ दिया और स्वयम् साधुवेष में शिववीर से मिलने के लिये चल पड़ा।

शिववीरस्तु कस्याञ्चिच्चन्द्रचुम्बिन्यां सान्द्र-सुधासार-संलिप्तभित्तिकायां धूपधूपितायां गजदन्तिकावलम्बित-विविध-च्छुरिकाखड्गरिष्टिकायां स्वर्ण-पिञ्जर-परिलम्बमान-शुक-पिक-चकोर- सारिका-कलकूजितायामट्टालिकायां सन्ध्यामुपास्योपविष्ट आसीत्। परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्व पराक्रमां श्यामामपि यशःसमूह-श्वेतीकृत-त्रिभुवनां कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयां पठन-पाठनादि- परिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णातां स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनां ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि धर्मधौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां शोभित-विग्रहामपि दृढ-सन्धि-बन्धां कलितगौरवामपि कलितलाघवां विशाल-ललाटां प्रचण्डबाहुदण्डां शोणापाङ्गां कम्बुग्रीवां सुनद्धस्नायुं वर्तुल-श्यामश्मश्रुं धारिताकृतिमिव वीरतां विग्रहिणीमिव धीरतां समासादित-समर-स्फूर्तिं मूर्तिं दर्श दर्श पर प्रसादमासादयन्तस्तस्य वयस्याः कटानध्यवसन्।

हिन्दी अनुवादः— वीर शिवाजी किसी चन्द्रचूम्बिनी, गाढ़े चूने से लिपी दीवालों वाली, धूप से सुगन्धित, (दीवालों में गड़ी हुई) खूँटियों में अनेक प्रकार के छुरे, तलवार तथा यष्टिका आदि लटक रहे थे जिसमें तथा सोने के पिंजड़े में लटक रहे शुक, कोयल, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से व्याप्त अट्टालिका (प्रासाद) में सन्ध्यापूजन करके बैठे हुए थे। उनके चारों ओर उन्हीं के साथी बैठे हुए थे, जो अल्पकाय होती हुई भी महत्पराक्रमशालिनी, श्यामा होती हुई भी कीर्ति-समूह से समस्त त्रिभुवन को धवलित करने वाली, कुशासन पर बैठी हुई भी सु-शासन का आश्रय, पठन-पाठन आदि के परिश्रम से अनभिज्ञहोती हुई भी नीति में पारंगत, स्थूल दर्शनों वाली होती हुई भी सूक्ष्म दृष्टि वाली, (म्लेच्छों को) हिंसा व्यसनों वाली होती हुई भी धर्म के भार को धारण करने वाली, कठिन होती हुई भी कोमल, उग्र होती हुई भी शान्त, सुन्दर विग्रह (शरीर अथवा लड़ाई) वाली होती हुई भी दृढ़ सन्धिबन्धों वाली गौरवशालिन होती हुई भी लघु दर्शन वाली, विशाल ललाट वाली, प्रबल भुजाओं वाली, रक्त नेत्रों वाली, कम्बु (शंख) सदृश कण्ठों वाली, सुगठित स्नायु (नसों) वाली, वर्तुलाकार श्यामल दाढ़ी मूँछों वाली, मूर्तिमती वीरता के समान, शरीर धारिणी धीरता के समान और समरभूमि में स्फूर्ति प्रकर करने वाली मूर्ति (के समान) देह को देख-देखकर प्रसन्न हो रहे थे।

हिन्दी व्याख्या: — चन्द्रचुम्बिन्याम् = चन्द्रमा को चूमने वाली अर्थात् अत्यन्त ऊँची। सान्द्रसुधासारसंलिप्तभित्तिकायाम् = घने चूने से लिपि हुई दीवालों वाली (अट्टालिका का विशेषण)। सान्द्र = घना, सुधासार = सफेदी या चूना, संलिप्त = पुती हुई, भित्तिका = दीवाल। सान्द्रेण सुधासारेण संलिप्ताः भित्तिकाः यस्याम् सा, तस्याम् (बहुब्रीहि)। धूपधूपितायाम् = धूप से सुगन्धित। गजदन्तिकावलम्बितविविधच्छुरिकाखड्गरिष्टिकायाम् = खूँटियों में टंगे हुए थे अनेक प्रकार के छुरी, तलवार तथा रिष्टिका आदि शस्त्र जिसमें (अट्टालिका का विशेषण)। गजदन्तिका = खूँअी। अवलम्बित = लटकी हुई, छुरिका = छुरी, खड्ग = तलवार, रिष्टिका = अस्त्रविशेष।

गजदन्तिकायाम् अवलम्बिताः विविधाः छुरिकाः, खड्गः, रिष्टिकाश्च यस्याम् सा तस्याम् (बहुब्रीहि)। सुवर्णपिञ्जर.....कूजितायाम्' = सोने के पिंजरे में स्थित शुकों, कोयलों, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से युक्त (अट्टालिका का विशेषण)। 'सुवर्णपिञ्जरेषु परिलम्बमानानां शुकपिकचकोरसारिकाणां कलकूजितैः पूजितायाम् (तत्पु0)'। अट्टालिकायाम् = प्रसाद में। सन्ध्याम = सन्ध्यापूजन आदि (को)। उपास्य = सम्पादित करके, 'उप+आस्+ल्यप्'। उपविष्टः = बैठे हुए, 'उप+विश्+क्त'। खर्वामपि = ह्रस्व (लघु) होती हुई भी। यहाँ से 'मूर्ति' तक सभी स्त्रीलिंग द्वितीयान्त शब्द शिवाजी की मूर्ति के विशेषण हैं। अखर्वपरिक्रमाम् = अत्यधिक पराक्रम वाली। 'अखर्वः पराक्रमः यस्याः सा ताम्, (बहुब्रीहि) 'अखर्वः पराक्रमः अस्याः' इस विग्रह में विरोध भासित होता है क्योंकि खर्व में अखर्वः का पराक्रम कैसे हो सकता है। अतः प्रथम विग्रह (अखर्वः पराक्रमः यस्याम्) से परिहार हो जाता है। श्यामाम् अपि यशः समूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम् = श्यामल होती हुई भी कीर्ति समूह से तीनों लोकों को धवलित करने वाली। श्यामलता से धवलित नहीं किया जा सकता (विरोध), कीर्ति समूह की श्वेतिमा से धवलित किया गया है (विरोध परिहार)। 'यशः समूहेन श्वेतीकृत त्रिभुवनम् यया सा ताम् (बहुब्रीहि)'। श्वेतीकृत् = अश्वेत को श्वेत कर दिया गया है - श्वेत से 'च्वि' प्रत्यय हुआ है। कुशासनाश्रयाम् अपि सुशासनाश्रयाम् = कु (खराब) शासन का आश्रय होती हुई भी सु (सुन्दर) शासन का आश्रय है (विरोध), कुश के आसन के आश्रय वाली होती हुई भी सुशासन का आश्रय (विरोध परिहार)। इसी क्रम में विग्रह - 'कुत्सितम् शासनम् आश्रयो यस्याः, सा ताम् = कुशासनाश्रयाम् (बहुब्रीहि)। (पक्ष में) कुशानाम् आसनम् आश्रयो यस्याः सा ताम्। शोभनम् शासनम् आश्रयो यस्याः सा मात्। (बहुब्रीहि)। शासनम् = शास्यते अनेनेति शासनम् 'शास् धञ्। पठनपाठनादि परिनीतिनिष्णाताम् = पठन-पाठन आदि के परिश्रम से अनभिज्ञ होती हुई भी। पठन-पाठनादीनाम् परिश्रमेण अनभिज्ञा या सा ताम् (तत्पु0)। नीतिनिष्णाताम् = नीति में निष्णात, 'नीतौ निष्णाता ताम्'। बिन पठन-पाठन के नीति में निष्णात कैसे ? (विरोध) पठन-पाठन रूप कर्म (ब्राह्मण कर्म) न करते हुए नीति में निष्णात है (विरोध) (परिहार)। निष्णात = 'नि+स्ना+क्त (टाप्-स्त्री लि0)। स्थूलदर्शनाम् अपि = देखने से स्थूल होने पर भी, 'स्थूलम् दर्शनम् यस्याः सा ताम् (बहुब्रीहि)। सूक्ष्मदर्शनम् = सूक्ष्म दृष्टि वाली अर्थात् कत्तव्याकर्त्तव्य विचार वाली। स्थूल दर्शन (नेत्र) वाली सूक्ष्म दर्शन वाली कैसे हो सकती है ? (विरोध)। देखने में स्थूल अथवा स्थूल (विशाल) नेत्रों वाली तथा सूक्ष्म दृष्टि (अति तीक्ष्ण बुद्धि) वाली (विरोध परिहार)। ध्वंसकाण्डव्यसनिनीम् अपि = हिंसा आदि के व्यसन से युक्त होती हुई भी (विरोध), विधर्मियों या अनार्यों की हिंसा की व्यसनी होती हुई भी (विरोध परिहार) 'ध्वंसकाण्डस्य व्यसनम् अस्ति यस्यां तादृशीम् (बहुब्रीहि)'। 'व्यसन+इन्' = व्यसनिन् = अभ्यस्त। धर्मधौरेयीम् = धर्म के भार को धारण करने वाली। धौरेयीम् = 'धुर+दयञ्+ङीप् (स्त्रियाम्)'। कठिनाम् अपि कोमलाम् = कठिन होती हुई भी कोमल है। कठिन औश्र कोमल का विरोध स्वाभाविक है। क्योंकि दुर्धर्षमय कठिन और नर्म विभूषित कोमल होता है अतः विरोध स्पष्ट है। इसका परिहार इस प्रकार है - शरीर का स्पर्श अतिकठोर है तथा हृदयगत भाव अत्यन्त कोमल है। उग्राम् अपि शान्ताम् = उग्र होती हुई भी शान्त। उग्र और शान्त का भी स्वाभाविक विरोध है। दुर्धर्षों = अत्याचारियों और विधर्मियों के लिये उग्र स्वभाव वाली तथा सदाचारियों और धर्मानुयायियों के लिये शान्त (दयामय) है। शोभितविग्रहाम् अपि = सुन्दर संग्राम वाली होती हुई भी (विरोध), सुन्दर शरीर

वाली (विरोध परिहार), विग्रह = युद्ध अथवा शरीर 'शोभितः विग्रहः यस्याः सा ताम् (बहुब्रीहि)। दृढसन्धिबन्धाम् = सुदृढ़ सन्धिबन्धों वाली। सन्धिबन्ध = अवयव-संस्थान अथवा मैत्री सम्बन्ध। सुन्दर संग्राम वाली है तो दृढ़सन्धि (मैत्री) बन्ध वाली कैसे हो सकती है (विरोध)? सुन्दर शरीर वाली तथा दृढ़ अवयव-संस्थानों वाली (विरोध परिहार)। कलितगौरवम् अपि = गौरवशालिनी होती हुई भी। 'कलितम् गौरवम् यया सा ताम् (बहुब्रीहि)'। कलितलाघवाम् = लघुता से युक्त है (विरोध पक्ष), चतुरता से युक्त है (विरोध परिहार)। गौरव लाघव का विरोध स्पष्ट होते हुए भी गौरव से गम्भीरता और लाघव से चतुरता का अर्थ करने पर विरोध का परिहार हो जाता है। यहाँ तक सम्भावित विरोध का कथन किया गया है। विशाललललाटात् = विशाल ललाट वाली। प्रचण्ड-बाहुदण्डाम् = प्रबल भुजदण्डों वाली। शोणापाङ्गाम् = रक्तिम नेत्रों वाली, शोणे अपाङ्गे यस्याः सा ताम् (बहुब्रीहि)। कम्बुग्रीवाम् = शंख तुल्य कण्ठ वाली। 'कम्बु इव ग्रीवा यस्याः सा ताम्'। सुनद्धस्नायुम् = सुसंश्लिष्ट नसों वाली। वर्तुलश्यामश्मश्रुम् = गोल और काली दाढ़ी मूँछों वाली। वर्तुल = गोला। श्मश्रु = दाढ़ी-मूँछ। 'वर्तुलं श्यामं च श्मश्रुम् यस्याः सा ताम्' (बहुब्रीहि)। धारिताकृतिम् = आकृति को धारण करने वाली, धारिता आकृति यया सा ताम् (बहुब्रीहि)। धारिता = 'धृ+णिच्+क्त (स्त्रीलिङ्ग टाप्)'। विग्रहिणीम् = शरीर धारिणी। समासादितसमरस्फूर्तिम् = समर भूमि में स्फूर्ति प्राप्त करने वाली। समासदित = प्राप्त कर लिया है, 'सम् + आ + षद् + क्त'। समर = युद्ध, स्फूर्ति = फुर्ती। समासादित समरे स्फूर्तिः यया ताम् (बहुब्रीहि)'। दर्श दर्शम् = देख-देखकर 'दृश+ण्मुल्। प्रसादम् = प्रसन्नता को। आसादयन्तः = प्राप्त करने वाले, 'आ+षद्+शतृ (प्रथमा, बहुवचन)। वयस्याः = मित्रगण, वयसि भवाः वयस्याः 'वयम्+यत्'। कटान् = चटाइयों पर, ''उपान्वध्याङ्वसः'' से अधिवस्' के योग में द्वितीया हुई है। अध्यवसन् =बैठे थे, अधि + वस् + लङ्(झि)।''

टिप्पणी: — (1) 'चन्द्रचुम्बिन्यास्.....अट्टालिकायाम्-चन्द्र चुम्बिनी अटारी (प्रासाद) में अतिशयोक्ति अलङ्कार है। असम्बन्ध में सम्बन्ध का वर्णन किया गया है।

(2)'खर्वामपि.....कलितलाघवाम्-इस स्थल में विरोधाभास अलंकार है। विरोध प्रकार 'हिन्दी व्याख्या' में दिखाया गया है।

(3)'कम्बुग्रीवाम्' शङ्ख सदृश कंठ वाली में लुप्तोपमा अलंकार है।

(4)'धारितकाकृतिम् इव वीरताम्' तथा 'विग्रहिणीमिव धीरताम् में मूर्तिमती वीरता तथा शरीरधारिणी धीरता की सम्भवना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(5) प्रसाद गुण है।

तेषु च अपजलखान-दमन-विषयकवार्तामारिप्सुष्वेव कश्चिद् वेत्रहस्तः प्रतीहारः प्रविश्य, वेत्रं कक्षे संस्थाप्य, शिरो नमयित्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा न्यवीविदत्-''प्रभो! श्रीमान् गौरसिंहो दिदृक्षतेऽत्र भवन्तम्''-तदाकर्ण्य ''आम् प्रवेशय प्रवेशय'' इति सानन्दं सोत्साहं च कथितवति महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डले, प्रतिहारो निवृत्य, सपद्येवं तं प्रावीविशत्।

हिन्दी अनुवाद: — उन सबके अफजल खाँ के दमन विषयक वार्ता के प्रारम्भ करते ही बेंत को हाथ में लिये हुए प्रतिहारी प्रवेश करके, बेंत को कक्ष (बगल) में दबाकर, सिर-झुकाकर, हाथ जोड़कर निवेदन किया-''स्वामिन्! श्रीमान् गौरसिंह आपको देखना चाहते हैं। यह सुनकर-''ठीक

है! प्रवेश कराओ'' इस प्रकार आनन्द और उत्साहपूर्वक महाराष्ट्र मण्डल से इन्द्र के कहने पर प्रतीहारी ने लौटकर शीघ्र ही गौरसिंह को प्रवेश कराया।

हिन्दी व्याख्या: — अपजलखानदमनविषयकवार्ताम् = अफजलखाँ के दमन से सम्बन्धित वार्ता को। आरिप्सषु = प्रारम्भ करने की इच्छा वाले, 'आ + रभ् + सन् + उ (सप्तमी बहुवचन)। वेत्रहस्तः = हाथ में बेंत लिए हुए। प्रतीहारः = सन्देशवाहक। कक्षे = बगल में। संस्थाप्य = रखकर, 'सम् + स्था + णिच् + पुक् + ल्यप्'। नमयित्वा = झुकाकर, 'नम् + णिच् + कत्वा'। अञ्जलिं बद्ध्वा = अञ्जलि बाँधकर अर्थात् हाथ जोड़कर, ''वध् + क्त्वा'। न्यवीविदत् = निवेदन किया-''नि + विद् + लुङ् (तिप्)'। दिदृक्षते = देखने चाहते हैं। 'दृश + सन् + लट् (त् आत्मनेपद-'ज्ञाम्रु स्मृदृशां सनः)'। प्रवेशय = प्रवेश कराओ। सानन्दम् = आनन्दपूर्वक 'आनन्देन सहितम्' इति सानन्दम्, (अव्ययी0)। सोत्साहम् = उत्साहपूर्वक कथितवति = कहने पर 'कथृ + क्तवतु (सप्तमी, एकवचन)'। महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले = महाराष्ट्र मण्डल के इन्द्र के। आखण्डल = इन्द्र। निवृत्य = लौटकर। 'नि + वृत् + ल्यप्। प्रावीविशत् = प्रवेश कराया, 'प्र + विश् + लुङ्'।

टिप्पणी: — महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले = 'महाराष्ट्रमण्डल के इन्द्र' में श्रेष्ठ-पराक्रमी राजा शिवाजी में इन्द्र का आरोप किया है, अतः रूपक अलङ्कार है।

तमवलोक्यैव ''इत इतो गौरसिंह! उपविश, उपविश। चिराय दृष्टोऽसि अपि कुशलं कलयसि ? अपि कुशलिनस्तव सहवासिनः ? अप्यङ्गीकृतमहाव्रतृ निर्वहथ यूयम् ? अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः ?'' इति कुसुमानीव वर्षता पीयूष-प्रवाहेणेव सिञ्चता मृदुना वचनजातेन तत्रभवता शिववीरेणाऽऽद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानश्च, त्रिःप्रणम्य, अन्तरङ्ग-मण्डली-जुष्ट-कटे समुपविश्य, करो सम्पुटीकृत्य ''भगवन्! अखिलं कुशलं प्रभूणामनुग्रहेणास्माकमखिलानाम्, अङ्गीकृत-महाव्रते च मा स्म पदं धात् कञ्चनान्तराय इत्येव सदा प्रार्थ्यते भगवान् भूतनाथः। नूनतः प्रत्नश्च को नामाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च वृत्तान्तः- ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्ख-लानामुच्छिन्नसच्छीलानां म्लेच्छ-हतकानाम्'' इति कथयामास। ततश्च तेषंमेवमभूदालापः।

हिन्दी अनुवाद:— उसे (गौरसिंह को) देखते ही - ''इधर-उधर गौरसिंह। बैठो, बैठो। बहुत समय बाद दिखे हो, कुशल तो है ? तुम्हारी सहवासी सकुशल तो है ? तुम लोग स्वीकृत महाव्रत का निर्वाह तो कर रहे हो ? कोई नया समाचार है ?'' ''इस प्रकार फूलों की वर्षा सी करते हुये, अमृत प्रवाह से सींचते हुए से महाराज शिवाजी के मृदुवचन से समादृत होता हुआ गौरसिंह तीन बार प्रणाम करके, जिस पर मित्रमण्डली बैठी थी, उसी चटाई पर बैठकर, हाथ्ज्ञ जोड़कर कहा - ''भगवन्! प्रभु के अनुग्रह से हम सभी पूर्णरूप से कुशल हैं और हमारे स्वीकृत महाव्रत में किसी प्रकार का विघ्न न हो, यही भगवान् भूतनाथ (शङ्कर) से प्रार्थना किया करते हैं। आजकल नया अथवा पुराना वृत्तान्त क्या कथनीय अथवा श्रवणीय हो सकता है - केवल स्वच्छन्द उच्छृङ्खल, शील और सदाचार से रहित दुष्ट म्लेच्छों के दुराचार के अतिरिक्त।'' उसके बाद में उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

हिन्दी व्याख्या: — कलयसि = अनुभव करते हो, 'कल+लट् (सिप्)'। अपि = क्या, प्रश्नवाचक है। कुशलिनः = कुशलपूर्वक, 'कुशल+इन्'। सहवासिनः = साथ में रहने वाले। अङ्गीकृतमहाव्रतृम् = स्वीकार किये हुये महाव्रत को। निर्वहथ = निर्वाह कर रहे हो, 'निर्+वह+लट् (थ)'। वृत्तान्तः = समाचार, 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' (अमरकोष)। वर्षता = वर्षा

करते हुए, 'वृषु+शतृ (तृतीया ए0व0)। पीयूषप्रवाहेण = अमृत प्रवाह से, 'पीयूषस्य प्रवाहस्तेन' (तत्पु0)।इव = उत्प्रेक्षावाचक। सिञ्चता = सींचते हुये। मृदुनावचनजातेन= मृदु वचनों से।आद्रियमाणः = समादृत होता हुआ, आ+दृङ्+शानच्'।आपृच्छ्यमानः = पूछा गया (गौरसिंह का विशेषण), 'आ+पृच्छ्+शानच्'। त्रिः = तीन बार। अन्तरङ्गमण्डलीजुष्टकटे = अन्तरङ्गमण्डली के द्वारा सेवित चटाई पर। अन्तरङ्गमण्डली = आत्मीय जनों की मण्डली, जुष्ट = सेवित, ''जुषी (प्रीति सेवनयोः) + क्त'' कट = चटाई। 'अन्तरङ्गाणा मण्डल्या जुष्टः कटस्तस्मिन् (तत्पु0)। समुपविश्य = बैठकर, 'सम्+उप+विश्+ल्यप्'। सम्पुटीकृत्य = सम्पुटित करके (जोड़कर)। मास्मघात् = न आवे 'डुथाञ् लुङ्' 'मा' के योग से अट् नहीं हुआ। अन्तरायः = विघ्न। प्रार्थ्यते = प्रार्थना की जाती है। भूतनाथः = शङ्कर। प्रत्नः = पुरातन पुराणेप्रतनप्रत्यपुरातनचिरन्तनाः (अमरकोष)। अद्यतनसमये = आजकल। वक्तव्य = कहने योग्य 'वच्+तव्यत्'। श्रोतव्यः = सुनने योग्य, 'श्रु+तव्यत्'। ऋते दुराचारात् = दुराचार के अतिरिक्त। स्वच्छन्दानाम् = स्वच्छन्द, उच्छृङ्खलानाम् = उच्छृङ्खल और उच्छिन्नसच्छीलानाम् = शील और सदाचार से विरहित ('म्लेच्छहतक' का विशेषण है), उच्छिन्न = नष्ट हो गया है। सत् = सदाचार, शील = दया भाव। 'उच्छिन्नम् सत् शीलश्चे येषां तेषाम्। म्लेच्छ-हतकानाम् = दुष्ट यवनों के। कथयामास = कहा। आलापः = वार्तालाप।

टिप्पणी: — 'कुसुमानि इव वर्षत'-फूलों की वर्षा सी करते हुये तथा 'पीयूष प्रवाहेणेव सिञ्चता'-अमृत प्रवाह से सींचते हुए के समान ? यहाँ पर फूलों की वर्षा और अमृत से सींचने की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

शिववीरः - अथ कथ्यतां को वृत्तान्तः ? का च व्यवस्था अस्मन्महाव्रताश्रम-परम्परायाः ?

गौरसिंह-भगवन्!सर्व सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गीकृत -सनातन -धर्म -रक्षा-महाव्रतानां धारित-मुनि-वेषाणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमञ्च वलीकेषु गोपयित्वाः स्थापिताः परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविताः शक्तयः, कुशपुञ्जान्तः स्थापिता भुशुण्ड्यश्य समुल्लसन्ति। उ ंछस्य, शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्ग दी-पर्य्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य, कुसुमावचयनस्य, तीर्थाटनस्य, सत्सङ्गस्य च व्याजेन, केचन जटिला, परे मुण्डिनः, इतरे कार्षायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः सञ्चरन्ति। विजयपुरादुड्डीयाऽत्राऽऽगच्छन्त्या मक्षिकाया अप्यन्तः स्थितं वयं विद्म, किं नाम एषा यवनहतकानाम् ?

हिन्दी अनुवादः — शिववीर - तो बताइये, (आश्रमवासियों का) क्या वृत्तान्त है ? और हमारे महाव्रतधारी आश्रम-परम्परा की क्या व्यवस्था है ? गौरसिंह-भगवन्! सब ठीक है। प्रत्येक दो कोस के बीच सनातन धर्म की रक्षा के महाव्रत को धारण करने वाले मुनिवेषधारी शूरवीरों के आश्रम हैं। प्रत्येक आश्रमों के वलीकों (छज्जों) में छिपा कर रखी गई सैकड़ों तलवारें, छप्परों में छिपाई हुई शक्तियाँ और कुशों की ढेरों के बीच में रखी हुई बन्दूकें विद्यमान हैं। खेतों में गिरे हुए अन्न को इकट्ठा करने, बालियाँ बिनने, समिधा लाने, इङ्गुदी खोजने, भोजपत्र ढूँढने, तीर्थाटन करने, फूल चुनने और सत्संग के बहाने से कोई जटा धारण किये, कोई शिर मुंडाये हुए कुछ लोग गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए, और अन्य लोग ब्रह्मचारी के वेष में अनेकों चतुर गुप्तचुर बालक

घूम रहे हैं। विजयपुर से यहाँ तक उड़कर आने वाली मक्खी तक की आन्तरिक बातों को हम लोग जान लेते हैं, इन दुष्ट यवनों की तो बात ही क्या है ?

हिन्दी व्याख्या: — कथ्यताम् = कहिए। अस्मन्महाव्रताश्रमपरम्परायाः = हमारे महाव्रत के आश्रमों के परम्परा की। सुसिद्धम् = ठीक है, 'सु+षिध+क्त'। प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानाम् = प्रत्येक दो कोस के मध्य में सनातन धर्म की रक्षा के व्रत को स्वीकार करने वाले (वीरों का विशेषण) प्रति = प्रत्येक, गव्यूति = दो कोस, अन्तराल = मध्य, अङ्गीकृत = स्वीकृत। प्रतिगव्यूतीनाम् = अन्तराले अङ्गीकृतः सनातनधर्मस्य रक्षायाः महाव्रतः यैस्ते, तेषाम् (बहुव्रीहि)'। धारितमुनिवेषाणाम् = मुनिवेष को धारण करने वाले, 'धारितः मुनेः वेषः यैस्ते, तेषाम्' (बहुव्रीहि)। वीरवराणामाश्रमाम् = श्रेष्ठ वीरों का। गोपयित्वा = छिपाकर 'गुप्+णिच् क्त्वा'। वलीकेषु = छज्जों में। परशताः = सौ से अधिक। पटलेषु = छप्परों में। तिरोभाविताः = छिपाई हुई। शक्तयः = शक्तियाँ (शस्त्र विशेष)। कुशपुञ्जस्थापिताः = कुशों की ढेरों में रखी हुई। भुशुण्ड्ः = बन्दूकें। समुल्लसन्ति = विद्यमान हैं 'सम्+उत्+लस्+लट् (झ)' उ´छस्य = उच्छवृत्ति के, खेतों में गिरे हुये दोनों को, जो कृषि स्वामी द्वारा त्याग दिये जाते हैं, सञ्चित करने को 'उच्छ' कहते हैं। आश्रमवासियों की जीवनयापन की एक प्रकार की वृत्ति है। दोनों की बालियों को सञ्चित करने को शिल कहते हैं। ''उच्छः कणश आदानम् कणिकाशद्यर्जनम् शिलम्' (अमरकोष)। शिलस्य = बालियों के बिनने के। इङ्गुदी-पर्यन्वेषणस्य = इङ्गुदी फल (हिंगोट के बीच) के ढूँढने के। भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य = भोजपत्र के ढूँढने के, भूर्जपत्राणाम् परिमार्गणम् तस्य (तत्पु0)। कुसुमावचयनस्य = फूलों को चुनने के, कुसुमानाम् अवचयनम् तस्य (तत्पु0)। व्याजेन = बहाने से। जटिलाः = जटाधारी 'जटा+इलच्'। मुण्डिनः = शिरमुंड़े, काषायिणः = गेरुआ वस्त्रधारी। मौनिनः = मौनी साधू। चराः = गुप्तचर। उड्डीय = उड़कर। आगच्छन्त्याः = आने वाली। मक्षिकायाः = मक्खी के। अन्तः स्थितम् = आन्तरिक को। विद्मः = जान लेते हैं।

शिववीरः - साधु, साधु कथं न स्यादेवम् ? भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतवर्षम् भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति अस्ति च ''प्राणा यान्तु, न च धर्मः'' इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्म-घर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंह-सङ्घेष्वपि, वारण-वारेष्वपि, चन्द्रहास-चमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति। तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्यवशीयाः वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः।

हिन्दी अनुवादः — शिववीर-बहुत अच्छा, ऐसा क्यों न हो ? तुम लोग भारतीय हो, उसमें भी उच्च कुल में पैदा हुए हो, यह भारतवर्ष है, अपने देश के प्रति सभी का स्वाभाविक ही अनुराग होता है, आपका सनातन धर्म सबसे पवित्र है, उसे ये जालिम जड़ से उखाड़ रहे हैं और ''प्राण चले जायें किन्तु धर्म न जाय'' यह आर्यों का दृढ़ सिद्धान्त है। महापुरुष धर्म के लिये लुट जाते हैं, मार दिये जाते हैं धर्म नहीं छोड़ते हैं किन्तु धर्म की रक्षा के लिये सभी सुख को भी छोड़कर, अर्द्धरात्रि में भी, वर्षा में भी, ग्रीष्म की धूप में भी, महान् जंगलों में भी, पर्वतों की गुफाओं में भी, सर्पसमूह में भी, सिंह के झुण्डों में भी, हाथियों के झुण्डों में भी और तलवारों की चमत्कृति में भी

निर्भय विचरण करते हैं। इसलिये तुम लोग धन्य हो और वस्तुतः आर्यवंशीय तथा भारतवर्षीय हो।

हिन्दी व्याख्या:— भारतवर्षीया = भारतवर्ष में जन्म लेने वाले, 'भारतवर्ष छ (ईय्)'। महोच्चकुलजाताः = माहन् कुल में उत्पन्न। स्वाभाविकः = प्राकृतिक। स्वदेशे = अपने देश के प्रति। यौष्माकीणः = तुम्हारा, 'युष्माकम् अयम्-यौष्माकीणः', 'युष्मद्' शब्द के षठ्यन्त पद से 'शेष' अर्थ में 'खञ्' प्रत्यय होकर - 'युष्मद् खञ् (ईन्)' तथा युष्मद् को 'युष्माक' आदेश हो जाता है - ''तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ''। आदिवृद्धि होकर ''यौष्माकीणः'' रूप बनता है। जाल्मा = अविवेकी, 'जाल्मोऽसमीक्ष्यकारीस्यात्' (अमरकोष)। समूलम् = जड़ सहित। उच्छिन्दन्ति = उखाड़ रहे हैं, उत्+छिदिर (द्वैधीकरणे)+लट् (झि)। प्राणाः = प्राण, प्राण शब्द का नित्य बहुवचन में प्रयोग होता है। यान्तु = जायें। धर्मस्यकृते = धर्म के लिये। लुण्ठ्यन्ते = लूटे जाते हैं। पात्यन्ते = गिराये जाते हैं। हन्यन्ते = मारे जाते हैं। त्यजन्ति = छोड़ते हैं। रक्षायै = रक्षा के लिये। सर्वसुखानि = सभी सुखों को। त्यक्त्वा = छोड़कर, त्यज्+क्त्वा। निशीथेष्वपि = अर्द्धरात्रि में भी। वर्षासु = वर्षा में। ग्रीष्मघर्मेष्वपि = गर्मी की धूप में भी। महारण्येषु अपि = घने जंगलों में भी। ''महान्ति चेमानि अरण्यानि तेषु''। कन्दरिकन्दरेष्वपि = पर्वतों की कन्दराओं में भी, ''कन्दरीणाम् कन्दरास्तेषु (तत्पु0)''। व्यालवृन्देषु अपि = सर्पों के समूहों में भी, व्याल = सर्प, वृन्द = समूह, व्यालानां वृन्दास्तेषु। सिंहसङ्घेषु अपि = सिंहों के झुण्डों में भी। वारणवारेष्वपि = हाथियों के झुण्डों में भी, वरण = हाथी, वार = समूह। ''समूहे निवहव्यूहसंदोहविसरव्रजाः। स्तोमौघनिकरव्रातवारसंघात सञ्चयाः।'' (अमरकोष)। चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि = चमकती हुई तलवारों के बीच में, 'चन्द्रहासानाम् चमत्कारास्तेषु। निर्भयाः = भयरहित, 'निर्गतः भयः येषाम् ते'। विचरन्ति = घूमते हैं। धन्याः स्थ = धन्य हो। आर्यवंशीयाः = आर्यवंश में पैदा होने वाले, 'आर्यवंश+छ (ईय)'।

टिप्पणी: — (1)'प्राणाः यान्तु न च धर्माः' व्यास जी की इस उक्ति में 'स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'' की भावना निहित है।

(2) स्वदेश के प्रति प्रेम को स्वाभाविक बताया गया है। अपने धर्म को पवित्रतम माना गया है।

(3) यवनों के द्वारा दुराचारों के किये जाने पर भी भारतीय आर्य अपने धर्म और देश की रक्षा में प्राणार्पण से रत हैं। इसमें उनकी साहसिकता और धर्मप्रियता द्योतित है। इसी का परिणाम है कि अद्यावधि हिन्दू धर्म अक्षुण्ण बना रहा। देश के इतने अधिक दिन तक परतन्त्र रहने तथा विभिन्न सम्प्रदायों के द्वारा अनेकों प्रयत्नों के बाद भी सनातन धर्म नष्ट नहीं हुआ।

अभ्यास प्रश्न-2

1- गौरसिंह सन्यासी के वेश में किसके साथ गये।

2- गौरसिंह सन्यासी के वेश में सहचर के साथ किससे मिलने गये।

3- महाराज शिवाजी को गौरसिंह कितने बार प्रणाम किया ।

4- आश्रमवासियों का वृत्तान्त क्या है यह किसने पूछा।

5- गौरसिंह जब शिवाजी से मिलने गये तो शिवाजी क्या कर रहे थे ।

अथ कथ्यतां कोऽपि विशेषोऽवगतो वा अपजलखानस्य विषये ? गौरसिंह: ''अवगतः तत्पत्रमेव दर्शयामि'' इति व्याहृत्य, उष्णीषसन्धो स्थापितं कन्यापहारक-यवन-युवक-मृत-शरीरवस्त्रान्तः प्राप्तं पत्रं बहिश्चकार। सर्वे च विजयपुराधीशमुद्रामवलोक्य ''किमतेत्

? एतत् ? कथमेतत् ? कस्मादेतत् ? इति जिज्ञासमानाः सोत्कण्ठा वितस्थिरे। गौरसिंहस्तु शिववीरस्यापि तत्प्राप्ति-चरित-शुश्रूषामवगत्य संक्षिप्य सर्वं वृत्तान्तमवोचत्। ततस्तु दर्शयताम्, प्रसार्यताम्, पठ्यताम्, कथ्यताम्, किमिदम् ? इति पृच्छति शिवीरे गौरसिंहो व्याजहार -

हिन्दी अनुवाद: — तो बताइये, अफजल खाँ के विषय में कोई विशेष (बात) ज्ञात हुई ? गौरसिंह-''ज्ञात हुई, उसका पत्र ही दिखाता हूँ'' यह कहकर पगड़ी के बीच में रखे हुए, कन्या के अपहरण करने वाले यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से प्राप्त पत्र को बाहर निकाल लिया। सभी लोग विजयपुर के नरेश की मुहर (जो पत्र पर लगी हुई थी) को देखकर ''यह क्या है ? यह कहाँ से (प्राप्त हुआ) ? यह कैसे (प्राप्त हुआ) ? यह किससे (मिला) ?'' इसे जानने की इच्छा से (अत्यधिक) उत्कण्ठित हो उठे। गौरसिंह, उस पत्र की प्राप्ति का वृत्तान्त सुनने की शिववीर की भी इच्छा जानकर संक्षेप में सारा वृत्तान्त कह डाला। उसके बाद-दिखायो, खेलो, पढ़ो, कहो, यह क्या है द्य'' शिववरी के इतना पूछने पर गौरसिंह बोला -

हिन्दी व्याख्या:— कथ्यतां = कहिए। विशेषः = नया अवगत = ज्ञातः हुआ। दर्शयामि = दिखाता हूँ। व्याहृत्य = कहकर, 'वि + आ + हृ + ल्यप्'। उष्णीषसन्धौ = पगड़ी के अन्दर, उष्णीष = पगड़ी, सन्धी मध्य। स्थापितम् = रखे हुए। कन्यापहारकयवनयुवक- मृतशरीरवस्त्रान्तः = बालिका चुराने वाले यवन युवक के मृतशरीर के वस्त्र के अन्दर से। अपहारक = अपहरण केरने वाला, ''अप + हृ: ण्वुल् (अक)''। ''कन्यायाः अपहारकः यः यवनयुवकस्तस्यमृतम् शरीरम् तस्य वस्त्रस्य अन्तः तत्पु0)''। बहिश्चकार = बाहर किया, ''बहिः + कृ + लिट् (तिप्)।'' विजयपुराधीशमुद्राम् = विजयपुर के राजा की मुहर को, ''विजयपुरस्य अधीशस्तस्य मुद्राम् (तत्पु0)''। जिज्ञासमानाः = जानने की इच्छा वाले, ''ज्ञा + सन् + शानच् (प्रथमा बहुवचन)''। सोत्कण्ठाः = उत्कण्ठित हुए, ''उत्कण्ठया सहिताः इति सोत्कण्ठाः।'' वितस्थिरे = स्थित हो गये। तत्प्राप्तिचरितशुश्रूषाम् = पत्र-प्राप्ति के वृत्तान्त को सुनने की इच्छा को। ''तस्य प्राप्तेः चरितस्य शुश्रूषाम् (तत्पु0)।'' अवगत्य = जानकर, अव + गम् + ल्यप्।' संक्षिप्य = संक्षिप्त करके। अवोचत् = कहा। दर्शयताम् = दिखाइये। प्रसार्यताम् = फैलाइये, ''प्र + सृ + लोट्।'' पृच्छति = पूछने पर, प्रच्छ + शतृ (सप्तमी एकवचन)।' व्याजहार =कहा, ''वि + आ + ह + लिट् (तिप्)।'' भगवन्! सर्पाकारैरक्षरैः पारस्य-भाषायां लिखितं पत्त्रमेतदस्ति। एतस्य सारांशोऽयमस्ति-विजयपुराधीशः स्वप्रेषितमपजलखानं सेनापति सम्बोध्य लिखति यत्-''वीरवर ! महाराष्ट्र-राजेन सह योद्धुं प्रस्थितोऽसीति मा स्म भूत्कश्चनान्तरायस्तव विजये। शिवं युद्धे जेष्यसि चेत्, प¯यां सिंहं जितवानसीति मंस्ये, हिन्तु सिंहहननापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशस्यः। तद् यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेः तद् वीरपुङ्गवोपाधि-दान सहकारेण तव महतीं पदवृद्धिं कुर्य्याम्। गोपीनाथपण्डितोऽपि मया तब निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तब निकटे कथयिष्यति। प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति'' इति।

हिन्दी अनुवाद:— भगवन् ! यह पत्र सर्पाकार अक्षरों से फारसी भाषा में लिखा गया है। इसका आशय यह है कि विजयपुर नरेश अपने द्वारा भेजे गये सेनापति अफजल खाँ को सम्बोधित करके लिखता है कि - ''वीरवर महाराष्ट्र के राजा के साथ युद्ध करने के लिये प्रस्थान किये हो, अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का विघ्न न हो। यदि शिववीर को युद्ध में जीत लिया तो पैदल ही सिंह को जीत लिया, ऐसा मानूँगा, किन्तु सिंह को मारने की अपेक्षा जीवित सिंह को

वश में कर लेना अधिक प्रशंसनीय होता है। यदि छल से जीवित ही शिव को (पकड़) लाओ तो वीरपुङ्गव की उपाधि देने के साथ तुम्हारी बहुत बड़ी पदवृद्धि भी कर दूँगा। गोपीनाथ पण्डित भी मेरे द्वारा तुम्हारे समीप भेज दिये गये हैं, वे मेरे तात्पर्य (अभिप्राय) को विस्तार से तुम से कहेंगे और प्रयोजनवश शिवाजी से भी मिलेंगे।

हिन्दी व्याख्या:— सर्पाकारैः = टेढ़े-मेढ़े, 'सर्पस्य आकारः इव आकारः येषाम् तैः (बहुब्रीहि')। अक्षरैः = अक्षरों से। पारस्यभाषायाम् = फारसी भाषा में, 'पारस्यानाम् भाषा तस्याम् (तत्पु0)'। स्वप्रेषितम् = अपने द्वारा भेजे हुए। सम्बोध्य = सम्बोधित करके, 'सम् + बुध् + ल्यप्।' महाराष्ट्रराजेन = महाराष्ट्र के राजा शिववीर के। योद्धुम् = युद्ध करने के लिये, 'युध् + तुमुन्'। प्रस्थितोऽसि = प्रस्थान किये हो। मास्मभूत = न हो, 'भू + लुङ् (तिप्)' मा के योग में अट् का अभाव। कश्चन् = कोई। आन्तरायः = विघन। जेष्यसि = जी लोगे, 'जि (जये) + लृट् (सप्)'। प॰याम् = पैरों से अर्थात् पैदल। जितवान् असि = जीत लिये हों। मंस्ये = मानूँगा, ''मन् + लृट् (इड्)।'' सिंहहननापेक्षया = सिंह को मारने की अपेक्षा। ''सिंहस्य हूननम्, तस्य अपेक्षया।'' जीवतः = जीवित (सिंहस्य का विशेषण)। 'जीव + शतृ (षष्ठी एकवचन)। वशीकारः = वश में करना। प्रशंस्य = प्रशंसनीय, 'पत्र + शस् + यत्'। जीवन्तम् = जीवित। आनयेः = लाते हो, 'आ + नी + लिङ् (सिप्)'। वीरपुङ्गवोपाधिदानसहकारेण = 'वीरपुंगव' की उपाधि देने के साथ ही। 'वीरपुङ्गवस्य उपाधेः दानम् तस्य सहकारस्तेन (तत्पु0)। प्ररस्थापितः अस्ति = भेजे गये हैं। तात्पर्यम् = अभिप्राय को। विशदीकृत्य = विस्तृत करके, विशद से 'च्वि' प्रत्यय। प्रयोजनवशेन = प्रयोजन के कारण। साक्षात्करिष्यति =साक्षात्कार करेंगे अथवा मिलेंगे।

टिप्पणी: — (1)'शिवं युद्धे जेष्यसि चेत् प॰यां सिंहं जितवानसि' इस स्थल में निदर्शनालंङ्कार है।

(2)'वीरपुंगव' एक प्रकार की राज्यप्रदत्त वीरता की उपाधि है।

इत्याकर्णयत एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-निबद्धौ मीनाविव नयने संजाते, मुखं च बाल-भास्कर-बिम्ब-विडम्बना-माललम्बे, अधरं च धीरताधुरामधरीकृतवान्।

अथ स दक्षिण-कर-पल्लवनेन श्मश्रु परामृशन्नाकाशे दृष्टिं बद्धवा अरे रे विजयपुर-कलङ्क! स्वयमेव जीवन् शिवः तब राजधानीमाक्रम्य, वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण तव महतीं पदवृद्धिमङ्गीकरिष्यति, तत्किं प्रेषयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदर्य्य-हतकान् ? -इति साग्रेडमवोचत्। अपृच्छच्च ''ज्ञायते वा कश्चिद् वृत्तान्तो गोपीनाथपण्डितस्य ?''

हिन्दी अनुवाद: — इतना सुनते ही शिववीर की आँखें लाल रेशमी जाल में फँसी मछली की तरह हो गई, मुख प्रातःकालीन सूर्यबिम्ब के समान (लाल) हो गया और अधर (निम्नोष्ठ) ने धीरता को छोड़ दिया (अर्थात् फड़कने लगा)।

उसके बाद शिववीर पल्लव सदृश दाहिने हाथ से मूँछों का स्पर्श करते हुए, आकाश की ओर देखते हुए-''अरे रे विजयपुर के कलङ्कः स्वयं ही जीवित शिववीर तुम्हारी राजधानी पर आक्रमण करके वीरपुङ्गव की उपाधि के साथ तुम्हारी (दी हुई) महती पदवृद्धि को अंगीकार करेगा, तो क्यों मृत्यु के खिलौने इन दुष्ट कायरों को भेजते हो ?'' इसे कई बार कहा और पूछा कि ''क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समाचार मिला।''

हिन्दी व्याख्या: — आकर्णयत एव = सुनते ही। अरुणकौशेयजालनिबद्धौ = लाल-लाल रेशमी जाल में निबद्ध (या फँसे हुए)। ''अरुणम् कौशेयस्य जालम् तेन निबद्धौ (तत्पु0)।'' मीनौ

इव = मछली के समान। संजाते = हो गये। बालभास्करबिम्बविडम्बनाम् = नवोदित सूर्यमण्डल के समान (लाल)। ''बालश्चासौ भास्करतस्य ब्रिम्बम् तस्य बिडम्बनाम् (तत्पु0)''। आललम्बे = धारण किये हुए।धीरताधुराम् = धीरता के भार को, धीरता = धैर्य, धुरा = भार। 'धीरतायाः धुराम्।' अधरीकृतवान् =छोड़ दिया न अधरं, अधरं कृतवान् इति अधरीकृतवान्-'नञ् + अधर + च्वि + कृ + क्तवतु।' श्मश्रु = मूँछ को। परामृशन् = संस्पर्श करते हुए, ''पर + आ + मृश + शतृ''। दृष्टिबद्धवा = आँख गड़ाकर। 'दृश् + क्तिन्' (नेत्र), 'बध + क्त्वा।' जीवन् = जीते हुए। आक्रम्य = आक्रमण करके, ''आ क्रम + ल्यप्।'' अङ्गीकरिष्यति = स्वीकार करेगा। प्रेषयसि = भेज रहे हो। क्रीडनकान् = खिलौनों को 'क्रीड्यतेऽनेनेति क्रीडनम् 'क्रीड + घञ्'। क्रीडनमेव क्रीडनकम्, क्रीडन् + क = क्रीडनक (द्वितीया ब0व0)। कदर्य्यहतकान् = दुष्ट नीचों को, कदर्य्य = नीच, हतक = दुष्ट। साम्रेडम् = अनेक बार। अवोचत् = कहा। अपृच्छच्च = और पूछा। ज्ञायते = जानते हो। वृत्तान्तः = समाचार।

टिप्पणी: — (1)गौरसिंह के वचन सुनकर शिववीर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। आँखें लाल हो गईं और ओंठ फड़कने लगा। अपनी मूँछों पर हाथ फेरने लगा इससे यहाँ वीर रस है, क्रोध स्थायीभाव है और मुख विकृति आदि अनुभाव है।

(2) वैदर्भी रीति प्रसाद गुण है।

यावद् गौरसिंहः किमपि विवक्षित तावत्प्रतीहारः प्रविश्य 'विजयतां महाराजः' इति त्रिर्व्याहृत्य, करौ संपुटीकृत्य, शिरो नमयित्वा कथितवान् ''भगवन्! दुर्गद्वारि कश्चन गोपीनाथनामा पण्डितः श्रीमन्तं दिदृक्षुरुपतिष्ठते। नायं समयः प्रभूणां दर्शनस्य, पुनरागम्यताम्'' इति बहुशः कथ्यमानोऽपि ''किञ्चन्नत्यावश्यककार्यम्'' इति प्रतिजानाति। तदत्र प्रभुचरणा एवं प्रमाणम्-इति।

हिन्दी अनुवाद: — जैसे ही गौरसिंह कुछ कहना चाहता था वैसे ही प्रतीहारी ने प्रवेश करके- ''जय हो महाराज की'' ऐसा तीन बार कहकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर कहा - ''भगवन्! दुर्ग के द्वार पर कोई गोपीनाथ नामग पण्डित आपके दर्शन की इच्छा से खड़े हैं। यह स्वामी के दर्शन का समय नहीं है, पुनः आइयेगा'' ऐसा बार-बार कहने पर भी कहते हैं कि ''कुछ अत्यावश्यक कार्य है।'' अब प्रभु का जैसा आदेश हो।

हिन्दी व्याख्या: — विवक्षित = कहने की इच्छा करता है। ''वच् + सन् + लट् (तिप्)' प्रविश्य = प्रवेश करके, 'प + विश् + ल्यप्। विजयताम् = जय हो। त्रि = तीन बार, व्याहृत्य = कहकर, ''वि + आ + हृ + ल्यप्''। संपुटीकृत्य = जोड़कर। नमयित्वा = झुककर। कथितवान् = कहा, ''कथ + क्तवतु (प्रथमा एकवचन) दुर्गद्वारि = किले के द्वार पर। दिदृक्ष = देखने की इच्छा वाले, 'दृश् + सन् + ड।' उपतिष्ठते = प्रतीक्षा कर रहे हैं। 'उप + स्था + लट् (त)''। बहुशः = अनेका बार, 'बहु + शस्'। कथ्यमानः अपि = कहे जाने पर भी ''कथ् + शानच्''। प्रतिजानाति = दृढ़ता से कह रहे हैं। तत् = तो। अत्र = इस विषय में। प्रभुचरणाः = स्वामी, एव = ही, प्रमाणम् = प्रमाण हैं। इस पूरे वाक्य का आशय हुआ कि इस विषय में जैसा आप आदेश करें वैसा किया जाय।

तदवगत्य ''सोऽयंगोपीनाथः, सोऽयं, गोपीनाथः'' इति साम्रेडमंसतर्कं सोत्साहञ्च व्याहृतवत्सु निखिलेषु, शिववीरेण निजबाल्यप्रियो माल्यश्रीकनामा संबोध्य कथितो यद् ''गम्यतां दुर्गान्तर एव महावीरमन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोज्य-पर्यङ्कादि-सुखद-सामग्रीजातेन सत्क्रियताम्, ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि''- इति।'

हिन्दी अनुवाद: — यह जानकर, ''यह वही गोपीनाथ हैं, यह वही गोपीनाथ हैं'' ऐसा सभी लोगों के द्वारा तर्क और उत्साह के साथ बार-बार कहने पर शिववर ने अपने बाल्यकाल के मित्र माल्यश्रीक को सम्बोधित करके कहा कि ''जाओ किले के भीतर ही महावीर मन्दिर में उन्हें रुकने का स्थान दे दो और भोज्य पदार्थ तथा पलंग आदि सुखद सामग्रियों से उनका सत्कार करो, तब मैं भी उनसे मिलूँगा।

हिन्दी व्याख्या:— तत् अवगत्य = यह जानकर, ''अव + गम् + ल्यप्'' साम्रेडम् = अनेक बार। सतर्कम् = तर्क या अनुमान पूर्वक। सोत्साहम् = उत्साहपूर्वक। व्याहृतवत्सु = कहने पर, ''वि + आ + हृ + क्तवतु (सप्तमी ब0व0)। निखिलेषु = सभी के। निजबाल्यप्रियः = अपने बचपन के मित्र, ''निजस्य बाल्यः प्रियः इति निजबाल्यप्रियः।' बालेभवः 'बाल + यत्' (बचपन का)। सम्बोध्य = सम्बोधित करके। कथितः = कहा। गम्यताम् = जाओ। दुर्गान्तरे = किले के अन्दर। तस्मै = गोपीनाथ को। दीयताम् = दीजिये। भोज्यपर्यङ्कादिसुखदसामग्रीजातेन = भोजन, पलंग आदि सुखद सामग्रियों के द्वारा, ''भोज्य पर्यङ्कादयश्च याः सुखद सामग्र ïस्ताम्योजातस्तेन''। भोज्य = भोजन करने योग्य, 'भुज् + यत् (भोग्य अर्थ में)'। पर्यङ्क = पलंग। सत्क्रियताम् = सत्कार करिये। ततः = बाद में। साक्षात्करिष्यामि = मिलूँगा।

ततो बाढमित्युक्त्वा प्रयाते माल्यश्रीके; ''महाराज! आज्ञा चेदहमद्यैव अपजलखानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याऽखिलं व्यवसितं विज्ञाय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि; नाधुना मम क्षान्तिः शान्तिश्च, यतः सन्या सिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्यवनभटयोवर्तियाऽवागमम्, यत श्च एवैते युयुत्स ते'' इति गौरसिंहो मन्दं कर्णान्तिकं व्याहार्षीत्।ततो ''वीर! कुशलोऽसि, सर्वं करिष्यसि, जाने तव चातुरीम्, तद् यथेच्छं गच्छ, नाहं व्याहन्मि तवोत्साहम्, नीतिमार्गान् वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकदर्य्याः, अतिकूटनीतयश्च सन्ति। एतैः सह परम-सावधानतया व्यवहरणीयम्''-इति कथयित्वा शिववीरस्तं विससर्ज।

हिन्दी अनुवाद: — तब ''ठीक है'' ऐसा कहकर माल्यश्रीक के चले जाने पर ''महाराज यदि आज्ञा हो तो आज ही किसी प्रकार अफजलखान से मिलकर उसके सम्पूर्ण कार्यक्रम को जानकर आप से निवेदन करूँ; इस समय मुझमें शान्ति या सहिष्णुता नहीं रह गई है क्योंकि सन्यासीवेष में आते हुए मुझे दो यवन योद्धाओं से यह ज्ञात हुआ कि कल ही ये लोग (यवन सैनिक) युद्ध करना चाहते हैं'' ऐसा गौरसिंह ने कान के पास धीरे से कहा। तब, 'वीर! तुम कुशल हो, सब कुछ करोगे, तुम्हारी चतुरता को जानता हूँ, अतः तुम अपनी इच्छानुसार जाओ, मैं तुम्हारे उत्साह को नहीं मारना चाहता, तुम नीति-मार्गों को जानते हो, किन्तु ये शत्रु अत्यन्त निर्दय, नीच तथा कूटनीति वाले हैं। इन सबके साथ अत्यन्त सावधानी से व्यवहार करना चाहिए'' ऐसा कहकर शिववीर ने गौरसिंह को विदा कर दिया।

हिन्दी व्याख्या: — बाढम = ठीक है (अव्यय)। इति उक्त्वा = ऐसा कहकर। प्रयाते = चले जाने पर, ''प्र + या + क्त (सप्तमी एकवचन)''। चेत् = यदि। साक्षात्कृत्य =साक्षात्कार करके। व्यवसितम् = इच्छाओं (इरादों) को 'वि + अव + षिञ् + क्त'। विज्ञाय = जानकर, ''वि + ज्ञा + ल्यप्''। प्रभुचरणेषु = स्वामी के चरणों में। विनिवेदयामि = निवेदन करूँगा, ''वर्तमानसामीप्ये लट्'' से लट् लकार का प्रयोग हुआ है। क्षान्तिः = क्षमा या सहिष्णुता। सन्यासीवेषः = सन्यासी वेष धारण किये हुये। समागच्छत् = आता हुआ, 'सम् + आ + गम् + शतृ।'' यवनभटयोः =

मुसलमान योद्धाओं की। वार्तया = बातचीत से। अवागमम् = ज्ञात हुआ। श्वः = कल। युयुत्सन्ते = युद्ध करना चाहते हैं, ''युध् + सन् लट् (ज्ञ)''। कर्णान्तिकम् = कानों के पास, ''कर्णयोःअन्तिकम् इति, कर्णान्तिकम्''। व्याहार्षीत् = कहा, ''वि आ + हृ + लुङ्''। चातुरीम् = चतुरता को। यथेच्छम् = नष्ट करूँगा, ''वि + आ + हन् + लट् (मिप्)।'' वेस्ति = जानते हो। परिपन्थिनः = शत्रु। अतिकदर्य्याः = अत्यन्त नीच ''कदर्येकृपण क्षुद्र....'' (अमरकोष)। परमसावधानतया = अत्यन्त सावधानी से। व्यवहरणीयम् = व्यवहार करना चाहिये, ''वि + अव + हृ + अनीयर''। विससर्ज = विदा कर दिया, ''वि + सृज + लिट् (तिप्)।

गौरसिंहस्तु त्रिः प्रणम्य, उत्थाय, निवृत्य, निर्गत्य, अवतीर्य, सपदि तस्या एव निम्ब-तल-वेदिकायाः समीप आगत्य, स्वसहचरं कुमारमिङ्गितेनाऽऽहूय कस्मिंश्चित् स्वसंकेतित-भवने प्रविश्य, आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्रपटेन प्रोञ्छय, ललाटे सिन्दूर-बिन्दु-तिलकं विरचय्य, उष्णीषमपहाय, शिरसि सूचिस्यूतां सौवर्ण-कुसुम-लतादि-चित्र-विचित्रतामुष्णीषिकां संधार्य, शरीरे हरितकौशेय-कञ्चुकिकामायोज्य, पादयोः शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मिते महार्हे उपानहौ धारयित्वा; लघीयसीं तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-हस्ते समर्प्य, गुप्तच्छुरिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिकां यष्टिकां मुष्टौ गृहीत्वा, पटवासैर्दिगन्तं दन्तुरयन्, करस्थपटखण्डेन मुहुर्मुहुराननं प्रोञ्छन् गायकवेषेण अपजलखान-शिविराभिमुखं प्रतस्थे।

हिन्दी अनुवादः— गौरसिंह तीन बार प्रणाम कर, उठकर, घूमकर, निकल कर, (नीचे) उतरकर तुरन्त उसी नीम के पेड़ के नीचे के चबूतरे के पास आकर अपने सहचर बालक को संकेत से बुलाकर किसी पहले से निश्चित भवन में प्रवेश करके अपने और कुमार के भी बालों को कंघी से सँवार कर मुख को गीले कपड़े से पोंछकर मस्तक पर सिन्दूर-बिन्दु का तिलक लगाकर, पगड़ी को अलग करके, सिर पर सुई से सिले सोने के पुष्प लतादि चित्रों से चित्रित टोपी लगा कर, शरीर में हरा रेशमी कुर्त्ता पहनकर, पाँवों में लाल रेशमी वस्त्र से निर्मित अधोवस्त्र (पायजामा) तथा दिल्ली से निर्मित बहुमूल्य जूते धारण कर एक छोटे से तानपूरे को साथ ले चलने के लिये सहचर (बालक) के हाथ में देकर गुप्त छुरी वाली तथा हाथी दाँत के मूँठ वाली छड़ी (गुप्ती) को मुट्ठी में लेकर कपड़े में लगी सुगन्ध से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए, हाथ में लिये हुए रुमाल से बार-बार मुख को पोंछते हुए गायकवेष के अफजलखान से शिविर की ओर प्रस्थान कर दिया।

हिन्दी व्याख्या - त्रिः प्रणम्य = तीन बार प्रणाम करके। निवृत्य = लौटकर। निर्गत्य = निकलकर, 'नि + गम् + ल्यप्'। अवतीर्य = उतरकर, 'अव + तृ + ल्यप्'। सपदि = तुरन्त। निम्बतरुतलवेदिकायाः = नीम के वृक्ष के नीचे के चबूतरे के, ''निम्बस्य तरोः तले या वेदिका तस्याः (तत्पु0)''। स्वसहचरम् = अपने साथी को। इङ्गितेन = संकेत से। आहूय = बुलाकर। स्वसंकेतितभवने = स्वसंकेतित भवन में। प्रविश्य = प्रवेश करके। आत्मनः = अपने। केशान् = बालों को। प्रसाधनिकया = कंघी से, ''प्रसाधनी कङ्कतिका'' (अमरकोष)। प्रसाध्य = सँवारकर, ''प्र + साधि + ल्यप्''। आर्द्रपटेन = गीले वस्त्र से। प्रोञ्छय = पोंछकर, ''प्र + उञ्छि ल्यप्''। सिन्दूरबिन्दुतिलकम् = सिन्दूर की बिन्दी का तिलक। विरचय्य = बनाकर, ''वि + ओहाक् (त्यागे) ल्यप्'। उष्णीषम् = पगड़ी को। अपहाय = उतार कर, 'अप + ओहाक् (त्योगे) ल्यप्'। सूचिस्यूताम् = सुई से सिली हुई। सौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रताम् = सोने के बने हुये

पुष्पलता आदि चित्रों से चित्रित। ''सौवर्णेन कुसुमलतादीनां चित्रेण विचित्रिताम् (तत्पु0)''। उष्णीषिकाम् = टोपी को। संधार्य = धारण करके 'सम् + धृञ् + ल्यप्'। हरितकौशेयकञ्चुकिकाम् = हरे रेशमी वस्त्र के अंगरखे को ''हरितेन कौशेयेन निर्मिताया कञ्चुकिका ताम् (तत्पु0)''। आयोज्य = पहनकर, ''आ + युज् + ल्यप्। शोणपट्टनिर्मितम् = लाल कपड़े के बने हुए, ''शोणपट्टेन निर्मितम् (तत्पु0)''। अधोवसनम् = पायजामे को। 'अधोवसन' कटिभाग से नीचे पहने जाने वाले वस्त्र को कहते हैं, अतः धोती या पायजामा कोई भी वस्त्र हो सकता है। 'अधोमार्गेण (चरणेन) धारणीयम् वसनम्' ऐसी व्युत्पत्ति करने पर पायजामा आदि तत्कालीन परिवेष के आधार पर अर्थ लगाया जाता है। आकलय्य = ग्रहण करके, ''आ + कल: ल्यप्''। महार्हे = बहुमूल्य। उपानहौ = जूते को। धारयित्वा = धारण करके। लघीयसीम् = छोटे से, ''अतिशयेन लघु इति लघीयसी लघु + ईयसुन्''। तानपूरिकाम् = तानपूरे को। सह = साथ में 'आत्मना' का आक्षेप करके उसी के साथ 'सह' का अन्वय किया जाता है- 'आत्मना सह'। तानपूरिका के साथ 'सह' का विशेष्य विशेषण भाव नहीं है। इसीलिये तृतीया की आशंका नहीं करनी चाहिये। नेतुम् = ले चलने के लिये। समर्प्य = देकर। गुप्तछुरिकाम् = जिसके अन्दर छुरी छिपी थी, ''गुप्ता छुरिका यस्याम् सा (बहुब्रीहि)। दन्तावलदन्तमुष्टिकाम् = हाथी दाँत की बनी हुई मूँठ वाली, दन्तावलस्य दन्तेकन निर्मिता मुष्टिका यस्यां ताम्'। दन्तावल = हाथी, नमुष्टिका = मूँठ (हाथ से पकड़ने का भाग)। यष्टिकाम् = छड़ी को। दन्तुरयन् = उन्नत करता हुआ (अर्थात् सुगन्धित करता हुआ), ''प्र + उछि + शतृ''। गायकवेषेण = गाने वाले के वेष में। अपजलखानशिविराभिमुखम् = अफजलखान के शिविर की ओर, ''अपजलखानस्य शिविरस्य अभिमुखम्''। प्रतस्थे = प्रस्थान किया, ''प्र + स्था + लिट् (त)''।

टिप्पणी:— ब्रह्मचारिबटु गौरसिंह में राजनीतिक चेतना और गुप्तचरता का सुन्दर चित्रण किया गया है।

अथ तौ त्वरितं गच्छन्तौ, सपद्येव परश्शत-श्वेतपट-कुटरैः शारद-मेघ-मण्डलायितं दीपमाला-विहित-बहुल-चाकचक्यम् अपजलखान-शिविरं दूरत एव पश्यन्तौ, यावत्सीमपमागच्छतस्तावत् कश्चन कोकनदच्छवि-वस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धा, कटिपर्यन्तसुनद्ध- काकश्यामाङ्गरक्षिकः, कर्बुराधोवसनः, शोण-श्मश्रुः, विजयपुराधीश-नामाङ्कित-वर्तुल- पित्तलपट्टिका-परिकलित-वात-वक्षस्थलः स्कन्धे भुशुण्डीं निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन् सावष्टम्भमुर्दूभाषया उवाच-'कोऽयं कोऽयम् ? इति ; ततो गौरसिंहेनापि 'गायकोऽहं श्रीमन्तं दिदृशे'' इति समार्दवं व्याख्यायि। ततो 'गम्यतामन्येऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति' इति कथयति प्रहरिणि, 'घृतेन स्नातु भवद्रसना' इति व्याहरन् शिविर-मण्डलं प्रविवेश।

हिन्दी अनुवाद:— इसके बाद जल्दी-जल्दी जाते हुए वे दोनों (गौरसिंह और उसके सहचर) सैकड़ों सफेद खेमों से शरत्कालीन मेघ-मण्डल के समान लगने वाले तथा दीपमालाओं से जगमगाने वाले अफजल खाँ के शिविर को दूर से ही देखते हुए शीघ्र ही जब उसके पास पहुँचे, तभी लाल कमल की छवि वाले वस्त्र खण्ड से शिर को लपेटे हुए, चितकबरे रंग का अधोवस्त्र (लुङ्गी) पहने हुए लाल दाढ़ी-मूँछ वाला, विजयपुर के सुल्तान के नाम से अङ्कित-गोल पीतल की पट्टिका (चपरास) को बायें वक्षस्थल पर डाले हुए, बन्दूक को कन्धे पर रखकर इधर-उधर आने जाने वाले (गश्त लगाने वाले) किसी आदमी ने उन्हें (गौरसिंह को) रोककर उर्दू भाषा में

बोला-''यह कौन है, यह कौन है ?'' तब गौरसिंह ने भी नम्रता से कहा-मैं गायक हूँ, श्रीमान को देखना चाहता हूँ। तब-''जाओ, अन्य गायक और वादक भी इसी समय गये हुए हैं।'' प्रहरी के ऐसा कहने पर-''तुम्हारी जीभ घी से डूबे'' ऐसा कहता हुआ गौरसिंह शिविरमण्डल में प्रवेश कर गया।

हिन्दी व्याख्या:— त्वरितं = शीघ्र ही। गच्छन्तौ = जाते हुए ''गम् + शतृ (प्रथमा, द्वि0 व0)। सपदि एव = शीघ्र ही। परश्शतश्वेतपटकुटैरः = सैकड़ों सफेद पटकुटीरों (खेमों) के कारण, परश्शतैः श्वेत पटानां कुटीरैः।'' पटकुटीर = तम्बू या खेमा। शारदमेघमण्डलायितम् = मण्डल के समान प्रतीत होने वाले, ''शरदिभवम् शारदम्, शारद्मेघमण्डलमिवाचरित'' 'मण्डल + क्यच् + क्त = मण्डलायितम्'। (उपमान के समान आचरण करने में क्यच् प्रत्यय)। दीपमालाविहितबहुलचाकचक्यम् = दीपमालिकाओं से अत्यधिक प्रकाशित होने वाले, ''दीपमालाभिः विहितम् बहुलम् चाकचक्यम् यस्य तत् (बहुब्रीहि)।'' चाकचक्यम् = जगमगाहट। दूरत = दूर से। पश्यन्तौ = देखते हुए, ''दृश् (पश्य) + शतृ (द्वि0 व0)'। कश्चन्ः = कोई। कोकनदच्छविवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्धा = लाल कमल की कान्ति वाले वस्त्रखण्डसे शिर को लपेटे हुए, कोकनद = लाल कमल, वष्टित = लपेटे हुए। कोकनदस्य छविः इव छविर्यस्य तेन, वस्त्रखण्डेन वेष्टितः मूर्धा यस्य सः (बहुब्रीहि)। कटिपर्यन्तसुनद्धकाकश्यामाङ्गरक्षिकः = कमर तक लम्बे कौए के समान काले अंगरखे वाला। कटिपर्यन्त = कमर तक, सुनद्ध = लटकने वाला, काक = कौआ, श्याम = काला, अङ्गरक्षक = अंगरखा। '' कटिपर्यन्त सुनद्धा काक इव श्यामा अङ्गरक्षिका यस्य सः (बहुब्रीहि)''। कर्बुराधोवसनः = चितकबरा अधोवस्त्र पहने हुए अधोवसन का अर्थ 'लुङ्गी' किया जाता है। शोणश्मश्रुः = लाल दाढ़ी मूँछों वाला। विजयपुराधीश.....वक्षस्थलः = विजयपुर के सुल्तान के नाम से अङ्कित गोल, पीतल की पट्टिका (चपरास) को बाँये वक्षस्थल पर लटकाये हुए। वर्तुल = गोल, पित्तलपट्टिका = पीतल की पट्टी (आजकल इसे चपरास भी कहा जाता है, जिसे सरकारी अधिकारियों के चपरासी लटकाये रहते हैं) परिकलित = विभूषित। ''विजयपुराधीशस्य नाम्ना अङ्कितया वर्तुलया पित्तलपट्टिकया परिकलितं वामं वक्षस्थलम् यस्य सः (तत्पुरुष गर्भ बहुब्रीहि)'' गतागतम् = गश्त। सावष्टम्भम = प्रतिरोधपूर्वक। दिदृक्षे = देखना चाहता हूँ, ''दृश् + सन् + लट् (इङ्)।'' समार्दवम् = नम्रता पूर्वक ''मृदोर्भावः मार्दवस्तेन सहितम् समार्दवम्।'' व्याख्यायि = कहा, ''वि + आ + ख्या + लुङ्''। गम्यताम = जाइये। गायकाः = गाने वाले। वादका = बजाने वाले। सम्प्रति = इसी समय। गताः = गये। कथयति = कहते हुए, ''कथ शतृ + सप्तमी, ए0व0)''। प्रहरिणि =प्रहरी (पहरेदार) के, ''यस्य भावेन भावलक्षणम्'' से सप्तमी विभक्ति। घृतेन स्नातु भवद्रसना = यह एक प्रकार की लोकोक्ति है इसका हिन्दी रूपान्तर है - ''तुम्हारे मुह में घी शक्कर।'' व्याहरन् = कहता प्रविवेश =प्रवेश किया, 'प्र + विश् + लट् (तिप्)।

तत्र च क्वचित् खट्वासु पर्यङ्केषु चोपविष्टान् सगडगडाशब्दं ताम्रकधूममाकृष्य, मुखात कालसर्पानिव श्यामल-निःश्वासानुद्गिरतः, स्वहृदयकालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जित-पुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखाग्निसंयोगं जीवन-दशायामेवाऽऽकलयतः, प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान्; क्वचिद् ''हरिद्रा, हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रं चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, श्रृङ्गवेरं श्रृङ्गवेरम्, रामठं रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं,

कुक्कुटाण्डम्, पललं पललम्'' इति कलकलैर्बालानां निद्रां विद्रावयतः, समीप-संस्थापित-कुतू-कुतुप-कर्करी-कण्डोल- कट-कटाह-कम्बि-कडम्बान् उग्रगन्धीनि मांसानि शूलाकुर्वतः, नखम्पचा। यवागूः स्थालिकासु प्रसारयतः, हिंगुगन्धीनि तेमनानि तितिण्डोरसैर्मिश्रयतः, परिपिष्टेषु कलम्बेषु जम्बीर-नीरं निश्च्योतयतः, मध्ये मध्ये समागच्छतस्ताम्रचूडान् व्यजन-ताडनैः पराकुर्वतः, त्रपु-लिप्तेषु ताम्र-भाजनेषु आरनालं परिवेषयतः सूदान्; क्वचिद्वक्र प्रसाधितकाकपक्षान्, मद-व्याघूर्णित-शोण-नयनान् सपारस्परिक-कण्ठग्रहं पर्य्यटतः यौवन-चुम्बित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणेव मन्दगतीन्, अनवरताक्षिप्त-कुसुमबाणैरिव कुसुमैर्भूषितान्, व सनातिरोहिताङ्गच्छटान्, विविध-पटवास-वासितानपि चिरस्नानमहामलिन-महोत्कट-स्वेद- पूतिगन्ध-प्रकटीकृतास्पृश्यतान् यवनयुवकान्।

हिन्दी अनुवादः— (यहाँ से अफजल खाँ के शिविर का वर्णन प्रारम्भ होता है) वहाँ (शिविर में) कहीं खाटों और पलंगों पर बैठे हुए गड़गड़ शब्द के साथ तम्बाकू के धुएँ को खींचकर, मुख से काले-सर्पों के समान श्यामल निःश्वास को निकालते हुए ऐसे लगते थे कि मानो अपने हृदय की कालिसा को प्रकट कर रहे हों, मानो अपने पूर्वजों के द्वारा उपार्जित पुण्य लोकों को फूत्कारों से (फूँक मार कर) जला रहे हों, मरने के बाद न प्राप्त होने वाले मुखाग्नि संयोग को जीवित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे हों, अधिकार प्राप्त होने के कारण अत्यन्त गर्व से युक्त (यवन युवकों की); कहीं पर - ''हल्दी-हल्दी, लहसुन-लहसुन, मिर्च-मिर्च, चटनी-चटनी, सौंफ-सौंफ, अदरख-अदरख, हींग-हींग, राब-राब, मछलियाँ-मछलियाँ, मुर्गी का अण्डा-मुर्गी का अण्डा, माँस-माँस, इस प्रकार कोलाहलों से बालकों की नींद भङ्ग करते हुए; समीप में ही रखे हुए कुप्पा-कुप्पी, करवा, टोकरी, चटाई, कड़ाही, कलछुल और साग के डन्ठलों को, उग्र गन्ध वाले माँस लोहे की सलाखों में पिरोकर पकाये जाते हुए, गरम-गरम गीले भात थालियों में फैलाये जाते हुए, हींग की गन्ध से युक्त (व्यञ्जन) गढी में इमली का रस मिलाते हुए, पिसी हुई चटनी में नींबू का रस निचोड़ते हुए, बीच-बीच में आने वाले मुर्गों को पंखों (व्यंजन) से मारकर दूर करते हुए, तथा कलईदार ताँबे के बर्तनों में कांजी परोसते हुए रसोइयों को; कहीं पर तिरछे बालों को सँवारे हुए, नशे में झूमते हुए लाल नेत्रों वाले, एक दूसरे के गले में हाथ डालकर घूमते हुए यौवन से चुम्बित शरीर वाले, मानो अपने सौन्दर्य के गर्व के भार के कारण मन्दगति वाले, निरन्तर चलाये जा रहे कामबाण रूपी पुष्पों से, वस्त्रों से अङ्ग की शोभा को तिरोहित न कर सके वाले, विविध प्रकार की इत्रों से सुगन्धित होते हुए भी, बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण अत्यन्त मलिन और उत्कट गन्ध वाले पसीने की दुर्गन्ध से अपनी अस्पृश्यता वाले यवन युवकों को (देखते हुए)।

हिन्दी व्याख्या: — खट्वासु = खाटों पर। पर्य्केषु = पलंगों पर। उपविष्टान् = बैठे हुए। 'उप + विश + क्त (द्वितीया ब0व0)'। सगडगडाशब्दम् = गडगड शब्द के साथ, यह अनुकरणमूलक शब्द है। ताम्रकधूमम = तम्बाकू के धुएँ को। ताम्रक = तम्बाकू। आकृष्य = खींचकर। उद्गिरतः = निकालते हुए, ''उद् + गिर + शत् (द्वितीया, ब0व0)। स्वहृदयकालिमानम् = अपने हृदय की कालिमा को। प्रकटयतः = प्रकट करते हुए। स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकान् = अपने पूर्वजों के द्वारा उपार्जित (स्वर्गादि पुण्यलोकों को, ''स्वपूर्वपुरुषैः उपार्जिताः पुण्यलोकास्तान्।'' फूत्कारैः = फूँकों से। अग्निसात् = अग्नियुक्त, ''अग्नेस्तुल्यम् इति अग्निसात्-'अग्नि + सात्।' कुर्वतः = करते हुए, ''कृ + शतृ +(द्वितीया ब0व0)''। मरणान्तरम् = मरने के बाद। मुखाग्निसंयोगम् =

मुख और अग्नि के संयोग को मरने के बाद 'शव' के दाह के लिये पहले मुख में ही अग्नि डाली जाती है। मुसलमानों के यहाँ मुर्दों को जलाना उनके धर्म के अनुसार निषिद्ध है। अतः मुखाग्नि संयोग नहीं होता है। मानो इसीलिये यवन युवक जीवन दशा में ही मुख में अग्नि डाल रहे हों। जीवनदशायाम = जीवित अवस्था में। आकलयतः = प्राप्त करते हुए, 'आ + कल + शतृ'। प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान् = अधिकार सम्पन्न होने के कारण अत्यधिक घमण्ड से युक्त। ''प्राप्तेन अधिकारेणकलितः अखर्वः गर्व यैस्तान् (बहुब्रीहि)। अखर्व = बहुत अधिक। मरिचम् = मिर्चा। चुक्रम् = खटाई। वितुन्नकम् = सौंफ। श्रृङ्गवेरम् = अदरख। रामठम् = हींग। मत्स्यण्डी = राब। मत्स्याः = मछलियाँ। कुक्कुटाण्डम् = मुर्गी का अण्डा। पललम् = माँस। विद्रावयतः = करते हुए, ''वि + द्रु + णिच + शतृ (द्वितीया ब0व0)''। समीपसंस्थापित.....कडम्बान् = 'समीप में ही रखे हुए कुतू (कुप्पा)। कुतुप (कुप्पी) 'कर्करी (करवा या गडुवा), कण्डोल (टोकरी), कट (चटाई) मटाह (कड़ाही), कम्बि (करछुल) और कडम्ब (साग के डण्ठल) को। ''समीपे संस्थापिताः कुतूकुतुपकर्करीकण्डोल-कटकटाहकम्बिकडम्बास्तान्'', उग्रगन्धीनि = उत्कट गन्ध वाले। शूलाकुर्वतः = लोहे की सलाख से पकाये जाते हुये। शूलेन संस्कुर्वतः शूलाकुर्वतः 'शूल + डाच् + कृ + शतृ (द्वितीया ब0व0)।' शूलात्पाके' से डाच् प्रत्यय। नखम्पचाः = गरम-गरम, नखम्पचन्तीति नखम्पचा। यवागूः = गीला भात, ''यवागुरुष्णिकाधाना विलेपी तरला च सा'' (अमरकोष)। हिंगुगन्धीनि = हींग की गन्ध वाले, 'हिंगुनः गन्धो येषु तानि'-'अल्पाख्यायाम्' से 'गन्ध' के अन्तिम 'अकार' को इकार होता है-'गन्धो गन्धक आमोपेलेशे सम्बन्ध गर्वयोः' (अमरकोष)। तेमनानि = व्यञ्जनों (कढ़ी) को। तितिण्डोरसैः = इमली के रस से। मिश्रयतः = मिलाते हुए। परिपिष्टेषु = पीसी हुई-'परि + पिष् + क्त (सप्तमी ब0व0)'। कलम्बेषु = साग के डण्ठिओं में -''अस्मी शाकं हरितकं शिग्रुरस्य तु नाडिका। कलम्बश्च कडम्बश्च'' (अमरकोश) अम्बीरनीरम् = नींबू के रस को। निश्च्योतयतः = निचोड़ते हुए, 'निस् + च्युतिर् + शतृ (द्वितीया ब0व0)'। व्यजनताडनैः = पङ्खों की मार से। पराकुर्वतः = भगाते हुए। त्रपुलिप्तेषु = कलई किये हुये। ताम्रभाजनेषु = ताँबे के बर्तनों में। आरनालम् = काँजी-''आरनालकसौवीरकुलमाषाभिषुतानि च। काञ्जिके....'' (अमरकोष)। परिवेषयतः = परोसते हुए। सूदान् = रसोइयों को। वक्रप्रसाधितकाकपक्षान् = तिरछे बालों को सँवारे हुए, ''वक्रम् यथा स्यात्तथा प्रसाधिताः काकपक्षाः यैस्तान् (बहुब्रीहि)। मदव्याघूर्णितशोणनयनान् = नशे से झूमते लाल नेत्रों वाले, ''मदेन व्याघूर्णितानि शोणानि नयनानि येषां तान् (बहुब्रीहि)''। व्याघूर्णित = झूमते हुए-''वि + आ + घूर्ण + क्त।'' शोण = लाल। सपारस्परिककण्ठम् = एक दूसरे के गले में हाथ डाले हुए, ''पारस्परिकेण कण्ठग्रहेण सहितं यथा स्यात् तथा।'' पर्यटतः = पर्यटन करते हुए, 'परि + अट् + शतृ (द्वितीया बहुवचन)'। यौवनचुम्बितशरीरान् = जवान शरीर वाले, ''यौवननेन चुम्तिानि शरीराणि येषां तान् ''। स्वसौन्दर्यगर्वभारेण = अपने सौन्दर्य के घमण्ड के भार से, ''स्वस्य सौन्दर्यस्य गर्वस्य भारेण (तत्पुरुष)''। अनवरताक्षिप्तकुसुमबाणैः = निरन्तर चलाये जा रहे काम-शरों से ('कुसुमैः' का विशेषण)। 'अनवरतम् आक्षिप्ताः कुसुमेषु बागाः येषु तान्' (बहुब्रीहि)''। कुसुमेषुबाणाः = कामशर। वसनातिरोहिताङ्गच्छटान् = वस्त्रों से न ढकी हुई अङ्गों की छटा वाले। ''वसनैः अतिरोहिता अङ्गच्छटा येषां तान्(बहुब्रीहि)''। विविधपटवासवासितान् = अनेक प्रकार की इत्रों से सुगन्धित, पटवास = इत्र। 'विविधैः पटवासैः वासिताः तान् (तत्पुरुष)। चिरस्नान.....अस्पृश्यतान् = बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण

अत्यन्त मैले और उत्कट गन्ध वाले पसीने के दुर्गन्ध से (अपनी) अस्पृश्यता को प्रकट करते हुए। चिर = देर से, अस्नान = स्नान न किये हुये, महामलिन = अधिक मैले, पूतिगन्ध = दुर्गन्ध, प्रकटीकृत = प्रकट किया है, अस्पृश्यता = अछूतपन। ''चिरेण अस्नाने महामलिनस्य महोत्कटस्य स्वेदस्य पूतिगन्धेन प्रकटीकृता अस्पृश्यता यैस्तान् (बहुब्रीहि)।''

टिप्पणी :— (1)'मुखात् कालसर्पानिव..... अग्निसात कुर्वतः-मुख से निकलने वाला धुआँ मानो काला साँप हो, मानो हृदय की कालिमा को प्रकट कर रहे हों, मानो पूर्वजों से उपर्जित पुण्यलोकों की फूत्कार से जला रहे हों-यहाँ काला साँप, हृदय की कालिमा तथा फूत्कार से पुण्यलोक को जलाने की सम्भावना का निर्देश किया गया है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(2)'स्वसौन्दर्य गर्वभारेण मन्दगतीन्'-'मानो अपने सौन्दर्य-गर्व के भार के कारण मन्दगति वाले'-यहाँ पर सौन्दर्य में भार की उत्प्रेक्षा की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(3)'अनवरत.....कुसुमैः'-कामबाण रूपी पुष्पों से अलंकृत-यहाँ पर पुष्पों में कामबाण का आरोप किया गया है-रूपक अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न -3

1- कन्या के अपहरण करने वाले यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से क्या प्राप्त हुआ ?

2-यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से प्राप्त पत्र पर किसका मोहर लगा था ?

3- गौरसिंह, उस पत्र की प्राप्ति का वृत्तान्त किसको सुनाया ?

4- गायक और वादक भेष किसने बनाया था ?

5- ''तुम्हारी जीभ घी से डूबे''यह किसने कहा ?

5.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शिवाजी ने द्वारपाल की परीक्षा लेने के लिये सुवर्ण बनाने वाली पारद भस्म देने का लोभ देता है। पुनः दौवारिक कहता है अरे! क्यों तू विश्वासघात और स्वामी से वञ्चना का उपदेश दे रहा है ? वे कोई और ही जार जात (स्वामी को धोखा देने वाले तथा 'घूस' लेने वाले) होते हैं, जो उत्कोच (घूस) के लोभ से स्वामी को छल कर अपने को प्रगाढ़ नरक में गिराते हैं, हम सब महाराज शिवाजी के गण (सेवक) ऐसे नहीं हैं। तथा वीर शिवाजी के यहां किसी चन्द्रचूम्बिनी, गाढ़े चूने से लिपी दीवालों वाली, धूप से सुगन्धित, (दीवालों में गड़ी हुई) खूँटियों में अनेक प्रकार के छुरे, तलवार तथा यष्टिका आदि लटक रहे थे जिसमें सोने के पिंजड़े में लटक रहे शुक, कोयल, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से व्याप्त अट्टालिका (प्रासाद) में सन्ध्यापूजन करके बैठे हुए थे। यहॉ अफजल खाँ के शिविर का वर्णन किया गया है, तथा शिविर में भोजन का भी वर्णन किया गया है।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
दौवारिकोऽसि	द्वारपाल ही
प्राणात्	प्राणों को,
अगणयन्	न गिनते हुए,
जीविकाम्	जीवन निर्वाहार्थ धन।
निर्वहसि	प्राप्त करते हो

न सम्भाव्यते	सम्भव नहीं है
आम्	स्वीकृति सूचक
रसायनतत्वम्	रसायन तत्व को।
परिष्कृतम्	शोधित।
पारदभस्म	विशेष प्रकार का रसायन।
गुञ्जामात्रेण	रत्ती भर से ही।
न प्रतिरुन्धेः	नहीं रोकते हो।
जाम्बूनदम्	सुवर्ण।
विधातुम्	बनाने में।
शक्नुयाः	समर्थ हो सकते हो।
भारतवर्षीया	भारतवर्ष में जन्म लेने वाले।
महोच्चकुलजाताः	महान् कुल में उत्पन्न।
स्वाभाविकः	प्राकृतिक।
स्वदेशे	अपने देश के प्रति।
यौष्माकीणः	तुम्हारा।
जाल्मा	अविवेकी।
समूलम्	जड़ सहित।
उच्छिन्दन्ति	उखाड़ रहे हैं।
प्राणाः	प्राण।
यान्तु	जायें।
धर्मस्यकृते	धर्म के लिये।
लुण्ठ्यन्ते	लूटे जाते हैं।
पात्यन्ते	गिराये जाते हैं।
हन्यन्ते	मारे जाते हैं।
त्यजन्ति	छोड़ते हैं।
रक्षायै	रक्षा के लिये।
सर्वसुखानि	सभी सुखों को।
खाट्वासु	खाटों पर।
पर्यंकेषु	पलङ्गों पर
उपविष्टान्	बैठे हुए।

5. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

1.रात्रि जायेगी तो सवेरा होगा,।

2.सूर्य उदित होगा तो कमल खिलेगा।

3.कमल को हाथी ने उखाड़ दिया।

4.द्वारपाल का परीक्षण गौरसिंह ने किया।

5.द्वारपाल का चरित्र बहुत प्रभावशाली था।

अभ्यास प्रश्न-2

1- गौरसिंह सन्यासी के वेश में सहचर के साथ गये

2- गौरसिंह सन्यासी के वेश में सहचर के साथ शिवाजी से मिलने गये

3- महाराज शिवाजी को गौरसिंह तीन बार प्रणाम किया

4- आश्रमवासियों का वृत्तान्त क्या है यह शिवा जी ने पूछा

5- गौरसिंह जब शिवाजी से मिलने गये तो शिवाजी सन्ध्या कर रहे थे

अभ्यास प्रश्न-3

1 - कन्या के अपहरण करने वाले यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से पत्र प्राप्त हुआ।

2- यवन-युवक के मृतशरीर के वस्त्रों से प्राप्त पत्र पर विजयपुर के नरेश की मोहर लगा था।

3- गौरसिंह, उस पत्र की प्राप्ति का वृत्तान्त शिववीर को सुनाया।

4- गायक और वादक भेष गौरसिंह, ने बनाया था।

5-"तुम्हारी जीभ घी से डूबे"यह गौरसिंह ने कहा।

5. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1.ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय अम्बिकादत्तव्यास चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 8 उपयोगी पुस्तकें

1.ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय, अम्बिकादत्तव्यास, चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.गौरसिंह एवं शिवाजी के वार्ता प्रसंग का वर्णन करें।

1. द्वारपाल के विषय में परिचय दीजिये।

1.यवन शिविरमण्डल के विषय में परिचय दीजिये।

इकाई. 6 क्वचिद अहो..... चरणौ प्रणनामतक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 क्वचिद अहो..... चरणौ प्रणनामतक (मूल, अर्थ, व्याख्या)
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 उपयोगी पुस्तकें
6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्यकाव्य एवं उपन्यास से सम्बन्धित खण्ड तृतीय की यह छठी इकाई है। इस इकाई में तानरंग के गायक कौशल का वर्णन, गौरसिंह का अपने धर्म के प्रति दृढ़ता का चित्रण तथा शिवाजी की वीरता किस प्रकार की थी ? शिवाजी एक सामान्य राजा के नौकर का लड़का शिववीर यदि स्वयम् इस प्रकार तेजस्वी न होता तो स्वर्णदेव जैसा साथी कैसे प्राप्त करता ? उसके द्वारा सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को हस्तगत कैसे कर लेता ? तोरण दुर्ग को अपना भोग्य कैसे बनाता हैं ? और शिवाजी ने अफजलखान को किस प्रकार से मारा, इस सबका विशद् वर्णन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- महाराष्ट्र देश के विषय में अध्ययन करेंगे।
- तानरंग कौन था इसके विषय में अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह द्वारा बंग देश के वर्णन के विषय में अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह ने पूर्वी बंगाल में भी बहुत समय तक भ्रमण किया इस विषय में जान सकेंगे।
- शिवाजी के वीरता के विषय में अध्ययन करेंगे।
- तोरण दुर्ग के विषय में जान सकेंगे।
- दुर्ग की उपमा इन्द्र के महल के समान की गयी है इसके विषय में अध्ययन करेंगे।
- महाराज शिवाजी की तुलना सिंह से की गयी है इसके विषय में अध्ययन करेंगे।
- गौरसिंह के साथ शिववीर की वार्ता के विषय में अध्ययन करेंगे

6.3 क्वचिद अहो.... चरणौ प्रणनामतक (मूल, अर्थ, व्याख्या)

क्वचिद्-''अहो! दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य! अहो, दराधर्षता महाराष्ट्राणाम्, अहो, वीरता शिववीरस्य अहो निर्भयता एतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्भोटकानाम् आः! किं कथयामः ? दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीर-चन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्त्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धं गच्छेत् ? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तöटैरपि छलालापं विदध्यात् ? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः, किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम् ? 'यवनानां पराजयो भविष्यति, अपजलखानो विनङ्क्ष्यति' इति न विद्मः को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे। मा स्म भोः! भैवं स्यात्, रक्ष भो! रक्ष जगदीश्वर! अथवा सम्बोभवीतितमामेवमपि, योऽयमपजलखानः सेनापति-पद-विडम्बनोऽपि 'शिवेन योत्स्ये हनिष्यामि गृहीष्यामि वा' इति सप्रौढि विजयपुराधीशमहासमायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि, शिवप्रतापञ्च विदन्नपि ''अद्य नृत्त्यम्, अद्य गानम, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रूकुसकः, अद्य वीणा-वादनम्'' इति स्वच्छन्दैरुच्छृङ्खलाऽऽचरणैदिंनानि गमयति।

हिन्दी अनुवादः— कहीं-''अहो! महाराष्ट्र देश बड़ा दुर्गम है, ओह! मराठे बड़े दुर्धर्ष हैं। ओह! शिववीर की वीरता (बड़ी अद्भुत है), ओह! इनके सैनिक बड़े निडर हैं, ओह! इनके घोड़ों की

गति बहुत तेज है, अरे! क्या कहें ? शिववीर की तलवार की चमक देखकर ही हम सब धैर्य नहीं धारण कर पाते, युद्ध स्थल में टिक सकने में समर्थ नहीं होते, कौन दो शिरों वाला है जो शिव के साथ युद्ध करे ? कौन दो पीठों वाला है जो उनके सैनिकों से भी छल-कपट की बात करेगा ? हम सब बली हैं, तब भी नहीं जानते हैं कि क्यों हृदय काँपता सा है, क्षुब्ध सा होता है। 'यवनों की पराजय होगी, अफजल खाँ मारा जायेगा' पता नहीं कौन इस प्रकार कान में धीरे-धीरे कह सा रहा है, सामने लिख सा रहा है, अन्तःकरण में (यही बात) जमा सा रहा है। नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा, हे परमेश्वर रक्षा करो! अथवा ऐसा भी हो सकता है क्योंकि सेनापति के पद को विडम्बित करने वाला जो यह अफजल खाँ विजयपुर के सुल्तान की सभा में-''शिव के साथ लड़ूँगा, उसे मार डालूँगा या कैद कर लूँगा'' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके आया है और वीर शिवाजी के प्रताप से भली भाँति परिचित होते हुए भी आज नाच है, आज गाना है, आज स्त्रियों का श्रृङ्गार प्रधान दैशिक नृत्य है, आज मदिरा है, आज वाराङ्गनाएँ हैं, आज स्त्रीवेषधारी नर्तक हैं, आज सितारवादन है'' इस प्रकार स्वच्छन्द एवं उच्छृंखल आचरणों से दिन बिताए जा रहे हैं।

हिन्दी व्याख्या:— दुर्गमता = अगम्यता। दुराधर्वता = दुरभिभवनीयता,- ''दुर + आ + धृष + त''। महाराष्ट्राणाम् = मराठों का। निर्भयता = निडरता। एतत् सेनानीनाम् = शिववीर के सैनिकों की। त्वरितगतिः = क्षिप्रगति। एतद्घोटकानाम् = शिववीर के घोड़ों की, 'एतस्य घोटकास्तेषाम् (तत्पुरुष)। पारयामः = समर्थ होते हैं। धर्त्तुम् = धारण करने के लिये, 'धृ + तुमुन्'। शक्नुमः = समर्थ होते हैं। स्थातुम् = रुकने के लिये। को नाम = कौन। द्विशिराः = दो शिरों वाला, ''द्वे शिरसी यस्यासौ (बहुब्रीहि)''। योद्धुम् = युद्ध करने के लिये। 'युध् + तुमुन्'। द्विपृष्ठः = दो पीठों वाला, ''द्वे पृष्ठे यस्यासौ द्विपृष्ठः (बहुब्रीहि)''। दो पीठ और दो शिर वाला ही शिववीर के योद्धाओं या सैनिकों के साथ छल-कपट का व्यवहार कर सकता है क्योंकि उसकी उभयतः शक्ति हो जाती है। साधारण व्यक्ति उनके साथ छल नहीं कर सकता है। भटैः = वीर सैनिकों के साथ। छलालापम् = छल-कपट की बात। विदध्यात् = कर सकता है। बलिनः = बलशालि। आस्माकीना = हमारी-अस्मद् की अस्माक आदेश, अस्माक + ख + टाप् (ईन) + अस्माकीना। जानीमः = जानते हैं। किमिति = क्यों। कम्पते इव = काँप सा रहा है। क्षुभ्यतीव = क्षुब्ध सा हो रहा है। विनङ्क्ष्यति = विनष्ट होगा। न विद्मः = नहीं जानते हैं। जपतीव = धीरे-धीरे कह सा रहा है। क्षिपतीव = जमा सा रहा है। अन्तःकरणे = अन्तःकरण में। सम्बोभवीतितमाम् = ऐसा भी सम्भ्व हो सकता है, 'पुनः-पुनः सम्भवति, सम्बोभवीति, अतिशयेन सम्बोभवीति-सम्बोभवीतिमाम्' 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद्वा' से लट् लकार। सेनापतिपदविडम्बनः = सेनापति के पद को विडम्बित करने वाला। योत्स्ये = युद्ध करूँगा, ''युध् + लृट् (इङ्)।'' हनिष्यामि = मार डालूँगा, 'हन् + लृट् (सिप्)। गृहीष्यामि = पकड़ लाऊँगा, 'ग्रह् + लृट् (सिप्)।' सप्रौढि = दृढ़ता के साथ। विजयपुराधीशमहासभायाम् = विजयपुर के सुल्तान की महासभा में। प्रतिज्ञाय = प्रतिज्ञा करके, ''प्रति + ज्ञा + ल्यप्'' समयातोऽपि = आया हुआ भी, 'सम् + आ + या + क्त'-समायातः। विदम् अपि = जानते हुए भी, ''विद् + शतृ''। लास्यम् = दैशिकनृत्य श्रृङ्गार प्रधान, स्त्रीनृत्य को लास्य कहते हैं। इस प्रकार का नृत्य दैशिक नृत्य भी कहा जाता है। मद्यम् = मदिरापान। वाराङ्गना = वेश्या। भ्रूकुंसकः = स्त्री वेषधारी नर्तक, ''भ्रुवोः कुसः भाषणम् यस्य सः, अथवा-भ्रुवा कृसः शोभा यस्य सः।'' स्वच्छन्दैः = स्वच्छन्द (आचरण का विशेषण)। उच्छृङ्खलाचरणैः = उच्छङ्खल आचरणों से। गमयति = बिता रहा है।

टिप्पणी :— (1)कम्पते इव क्षुभ्यतीव च हृदयम्-मानो कँप रहा है अथवा क्षुब्ध हो रहा है। कम्पन और क्षुब्ध होने की सम्भावना की गई है। अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(2) जपतीवकर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीवचान्तःकरणे-कान में कहने, सामने लिखने और अन्तःकरण में जमने की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

न च यः कदापि विचारयति, यत् कदाचित् परिपन्थिभिः प्रेषिता काचन वारवधूरेव मामासवेन सह विषं पाययेत्, कोऽपि नट एव ताम्बूलेन सह गरलं ग्रासयेत्, कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यादि; ध्रुव एव तस्य विनाशः, ध्रुवमेव पतनम् ध्रुवमेव च पशुमारं मरणम्। तन्न वयं तेन सह जीवन-रत्नं हारयिष्यामः''-इति व्याहरतः; इतराश्च-''मैवं भोः! श्व एव आहव-क्रीडाऽस्माकं भविष्यति, तत् श्रूयते सन्धिवार्त्ता-व्याजेन शिव एकत आकारयिष्यते, यावच्च स स्वसेनामपहाय अस्मत्स्वामिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्यति; यावद्वयं श्येना इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्रसेनायां, छिन्धि भिन्धि इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, वसन्त-वाताहत-नीरसच्छदानिव च क्षणेन विद्रावयिष्यामः।

हिन्दी अनुवादः— जो कभी भी यह नहीं सोचता है कि कभी शत्रुओं के द्वारा भेजी गई कोई वेश्या ही मदिरा के साथ विष पिला सकती है, कोई नट ही पान के साथ विष खिला सकता है, कोई गायक ही वीणा के साथ तलवार लाकर (मेरे) खण्ड-खण्ड कर सकता है; उसका विनाश अवश्यम्भावी है, उसका पतन निश्चित है, पशु के समान मारा जाना निश्चित है। इसलिए हम उसके साथ अपने बहुमूल्य जीवन को नहीं गँवाएँगे (कुछ) इस प्रकार व्यवहार करते हुए और दूसरे ''ऐसा मत कहो, कल ही हमारी युद्धक्रीड़ा होगी, सुना जाता है कि एक ओर शिववीर सन्धि वार्ता के बहाने बुलाया जायेगा, जैसे ही वह अपनी सेना को छोड़कर हमारे स्वामी से बात-चीत करने के लिये एकान्त स्थान में जायेगा; वैसे ही हम सब पक्षियों पर बाज की तरह महाराष्ट्र सेना पर 'मारो काटो' ऐसा करते हुए एक साथ टूट पड़ेंगे और वसन्त (पतझड़) की हवा से आहत सूखे पत्तों की तरह क्षणभर में मार भगायेंगे।

हिन्दी व्याख्याः— कदापि = कभी भी। विचारयति = विचार करता है। परिपन्थिभिः = शत्रुओं के द्वारा। प्रेषिता = भेजी हुई। काचन = कोई। वारवधूः = वेश्या। आसवेन = मदिरा के साथ। पाययेत् = पिला दे, ''पा + णिच् + लिङ् तिप्)''। नटः = नर्तक। ग्रासयेत् = खिला दे। आनीय = लाकर, ''आ + णीञ् + ल्यप्''। खण्डयेत् = खण्ड-खण्ड कर दे। ध्रुवम् = निश्चित। पशुमारम् = पशु की मृत्यु के समान। मरणम् = मरना। जीवनरत्नम् = श्रेष्ठ जीवन को-''रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि'' (अमरकोष)। हारयिष्यामः = हारेंगे या गँवायेंगे-''हृ + णिच् + लृट् (मस्)।'' व्याहरतः = व्यवहार करते हुए। इतरश्चि = अन्यों को। मैवम् = ऐसा नहीं। श्वः = कल। आहवक्रीडा = युद्ध रूपी खेल, ''आहव एवं क्रीड़ा।'' श्रूयते = सुना जाता है। सन्धिवार्त्ताव्याजेन = सन्धि वार्ता के बहाने, 'सन्धेः वार्त्तायाः व्याजस्तेन (तत्पु0)''। एकतः = एक ओर। आकारयिष्यते = बुलाया जायेगा। अपहाय = छोड़कर। अस्मत्स्वामिना = हमारे स्वामी के, 'सह' के योग में तृतीया। आलपितुम = वार्तालाप करने के लिये, ''आ + लप् + तुमुन्।'' एकान्तस्थाने = एकान्त (शून्य) जगह में। यास्यति = जायेगा। श्येनाः = बाज। शकुनिमण्डले = पक्षिसमूह पर। महाराष्ट्रसेनायाम् = मराठों की सेना पर। छिन्धि = काटो, 'छिदिर् + लोट् (सिप्)।' भिन्धि = मारो या विदारण करो, 'भिदिर + लोट् (सिप्)।' युगपद एव = एक साथ ही पतिष्यामः = कूद पड़ेंगे।

वसन्तवाताहतनीरसच्छदानिव = वसन्त की वायु से आहत सूखे पत्तों के समान, 'वसन्तस्य वातेन आहतान् नीरसान् छदान् इव'। विद्रावयिष्यामः = भगा देंगे, ''वि + द्राव (णिजन्त) + लृट् (मस्)।''

टिप्पणी:— (1)'आहव क्रीड़ा' - युद्ध रूपी खेल में युद्ध में क्रीडा के आरोप से रूपक अलङ्कार है। श्येन इव शकुनिमण्डले - बाज और पक्षिमण्डल क्रमशः यवन सेना और महाराष्ट्र सेना के उपमान हैं, अतः उपमा अलङ्कार है। वसन्तवाताहतनीरसच्छदानिव'-वसन्त वायु और सूखे पत्ते क्रमशः यवन सैनिकों और मराठा सैनिकों के उपमान हैं, अतः यहाँ भी उपमा है।

इतस्तु छलेनाऽस्मत्वस्थामिसहचराः शिवं पाशैर्बद्धवा पिञ्जरे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव वशवद करिष्यन्ति। परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भूत् कस्यापि कर्णगतः-इति कर्णान्तिकं मुखमानीयोत्तरयतः सांग्रामिक-भटानवलोकयन्; ''धन्या भवन्तो येषां गोप्यतमा अपि विषया एव वीथिषु विकीर्यन्ते। महाराष्ट्रा धूर्ताचार्याः, नैतेषु भवतां धूर्तता सफला भवति'' इत्यात्मन्येवाऽऽत्मना कथयन्, स्वप्रभाधर्षित-सकल-रक्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव विश्वेषां मनांसि, सपद्येव प्रधान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद। तत्र च प्रहरिणमालोकयदुक्तवांश्च यत् पुण्यनगर-निवासी गायकोऽहमत्रभवन्तं गान-रस-रसाय-नैरमन्दमानन्दयितुमिच्छामीति। तदवगत्य स भूर संचारेण कञ्चित् निवेदकं सूचितवान्। स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्बहिर्निर्गत्य गायकमपृच्छत्-कि नाम भवतः ? पूर्वञ्च कदाऽपि समायातो न वा ? अथ स आह- ''तानरङ्गनामाऽहं कदाचन युष्मत्कर्णमस्पृशम्। न पूर्वं कदाऽपि ममात्रोपस्थातुं संयोगोऽभूत्, अद्य भाग्यान्यनुकूलानि चेत्, श्रीमन्तमवलोकयिष्यामि इति। स च 'आम्' इत्युदीर्य पुनः प्रविश्य क्षणानन्तरं निर्गत्य च, विचित्र-गायकममुं सह निनाय।

हिन्दी अनुवाद:— इधर हमारे स्वामी के नौकर शिवराज को रस्सियों से बाँधकर पिंजड़े में रखकर उसे जीते ही अपने वश में कर लेंगे। किन्तु यह विषय अत्यन्त गोपनीय है, किसी के कान में न पड़े, इस प्रकार कान के पास मुख से जाकर उत्तर देते हुए संग्राम करने वाले भटों को देखता हुआ (गौरसिंह) ''धन्य हैं आप लोग जिनके गोप्यतम वृत्तान्त भी इस प्रकार गलियों में फैलाये जाते हैं। मराठे बहुत बड़े धूर्त हैं, उनके प्रति आप लोगों की यह धूर्तता सफल नहीं हो सकती।'' ऐसा अपने आप से ही कहता हुआ, अपनी प्रभा से सभी पहरेदारों को निष्प्रभ करता हुआ, अपनी सुन्दरता से सभी के मन को आकृष्ट करता हुआ गौरसिंह (तानरंग) शीघ्र ही प्रधान खेमे के द्वार तक पहुँचा। वहाँ पर पहरेदार को देखा और कहा कि पूना नगर का निवासी गायक मैं श्रीमान् (अफजल खाँ) को गान रस के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ। यह जानकर उसने (पहरेदार ने) भौंहों के संकेत से किसी सन्देशवाहक को सूचित किया। पुराने अन्दर जाकर क्षणभर बाद पुनः बाहर निकलकर गायक से पूछा-''क्या नाम है आपका ? इसके पहले भी कभी आये थे या नहीं ? तब वह बोला-तानरंग मेरा नाम है, शायद कभी यह नाम आपके कानों में पड़ा हो। इसके पूर्व कभी मुझे यहाँ आने का अवसर नहीं मिला। आज यदि भाग्य अनुकूल हुआ तो श्रीमान् के दर्शन करूँगा।'' वह 'अच्छा' ऐसा कहकर पुनः प्रवेश करके और एक क्षण बाद निकल कर उस विचित्र गायक को साथ ले गया।

हिन्दी व्याख्या:— इतस्तु = इधर तो। अस्मत्स्वामिसहचराः = हमारे स्वामी के सहचर। ''सहचरन्तीति- 'चर+अच्'। पाशैः = जालों से। बद्धवा = बाँधकर। पिञ्जरे = पिंजड़े में।

स्थापयित्वा = रखकर। जीवन्तमेव = जीवित ही। वशंवदम् = वशं में हुए, 'वशम्वदतीतिवशम्वदस्तम्', 'वश+खच् (मुम्) + वद्+अच्' 'प्रियवशे वदः खच्' से 'खच्'। गोप्यतमः = अतिगोपनीय। मास्मभूत = न हो। कर्णगतः = कान में पहुँचना। कर्णान्तिकम् = कान के पास में; ''कर्णयोः अन्तिकम् इति''। आनीय = ने जाकर। उत्तरयतः = उत्तर देते हुए, ''उद्+तर+शतृ (द्वितीय ब0व0)''। सांग्रामिकभटान् = संग्राम करने वाले योद्धाओं को, 'संग्रामस्य इभे सांग्रामिकाः ते एव भटाः तान्। अवलोकयन् = देखते हुये, ''अव+लोक+शतृ''। वीथिषु = मार्गों में। विकीर्यन्ते = फैलाए जाते हैं- 'वि+कृ+यफ् लट् (झ)'। महाराष्ट्राः = मराठे। धूर्ताचार्याः = पक्के धूर्त हैं। आत्मनि एवं आत्मना = अपने में अपने से ही अर्थात् मन ही मन। कथयन् = कहता हुआ, ''कथ+शतृ''। स्वप्रभाघर्षितसकलरक्षकगणः = अपने प्रकाश से प्रभावहीन कर दिया है, समस्त रक्षकगण को जिसने। ''स्वस्य प्रभया घर्षित सकलः रक्षकानां गणः येन सः'' (बहुव्रीहि)। घर्षितः = भयभीत। स्वसौन्दर्येण = अपने सौन्दर्य से। आकर्षयन्न् = आकृष्ट करते हुए से, 'आ+कृष शतृ'। विश्वेषाम् = सभी के। प्रधानपटकुटीरद्वारम् = मुख्य खेमे के द्वार पर, ''प्रधानम् यत् पटकुटीरम् तस्य द्वारम्।'' आससाद = पहुँचा, 'आ+षद्+लिट् (तिप्)'। प्रहरिणम् = पहरेदार को। आलोकयत् = देखा। उक्तवान् च = और कहा। 'वच्+क्तणतु'। अमन्दम् = अधिक। आनन्दयितुम् = आनन्दित करने के लिये। भ्रू संचारेण = भौंहों के संकेत से। निवेदकम् = सन्देशवाहक को। सूचितवान् = सूचित किया। अन्तः प्रविश्य = अन्तर प्रवेश करके। बहिर्निगत्य = बाहर निकाल कर। समायातः = आये हो, 'सम्+आ+या+क्त' कदाचन = कभी युष्मत्कर्णम् = आपके कान को। अस्पृशम् = स्पर्श किया होगा। उपस्थातुम् = उपस्थित होने के लिये, उप+स्था+तुमुन्'। संयोगः = अवसर। अवलोकयिष्यामि = देखूँगा। उदीर्य = कह कर। क्षणानन्तरम् = एक क्षण बाद निर्गत्य = निकलकर, निर्+गम्+ल्यप्'। विचित्रगायकम् = कपटी गायक को। अमुम् = इस तानरंग को। निनाय = ले गया, 'णी+लिट् (तिप्)।

टिप्पणी:— (1) ''स्वसौन्दर्येणाकषर्यन्निव विश्वेषां मनासि'' अपने सौन्दर्य से सभी के मन को आकर्षित सा कर रहा है। आकर्षित करने की सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) यवन सैनिकों और सेनापति के लिासप्रियता और अदूरदर्शिता का चित्रण किया गया है।

तानरंगस्तु तनैव तानपूरिका हस्तेन बालकेनाऽनुगम्यमानः, शनैः शनैः प्रविश्य, प्रथमं द्वितीयं तृतीयञ्च द्वारमतिक्रम्य, कांश्चित् मृदङ्ग-स्वरान् सन्दधतः, कांश्चिद् वीणावरणमुन्मुच्य, वीप्रवालं प्रोञ्छय, कोर्ण कलयतः कांश्चिदविचलोऽयमेतेनैव सह योज्यन्तामपरवाद्यनीति वंशीरवं साक्षीकुर्वतः, कांश्चित् कलित-नेपथ्यान् पादयोर्नूपुरं बध्नतः, कांश्चित् स्कन्धावलम्बिगुटिकातः करतालिकामुत्तोलयतः, कांश्चिच्च कर्णे दक्षकर निधाय, चक्षुषी सम्मील्य, नासामाकुञ्चय, पातितोभयजानु उपविश्य, वामहस्तं प्रसार्य, न्त्रीस्वरेण स्व-काकलीं मेलयतः; सम्मुखे च पृष्ठतः पार्श्वतश्चोपविष्टैः कैश्चित् ताम्बूलवाहकैः, अपरैर्निष्ठ्यूतादान -भाजन-हस्तैः, अन्यैरवनरत- चालितचामरैः, इतरर्बद्धाञ्जलिभिर्लालाटिकैः परिवृतम्, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम्, सुवर्ण- सूत्र-रचित - विविध -कुसुमकुड्मल- लताप्रतानाङ्कित-कञ्चुकं महोपवर्हमेकं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्धारित- भुजद्वयम, रजत- पर्य्यङ्के विविध- फेन-फेनिल- क्षीरधि-जल- तलच्छविमङ्गीकुर्वत्यां तूलिकायामुपविष्टमपजलखानं च ददर्श।

हिन्दी अनुवादः— तानरंग, जिसके पीछे तानपूरा हाथ में लिये हुए बालक चल रहा था, (वह) धीरे-धीरे प्रवेश करके, पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पार करके, किसी को मृदङ्ग का स्वर-सन्धान करते हुए, किसी को वीणा के आवरण को हटाकर, प्रवाल (धीणादण्ड) को पोंछकर, कोण (मिजराफ), पहनते हुए, किसी को-''यह स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य बाजों को मिलाइये'' इस प्रकार वंशी की तान को साक्षी देते हुए, किसी को वेष धारण करते और पैरों में नूपुर (घुंघरू) बाँधते हुए, किसी को कन्धे पर लटकती हुई झोली से करताल को निकालते हुए और किसी को कान पर दाहिने हाथ को रखकर, आँख बन्द कर, नाक सिकोड़कर, दोनों घुटनों के बल बैठकर, बाँये हाथ को फैलाकर, वीणा के स्वर से अपनी काकली (कलगान) को मिलाते हुए; आगे पीछे और पास में बैठे हुए कुछ ताम्बूलवाहकों, पीकवान को हाथ में लिये कुछ अन्य लोग, दूसरे निरन्तर चंवर डुलाने वाले तथा अन्य हाथ जोड़े हुए चापलूसों से घिरे हुए, रत्नजटित टोपी मस्तक पर लगाये, सोने के तारों से रचित विविध फूलों, कलियों और लता-प्रतानों वाली अचकन (कुर्ता) पहने हुए गोद में एक बड़ी सी मसनद रखकर, उस पर अपनी दोनों भुजाओं को रखे हुए, चाँदी के पलंग पर विविध फेन से फेनिल समुद्र के जलतल की छवि का अनुकरण करने वाले गद्दे पर बैठे अफजल खाँ को देखा।

हिन्दी व्याख्याः— तानरङ्गः = तानरंग नामधारी गौरसिंह। तानपूरिकहस्तेन = तानपूरे को हाथ में लिये हुए, 'तानपूरिका हस्ते यस्य तेन (बहुब्रीहि)। अनुगम्यमानः = अनुसृत (पीछा किया जाता हुआ-गौरसिंह) 'अनु + गम् + यक् + शानच्'। अतिक्रम्यः = पार करके, 'अति + क्रमृ + ल्यप्'। कांश्चित् = कुछ को। सन्दधतः = साधते हुए, सम् + दध + शतृ (द्वितीया बहुवचन)'। वीणावरणम = वीणा के आवरण को। उन्मुच्य = उतारकर, 'उत् + मुच् + ल्यप्'। प्रवालम् = वीणादण्ड को, ''वीणादण्डः प्रवालः स्यात् (अमरकोष)'। प्रोञ्छय = पोंछकर, 'प्र + उछि + ल्यप्'। कोणम् = मिजराफ को। कलयतः = धारण करते हुए। अवचलः = स्थिर। योज्यन्ताम् = मिलाइये, 'युज् + लोट्'। अपरवाद्यान = दूसरे बाजों को। वंशीरवम् = बाँसुरी के शब्द को। साक्षीकुर्वतः = साक्ष्यरूप में प्रस्तुत करते हुए। कलितनेपथ्यान् = वेष धारण करने वालों को, ''कलितम् नेपथ्यम् यैस्तान्''। नूपुरम् = (पाँव में धारण करने वाले) घुंघरू को। बध्नतः = बाँधते हुए। स्कन्धावलम्बिगुटिकातः = कन्धे पर लटकने वाली झोली से, 'स्कन्धे अवलम्बिनी या गुटिका तस्याः'। करतालिकाम = करताल को। उत्तेलयतः = निकालते हुए, 'उद् + तुल + शतृ'। दक्षकरम् = दाहिने हाथ को। निधय = रखकर। चक्षुषी = नासिका को। आकुञ्चय = सिकोड़ कर, 'आ + कुञ्च + ल्यप्'। पातितोभयजानः = दोनों घुटनों को जमीन में गिराकर, ''पतिते उभये जानुनी यस्य सः (बहुब्रीहि)''। उपविश्य = बैठकर, 'उप + विश् + ल्यप्'। प्रसार्य = फैलाकर, 'प्र + सृ + णिच् + ल्यप्'। तन्त्रिीस्वरेण = वीणा नाद से, ''तन्त्र्याः स्वरस्तेन (तत्पुरुष)'' स्वकाकलीम् = अपने सूक्ष्म स्वर को। 'ईषत्कलम् इति काकलम्, स्त्रियाम्, ङीष् 'काकल + ङीष्' = काकली-''काकली तु कले सूक्ष्मे'' (अमरकोष)। मेलयतः = मिलाते हुए। सम्मुखे = सामने।। पृष्ठतः = पीछे। पार्श्वतः = पास में। उपविष्टैः = बैठे हुए, 'उप + विश् + क्त (तृतया बहुवचन)'। ताम्बूलवाहकैः = ताम्बूलवाहकों के द्वारा। अपरैः = दूसरों के द्वारा निष्ठ्यूतादान = पीकदान। 'निष्ठ्यूतादानस्य भाजनम् हस्ते येषां तैः (बहुब्रीहि)''। अनवनरतचालितचामरैः = निरन्तर चँवर डुलाने वालों से 'अनवरतम् चालितम् चामरम् यैस्तैः' (बहुब्रीहि)। बद्धाञ्जलिभिः = हाथ जोड़े हुए, 'बद्धाः अञ्जलयः येषां तैः (बहुब्रीहि)'।

लालाटिकैः = चापलूसों से, 'ललाटम् पश्यतीति लालाटिकस्तैः'। कार्य में अक्षम और स्वामी के इशारों को ही देखने वाला व्यक्ति लालाटिक कहलाता है। ''लालाटिकः प्रभोर्भालदर्शी-कार्याक्षमश्चयः'' (अमरकोष)। परिवृतम् = घिरे हुए। रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम् = रत्नों से जड़ी हुई टोपी मस्तक पर लगाये, ''रत्नैः जटिता उष्णीषिका मस्तके यस्य तम् (बहुब्रीहि)''। सुवर्णसूत्र..... कञ्चुकम् = सोने के तारों से बने हुए थे अनेक प्रकार के फूल, कलियाँ और लता वितानजिसमें ऐसे कुर्ते या अचकन को। ''सुवर्ण सूत्रेण विविधाः कुसुमकुड्मललताः तासां प्रतानैः अङ्कितः कञ्चुकः यस्य तम् (बहुब्रीहि)''। महोपवर्हमेकम् = मसनद (बड़ी तकिया)। क्रोडे = गोद में। संस्थाप्य = रखकर, 'सम् + स्था + ल्यप्'। सन्धारितभुजद्वयम् = दोनों भुजाओं को रखे हुए, ''सन्धारितम् भुजद्वयम् यस्य सः तम् (बहुब्रीहि)''। रजतपर्य्यङ्के = चाँदी के पलंग पर। विविधफेनफेनिलक्षीरधिजलतलच्छविम् = प्रचुर फेन से फेनिल समुद्र के जलतल की शोभा को। ''विविधेन फेनेन फेनिलस्य क्षीरधेः जलतलस्य छविम् (तत्पुरुष)''। अङ्गीकुर्वत्याम् = धार करने वाली, 'अङ्ग + च्वि + कृ + शतृ + ङीष् (सप्तमी एकवचन)'। तूलिकायाम = तूलिका (गद्दे) पर, 'तूलमस्ति यस्यां सा तूला, तूलैव-तूलिका तस्याम्'। उपविष्टम् = बैठे हुये। ददर्श = देखा 'दृश् + लिट् (तिप्)'।

ततस्तु तानरङ्ग प्रभा-वाशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यतामास्यतामास्यताम्' इति कथयत्सु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण-हस्तेनाऽऽदर-सूचक-संकेत-सहकारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलञ्चकार।

ततस्तु इतरगायकेषु सगर्व सासूयं सक्षोभं साक्षेपं सचक्षुर्विस्फारणं सशिरः परिवर्तनं च तमालोकयत्सु अपजलखानेनं सह तस्यैवमभूदालापः।

अपजलखानः-किन्देशवास्तव्यो भवान् ?

तानरङ्गः-श्रीमन्! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि।

अपजल0-ओः ! राजपुत्रेदेशीयः ?

तान0-आम् ! श्रीमन् !

अप0-तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तान0-सेनापते ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशाद्देशं पर्याटयति।

अप0-आः! एवम्! तत्किं प्रायः पर्य्यटति भवान् ?

तान0-एवं चमूपते! नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुम् नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कलयितुम् एधमाननमहाभिलाष एष जनः।

अप0-अहो! ततस्तु बहुदर्शी बहुज्ञश्च भवन्! अथ बङ्गदेशे गतो भवान्! अथ बङ्गदेशे गतो भवान् ? श्रूयतेऽतिवैलक्षण्यं तद्देशस्य।

हिन्दी अनुवादः— तब तानरङ्ग की प्रभा से वशीभूत हुए सबके-''आइये, आइये, आइये; बैठिये बैठिये;'' यह कहने पर तानरङ्क भी आदरपूर्वक दाहिने हाथ से आदरसूचक संकेत के साथ यथानिर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। तब अन्य गायकों के गर्व, ईर्ष्या, क्षोभ और निन्दा के साथ आँखे फाड़-फाड़कर और सिर हिला-हिला कर उसकी (तानरङ्ग को) देखने पर अफजल खाँ का (तानरङ्ग के) साथ इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

अफजल खाँ-आप किस देश के रहने वाले हैं ?

तानरंग-श्रीमान्! मैं राजपूताने का हूँ।

अफजल खाँ-अरे ! राजपूताने के हो ?

तानरंग-हाँ, श्रीमान्!

अफजल खाँ-तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे ?

तानरंग-सेनापते! मेरा देशाटन का व्यसन ही मुझे एक देश से दूसरे देश को ले जाता है।

अफजल खाँ-अरे! ऐसा है! तो क्या आप प्रायः घूमते ही रहते हैं।

तानरंग-ऐसा ही है, सेनापति जी! नये-नये देशों को देखने, नई-नई भाषाओं को सीखने और गाने की नई-नई शैलियों को जानने का यह व्यक्ति बहुत अधिक शौकीन है।

अफजल खाँ-अरे! तब तो आप बहुज्ञ (बहुत कुछ जानने वाला) और बहुदर्शी (बहुत कुछ देखने वाला) हैं। क्या आप बङ्गाल गये हैं ? सुनते हैं वह देश बड़ा विलक्षण है।

हिन्दी व्याख्या:— तानरङ्गप्रभावशीभूतेषु = तानरंग की प्रभ्ज्ञा से वशीभूत हुए, प्रभा = कान्ति, वशीभूत = स्तब्ध। 'तानरंगस्य प्रभया वशीभूतास्तषू (तत्पुरुष)''। 'आगम्यताम् = आइये। आस्यताम = बैठिये। कथयत्सु = कहने पर, ''कथ + शत् (सप्तमी ब0व0)''। सादरम् = आदरपूर्वक। दक्षिणहस्तेन = दाहिने हाथ से। आदरसूचकसङ्केतसहकारेण = आदरूसूचक संकेत के साथ अर्थात् 'सलाम' करते हुए। यथानिर्दिष्टम् = संकेतित, 'निर्दिष्टमनतिक्रम्य इति (अध्ययी0)'। स्थानम् = स्थान पर। अलञ्चकार =बैठ गया, ''अलम् + कृ + लिट् (तिप्)'। इतरगायकेषु = अन्य गायकों के 'यस्यभावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी। सासूयम् = असूयापूर्वक। साक्षेपम् = आक्षेप (निन्दा) के साथ। सचक्षुर्विस्फारणम् = नेत्रविस्फारण के साथ अर्थात् आँखें फैला फैलाकर। ''चक्षुषोः विस्फारणमिति चक्षुर्विस्फारणम् तेन सहितम्-सचक्षुर्विस्फारणम्''। सशिरःपरिवर्तनम् = शि हिला-हिलाकर। तम् = तानरंग को। आलोकयत्सु = देखने पर, 'आ + लोक + शतृ (सप्तमी ब0व0)'। आलापः =वार्तालाप। किन्देशवास्तव्यः = किस देश के रहने वाले। राजपुत्रदेशीयः = राजपुत्र देश का। देशाटन-व्यसनम् = देश भ्रमण का शौक, 'देशानाम् अटनस्य व्यसनम् (तत्पु0)'। देशाद्देशम् = एक देश से दूसरे देश को। पर्याटयति = घूमता है। 'परि + आ + अट + णिच् + लट् (पिप्)'। चमूपते = सेनापते। अवगन्तुम् = जानने के लिये, 'अव + गम् + तुमुन्'। गानपरिपाटीः = गाने की शैलियों को। कलयितुम् = जानने के लिये। एधमान महाभिलाषः = बढ़ती हुई इच्छाओं वाला। एधमानः महान् अभिलाषः यस्य सः (बहुब्रीहि)। बहुदर्शी = बहुत कुछ देखने वाला। बहुज्ञः = बहुत कुछ जानने वाला। अतिवैलक्षण्यम् = अति विलक्षणता है। तद्देशस्य = उस देश की।

अभ्यास प्रश्न – 1

1- अफजल खाँ के द्वारा शिववीर में किस वार्ता के बहाने बुलाया जायेगा ?

2- महाराष्ट्र देश कैसा है ?

3- अफजल खाँ किसके सभा में-''शिव के साथ लडेगा ?

4- अफजल खाँ विजयपुर के सुल्तान की सभा में-'किसके साथ लडेगा ?

5- तानरंग कौन था ?

तानरंगः-सेनापते! वर्षत्रयात् पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संस्नाय, उज्जयिनीदेशीय-क्षत्रियकुलालंकृतम् भोजपुरदेशमालोक्य गङ्गण्डकतटोपविष्टम् हरिहरनाथं प्रणम्य, विलासि-कुल-विलसितम्पाटलिपुत्रपुरमुल्लंघ्य सीताकुण्ड विक्रम चण्डिकादि पीठपटलपूजितम् विक्रमयशःसूचक-दुर्ग्गावशेषशोभितम् देवधुनीतरङ्गक्षालितप्रान्तं

मुद्गलपुरं निरीक्ष्य, कर्णदुर्गस्थानेन तद्यशोमहामुद्रयेवाङ्कितमङ्गदेशं दिनत्रयमध्युष्य, अतिवर्द्धमानवैभवं वर्द्धमान-नगरं च सम्यक् समालोक्य, यथोचित-सम्भारै-स्तारकेश्वरमुपस्थाय, ततोऽपि पूर्व वङ्गदेशे, पूर्ववङ्गेऽपि च चिरमहमटाट्यामकार्षम्।

हिन्दी अनुवाद:— सेनापति! तीन वर्ष पूर्व मैंने काशी में गंगा में स्नान करके उज्जैन देश के क्षत्रिय वंशों से अलंकृत भोजपुर देश को देखकर, गंगा और गण्डक नदियों के तट पर विराजमान हरिहरनाथ को प्रणाम करके, विलासियों के कुल से सुशोभित पाटलिपुत्र नगर को पार करके, सीताकुण्ड, विक्रम-चण्डिका आदि पीठों से पूजित, विक्रमादित्य के यश के सूचक दुर्गों के खण्डहरों से शोभित और गङ्ा की लहरों से प्रक्षालित प्रान्त मुद्गलपुर (मुंगेर) को देखकर, कर्ण दुर्ग स्थान से मानों उसके यश रूपी महामुद्रा से अंकित बंग देश में तीन दिन रुककर, अत्यन्त बढ़े हुए वैभव वाले वर्धमान (वर्दवान) नगर को भली-भाँति देखकर, यथोचित सामग्री से भगवान् तारकेश्वर की पूजा करके उससे भी पूर्व में बंगाल और पूर्वी बंगाल में भी मैंने बहुत समय तक भ्रमण किया।

हिन्दी व्याख्या:— वर्षत्रयात् पूर्वम् = तीन वर्ष के पूर्व। संस्नाय = स्नान करके, 'सन् + ष्ना + ल्यप्'। उज्जयिनीदेशीयक्षत्रियकुलालंकृतम् = उज्जेन देश के क्षत्रिय कुलों से अलंकृत। उज्जयिनीदेशीय = उज्जयिनी देश में होने वाला-'देश + छ (ईय) = देशीय क्षेत्रियः 'क्षत्र + घ' क्षत्राद्घः' से 'घ' प्रत्यय। 'क्षत्र + घ इय' = क्षत्रिय। 'उज्जयिनी देशीयानां क्षत्रियाणाम् कुलैः अलंकृतम्(तत्पु0)'।आलोक्य = देखकर। गंगरगएछकतटोपविष्टम् = गंगा और गण्डक के तट पर विराजमान (हरिहरनाथ का विशेषण)। गंगगण्डकयोस्टटे उपविष्टम् (तत्पु0)'। विलासिकुलविलसितम् = विलासियों के कुल से शोभित, 'विलासिनां कुलैः विलासितम् (तत्पु0)'। विलसितम् = वि + लस + क्त'। उल्लंघ्य = पार करके, 'उत + लङ्घि + ल्यप्'। सीताकुण्डविक्रम-चण्डिकादिपीठपटलपूजितम् = सीता-कुण्ड और विक्रमचण्डिका आदि देव पीठों से पूजित। पटी = समूह, पूजितम्, सुशोभित। विक्रमयशःसूचक-दुर्गावशेषशोभितम् = विक्रमादित्य के यश के सूचक किले के अवशेषों (खण्डहरों) से शोभित। 'विक्रमस्य यशसः सूचकैः दुर्गस्य अवशेषैः शोभितम् (तत्पु0)'। देवधुनीतरङ्गक्षालितप्रान्तम् = गंगा की लहरों से प्रक्षालित प्रान्त वाले। 'देवधुन्यास्तरङ्गैः क्षालितः प्रान्तः यस्य तम् (बहुव्रीहि)'। देवधुनी = गंगा। मुद्गलपुरम् = मुंगेर को। निरीक्ष्य = देखकर, 'निर + ईश + ल्यप्'। कर्णदुर्गस्थानेम = कर्ण (ऐतिहासिक दानी) के किला के स्थान से। तद्यशोमहामुद्रया इव = मानो उसके (कर्ण के)यशरूपी महामुद्रा (मुहर) के द्वारा, 'तस्य यश एवमुहामुद्रातया (तत्पु0)'। अङ्कितम् = चिह्नित। अध्युष्य = निवास कर, 'अधि + वस् + ल्यप् व को 'उ' सम्प्रसारण हो जाता है। अतिवर्द्धमानवैभवम् = अत्यधिक रहा है वैभव जिसका, 'अतिशयेन प्रवर्द्धमानः वैभवः यस्त तत् (बहुव्रीहि)'। यथोचित सम्भारैः = समुचित सामग्रियों से, सम्भार = सामग्री। उपस्थाय = पूजा करके, 'उप + स्था + ल्यप्।' तलोऽपि पूर्वम् = उससे भी पूर्व दिशा में। अटाट्याम् = पर्यटन। अकार्षम = किया।

टिप्पणी:— (1) तद्यशो महामुद्रयेवांकितम् =मानो उसकी यशरूपी मुद्रा से अंकित हो। मुद्रा से अंकित होने की सम्भावना है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) यश रूपी मुद्रा के चित्रण से रूपक अलंकार है।

गौरसिंह में अपने धर्म के प्रति दृढ़ता का चित्रण किया गया है। साथ ही भौगोलिक वर्णन भी है।

अव0-किं किं पूर्ववङ्गेऽपि ?

तान0-आम् श्रीमन्। पूर्ववंगमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः, यत्र प्रान्तप्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः पद्मा प्रवहति, यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रुसेनानाशन-कुशलः ब्रह्मदेशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदी भूभागं क्षालयति, यत्र साम्ल-सुमधुररस-पूरितानी फूत्कारोद्धूतभूति-ज्वलदङ्गार-विजित्वर-वर्णानिजगत्प्रसिद्धानि नारङ्गाण्युöवन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां तालानां नारिकलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेश-रसज्ञानां साम्रेडं कर्ण स्पृशति, यत्र च भयङ्कराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलामु स्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, बडिशं योजयन्तः, कुवेणीस्थ म्रियमाणमत्स्य-परीवर्त्तानालोकमालोकमानन्दतः, अदृष्टतटेष्वपि महाप्रवाहेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फक्किकाकारया नौकया भिन्नाञ्जनलिप्ता इव मसी-स्नाता। इस साकारा अन्धकारा इव काला धीवरबालाः निर्भयाः क्रीडन्ति।

हिन्दी अनुवादः— अफजल खाँ-क्या, क्या, पूर्वी बंगाल भी देखा ?

तानरंग-हाँ, श्रीमान्! पूर्वी बंगाल भी अच्छी तरह इस व्यक्ति (तानरंग) ने देखा है। जहाँ तट पर उगी हुई कमल की पंक्ति को कुचलती हुई, द्रवीभूत हुई लक्ष्मी के समान जल प्रवाह से युक्त पद्मा नदी बहती है, जहाँ ब्रह्मपुत्र के शत्रुओं की सूना को नश करने में दक्ष, ब्रह्मदेश का (भारत से) विभाग करता हुआ ब्रह्मपुत्र नामक नद भूभाग को सींचता है, जहाँ खट्टे मिट्ठे रस के पूर्ण, फूँककर के, उड़ दी गई है राख जिनकी ऐसे प्रज्वलित अंगारों के वर्ण को जीत लेने वाले जगत्प्रसिद्ध संतरे पैदा होते हैं जिस देश के नींबू, आम, ताल, नारियल और खजूर की महिमा सभी देशों के रसिकों के कान को बार-बार छूती है। जहाँ सहस्रों भयंकर आवर्तों से व्याप्त नदियों में हो हो करते हुए डाँड़ को डालते हुए, पतवार को चलाते हुए, मत्स्यवेधक यन्त्र को लगाते हुए, जाल में फंसी हुई मरणासन्न मछलियों के छटपटाने को देखकर आनन्दित होते हुए, तट न दिखाई पड़ने वाले महाप्रवाहों में छोटी-छोटी, कुंभड़े की 'फाँक' की आकार वाली नौका से पिसे हुए काजल से संलिप्त हुए से, स्याही से स्नान किये, शरीरधारी अन्धकार के समान धीवरों (मछुओं) के लड़के निर्भय होकर खेलते हैं।

हिन्दी व्याख्याः— अवालुलोकत् = देखा, 'अव + लोक् + लङ् (तिप्)। एष जनः = तानरंग। प्रान्तप्ररूढाम् = किनारे पर उगी हुई, 'प्रान्ते प्ररूढा ताम् (तत्पु0)'। पद्मावलीम् = कमल की पंक्ति को, अवली = पंक्ति। परिमर्दयन्ती = मसलती हुई, 'परि + मृद् + णिच् + शतृ (ङीप्)'। पद्मा इव = शोभा के समान। द्रवीभूता = जलरूप में परिवर्तित हुई। पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः = जल पूरित प्रवाह परम्पराओंसे। ब्रह्मपुत्र इव = ब्रह्मपुत्र विष के समान, ''ब्रह्मपुत्रः प्रदीपनः'' (अमरकोष)। शत्रुसेनानाशनकुशलः = शत्रुओं की सेना के नाश में दक्ष, 'शुत्रूणां सेनायाः नाशने कुशलः (तत्पु0)'। विभजनं = विभाग करता हुआ। क्षालयति = धोता है। साम्लसुमधुररसपूरितानी = खट्टे और मीठे रस से भरे हुए, 'शोभनम् मधुरं सुमधुरम् आम्लेन सहितः साम्लः साम्लश्चासौ सुमधुरस्तेन रसेन पूरितानि।' फूत्कारोद्धूतभूतिज्वलदङ्गारविजित्वरवर्णानि = फूँकने से उड़ा दी गई है ऐसे जलते हुए अंगारों को मात देने वाले हैं रंग जिसके। फूत्कार = फूँकना, उद्धूत = उछा दिया गया, भूति = राख, ज्वलत् = जलते हुए, विजित्वर = जीतने वाले। ''फूत्कारेण उद्धूता भूतिः येषां तादृशा ये ज्वलदङ्गाराः तेषां विजित्वराः वर्णाः येषां तानि (बहुव्रीहि)'। उद्धूत 'उद् + धूञ् + क्त'', विजित्वर = जिस देश के, देशीय = 'देश + छ'। जम्बीराणाम् = नींबुओं के।

सर्वदेशरसज्ञानाम् = सभी देशों के रसिकों के। साग्रेडम् = बार-बार। भयङ्करावर्तसहस्राकुलामु = हजारों भयंकर लहरों से आकुल (व्याप्त) नदी का (विशेषण), ''भयंकरैः आवर्त्त सहस्रैः आकुलास्तासु' (तत्पु0)। आवर्त्त = लहर 'स्यादावर्त्तोम्भसां भ्रमः' (अमरकोष)। स्रोतस्वतीषु = नदियों में, 'स्रोतम् + मतुप + ङीप्'। क्षेपणीः = डाँड 'नौकादण्डः क्षेपणी स्यात्'' (अमरकोष)। क्षिपन्तः = डालते हुए। अरित्रम् = पतवार, 'अरित्रम् केनिपातः' (अमरकोष)। बडिशम् = मछली फंसाने वाले फँदे 'बडिशम् मत्स्यवेधनम्' (अमरकोष)। योजयन्तः = डालते हुए। कुवेणीस्थम्रियमाणमत्स्यपरीवर्त्तान = जाल में फंसी मरणासन्न मछलियों के छटपटाने (तड़पन) को वकुवेणी = मछलियों वाला जाल, म्रियमाण = मरणासन, 'मृङ् + शानच्', परिवर्त्तान् = छटपटाहट। ''कुवेण्यां तिष्ठन्ति ये ते कुवेणीस्थाः ये म्रियमाणाः मत्स्यास्तेषां परीवर्त्तान् (तत्पु0)। आलोकमालोकम् = देख-देखकर। आनन्दतः = आनन्दित होते हुए। अदृष्टतटेषु = तट न दिखाई पड़ने वाले, 'अदृष्टं तटं येषां तेषु'। कूष्माण्डफक्किकाकारया = कुंभड़े (कद्दू) के फाँक की आकार वाली (नौका का उपमान है), 'कूष्माडस्य फक्किकायाः आकारः इव अकारः यस्याः सा तया (बहुब्रीहि)'। भिन्नाञ्जनलिप्ता इव = पिसे हुए काजल से लिपे-पुते से 'भिन्नोनाञ्जनेन लिप्ताः (तत्पु0)'। मसीस्नाता इव = स्याही से स्नान किये हुए के
समान। साकारा = शरीरधारी। कालाः = काले। धीवरबालाः = मछुओं के लड़के।

टिप्पणी:— (1) पद्मेव द्रवीभूता-'जल रूप में परिणत हुई शोभा के समान; यहाँ शोभा के पिघलने की सम्भावना से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(2) 'ब्रह्मपुत्र इव' ब्रह्मपुत्र के समान, उपमा अलंकार है।

(3) कूष्माण्डफक्किकाकारया नौकया-यहाँ नौका के लिये अति नवीन उपमान 'कुँभड़े की फाँक' को प्रस्तुत किया है, अतः लुप्तोपमा अलङ्कार है।

(4) भिन्नञ्जन लिप्ता ..... अन्धकारा इव'-में पिष्ट काजल से लिप्त होने, स्याही से नहाए हुए, शरीरधारी अन्धकार की सम्भावना की गई है, अतः मालोत्प्रेक्षा अलंकार है।

अफजलखाँ - (स्वयं हसन्, सर्वांश्च हसतः पश्यन्) सत्यं सत्यम् !! धन्यो भवान्, योल्पेनैव वयसैवं विदेश-भ्रमणैः चातुरीं कलयति।

तानरंग - धन्य एव यदि युष्मादृशैरभिनन्द्ये!

अपजलखाँ - (क्षणानन्तरम्) अथ भवान् मूर्छना-प्रधानं गायति, तानप्रधानं वा ?

तानरंग - ईदृक्षं तादृक्षञ्च।

अपजलखाँ - (क्षणानन्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन रागः।

तानरंग - (किञ्चिद् विचार्य) आज्ञा चेदेकां राग-माला-गीति गायामि, यत्र प्रत्याभोगं नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत, तत्तद्राग-नामानि च तत्रैव प्राप्येरन्।

अपजलखाँ – आतः! किमेवम् ? ईदृशं तु गानं न प्रायः श्रूयये, तद् गीयताम्।

हिन्दी अनुवादः— अफजल खाँ - (स्वयं हँसते हुए, और सबको हँसते हुए देखकर) सच है, सच है! आप धान्य हैं, जो थोड़ी ही अवस्था में इस प्रकार विदेशों के भ्रमण से चतुरता प्राप्त कर ली है।

तानरंग - यदि आप जैसे लोगों द्वारा ये अभिनन्दित किया जाऊँ तो अवश्य ही (मैं) धन्य हूँ।

अफजल खाँ - (क्षणभर बाद) अच्छा, तो आप मूर्छना प्रधान गाते हैं अथवा तान प्रधान ?

तानरंग - ऐसा और वैसा भी अर्थात् मूर्छना प्रधान और तान-प्रधान दोनों गाता हूँ।

अफजल खाँ - (थोड़ी देर बाद) ठीक है, कोई राग अलापिये।

तानरंग - (कुछ विचार कर) यदि आज्ञा हो तो एक रागमाला गीत गाऊँ जिस गीत के प्रत्येक खण्ड में एक नया ही राग होगा और एक ही ध्रुव से चलेगा और उन सभी रागों के नाम भी उसी में प्राप्त हो जाएँगे।

अफजल खाँ - वाह! क्या ऐसा है! ऐसा तो गाना प्रायः नहीं सुना जाता है, तो गाइये।

हिन्दी व्याख्या:— अल्पेनैव = कम ही। वयसा = अवस्था से। विदेशभ्रमणैः =विदेशों के भ्रमण से। चातुरीम् =कुशलता को। कलयति =प्राप्त कर लिये हो। युष्मादृशै =आप जैसे लोगों के द्वारा। अभिनन्द्ये =अभिनन्दित किया जाऊँ। मूर्च्छना प्रधानम् =मूर्च्छना प्रधान। तानप्रधानम् =तानप्रधान, आरोह और अवरोह क्रमयुक्त स्वरसमुदाय को मूर्च्छना और आरोहक्रम युक्त स्वरों को तानप्रधान कहा जाता है - 'आरोहावरोहक्रमयुक्ताः स्वरसमुदायोमूर्च्छनेत्युच्यते, तानस्त्वारोहक्रमेण भवति' (मतंग)। आलप्यताम् = अलापिये। रागमालागीतिम् = एक विशेष प्रकार की राग वाला गीत। प्रत्याभोगम् = प्रत्येक गेयखण्ड। ध्रुवेण = स्थिर पद, सभी पदों के अन्त में जिसका उच्चारण बार-बार किया जाता है, उसे ही ध्रुव (अन्वर्थक संज्ञा) कहा जाता है। संगच्छेत् = चले। तत्तद् रागनामानि = उन-उन रागों के नाम। प्राप्येरन् =प्राप्त हो जाते हैं। ईदृशम् = इस प्रकार। श्रूयते = सुना जाता है।

ततस्तानपूरिकायाः स्वरान् संमेल्य पातित-वामजानुः तानपूरिकातुम्बं क्रोडे निधाय दक्षपादस्योत्थितजानुनि च दक्ष-हस्त-कूर्पर-स्थापन-पुरःसरं तेनैव हस्तेन तर्जग्न्यंगुल्या तानपूरिकां रणयन् स्वकण्ठेनापि त्रीन् ग्रामान् सप्तस्वरांश्चत समधात्।

हिन्दी अनुवाद:— तब तानूपरे के स्वर को मिलाकर, बायाँ घुटना टेककर तानपूरे की तूँबी को गोद में रखकर, दाहिने पाँव की उठी हुई जंघा पर दायें हाथ की कुहनी रखकर, उसी हाथ की तर्जनी उँगली से तानपूरे को बजाते हुये, अपने कण्ठ से भी (षड्ज, मध्यम, गान्धार) तीन ग्रामों और (निषादादि) सात स्वरों को अलापित किया।

हिन्दी व्याख्या:— संमेल्य = मिलाकर, 'सम् + मिल् + ल्यप्'। पातितवामजानुः = बाँये घुटने को गिरा कर, पातित वामजानु यस्य सः (बहुव्रीहि)। क्रोडेः = गोद में। निधाय = रखकर। दक्षपादस्य = दाहिने पैर के। उत्थितजानुनि = उठे हुए घुटने पर, 'उत्थित जानु तस्मिन्'। दक्षहस्तकूर्परस्थापनपुरःसरम् = दाहिने हाथ के कोहिनी रखकर, कूर्पर = कोहिनी। हाथ के बीच की गाँठ को कूर्पर कहते हैं-''स्यात् कफोणिस्तु कूर्परः'' (अमरकोष)। तर्जन्यगुल्या = अंगूठे के बगल की उंगली से। रणयन् = अनुरणित (बजाते) करते हुए। त्रीन् ग्रामान् = षड्ज, मध्यम और गान्धार इन तीन ग्रामों को-'षड्ज ग्रामोभवेदायौ मध्यमग्राम एव च। गान्धार ग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृयतम्। सप्तस्वरान् = निषाद आदि सात स्वरों को। समधात् = समायोजित किया 'सम् + धः लुङ्'।

तन्मात्रश्रवणेनैव मुग्धेष्विवाऽखिलेषु इमां रागमाला-गीतिमगायत्—

सखि हे नन्द-तनय आगच्छति।।सखि0।।

मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति।।

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः।

कलित ललित-मालती-मालिकः सुरवरवाञ्छित-सेवः।।

सारंगैः सारंग-सुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः।

चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः।।
श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीशः।
सर्व-श्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गवीशः।।
गौरी-पतिना सदा भावितो बर्हि-बर्हि-किरीटः।
कनककशिपु-कदनो बलि मथनो-विहत-दशानन-कीटः।।

हिन्दी अनुवादः— इतना सुनने से ही सभी के मुग्ध से हो जाने पर इस रागमाला गीत को अलापा - हे सखि नन्द के पुत्र आ रहे हैं। मन्द-मन्द मुरली के स्वर से अत्यधिक आनन्द प्रदान कर रहे हैं। (वे कृष्ण) दुष्टजनों के लिये भैरवरूप (भयंकर) और सज्जनों के लिये सुखकर हैं। सुन्दर मालती की माला से युक्त हैं, देवता लोग उनकी सेवा करने को लालायित रहते हैं। कामदेव के समान सुन्दर कृष्ण हरिणों के द्वारा अपलक दृष्टि से देखे जा रहे हैं। बिजली के समान चञ्चल चमत्कारी वस्त्र धारण किये हुए हैं, और मनोहर गीत गा रहे हैं। हृदय में श्रीवत्स (भृगुपद) का चिह्न है, वे श्रीमन्, लक्ष्मी को देने वाले और लक्ष्मी के स्वामी हैं। सब प्रकार की लक्ष्मी (शोभा) से युक्त लक्ष्मी के पति, लक्ष्मी को मोहित करने वाले और वे वेद-वाणी के ईश, जितेन्द्रिय तथा (वृन्दावन के) पशुओं के स्वामी हैं। वे शंकर जी के द्वारा सेवित, मोरपंख के मुकुट को धारण करने वाले, हिरण्यकशिपु का नाश करने वाले, बलि का विध्वंस करने वाले तथा दशानन रूपी कीड़े को मारने वाले हैं।

हिन्दी व्याख्याः— नन्दतनय = नन्द के पुत्र कृष्ण। मुरलीरणनैः = मुरली की ध्वनि से। समधिकसुखं = अत्यधिक सुख को। प्रयच्छति = प्रदान कर रहे हैं। 'प्र + दाण् + लिट् (तप्)'। भैरवरूपः = भयङ्कर। कलितललितमालतीमालिकः = सुन्दर मालती की माला से युक्त, कलित = युक्त, ललित = सुन्दर। 'कलिता ललिता मालती मालिका येन सः (बहुब्रीहि)'। सुरवरवाञ्छितसेवः = इन्द्रादि देवता जिसकी सेवा कामना रखते हैं, 'सुरवरैः वाञ्छिता सेवा यस्य सः (बहुब्रीहि)'। सारंगसुन्दरः = कामदेव के समान सुन्दर, 'सारंग इव सुन्दर (कर्मधारय)'। दृग्भिः = नेत्रों से। निपीयमानः = पिये जाते हुए अर्थात् देखे जाते हुए, 'नि + पा + य + शानच्'। चपलाचपलचमत्कृतिवसनः = बिजली के समान चञ्चल चमचमाहटपूर्ण वस्त्र वाले, 'चपला इव चपला चमत्कृतिः तादृश वसनम् यस्य सः (बहुब्रीहि)'। श्रीवत्सेन = महर्षि भृगु के पद से। लाञ्छितः = चिह्नित हैं। श्रीलः = शोभावान्। श्रीदः = धन सम्पत्ति प्रदान करने वाले। श्रीशः = लक्ष्मी के स्वामी। सर्वश्रीभिः = सभी प्रकार की शोभा से। युतः = युक्त। श्रीमोहनः = लक्ष्मी को मोहित करने वाले, 'श्रियं मुह्यति इति श्रीमोहनः'। गवीशः = वेद वाणी के आविष्कारक, 'गवां वाणीनाम् ईशः' अथवा जितेन्द्रिय ''गवाम्-इन्द्रियाणामीशः इति अथवा पशुओं के स्वामी 'गवाम्' = पशूनामीशः'' गौरीपतिना = शङ्कर के द्वारा, 'गौर्य्याः पतिस्तेन (तत्पु0)। भावितः = ध्यान किये जाते हुए। बर्हिणबर्हकिरीटः = मोरपंख के मुकुट धारण करने वाले। बर्ह = मोर पंख, बर्ही = मोर। बर्हिणः बर्ह इव किरीटः यस्य सः (बहुब्रीहि)। कनककशिपुकदनः = हिरण्यकशिपु को मारने वाले, कदनः = मारने वाले-'कद + ल्युट्'। नरसिंहावतार लेकर भगवान ने हिरण्यकशिपु को मारा था। बलिमथनः = बलि का ध्वंस करने वाले वामनावतार से बलि के यज्ञ का विध्वंस किया। विहतदशाननकीटः = दशानन रूपी कीट को मारने वाले। विहतः दशाननः एव कीटः सः (बहुब्रीहि)।

टिप्पणी:— (1) उक्त पद्य कृष्ण सम्बन्धी वर्णन के अतिरिक्त भैरव, ललित, सारङ्ग, श्रीराग और गौरी आदि रागों का नाम भी आ जाता है।

(2) कृष्ण के रूप वर्णन में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

अथ एतावदेव श्रुत्वा अतितरां प्रसन्नेषु पारिषदेषु, ससाधुवादं वितीर्णकङ्कणे च अपजलखाने, तानरङ्गोऽपि सप्रसादं तानपूरिकां भूमौ संस्थाप्य अपजलखानस्य गुणग्राहितां प्रशंशस। अथ अपजलखानः क्रमशो मैरेय-मद-परवशतां वहन् उवाच-यत् कथ्यतार्मास्मन् प्रान्ते भवादृशानां गुणःग्राहकाः के सन्ति ? के वा कविताया: संगीतस्य च मर्मावगच्छन्ति ?

हिन्दी अनुवाद:— इतना ही सुनकर सभा में बैठे हुए लोगों के अत्यन्त प्रसन्न हो जाने पर और प्रसन्न हुए अफजल खाँ के साधुवादपूर्वक (सुवर्ण) कड्गन का पुरस्कार देने पर तानरंग ने भी प्रसन्नतापूर्वक तानपूरे को भूमि में रखकर अफजल खाँ की गुणग्राहिता की प्रशंसा की। इसके बाद अफजल खाँ क्रमशः शराब के नशे में मस्त बोला कि कहिए, इस प्रान्त में आप जैसे लोगों के गुणग्राहक कौन हैं ? कौन कविता और संगीत के मर्म समझते हैं ?

हिन्दी व्याख्या:— एतावद = इतना। अतितराम् = अत्यधिक = अति + तरप्'। पारिषदेषु = सभासदों के, 'परिषदि साधवः पारिषदः, 'परिषद + अण्' यहाँ पर 'यस्य भावेनभावलक्षणम्' से सप्तमी है। ससाधुवादम् = साधुवाद पूर्वक। वितीर्णकङ्कणे = कंकण से पुरस्कृत कर देने पर। सप्रसादम् = प्रसन्नतापूर्वक। संस्थाप्य = रखकर। भूमौ = भूमि में। गुणग्राहिताम् = गुणग्राहकता (गुणों को पहचानने की सामर्थ्य) को। प्रशंशस = प्रशंसा की, 'प्र + शंस + लिट् (तिप्), मैरेयमदविवशताम् = शराब की मद की विवशता को। मैरेय = मद्य (शराब), 'मैरेयस्य यः मदस्तस्यविवशताम्' (तत्पु0)। वहन् = धारण किये हुए, 'वह् + शतृ'। कथ्यताम् = कहिए। भवादृशानाम् = आप सदृश लोगों के। गुणःग्राहकाः = गुण ग्रहण करने वाले। मर्म = रहस्य को। अवगच्छन्ति =जानते हैं; 'अव + गम् लट् (झि)'।

ततस्तानरंगोऽचथत्-को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवाऽऽरोह-विद्या-सिन्धुः, स एव चन्द्रहास-चालने चतुरः, स एव मल्ल-विद्या-मर्मज्ञः, स एव बाण-विद्या-वारिधिः, स एव पण्डित-मण्डल-मण्डनः, स एव धैर्य-धारि-धौरेयः, स एव वीर-वारवरः, स एव पुरुष-पौरुष-परीक्षकः, स एव दीन-दुःख-दावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षण-सक्षणः, स एव विलक्षण-विचक्षणः, स एव च मा... श-गुणिगण-गुण-ग्रहणाऽऽग्रही वर्तते।

अथ अपजलखाने-''तत् किं शिव एष एवं गुण-गण-विशिष्टोऽस्ति ? एवं वा वीर-वरोऽस्ति ?'' इति सचकितं सभयं सतर्कं सरो-मोद्गमं च कथयति, किञ्चिद् विचार्येव नीति-कौशल-पुरःसरं गौरः पुनरवादीत्।

हिन्दी अनुवाद :— अब तानरंग ने कहा- शिववीर के अतिरिक्त और कौन ऐसा है ? वे ही राजनीति में पारंगत हैं, वे ही घुड़सवारी की विद्या के समुद्र हैं, ही वे तलवार चलाने में चतुर हैं, वे ही मल्लविद्या के मर्मज्ञ हैं, वे ही वाण विद्या के सागर हैं, वे ही विद्वन्मण्डली के आभूषण हैं, वे ही धैर्यशालियों के धुरीण हैं, वे ही वीरों में श्रेष्ठ हैं, वे ही पुरुषों के पौरुष के परीक्षक हैं, वे ही दीनों के दुःख रूपी जंगल के लिये दावाग्नि हैं, वे ही अपने धर्म के रक्षण के प्रति उत्साही हैं, और वे ही अद्भुत विद्वान् हैं, वे ही हम जैसे गुणी लोगों के गुण-ग्रहण के आग्रही हैं।

इसके बाद अफजल खाँ के- ''तो क्या यह शिववीर इस प्रकार के गुण से युक्त हैं ? क्या इतना अधिक वीर है ?'' इस प्रकार आश्चर्य, भय, अनुमान और रोमाञ्चपूर्वक कहने पर जैसे कुछ विचार करके नीतिकौशलपूर्वक गौरसिंह पुनः बोला।

हिन्दी व्याख्या:— अचकथत् = कहा। को नाम् = कौन (है)। राजनीतौ = राजनीति में। निष्णातः = स्नान किये हुए अर्थात् पारंगत, 'नि+ष्णा+क्त'। सैन्ध्वारोहविद्यासिन्धुः = घोड़ों के आरोहण की विद्या के समुद्र, अर्थात् घुड़सवार की कला में श्रेष्ठ। सैन्धवः = घोड़ा, सिन्धोः अयम् सैन्धवः, 'सिन्धु + अण्'। ''सैन्धवस्य आरोहणस्य विद्यायाः सिन्धुः (तत्पु0)'। चन्द्रहासचालने = तलवार चलाने में, चन्द्रहासस्य चालने (तत्पु0)। मल्लविद्यामर्मज्ञः = मल्लविद्या के मर्मज्ञ, शारीरिक युद्ध को मल्लविद्या कहते हैं। बाणविद्यावारिधिः = धनुर्विद्या के समुद्र, 'बाणानां विद्यायाः वारिधिः (तत्पु0)। पण्डितमण्डलमण्डनः = पण्डित मण्डली के आभूषण। धैर्यधारिधौरेयः = धैर्यधारियों में, धुरीय, 'धैर्यांधारयन्तीति धैर्यधारिणस्तेषु धौरेयः, (तत्पु0)। वीरवारवरः = वीर समूह में श्रेष्ठ, वार = समूह, 'वीराणां वारस्तस्मिन् वरः' (तत्पु0) पुरुषपौरुषपरीक्षकः = पुरुषों के पौरुष (शक्ति) के पारखी, 'पुरुषाणां पौरुषस्य परीक्षकः' (तत्पु0)। दीनदुःखदावदहनः = दीनों के दुःख रूपी जंगल के जलाने वाले, दावदहनः = दावाग्नि। 'दीनानां दुःखमेवदावस्तस्य दहनः' (तत्पु0)। स्वधर्मरक्षणसक्षणः = अपने धर्म के रक्षण में उत्साही, 'स्वस्य धर्मस्य रक्षणे सक्षणः (तत्पु0), क्षणेन सहितः-सक्षणः = सोत्साह या सहर्ष। विलक्षणः विचक्षणः = विद्वानों में श्रेष्ठ, विचक्षणः = विद्वान्। मा....शगुणिगणगुणग्रहणाग्रही = हम जैसे लोगों के गुणों के ग्रहण में रुचि रखने वाले, 'मा.....शानां गुणिनां गणस्य गुण ग्रहणे। आग्रहः अस्ति यस्मिन् सः (बहुव्रीहि)'। 'आग्रह + इन', आग्रही = आग्रह वाला। वर्तते = है। गुणगण विशष्टः = गुणों से युक्त। वीरवरः = वीरों में श्रेष्ठ। सचकितम् = आश्चर्य पूर्वक। सतर्कम् = अनुमान पूर्वक। सरोमोद्गमम् = रोमाञ्च के साथ। विचार्य इव = विचार सा करके। नीतिकौशलपुरःसरम् = नीतिकौशल पूर्वक। अवादीत् = बोला।

टिप्पणी:— 1. सैन्ध्वारोहविद्यासिन्धुः-घुड़सवारी की विद्या के सागर, बाणविद्यावारिधिः-बाण-विद्या के समुद्र, पण्डितमण्डलमण्डनः-पण्डितमण्डली के आभूषण और दीनदुखदावदहनः दोनों के दुख रूप जंगल के दहन के द्वारा विद्या के सागर, आभूषण और अग्नि का शिववीर में आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

2. 'मादृश ग्रही' में अनुप्रास अलंकार है।

3. किञ्चिद्-विचार्येव-'मानों कुछ विचार करके' यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1- गौरसिंह कितने वर्ष पूर्व काशी में गंगा में स्नान किया?

2- उज्जैन देश के क्षत्रिय वंशों से अलंकृत किस देश को देखा?

3- गौरसिंह पाटलिपुत्र नगर को पार करके, कहा गया?

4- अफजल खाँ ने गौरसिंह को पुरस्कार में क्या दिया?

5- अफजल खाँ की गुणग्राहिता की प्रशंसा किसने की?

भगवान् ! सामान्य-राजभृत्यस्य पुत्रः शिववीरो यदि नाम नाऽभविष्यत् स्वयमीदृश उर्जस्वलः, तत्कथं स्वर्णदेव-सदृशं सहचरं प्राप्स्यत् ? तद्-द्वारा समस्तं कल्याण-प्रदेशं कल्याण दुर्गं च स्वहस्तगतमकरिष्यत् ? कथं तोरण-दुर्ग-भांग-भाजनतामकलयिष्यत् ?

कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्वतस्य शिखरे महेन्द्र-मन्दिर-खण्डमिव धर्षितारि-वर्ग डमरु-हुडुक्कारतोषित भर्गं रायगढनामकं महादुर्गं व्यरचयिष्यत् ? कथं वा तपनीय-भित्तिका-जटित-महारत्न-किरणावली-वितन्यमान-महावितान विततिं – विरोचित - प्रताप – तापित - परिपन्थि-निवहं चन्द्रचुम्बन-चतुर-चारु-शिखर-निकरं मुशुण्डिका - किणाङ्कित-प्रचण्ड-भुजदण्ड-रक्षक-कुल-विधीयमान-परस्सहस्र परिक्रमं धमद्धमद्दो धूयमानाऽनेक-ध्वज-पटल-निर्मथित महाकाशं प्रतार-दुर्गं निरमापयिष्यत् ? कथं वा 'आगत एष शिववीरः'-इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिताः निपतन्ति, अन्ये विस्मृत-शस्त्रास्त्राः पालयन्ते, इतरे महात्रासाऽऽकुञ्चितोदरा विशिथिल-वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणिपात-परम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते।

हिन्दी अनुवादः— श्रीमन्! एक सामान्य राजा के नौकर का लड़का शिववीर यदि स्वयम् इस प्रकार तेजस्वी न होता तो स्वर्णदेव जैसा साथी कैसे प्राप्त करता ? उसके द्वारा सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को हस्तगत कैसे कर लेता ? तोरण दुर्ग को अपना भोग्य कैसे बनाता ? तोरण दुर्ग से दक्षिण पूर्व में पर्वत की चोटी पर इन्द्र के महल के एक खण्ड के समान दुश्मनों को डराने वाले, डमरू की हुडुक्-हुडुक् की ध्वनि से शंकर जी को प्रसन्न करने वाले रायगढ़ नामक महादुर्ग की रचना कैसे करता ? अथवा सोने की दीवालों पर जड़े हुए महारत्नों की किरणावलियों से ताने गये महावितानों से सुशोभित प्रताप से शत्रुओं को संतप्त करने वाले, गगनचुम्बी अनेक शिखरों वाले, बन्दूक के (पकड़ने से बने हुए) घट्टों से अंकित प्रचण्ड भुजदण्डों वाले रक्षकों के द्वारा हजारों परिक्रमाओं (गस्ती) से रक्षित और 'धमद्-धमद्' शब्द से युक्त फहराने वाली अनेकों पताकाओं से महाकाश को मथने वाले प्रताप दुर्ग को कैसे बनवा लेता ? अथवा ''यह शिववीर आये हैं'' भ्रम से भी यह समझकर इनके विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर क्यों गिर पड़ते हैं, कुछ शस्त्रास्त्र छोड़कर क्यों भाग जाते हैं, कुछ अत्यन्त भय से पेट के सिकुड़ जाने पर वस्त्र के ढीले हो जाने से नंगे क्यों हो जाते हैं, और दूसरे सूखे मुँह वाले दाँतों में तृण रखकर बार-बार प्रणाम करते हुए जीवन की भिक्षा क्यों माँगने लगते हैं ?

हिन्दी व्याख्या:— सामान्यराजभृत्यस्य = राजा के साधारण कर्मचारी का। अभविष्यत् = होना 'भू + लृङ् (तिप्)'। ईदृशः = इस प्रकार। उर्जस्वलः = बलशाली। स्वर्णदेवसदृशम् = स्वर्ण देव के समान। सहचरम् = साथी को, 'सहचरतीति सहचरस्तम्' 'चर + अच'। प्राप्स्यत् = प्राप्त करते। तद्-द्वारा = स्वर्णदेव द्वारा। स्वहस्तगतम् = अपने हाथ में प्राप्त कर लेता। अकरिष्यत् = कर लेते। तोरणदुर्गभोगभाजनताम् = तोरण दुर्ग को भोग का भाजन (पात्र)। आकलयिष्यत् = प्राप्त कर लेते, 'कल + लृङ् (तिप्)'। तोरणदुर्गात् = तोरण नामक दुर्ग से। दक्षिणपूर्वस्याम् = दक्षिण और पूर्व के मध्य में। शिखरे = शिखर पर। महेन्द्रमन्दिरखण्डमिव = इन्द्रभवन के खण्ड के समान, महेन्द्रस्य मन्दिरस्य खण्डमिव'। धर्षितारिवर्ग्गम् = शत्रुवर्ग को भयभीत करने वाले, धर्षित= भयभीत, अरिवर्ग = शत्रुवर्ग। 'धर्ष्णितः अरीणाम् वर्ग येन तम् (बहुब्रीहि)'। धर्ष्णित - 'धृष (प्रहसने) + क्त'। डमरुहुडुक्कारतोषितभर्गम् = डमरु के निनाद से शंकर को प्रसन्न करने वाले, डमरु = वाद्य विशेष, हुडुक्कार हुडुक्-हुडुक् की ध्वनि, तोषित = प्रसन्न किये गये, भर्ग = शंकर। ''डमरुहुडुक्कारेण तोषितः भर्गः अस्मिंस्तम् (बहुब्रीहि)'। महादुर्ग्गम् = विशाल किला। व्यरचयिष्यत् = वि + रच् + लृङ् (तिप्)', रचना कर पाते ? तपनीय ..... परिपन्थिनिवहम् =

सोने के दीवालों में जटित महारत्नों की किरण समूहों से, ताने गये विशाल मण्डप से सुशोभित तेज से शत्रुओं को जलाने वाले; तपनीय = सुवर्ण, भित्तिका = दीवाल, जटित = जड़े हुए, महारत्न = हीरे पन्नगादि बहुमूल्य रत्न, किरणावली = किरण की पंक्ति, वितन्यमनि = फैलाये जाने वाला, महावितान = विशाल मण्डल, विततति = विस्तार, विरोचित = सुशोभित, प्रताप = तेज, तापित = संतप्त, परिपन्थि = शत्रु, निवह = समूह। ''तपनीयस्य भित्तिकासु जटितानां महारत्नानां किरणावलीभिः वितन्यमानस्य वितत्याविरोचितेन प्रतापेन तापितः परिपन्थि निवहः येन तम् (बहुब्रीहि)''। चन्द्रचुम्बनचतुर-चारु-शिखरनिकरम् = चन्द्रमा को स्पर्श करने वाले अनेक सुन्दर शिखरों वाले, 'चन्द्र चुम्बने चतुरश्चारुश्च शिखरनिकरः यस्य तम् (बहुब्रीहि)''। भुशुण्डिका.... परस्सहस्रपरिक्रमम् = बन्दूक पकड़ने से पड़े हुये गड्ढ़ों से अङ्कित प्रचण्ड भुजदण्डों वाले रक्षकों के कुल से जिसकी हजारों परिक्रमाएँ की जा रही हैं। भुशुण्डिका = बन्दूक, किण = आघात, अङ्कित = चिह्नित, विधीयमान = सम्पादित। ''भुशुण्डिकानां किणैः अङ्किताः प्रचण्डाः भुजा दण्डाः इव येषां तेषां, रक्षकाणां कुलेन विधीयमानाः परिसहस्राः परिक्रमाः यस्य तम् (बहुब्रीहि)'। धमद्धमद्दोधूयमान.....महाकाशम् = धमद्-धमद् की ध्वनि से फहराने वाले ध्वज समूह से निर्मथित है आकाश जससे, धमद्-धमद् = ध्जवा के शब्द, दोधूयमान = फहराने वाले, पटल = समूह, निर्मथित = मथा हुआ। ''धमद्धमदिति शब्देन दोधयूमानानामनेकषां ध्वजानां पटलेन निर्मथितः महाकाशः येन तम् (बहुब्रीहि)'। निरमापयिष्यत् = बनवा लेते ? सम्भाव्य = सम्भावना करके। मूर्च्छिताः = अचेत हुए। विस्मृतशस्त्रास्त्राः = शस्त्र को भूल जाने वाले, 'विस्मृतानि शस्त्रस्त्राणि यैस्ते (बहुब्रीहि)'। पलायन्ते = भाग जाते हैं। महात्रासाकुञ्चितोदरः = महात्रास (भय) के कारण संकुचित हो गया है उदर (पेट) जिनका, अकुञ्चित = सिकुड़ा हुआ। 'महात्रासेन आकुञ्चितानि उदराणि येषां ते (बहुब्रीहि)'। विशिथिलवाससः = ढीले हो गये हैं वस्त्र जिनके, ''विशिथिलानि वासांसि येषां ते (बहुब्रीहि)''। शुष्कमुखा = सूखे मुख वाले। दशनेषु = दाँतों में। सन्धाय = रखकर। प्रणिपातपरम्पराम् = नमन की परम्परा को। रचयन्तः = करते हुए। याचन्ते = माँगते हैं।

टिप्पणी:— (1) महेन्द्रमन्दिरखण्डमिव- के खण्ड से की गई है, उमा अलङ्कार है।

(2) प्रतापदुर्ग का अति उदात्त वर्णन करने से उदात्तालङ्कार है।

(3) प्रतापदुर्ग की शिखरें चन्द्र चुम्बनी बताई गई हैं, अतः अतिश्योक्ति अलङ्कार है।

ततस्तमरू महाप्रतापमवत्य किञ्चिद्धीते इव तच्छमुणां चावहेलामाकलय्य किञ्चिदरुण-नयने इव, दक्षिण-हस्तांगुष्ठतर्जनीभ्यां श्मश्वग्रं परिमृजति यवन-सेनापतौ; तानरङ्गः पुनर्न्यवेदयत् - परन्त्वद्य सिंहेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इयमस्तमनवेला तत्प्रतापसूर्यस्य। तत् कर्णे कृत्वा सन्तुष्ट इव सकन्धराकम्पं सेनापतिरुवाच-अथाऽत्र संग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच-श्रीमन् ! यदि शिवस्य साहाय्यं साक्षच्छिव एव न कुर्यात्; तद् विजयपुरस्यैव विजयः। अथ सहासं साऽब्रवीत्-को नाम खपुष्पायितः शशश्रृङ्गायितः कमठीस्तन्यायितः सरीसृप-श्रवणायितः भेक-रसनायितः वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एवैषोऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताडयमानों विजयपुरं नीयते।

हिन्दी अनुवाद:— तब शिववीर के महाप्रताप को जानकर (अफजल खाँ के) कुछ भयभीत हो जाने पर और उसके शत्रुओं की अवहेलना को सुनकर नेत्रों के कुछ लाल-लाल हो जाने पर, अपने दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से मूँछ के अग्रभाग के उमेठने पर तानरंग न पुनः निवेदन किया- किन्तु आज सिंह के साथ शिवाजी का सामना पड़ा है, इसलिये मैं समझता हूँ कि यह उसके प्रताप रूपी सूर्य के अस्त होने का समय है।

यह सुनकर सन्तुष्ट हुआ सा कन्धों को हिलाता हुआ सेनापति बोला-इस संग्राम में किसकी विजय की सम्भावना है ?

तानरंग बोला-श्रीमन् ! यदि शिववीर की सहायता साक्षात् शङ्कर की न करें तो विजयपुर की ही जीत होगी।

तब हँसते हुए अफजल खाँ बोला- यह आकाश कुसुम के समान, खरगोश की सींग के समान, कछुई के स्तन के समान, सर्प के कान के समान, मेंढक के जीभ के समान और बाँझ के पुत्र के समान शिव क्या है ? जो इसकी (शिवाजी की) रक्षा करेगा, देखिये कल ही वह हम लोगों के द्वारा जाल से बाँधकर थप्पड़ों से मारा जाता हुआ विजयपुर को लाया जायेगा।

हिन्दी व्याख्या:— महाप्रतापम् = महाप्रताप को, 'महाँश्चासौप्रतापस्तम्' (कर्मधारय)'। अवगत्य = जानकर, 'अब+गम्+ल्यप्'। किञ्चिद्भीते = कुछ भयभीत हुए, 'भी+क्त (सप्तमी ए0व0)'। तच्छत्रुणाम् = उसके शिव के शत्रुओं की। अवहेलाम् = अवहेलना को। आकलय्य = सुनकर, 'आ+कल+ल्यप्'। किञ्ंिचदरुणनयने = कुछ लाल नेत्रों वाले, 'अरुण नयने यस्य सः तस्मिन्' (बहुब्रीहि)। दक्षिणहस्तांगुष्ठर्जनीभ्याम् = दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी से। श्मश्वग्रम् = मूँछ कि अग्रभाग को। परिमृजति = संस्पर्श करता सेनापति के। न्यवेदयत् = निवेदन किया। साम्मुख्यम् = सामना। मन्ये = मानता हूँ अस्तमनबेला = अस्त होने का समय। सूर्य, अस्त और उदित नहीं होता है केवल कुछ खण्ड के निवासियों के लिये उसके अदृष्ट होने पर अस्त और दृष्ट होने पर उदय का व्यवहार होता है। अतएव कहा गया है - नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः''। तत्प्रतापसूर्यस्य = शिववीर के प्रताप रूपी सूर्य का, 'तस्य प्रताप एवं सूर्यस्तस्य'। अर्थात् शिवरीर का प्रताप समाप्त होने वाला है। तत् = उस शब्द को। सकन्धराकम्पम् = कन्धों के कम्पन के साथ अर्थात् कन्धों को हिलाता हुआ, 'कन्धरायाः कम्पस्तेन सहितम्, सकन्धराकम्पम्। सम्भाव्यते = सम्भावना की जाती है। सम्+भावि+लट्। साहाय्यम् = सहायता। साक्षात् = प्रत्यक्ष रूप में। शिवः = शङ्कर जी। सहासम् = हास पूर्वक, 'हासेन सहितम्' (अव्ययीभाव)। खपुष्पायितः = आकाशपुष्प के समान आचरण करने वाला, 'खपुष्पमिवाचरितः खपुष्पायितः' खपुष्प क्यच् क्त। शशश्रृंगायितः = खरगोश की सींग के समान। कमठीस्तन्यायितः = कछुई के स्तन के समान। सरीसृपश्रवणायितः = सर्प के कान के समान। भेकरशनायितः = मेंढक की जीभ के समान। बन्ध्यापुत्रायितः = बन्ध्या (बाँझ स्त्री) के पुत्र के समान। खपुष्पायितः बन्ध्यापुत्रायितः = में 'तद्वदाचरतीति' अर्थ में क्यच् प्रत्यय हुआ है। इनमें उनका संकलन है जिसका कोई अस्तित्व नहीं। ये शङकर जी के उपमान के लिये प्रयुक्त हैं। जिस प्रकार इन चीजों का अस्तित्व नहीं है। वैसे ही शङकर का भी कोई अस्तित्व नहीं है। एनम् = शिवराज को। रक्षिष्यति = रक्षा करेगा। दृश्यताम् = देखिये। पाशैः = जालों या रस्सियों से। चपेटैः = थप्पड़ों से। ताडयमानः = मारा जाता हुआ। नीयते = लाया जायेगा।

टिप्पणी:— 1. प्रताप सूर्यस्य-प्रताप में सूर्य का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

2. 'खपुष्पायितः-पुत्रायितश्च' से आकाश पुष्प, शशश्रृङ्ग, कमठीस्तन, सर्पकर्ण, भेपरशना और बन्ध्यापुत्र को शङ्कर के उपमान के रूप में प्रस्तुत किया गया है किन्तु इव 'वाचक' शब्द नहीं है, अतः लुप्तोपमा अलङ्कार है।

इति सकष्टमाकर्ण्य, ''स्यादेवं भगवन् !'' इति कथयति तान-रङ्गे., अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्-भोभो योद्धारः ! सुर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्च्चाऽपि सहस्त्रणि सादिनां दशाऽपि च सहस्राणि पत्तीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथपण्डित द्वाराऽऽहूतोऽस्ति मया शिव-वराकः। तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः, अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूली-करिष्यामः। यद्यप्येवं स्पष्टमुदीरणं राजनीति-विरुद्धम्, तथाऽपि-मदावेशस्तु न प्रतीक्षते विवेकम्।

हिन्दी अनुवादः— इतना कष्टपूर्वक सुनकर ''ऐसा हो सकता है'' तानरंग के यह कहने पर अभिमान के कारण उसने अपने सहचरों को सम्बोधित करके फिर आदेश दिया-ऐ, ऐ योद्धाओं ! सूर्योदय से पूर्व ही (कल) आप सभी पाँच हजार घुड़सवारों और दशों हजार पैदल सैनिकों को सज्जित करके युद्ध के लिए तैयार रहना। गोपीनाथ पण्डित के द्वारा मैंने उस वराक (बेचारे) शिव को बुलाया है। तब यदि वह विश्वास करके आवे, तब तो बाँधकर जीवित ही ले चलेंगें, नहीं तो दुर्गसहित उसे धूली में मिला देंगे। यद्यपि इस प्रकार कहना राजनीति के विरूद्ध है, तथापि मेरा आवेश (जोश) विवेक की परवाह नहीं करता।

हिन्दी व्याख्याः— सकष्टम् = कष्टपूर्वक। स्यादेवम् = ऐसा हो सकता है। कथयति = कहने पर। अभिमानपरवशः = अभिमान के वशीभूत हुआ। सम्बोध्य = सम्बोधित करके। आदिशत् = आदेश दिया, 'आ+दिश्+लङ्'। पञ्चापि सहस्राणि = पाँचों हजार। सादिनाम् = घुड़सवारों के, ''अश्वारोहास्तु सादिनः'' (अमरकोष)। दशापि सहस्राणि = दशों हजार। पत्तीनाम् = पदातियों (पैदलों) को ''पदातिपत्तिवतगपादातिकपदाजयः'' (अमरकोष)। सज्जीकृत्य = तैयार करके, 'च्वि' प्रत्यय। तिष्ठतः = प्रतीक्षा करो। आहूतः = बुलाया गया। शिववराकः = बेचारा शिववीर। विश्वस्य = विश्वास करके, 'वि+श्वस् ल्यप्। समागच्छेत् = आ जाय। बद्ध्वा = बाँधकर। जीवन्तम् = जीवित। नेष्यामः = ले चलेंगे। धूलीकरिष्यामः = धूलि में मिला देंगे, 'धूली' से 'च्वि' प्रत्यय। उदीरणम् = कहना। राजनीतिविरुद्धम् = राजनीति के विरुद्ध है। मदावेशः = मेरा आदेश। प्रतीक्षते = प्रतीक्षा करता है।

तदवधार्य समस्तक-कूर्चान्दोलनम्-''यदाज्ञाप्यते'' यदाज्ञाप्यतं इति वाचां धारासम्पातैरिव स्नापयत्सु पारिषदेषु, ''गोपनीयोऽयं वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?'' इति दुर्मनायमानेष्विव च अकस्मादेव प्रविश्य सूदेनोक्तम्-''श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमयः''। तत् श्रुत्वा ''आ ! एवं किलै तत्'' इति सोत्प्रासं सविस्मयं सकूर्चोद्धूननं सोपबर्ह-ताडनमुच्चार्य सपद्युत्थाय, 'पुनरागम्यताम्' इति तानरङ्ग विसृज्य सेनापतिरन्तः प्रविवेश। तानरङ्गश्च यथागतं निववृते।

इतस्तु प्रतापदुर्गे विहिताहारव्यापारे रजतपर्यङ्किकामेकाधिष्ठिते किञ्चित् तन्द्रा परवशे इव गोपीनाथे, शिववीरः शनैरुपसृत्य प्रणम्य, उपाविशदवोचच्च-अहो ! भाग्यमस्माकं यदालयं युष्मादृशा भूदेवाः स्वचरणरजोभिः पावयन्ति इति।

हिन्दी अनुवादः— यह सुनकर सिर और दाढ़ी हिलाते हुए-''जो आदेश है, जो आदेश है'' इस प्रकार मानों वाणी की मूसलाधार वर्षा से सभासदों के स्नान कराने पर और ''यह गोपनीय

वृत्तान्त है, स्पष्ट (खुले आम) कैसे कहा जा रहा है ?'' इस कारण कुछ नाराज से होने पर, एकाएक रसोइये ने प्रवेश करके कहा- ''श्रीमान् ! भोजन का समय बीत रहा है'' यह सुनकर, कुछ मुस्कराकर, विस्मयपूर्वक, दाढ़ी हिलाते हुए और मनसन पर हाथ मारकर-''अरे ! क्या ऐसा है ? यह कह तुरन्त ही उठकर, ''फिर आइयेगा'' ऐसा तानरंग से कह कर, विदा करके सेनापति ने अन्दर प्रवेश किया। तानरंग जिस मार्ग से आया था उसी से लौट गया।

इधर प्रतापदुर्ग में गोपीनाथ जब भोजन करके एक चाँदी के पलंग पर बैठे कुछ अलसा से रहे थे, (तभी) शिववीर धीरे से जाकर, प्रमाण करके बैठ गये और बोले- ''अहो ! हमारा सौभाग्य है कि मेरे घर को आप जैसे ब्राह्मण ने अपनी चरण-रज से पवित्र कर दिया।

हिन्दी व्याख्या:— तदवधार्य = यह सुनकर। 'अव+धृ+ल्यप्'। समस्त-ककूर्चान्दोलनम् = शिर और दाढ़ी हिलाने के साथ, 'कूर्च = दाढ़ी, आन्दोलनम् = कम्पन्न। 'मस्तककूर्चयोः आन्दोलनम् तेन सहितम्'। धरासंपातेः = मूसलाधार वृष्टि से। स्नापयत्सु = स्नान कराने पर, 'ष्ना+णिच्+पुक्+शतृ (सप्तमी ब0व0)। पारिषदेषु = सभासदों के। गोपनीयः = छिपाने योग्य, 'गुप+अनीयर्। स्पष्टम् = खुले आम। कथ्यते = कहा जा रहा है। दुर्मनायमानेषु = कुछ नाराज से होने पर। अदुर्मनसो दुर्मनसो भवन्तीति दुर्मनायमानास्तेषु- 'दुर्+मनस्+क्यङ्+शानच् (स0ब0व0)'। सूदेन = रसोइये के द्वारा। व्यत्येति = समाप्त हो रहा है, वि+अति इण्+लट् (तिप्)'। सोत्प्रासम् = हासपूर्वक। सकूर्चोद्धूननम् = दाढ़ी हिलाते हुए, 'कूर्चस्य उद्धूननम् तेन सहितम्'। सोपबर्हताडनम् = मसनद पर हाथ पटकते हुए, 'उपबर्ह = मसनद। 'उपबर्हे ताडनम् तेन सहितम्'। उच्चार्य = उच्चारण करके। सपदि = शीघ्र ही। उत्थाय = उठकर। विसृज्य = भेजकर, 'वि+सृज्+ल्यप्'। अन्तःप्रविवेश = अन्दर प्रवेश किया। 'प्र+विश्+लिट् (तिप्)'। यथागतम् = जैसे आया था। निववृते = लौट गया। विहिताहारव्यापारे = भोजन कर चुकंन पर, 'विहितः आहारव्यापारः येन स्तस्मिन्'। रजरतपर्यङ्किकाम् = चाँदी के पलंग पर। अधिष्ठिते = बैठने पर, 'अधि+स्था+क्त (सप्तमी एकवचन)'। तन्द्रापरवशे = तन्द्रा के वश में हुए। उपसृत्य = पास में जाकर, 'उप+सृ+ल्यप्'। उपाविशत् = बैठ गया, 'उप+विश्+लङ् (तिप्)'। युष्मादृशाः = आप जैसे। भूदेवाः = ब्राह्मण। स्वचरणरजोभिः = अपने चरण की धूलियों से। पावयन्ति = पवित्र करते हैं।

अथ तयोरेवमभूवन्न्लापाः—

गोपीनाथः - राजन् ! कोऽत्र संदेहः ? सर्वथा भाग्यवानसि, पर साम्प्रतं नाहं पण्डितत्वेन कवित्वेन वा समायातोऽस्मि, किन्तु यवन राजदूतत्वेन। तत् श्रूयतां यदहं निवेदयामि।

शिववीरः - शिव ! शिव ! खलु खलु खल्विदमुक्त्वा, येषां श्रीमतां चरणेनाऽङ्कितं विष्णोरपि वक्षःस्थलमैश्वर्यमुद्रयेव मुद्रितं विभाति, न तेषां बाह्मण-कुल-कमल-दिवाकराणां यवन-कैङ्कर्यकलङ्क-पङ्को युज्यते, यं श्रृण्वतोऽपि मम स्फुटत इव कर्णौ। तथाऽपि कुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीतश्चेत् कश्चित् सन्देशः, तदेष आज्ञाप्यतां श्रीमच्चरण-कमलचञ्चरीकः।

गोपीनाथः - वीर ! कलिरेष-कालः, यवनाऽऽक्रान्तोऽयं भारतभूभागः, तन्नाऽस्माकं तथा तानि तेजांसि, यथा वर्णयसि, साम्प्रतं तु विजयपुराधीश-वितीर्णां वृति भुञ्जे इति तदाज्ञामेव परिपालयामि। तत् श्रूयतां तदादेशः !

शिववीरः - आर्य ! अवदधामि।

हिन्दी अनुवाद:— इसके बाद उन दोनों में इस प्राकर बातें हुई।

गोपीनाथ - राजन् ! इसमें क्या सन्देह है ? वस्तुतः आप भाग्यवान् हैं, परन्तु इस समय मैं पण्डित रूप या कवि रूप में नहीं आया हूँ, अपितु यवनराज के दूत-रूप में। इसलिये सुनिये, जो मैं कहता हूँ।

शिववीर - शिव ! शिव। ऐसा मत कहिये, जिन महानुभावों के चरण से अंकित विष्णु का वक्षस्थल भी ऐश्वर्य की मुद्रा से मुद्रित सुशोभित होता है, उन ब्राह्मण कुल रूप कमलों के सूर्यों को यवनों की सेवा से उत्पन्न् कलङ्क रूप पङ्क शोभा नहीं देता, जिसे सुनते हुए भी मेरे कर्ण मानों फट रहे हैं। तथापि कुलीन अभिमानरहित होते हैं, इसलिये यदि कोई सन्देश लाया गया है, तो इस श्रीमान् के चरण-कमल के भ्रमर को आज्ञा दीजिये।

गोपीनाथ - वीर ! यह कलियुग है, यह भारत का भू-भाग यवनों से आक्रान्त है, इसलिये हममें वैसा तेज नहीं है जैसा वर्णन कर रहे हो। इस समय मैं विजयपुर के नरेश द्वारा दिये जाने वाले वेतन का भोग करता हूँ। इसलिये उनकी आज्ञा का ही पालन करूँगा। इसलिये उनका आदेश सुनो।

शिववीर - आर्य मैं सावधान हूँ।

हिन्दी अनुवाद:— अथ = इसके पश्चात्। तयोः = शिवाजी और गोपीनाथ के मध्य। आलापाः = वार्ता, 'आङ् लप् घञ्, (प्र0वि0बहु0)। अत्र = इस कथन में। सन्देह = संशय। सर्वथा = सब प्रकार से। भाग्यवान् = सौभाग्यशाली। पण्डितत्वेन = विद्वान् रूप में, पण्डा इतच् = पण्डित पण्डित+त्व+पण्डितत्वेन (तृ0ए0ब0)। कवित्वेन = कविरूप में, कवि+त्व (तृ0ए0व0), 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' सूत्र से 'पण्डितत्वेन' और 'कवित्वेन' में तृतीया विभक्ति है। समायातः अस्मि = आया हूँ, सम+आङ्+या क्त। यवनराजदूत्वेन = यवनराज के दूत रूप में, यवनराजः-राजाऽहः सखिभ्यष्टच्' से समासान्त टच् प्रत्यय, दतत्वेन दूत त्व - (तृ0एकव0)। श्रूयताम् = सुनो। खलु = मत, यह निश्चय और निषेध दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। उक्त्वा = 'वच्+त्वा, कह कर। श्रीमतां = महानुभावों के, श्री मतुप् (ष0ब0व0)। ऐश्वर्यमुद्रया = ऐश्वर्यस्य मुद्रा तया (ष0त0पु0)। मुद्रितं = चिह्नित, विभाति = सुशोभित होता है, वि+भा दीप्तौ, लट् लकार (प्र0पु0 एकवचन)। ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणां = ब्राह्मण कुल रूपी कमल के सूर्यों का, ब्राह्मणां कुलं तत् एव कमलम् तस्य दिवाकराः तेषां (बहुव्रीहि)। यवनकैकर्यकलङ्कपङ्क = यवनों की सेवा से उत्पन्न कलंक रूपी कीचड़ कैङ्कर्य = सेवा, 'किङ्कर्+ष्यञ्', यवनानां कैङ्कर्यात् यत् कलङ्क तदेव पंङ्कः (कर्मधा0)। श्रृण्वतः = सुनते हुए, श्रु क्तवतु, 'श्रुवः श्रृच' से 'श्रु' को: 'श्रृ' आदेश और 'शनु' प्रत्यय। स्फुटत = फूट रहे हैं, स्फुट विकसने' लट् लकार (प्र0पु0द्वि0व0)। निरभिमाननाः = अभिमान रहित, निर्गत अभिमानं येभ्यै ते (बहुव्रीहि)। आनीतः = लाया गया है, आङ् + नी + क्त। आज्ञाप्यतां = आज्ञा दीजिये, 'आ+ज्ञा णिच्+पुक्+लोट्। श्रीमच्चरणकमलचञ्चरीकः = श्रीमान के चरण रूपी कमलों का भ्रमर, श्रीमतः चरणे एव कमले तयोः चञ्चरीकः (बहुव्रीहि)। कलिः कालः = चौथा युग अर्थात् कलियुग। सत्, त्रेता, द्वापर और कलि- ये चार युग माने जाने हैं। यवनाऽऽक्रान्तः = यवनों से आक्रान्त, यवनैः आक्रान्तः (तत्पुरुष)। आक्रान्तः = आङ्+क्रम् 'पादविक्षेपे'+क्त। साम्प्रतं = इस समय, सम्प्रति+अण्। विजयपुराधीश वितीर्णां = विजयपुर के स्वामी द्वारा दी गयी, विजयपुरस्य आधीशेन वितीर्णा, ताम् (तत्पुरुष), वितीर्णां = वि+तृ+क्त, 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' से 'त्' को न् आदेश।

वृतिं = वेतन। भुञ्जे = भुज्+लट् लकार, (उ0पु0ए0व0)। श्रूयतां = सुनो, श्रु+यक्+लोट्लकार (प्र0पु0ए0व0)। अवदधामी = सावधान हूँ, अब+धा+लोट् लकार (उ0पु0ए0व0), 'जुहोत्यादिभ्यः श्लु' से धातु को अभ्यास कार्य और शप् को 'श्लु' आदेश।

टिप्पणी:— 1. 'वक्षःस्थलमैश्यवर्यमुद्रया मुद्रितमिव'-वक्षःस्थल ऐश्वर्य की मुद्रा से मुद्रित सा प्रतीत होता है'-यह अर्थ होने कारण उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

2. 'ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणां' में 'ब्राह्मणकुल' पर कमल का आरोप होने के कारण रूपकालंकार है। यवनकैङ्कर्यकलङ्कपङ्क' में भी यवनों की सेवा के कारण उत्पन्न कलङ्क पर कीचड़ का आरोप होने के कारण रूपक है।

'श्रीमच्चरणकमलचञ्चरीकः' में भी रूपक है।

3. उपन्यासकार ने ब्राह्मणों के अपकर्ष का संकेत दिया है। तत्कालीन समाज में विदेशियों के शासन के कारण ब्राह्मणों की शक्ति का अपकर्ष हो रहा था। ब्राह्मण अपनी मान-मर्यादा का परित्याग कर अपने आश्रयदाता की ही उचित या अनुचित आज्ञा का पालन करते थे।

4. प्रस्तुत खण्ड से यह भी विदित है कि भारत के अधिकांश भूभाग पर यवनों का अधिकार था।

5. शिवाजी द्वारा यवनों की सेवा स्वीकार करने वाले ब्राह्मणों पर व्यंग्य किया गया है।

गोपीनाथः-कथयति विजयपुरेश्वरो यद्-''वीर ! परित्यज नवामिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वेदपेक्षयाऽत्यन्तमधिकं बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोषः, महती सेना, बहूनि दुर्गाणि, बहवश्च वीराः सन्ति। तच्छुभमात्मानः इच्छसि चेत्, त्यक्त्वा निखिलां चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, करप्रदतामङ्गकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम्। मत्तः प्राप्तपदश्चिरं जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं निहितः कथावशेषः संवत्स्यसि। तत् केवलं त्वयि दययैव सन्देशं प्रेषयामि, अङ्गीकुरु। मा स्म वृद्धायाः प्रसविन्याः रजतश्वेतां पक्ष्मप्क्तिमश्रु-प्रवाह-दुर्दिने पातय''-इति।

हिन्दी अनुवादः— गोपीनाथ - विजयपुर के नरेश कहते हैं कि -''वीर हमारे साथ युद्ध की इस नवीन चञ्चलता का परित्याग कर दो, तुम्हारी अपेक्षा हम अत्यधिक शक्तिशाली हैं, यहाँ कोष अत्यधिक है, बड़ी सेना है, अनेक दुर्ग हैं, बहुत वीर हैं। यदि अपना शुभ चाहते हो तो सम्पूर्ण चञ्चलता और शस्त्र को दूर से छोड़कर, कर देना स्वीकार करके, मेरी सभा में आओ। मुझसे पद प्राप्त किये हुये (तुम) चिरकाल तक जीवित रहोगे, अन्यथा दुर्दशा के साथ मारे गये कथामात्र अवशेष रहोगे। इसलिये केवल तुम पर दया के कारण ही सन्देश भेज रहा हूँ, (इसे) स्वीकार करो। वृद्धा माँ की रजत-सदृश श्वेता बरौनियों को अश्रु-प्रवाह रूपी दुर्दिन में मत गिराओ अर्थात् डूबाओ।''

हिन्दी व्याख्या:— विजयपुरेश्वरो = विजयपुर के ईश्वर अर्थात् राजा, विजयपुरस्य ईश्वरः (ष0 तत्पु0)। परित्यज = छोड़ दो, परि+त्यज् लोट् लकार, (म0पु0ए0व0)। चञ्चलताम् = चञ्चलता को, चञ्चल+ताम्+टाप्। अस्माभिः सह = हमारे साथ, यहाँ पर 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से सह' के योग में तृतीया विभक्ति। त्वदपेक्षया = तुम्हारी अपेक्षा। बलिनः = शक्तिशाली, बल+णिनि। प्रवृद्धः = समृद्धः, प्र+वृ 'वर्धने'+क्त। महती = बड़ी, महत् का स्त्रीलिंग रूप। त्यक्त्वा = छोड़कर, त्यज्+त्वा। निखिलां = सम्पूर्ण। दूरतः = दूर से, पञ्चमी के अर्थ में 'तसिल्' प्रत्यय। परित्यज्य = छोड़कर, परि+त्यज्+ल्यप्। करप्रदताम् = कर प्रदान करना, प्रदतां = 'प्र+दा+तल', करस्य प्रदता ताम् (तत्पु0)। मत्सभायाम् = मेरी सभा में, मम सभा याम् (ष0 तत्पु0) मत्तः = मुझसे, 'अस्मद्'

से पञ्चमी के अर्थ में 'तसिल्' प्रत्यय। प्राप्तपदः = पद प्राप्त किये हुये (शिवाजी), प्राप्तं पदं येन सः (तत्पु0), प्राप्त = प्र+आप्+क्त। जीविष्यसि = जीवित रहोगे। सदुर्दशं = दुर्दशा सहित दुर्दशय सहितम् (तत्पु0)। निहतः = मारे गये (शिवाजी), नि+हन्+क्त। कथावशेषः = कथामात्र शेष। संवर्त्स्यसि = होगे, सम् वृत्+लृट् लकार (म0पु0ए0व0), 'वृद्भ्यः स्यसनोः से विकल्प से परस्मैपद और 'वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' से 'इट्' निषेध। त्वयि = तुम पर। प्रेषयामि = भेज रहा हूँ। अङ्गीकुरु = स्वीकार करो, न अङ्गं अनङ्गं, अनङ्गं अङ्गमिव कुरु इति अङ्गीकुरु। वृद्धायाः प्रसविन्याः = वृद्ध माता की, प्रसविन्याः = प्रसव+णिनि = स्त्री0 (ष0ए0व0)। रजतश्वेतां = चाँदी के समान श्वेत, रजतवत् श्वेतां (कर्मधारय)। पक्ष्मपंक्तिम् = बरौनियों की पंक्ति को, पक्ष्मयों पंक्तिम् (तत्पु0)। अश्रु-प्रवाह दुर्दिने = अश्रू-प्रवाह रूप दुर्दिन में, अश्रूणां प्रवाहः तदेव दुर्दिनं तस्मिन् (बहुव्रीहि), दुर्दिन = मेघाच्छन्न् एवं वर्षा से पूर्ण दिन, यहाँ णिजन्त 'पत्' के प्रयोग के कारण सप्तमी विभक्ति है। पातय = गिराओ, डुबाओ, पत् णिच्+लोट् लकार (म0पु0ए0व0)। मा = मत।

टिप्पणी:— 1. 'अश्रु-प्रवाहदुर्दिने' में अश्रु-प्रवाह पर दुर्दिन का आरोप होने के कारण रूपक अलङ्कार है।

2. इस खण्ड से विदित होता है कि अनेक बलशाली राजा निर्बल राजाओं को जीतकर उन्हें कुछ प्रदेश शासन करने के लिये देते थे, तथा वे निर्बल राजा अपने स्वामी को कर प्रदान करते थे।

3. यहाँ अम्बिकादत्त व्यास ने समास सहित शैली का प्रयोग किया है।

शिववीरः - भगवान् ! कथयेदेवं कश्चिद् यवनराजः, परं किं, भवानपि मामनुमन्यते-यद् ये अस्मदिष्टदेवमूर्तीर्भङ्क्त्वा, मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पक्कणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेदपुस्तकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान् बलाद् यवनीकुर्वन्ती, तेषामेव चरणयोरञ्जलि बद्धवा लालाटिकतामङ्गीकुर्याम् ? एवं चेद् धिङ् मां कुल लंकक क्लीबम्; यः प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासेरकतां वहेत्। यदि चाऽहमाहवे म्रियेय, वध्यये, ताड्येय वा, तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भवादृशां विदुषामत्र का सम्मतिः ?

गोपीनाथः - (विचार्य) राजन् ! धर्मस्य तत्त्वं जानासि, तन्न्ऽहं स्वसम्मतिं कामपि दिदर्शयिषामि। महती ते प्रतिज्ञा, महत्तवोद्देश्यमिति प्रसीदामितमाम्। नारायणस्तव साहाय्यं विदधातु।

शिववीरः - करुणानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारेव। तत् प्रतिज्ञायतां काऽपि सहायता।

गोपीनाथः - राजन्। कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न मामधर्मः स्पृशेत्, तथैव विधास्यामि।

शिववीरः - शान्तं पापम्। कोऽत्राधर्मः ? केवलं श्वोऽस्मिन्नुद्यान-प्रान्तस्थ-पट-कुटीरे यवनसेनापतिः अपजलखानः आनेयः, यथा तेनैकाकिनाऽहमेकाकी मिलित्वा किमप्यालपामि।

गोपीनाथः - तत् सम्भवति।

हिन्दी अनुवादः— शिववीर कोई यवनराज ऐसा कहे, किन्तु क्या आप भी मुझे अनुमति देते हैं कि- जो हमारे इष्ट देव की मूर्तियों को तोड़कर, मन्दिरों को नष्ट करके, तीर्थस्थानों को भीलों की

बस्ती बनाकर, पुराणों को पीसकर, वेद पुस्तकों को फाड़कर, आर्यवंशियों को बल से यवन बनाते हैं, उन्हीं के चरणों में अञ्जलित बाँधकर अधीनता स्वीकार करूं ? यदि ऐसा हो तो मुझ कुल-कलंकी पुरुषार्थहीन को धिक्कार है, जो प्राणों के भय से सनातनधर्म के विरोधियों की दासता को धारण करे। यदि मैं युद्ध में मारा जांऊ अथवा पीड़ित किया जाऊं तब ही मैं धन्य हूँ, और मेरे माता-पिता धन्य हैं। कहिये, आप सदृश विद्वानों की इस विषय में क्या सम्मति है ?

गोपीनाथ - (विचार करके) राजन् ! धर्म के तत्व को जानते हो, इसलिये मैं अपनी कोई भी सम्मति नहीं देना चाहता। तोरण दुर्ग किसके महल के समान था?

नारायण तुम्हारी सहायता करे।

शिववीर - करुणानिधान् ! प्रायः नारायण स्वयं प्रकट होकर सहायता नहीं करते, अपितु आप जैसे महानुभावों के द्वारा ही (करवाते हैं)। इसलिये कोई सहायता करने की प्रतिज्ञा करिये।

गोपीनाथ - राजन् ! कहिये मुझे क्या करना चाहिये, परन्तु जिस प्रकार मुझे अधर्म न स्पर्श करे। मैं वैसा करूंगा।

शिववीर - पाप शान्त हो ! यहाँ पर अधर्म क्या है ? केवल कल इस उद्यान के किनारे पर स्थित तम्बू में यवन सेनापति अफजलखाँ लाये जाने चाहिये जिससे अकेले में उसके साथ मैं अकेला मिलकर कुछ बात-चीत करूं।

गोपीनाथ - यह सम्भव है।

हिन्दी व्याख्या - भगवान् = श्रीमान, भगः अस्ति अस्य इति भगवत्, भग+मतुप्। कथयेत् = कहे, कथ्+वि0लि0 (प्र0पु0ए0व0), सम्भावना अर्थ में। यवनराजः = यवनों का राजा, यवनानां राजा इति यवनराजः, समासान्त 'टच्'। अनुमन्यते = अनुमति देते हैं, अनु+मन् लट्लकार प्र0पु0ए0व0। अस्मदिष्टदेवमूर्तीः-भङ्क्त्वा = हमारे इष्ट देव की मूर्तियों को तोड़कर, भङ्क्त्वा = तोड़कर, भञ्जो 'आमर्दने'+त्वाः, इष्टा य देव इष्ट देवः, अस्माकं इष्टदेवस्य मूर्तिः इति अस्मदिष्टदेवमूर्तीः समुन्मूल्य = पूर्णतया नष्ट करके, 'सम्+उत्+मूल्+ल्यप्'। पक्कणीकृत्य = भीलों की बस्ती बनाकर, न पक्कणं अपक्कणं, अपक्कणं पक्कणमिव कृत्वा इति पक्कणीकृत्य, 'पक्कण+च्वि+कृ+ल्यप्' 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से 'कृ को तुक् का आगम। पुराणानि = पुराणों को- व्यासादि मुनि प्रणीत ग्रन्थ-विशेष। पुराणों में पाँच प्रकार के विषय लिखे जाते हैं- 1. सर्ग-आदि-सृष्टि का उत्पत्ति-क्रम, 2. प्रतिसर्ग-प्रलयानन्तर सृष्टिक्रम, 3. वंश-देवता, दानव और राजाओं की वंशावली, 4. मन्वन्तर - मनुओं का राज्यपाल और राजव्यवस्था, 5. वंशानुचरित-मनुओं की वंशावली। पिष्ट्वा = पीसकर, 'पिश्' 'अवयेय+त्वा'। वेदपुस्तकानि = वेदग्रन्थ, वेद चार हैं- ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद, वेदानां पुस्तकानि इति वेदपुस्तकानि (तत्पु0)। विदार्य = फाड़कर, वि+दृ विदारणे'+ल्यप्। आर्यवंशीयान् = आर्यवंश के लोगों को, आर्यस्यवंशः तस्मिन् भवाः इति आर्यवंशीयाः, आर्यवंश+छ = आर्यवंशीयः। यवनीकुर्वन्ति = मुसलमान बनाते हैं। बद्धवा = बाँधकर, बध्+त्वा। लालाटिकताम् = दासता को, 'ललाटं पश्यतीति लालाटिकः तस्य भावः ताम्।' अङ्गीकुर्याम् = स्वीकार करूँ। एव चेत् = यदि ऐसा हो। कुलकलंङ्गं = कुल के कलंक, 'कुलस्य कलंकः यः तम्'। क्लीबम् = पुरुषार्थहीन, धिक्' के योग में द्वितीय। प्राणभयेन = प्राणों के भय से, प्राणभ्यां भयेन इति प्राणभयेन। सनातनधर्म-द्वेषिणां = सनातन धर्म के द्वेषियों की, सनातनः चासौ धर्मः सनातनधर्म तस्य द्वेषिणः तेषाम्, द्वेषिणां = द्वेष+णिनि, (ष0बहु0)। दासेरकतां = दासता को। वहेत् = ग्रहण करूँ, वह्+वि0लि0

(प्र0पु0ए0ब0)। अहवे = युद्ध में। म्रियेय = मारा जाऊँ, 'मृङ् 'प्राणत्यागे' णिच्' वि0ल0(उ0पु0ए0व0)। बध्यये = बाँधा जाऊँ, 'बध्+णिच्' वि0ल0(उ0पु0ए0व0)। ताड्येय = पीड़ित होऊँ, 'तिङ्+ि◌णिच्+लिङ् (उ0पु0ए0व0)। पितरौ = माता-पिता, माता च पिता च पितरौ (एकशेष द्वन्द्व)। कथ्यतां = कहिये, कथ्,+यक्+लोट् (ल0प्र0पु0ए0व0)। भवादृशां = आपके सदृश, भक्त्+भवत्+दृश्+क्विन्। क्विन् का लोप भवादृश्, ष0बहु0 भवदृशां। सम्मतिः = विचार, सम्+मन्+क्तिन्। दिदर्शयिषामि = देने की इच्छा करता हूँ, दृश्+सन् लोट् लकार (उ0पु0ए0व0)। प्रसीदामितमाम् = अति प्रसन्न् हूँ, प्रसीदामि+तमाम् (अतिशयं अर्थ में)। साहाय्यं = सहायता, सहाय+ष्यञ्। विदधातु = करें, वि+धा लोट् लकार (प्र0पु0ए0व0)। करुणानिधाने = करुणा के आगार, करुणाया निधानः इति सम्बोधने करुणानिधाने निधान = नि+धा-ल्युट्। प्रकटीभूय = प्रकट होकर, प्रकट च्वि+भू+ल्यप्। भवादृश महाशयद्वारैव = आप जैसे महापुरुषों द्वारा ही, भवादृशैः महाशयैः द्वारा इति भवादृश महाशयद्वारा। प्रतिज्ञायतां = प्रतिया करें, प्रतिज्ञा+क्यच् लोट् लकार (प्र0पु0ए0व0)। यया न मामधर्म पृशेत् तथैव विचारयामि = जिससे मुझे अधर्म स्पर्श न करे वैसा करूँगा अर्थात् जिस कार्य से स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन न हो वह कार्य मैं कर सकता हूँ। शान्तं पापम् = पाप शान्त हो। उद्यानप्रान्तस्थपटकुटीरे = उद्यान के किनारे स्थित तम्बू में, प्रान्तस्थ = 'प्रान्त+स्था+क, 'उद्यानस्य प्रान्ते स्थित यः पटस्य कुटीरः तस्मिन्' (बहुब्रीहि)। पटकुटीरः = वस्त्र से निर्मित छोटा गृह अर्थात् तम्बू, 'अल्पा कुटी कुटीरः स्यात्' इत्यमरः। यवन सेनापतिः = यवनों का सेनापति यवनानां सेनापतिः (तत्पु0) आनेय = लाया जाना चाहिये, आङ्+नी+यत्। मिलित्वा = मिलकर, 'मिल्+त्वा'। आलपति = बात करूँ, 'आङ्+लप्' लोट् लकार (उ0पु0ए0व0)। 'तेन एकाकिना, 'सह' शब्द का प्रयोग न होने पर भी सह' का अर्थ होने के कारण 'तेन एकाकिना' में तृतीया है। सम्भवति = सम्भव है, सम्+भू+लट् लकार (प्र0पु0ए0व)'।टिप्पणी - 1. उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में हिन्दुधर्म का विनाश हो रहा था। यवनराजा हिन्दु धर्म के चिह्नों के नष्ट कर बलपूर्वक हिन्दुओं को यवन बनाते थे।

2. शिवाजी का स्वाधीन जीवन के प्रति प्रेम प्रकट होता है।

3. गोपीनाथ के चरित्र में उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। वह शिवाजी की सहायता के लिए तत्पर हैं।

4. 'नारायणः स्वयं भवादृशमहाशयद्वारैव' - इस पंक्ति से प्रतीत होता है कि 'नारायण सशरीर प्रकट होकर भक्त की सहायता करते हैं' - इस प्राचीन धारणा में परिवर्तन हुआ।

5. 'ये अस्मदिष्टदेवमूर्तिभङ्क्त्वा यवनीकुर्वन्ति' यहाँ भङ्क्त्वा, समुन्मूल्य, पक्कणी इत्यादि अनेक क्रियायें एक ही कर्ता से सम्बद्ध है। अतः दीपक अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न - 3

1- शिववीर किसका का लड़का था ?

2- स्वर्णदेव किसका साथी था ?

3- तोरण दुर्ग किसके महल के समान था ?

4- प्रतापदुर्ग में गोपीनाथ भोजन करके किस पर बैठे थे ?

5- शिववीर धीरे से जाकर,किसको प्रणाम करके बैठ गये ?

ततः परं गोपीनाथेन सह शिववीररस्य बहुविधा आलापा अभूवन, यैः शिववीरस्य उदारहृदयतां धार्मिकतां शूरताञ्चावगत्स गोपीनाथोऽतितरां पर्य्यतुष्यत्।

अथ स तमाशीर्भिरनुयोज्य यावत्प्रतिष्ठते, तावदुपातिष्ठत् ससहचरस्तानरङ्ग। गोपीनाथस्तु तमनवलोकयन्निव तस्मिन्नेव निशीथे दुर्ग्गादवातरत्। कपट गायको गौरसिंहस्तु शिववीरेण सह बहुश आलप्य, सेनाभिनिवेश-विषये च सम्मन्त्र्य, तदाज्ञातः स्ववासस्थानं जगाम।

शिववीरोऽप्यन्यसेनापतीन् यथोचितमादिश्य, स्वशयनागारं प्रविश्यहोरात्रयं यावत्कि ंचन् निद्रासुखमनुभूय, अल्पशेषायामेव रजन्यामुदतिष्ठत्।

शिववीरसेनास्तु यथासंकेतं प्रथममेव इतस्ततो दुर्गप्रचीरान्तरालेषु गहन-लता-जालेषु उच्चावच-भूभाग-व्यवधानेषु सज्जाः पर्यवातिष्ठन्त। बहवो अश्वारोहा यवन-पट-कुटीर-कदम्बकं परिक्रम्य ततः पश्चादागत्य, अवसरं प्रतिपालयन्ति स्म।

हिन्दी अनुवादः— इसके पश्चात गोपीनाथ के साथ शिववीर की अनेक प्रकार की बातें हुई, जिससे शिवाजी की उदारहृदयता, धार्मिकता और वीरता को जानकर गोपीनाथ अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ।

इसके बाद उसने (गोपीनाथ) उसको (शिवाजी को) आशीर्वचन प्रदान कर जब तक प्रस्थान किया, तब तक सहचर के साथ तानरंग आ गया। गोपीनाथ उसको न देखते हुये से उसी अर्धरात्रि में दुर्ग से उतरे। कपट से गायक वेषधारी गौरसिंह ने शिवाजी के साथ अनेक बातें करके और सेना के अभिनिवेश के विषय में मन्त्रणा करके उससे

(शिवाजी से) आज्ञा प्राप्त किये हुये, अपने निवास स्थान को चला गया।

शिवाजी भी अन्य सेनापतियों को यथायोग्य आदेश देकर, अपने शयनागार में प्रवेश करके तीन घण्टे तक कुछ निद्रा के सुख का अनुभव कर थोड़ी शेष रात्रि में हो जाग गये।

शिवाजी की सेना तो संकेतानुसार पहले से ही इधर-उधर किले की प्राचीन के अन्दर, घनी झाड़ियों के समूह में, ऊँची-नीची भूमि के भागों के बीच में, सुसज्जित चारों ओर खड़ी थी। बहुत के अश्वारोही यवनों के तम्बुओं के समूह का चक्कर लगाकर, वहाँ से पीछे आकर, अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

हिन्दी व्याख्याः— ततः परं = इसके बाद। गोपीनाथेन सह = गोपीनाथ के साथ 'सहयुक्तेऽप्रधाने' तृतीया। बहुविधाः = अनेक प्रकार की। आलापाः = बातें, आङ्+लप्+घञ्। उदारहृदयतां = हृदय की विशालता, उदारं हृदय तस्य भावः, उदारहृदय+ता। धार्मिकता = धर्मपरायणता, धर्म+ठक्+ता। शूरतां = वीरता, शूर+ता। अवगत्य = जानकर, अव+गम्+ल्यप्। पर्य्यतुष्यत् = सन्तुष्ट हुआ, 'परि+तुष्+लङ्लकार' (प्र0पु0 एकवचन)। अथ = इसके बाद। सः = गोपीनाथ। आशीर्भिः = आर्शीर्वादों से 'आशीस्, (तृ0 बहु0)। अनुयोज्य = योजित करके 'अनु+युज्+ल्यप्'। यावत् = जब तक। प्रतिष्ठते = प्रस्थान किया, 'प्र+स्था+लट्+लकार (प्र0पु0 एकवचन)'। 'समव प्र विभ्यः स्थः' से आत्मनेपद का प्रयोग। तावत् = तब तक। ससह-चरः = सहचर के साथ, 'सहचरेण सहितः इति ससहचरः' (अव्ययीभाव)। अव्ययीभावे चाऽकाले से 'सह' को 'स' आदेश। उपातिष्ठत् = समीप आया, 'उप+स्था+लङ्लकार' (प्र0पु0 एकवचन)। अनवलोकयन् = न देखते हुये, 'अब+लोक+शतृ-अवलोकयन, न अवलोकयन् इति अनवलोकयन् (नञ् तत्पु0)। निशीथे = अर्धरात्री में। अवाहत् = उतरे, 'अव+अतरत्'। कपटगायकः = कपट से गायक का वेश धारण किये हुए, कपटेन गायकः (तत्पु0), गायक = गै+ण्वुल। आलप्य = बात करके, आङ्+लप्+ल्यप्। सेनाऽभिनिवेशविषये = सेना की स्थिति

अथवा व्यूह-रचना के विषय पर, सेनायाः अभिनिवेशस्य विषयः तस्मिन् (बहुव्रीहि), अभिनिवेश = 'अभि+नि+विश्+अच्। सम्मन्त्र्यः = सम्यक् रूप से मन्त्रणा करके, 'सम्+मन्त्रि+ल्यप्।' तदाज्ञातः = उसकी आज्ञा प्राप्त किये हुये, तेन आज्ञातः (तत्पु0), आज्ञा+क्त। जगाम = गये, 'गम् लिट् लकार (प्र0पु0 एकवचन)'। आदिश्य = आदेश देकर, 'आङ्+दिश+ल्यप्'। स्वशयनागारं = स्वस्य शयनस्य आगारं तम्, अपने शयनगार को। प्रविश्य = प्रवेश करके, 'प्र+विश्+ल्यप्'। होरात्रयं = तीन घण्टे, 'अहोरात्र' के आदि 'अ' और अनत के 'त्र' के लोप करने पर होरा शेष होता है। होरा = दिन-रात किन्तु सम्प्रति इसका प्रयोग घण्टा के लिये होता है। निद्रासुखम् = निद्रा के सुख को, निद्रायाः सुखम् (तत्पु0)। अनुभूय = अनुभव करके, 'अनु+भू+ल्यप्'। अल्पशेषायाम् = थोड़ी शेष, 'अल्पं शेषं यस्याः सा तस्याम्'। उदतिष्ठत् = उठ गये, 'उत्+स्था+लङ्लकार'। शिववीरसेनाः = शिवाजी की सेनायें, शिववीरस्य सेनाः (तत्पु0)। दुर्गप्राचीरान्तरालेषु = दुर्गों की चहारदीवारी के अन्दर, दुर्गाणां प्राचीराणाम् अन्तरालेषु। गहन-लता-जालेषु = सघन लताओं के समूह में गहनाः लताः तासाम् जालानि तेषु। उच्चावच-भूभाग-व्यवधानेषु = ऊँचे-नीचे भूमि भागों के मध्य में, उच्चानी अवचनानी च ये भूभागानि तेषाम् व्यवधानेषु, व्यवधान = बीच में। सज्जा = सुसज्जित। पर्यवातिष्ठन्त = चारों ओर खड़ी थीं, परि+अव+स्था+लंडलकार (प्र0पु0बहु0)। अश्वरोहाः = घुड़सवार, अश्वान् आरोहन्ति ये ते अश्व+आ+रूह+अच्। यवन-पट-कुटीर-कदम्बकं = यवनों के तम्बूओं के समुह का, यवनानां पटकुटीराणाम् कदम्बकं (तत्पु0)। परिक्रम्य = चक्कर लगाकर, परि+क्रमु+ल्यप्। ततः = वहाँ से, 'तत्' से पंचम्यर्थ में 'तसिल्'। पश्चादागत्य = पीछे आकर। प्रतिपालयन्ति स्म = प्रतीक्षा कर रहे थे 'प्रति+पालि+लट् (ल0प्र0पु0
एकवचन)'।

टिप्पणी:— 1. 'शिववीरसेनास्तु यथासंकेत प्रतिपालयन्ति स्म' - इस खण्ड से मराठों की सेना की व्यूह-रचना का ज्ञान होता है।

इतश्च सूर्यप्रभाभिररूणी-क्रियामाणे भूभागे अरुण-श्मश्रवोऽपि सेनाः सज्जीकृतवन्तः। बहवो- ''वयमद्य शिवबमश्यमेव विजेष्यामहे; परं तथाऽपि न जानीमहे किमिति कम्पत इव हृदयम्, आहो ! विलक्षणः प्रताप एतस्य, पवनेऽपि प्रवहति, पतत्रेऽति पतति, पत्रेऽति मर्मरीभवति, स एवाऽऽगत इत्सभिशङ्क्यतेऽस्माभिः। अहह!! विचित्रोऽयं वीरो, यो दुर्गप्राचीरमुल्लंघ्य, प्रहरिपरीवारमविगणय्य, लोहार्गलश्रृंखलासहस्र-नद्धानि करिकुम्भाघातसहानि द्वाराणि प्रविश्य, विकोशचन्द्रहासाऽसिधेनुका-रिष्टितोम शक्तित्रिशूल-मुद्गर-भुशुण्डी-कराणां रक्षकाणां मण्डलमवहेत्य, प्रियाभिः सह पर्य्यङ्केषु सुप्तानामपि प्रत्यर्थिनां वक्षःस्थलमारोहति, निद्रास्वपि तान् न जहाति, स्वप्नेष्वति च विदारयति। कथमेतस्य चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्य-चिल्लीभूत-चक्षुष्काः समराङ्गणे स्थास्यामः ? इति चिन्ताचक्रमारूढा अपि कथं कथमपि कैश्चित् वीरवरैर्वर्धितोत्साहाः समरभूमिवातरन्।

हिन्दी अनुवादः— इधर सूर्य के प्रकाश से पृथ्वी के लाल रंग के होने पर, लाल मुँछों वाली (यवन) सेनायें भी सुसज्जित की गयीं। 'आज हम शिवाजी को अवश्य जीतेंगे किन्तु फिर भी (हम) नहीं जानते हैं कि क्यों हृदय काँप-सा रहा है, अहो! इसका (शिववीर का) प्रताप विलक्षण है, पवन के चलने पर भी, पक्षियों के उड़ने पर भी, पत्तों के मर्मर करने पर भी, 'वह (शिवाजी) ही

आये हैं'- ऐसी हमारे द्वारा शंका की जाती है। अहह! यह विचित्र वीर है जो दुर्ग की चारदीवारी को लाँघकर, प्रहरियों के परिवार की अवहेलना कर, हजारों लोहे की जंजीरों की श्रृंखलाओं से बँधे हुये और हाथी के मस्तक के आघात को सहन करने योग्य द्वारों में प्रवेश करके, कोश रहित अर्थात् नग्न तलवार, छुरी, रिष्टि-तोम-शक्ति, त्रिशुल, मुद्गर और बन्दूक हाथों में लिए हुये रक्षकों के समूह की अवहेलना करके, प्रियाओं के साथ पलंग पर सोये हुये शत्रुओं के वक्षस्थल पर चढ़ता है, निद्रा में भी उनको नहीं छोड़ता है, स्वप्न में भी विदारण करता है। कैसे इसके चञ्चल तलवार के चमत्कार की चका-चौंध से चौंधियाये हुए नेत्र वाले हम सब समरभूमि में स्थित हो सकेगें ?'' -

इस प्रकार चिन्ता-चक्र पर आरूढ़ अर्थात् चिन्ता करते हुये भी किसी प्रकार कुछ श्रेष्ठ वीरों के द्वारा उत्साहवर्धन किये जाते हुये बहुत से (यवन) युद्ध-भूमि में उतरे।

हिन्दी व्याख्या - इतः = इधर, इदम् शब्द से तसिल् प्रत्यय। सूर्यप्रभाभिः = सूर्य की प्रभा से, सूर्यस्य प्रभाभिः। अरुणीक्रियामाणे = लाल किये जाने पर, 'अरुण+च्वि कृ+णिच्+शानच्'। भूभागे = पृथ्वी के भाग, भुवः भागः तस्मिन्, 'अरुणीक्रियमाणे भूभागे' में 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्, से सप्तमी। अरुणश्मश्रवः = लाल मूँछों वाले, अरुणाः श्मश्रवः येषां। सज्जीकृतवन्तः = सुसज्जित किया, सज्ज+च्वि कृ+क्तवतु। विजेष्यामहे = जीतेंगे, 'वि+जि लृट्लकार (उ0पु0बहु0), 'विपराभ्यांजे' से आत्मनेपद। जानीमहे = जानते हैं, 'ज्ञा लट्लकार आत्मने0 (उ0पु0बहु0)'। कम्पत इव = मानों काँप रहा है, कम्पते+इव- यहाँ 'एचोऽयवायवः से 'अय्' आदेश और लोपः शाकल्यस्य' ये यकार का लोप। विलक्षणः = अद्भुत। पतत्रे = पक्षी (स0ए0व0), पतत्रे स्तः यस्य तस्मिन् पतत्रे। मर्मरीभवति = मर्मर की ध्वनि होने पर, 'मर्मर+च्वि+भू+शतृ (स0ए0व0)। पवनेऽपि प्रवहति मर्मरीभवति'- 'यस्य च भवने भावलक्षणम्' से सप्तमी। आगतः = आये हुये, आङ्+गम्+क्त। दुर्गप्राचीनम् = दुर्ग की चहारदीवारी को, दुर्गस्य प्राचीनम्। उल्लघ्य = लाँघ कर, उत्+लंघि ल्यप्। प्रहरिपरीवारम् = प्रहरियों का समूह, प्रहरीणाम् परीवारम् (तत्पु0)। अविगणय्य = अवहेलन करके, अवि+गण्+ल्यप्। लोहार्गल-श्रृङ्गलासहस्रनद्धानि = सहत्रों लोहे की जंजरों की श्रृंखलाओं से बँधे हुये, लोहस्य अगलाः तासाम् श्रृंङ्खलाः तासाम् सहस्र तेन नद्धानि, नद्धानि = 'णह्+क्त'। करि-कुम्भाघात-सहानि = गज मस्तक के आघातों को सहन करने योग्य, 'करीणां कुम्भानां आघातानि सहन्ति ये ते'। विकोशचन्द्रहासाऽसिधेनुकारिष्टितोम शक्तित्रिशूल-मुद्गर-भुशुण्डी-कराणां = नग्न तलवार, छुरी, रिष्टि-तोम-शक्ति, त्रिशुल, मुद्गर और बन्दूक को हाथों में धारण करने वाले (रक्षक), कोश = म्यान, विगतः कोशः विकोशः चासौ चन्द्रहासः इति विकोशचन्द्रहासः, विकोशचन्द्रहासश्च असिधेनुका च, रिष्टि-तोम-शक्तिः च त्रिशुलञ्च मुद्गरञ्च भुशुण्डी च सन्ति करेषु येषाम् तेषाम्। अवहेल्य = अवहेलना करके, अव+हेला+ल्यप्। प्रियाभिः सह = प्रियाओं के साथ, 'सहयुक्तेऽप्रधाने' से तृतीया। प्रत्यर्थिनां = शत्रुओं के, 'प्रति+आर्थिन् (ष0बहु0)'। चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कार-चाकचक्य-चिल्लीभूत-चक्षुष्काः = चलती हुई तलवार की चमत्कार की चमचमाहट से चकाचौंध हुए नेत्रों वाले; चिल्लीभूत = चौंधियाए हुए। ''चञ्चत्चन्द्रहसस्य चमत्कारेण यच्चाकचक्यं तेन चिल्लीभूतानि चक्षूषियेषां ते।'' समराङ्गणे = युद्धक्षेत्र में। चिन्ताचक्रम् = चिन्ता चक्र पर, चिन्तायाः चक्रम्। आरूढ = चढ़े हुये, आङ् रुह्+क्त। वीरवरै =

वीरों में श्रेष्ठ, वीरेषु वराः तेः। वर्धितोत्साहाः = जिनका उत्साह बढ़ाया गया है, वर्धितः उत्साहः येषाम् ते। समर-भूमिम् = यूद्ध क्षेत्र में । अवातरन् = उतरे।

टिप्पणी - 1. 'कम्पत इव 'हृदयम्' - 'हृदय काँप सा रहा है' यहाँ पर क्रियोत्प्रेक्षा है।

2. 'निद्रास्वपि तान् च विदारयति' यहाँ विरोध-प्रतीति होती है किन्तु 'निद्रा में शिवाजी को स्वप्न भी युद्ध से सम्बन्धित आते थे'- इस प्रकार अर्थ करने पर विरोध परिहार सम्भव है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

3. 'चञ्चच्चन्द्रहास चक्षुष्का' में 'च' वर्ण की आवृत्ति अनेक बार होने के कारण वृत्त्यानुप्रास है।

4. इस खण्ड से शिवाजी की वीरता का ज्ञान होता है।

5. 'पवनेऽपि प्रवहति मर्मरीभवति' - इसी प्रकार का वर्णन, बाण ने कादम्बरी में वृद्ध-शबर से भयभीत वैशम्पायन नामक शुक की मानसिक-स्थिति के वर्णन में किया है।

अथ कथंचित् प्रकाश-बहुले संवृत्ते नभः स्थले, परस्पंर परिचीयमानासु आकृतिषु, कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु, भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि-पंत्तिषु, चाटकैर-चककायितेषु; कवचचमत्कारेषु गोपीनाथ-पण्डितो वारमेकं शिववीरदिशि परतश्च यवनसेनापति-दिशि गतागतं विधाय, सेनाद्वयस्य मध्य एव कस्मिश्चित् पटकुटीरे अपजलखानमानेतुं प्रबबन्ध। शिववीरोऽपि कौशेय - कञ्चुकस्याऽतर्लोह-वर्मपरिधाय, सुवर्णसूत्रग्रथितोष्णीषस्याऽयधस्तादासयं शिरस्त्राणं संस्थाप्य, सिंहनख-नामकं शस्त्रविशेषं करयोरारोप्य, दृढबद्ध-कटिरपजलखान-साक्षात्काराय सज्जस्तिष्ठति स्म।

हिन्दी अनुवादः— इसके पश्चात् आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर, परस्पर आकृतियों के पहचान में आने पर, कमलों के समान वीरों के मुख प्रफुल्लता को प्राप्त होने पर, भ्रमरों की पंक्ति के समान चारों ओर तलवारों की पंक्तियों के चमकने पर, गौरय्या पक्षी के द्वारा चकचक ध्वनि के सदृश कवचों के ध्वनि करने पर गोपीनाथ पण्डित एक बार शिववीर की दिशा में तदनन्तर यवन-सेनापति की ओर चक्कर लगाकर, दोनों सेनाओं के मध्य ही किसी तम्बू में अफजलखान को लाने का प्रबन्ध किया।

रेशमी कुर्ते के अन्दर लौह-कवच पहनकर, स्वर्ण-तारों में कढ़ी हुई पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रखकर, सिंहनख नामक शस्त्र-विशेष को हाथों में धारण करके और कसकर कमर बाँधे हुये शिवाजी भी अफजलखान के साक्षात्कार के लिये तैयार बैठे थे।

हिन्दी व्याख्याः— अथ कथंचित् = इसके पश्चात् किसी तरह। प्रकाशबहुले = पर्याप्त प्रकाश में, 'प्रकाशस्यबहुलस्तस्मिन्'। संवृत्ते = फैलने पर। परिचीयमानासु = पहचाने जाते हुये, 'परि+चि+णिच्+शानच्' (स0बहु0)। वीरवदनेषु = वीरों के मुख के, वीराणां वदनेषु। विकचताम् = प्रफुल्लित, विकच+ता। आसादयत्सु = होने पर, 'आङ्+सद+णिच्+शतृ (स0ब0व0)। भ्रमरालिषु = भ्रमरों की पंक्ति, भ्रमराणां आलिषु। प्रस्फुरन्तीषु = चमकने पर 'प्र+स्फुर्+शतृ+ङीष् (स0बहु0)। चटकैः = गौरय्या नामक पक्षी। चककचायितेषु = चकचक करने पर, चकचकमिव कुर्वन्तीति चकचकायिताः। तेषु। कवच-चमत्कारेषु = कवचों के ध्वनि करने पर, कवचानां चमत्कारेषु। शिववीरदिशि = शिवाजी की ओर, शिववीरस्य दिशिः। परतः = तदनन्तर, 'परम' से 'तसिल्' प्रत्यय। यवन-सेनापति-दिशि = यवन सेनापति की ओर यवनानां सेनापतिः तस्य दिशि। गतागतं = गमनागमन, गम्+क्त = गत, आगत = आङ्+गम् क्त। विधाय = करके, वि+धा+ल्यप्।

सेनाद्वयस्य = दोनों सेनाओं के, सेनयोः द्वयं तस्य। मध्य एव = मध्य में ही। पटकुटीरे = तम्बू में। प्रबबन्ध = प्रबन्ध किया, 'प्र+बन्ध् लिट् लकार (प्र0पु0ए0व0)। आनेतुं = लाने के लिये, आङ्+नी+तुमुन्। 'प्रकाशबहुले संवृत्ते कबच चमत्कारेषु' = इन स्थलों में 'यस्य च भावेन भाव-लक्षणम्' से सप्तमी है। कौशेय-कंचुकस्य = रेशमी कंचुक के, कौशेय = 'कोशे सम्भवति' इस अर्थ में 'कोश' से 'ढञ्' प्रत्यय। अतः = नीचे। लोहवर्म = लौह-कवच, लोहस्य वर्म। परिधाय = धारण करके, 'परि+धा+ल्यप्'। सुवर्णसूत्र-ग्रथितोष्णीषस्या = सुवर्ण-तारों से कढ़ी हुई उष्णीष के, सुवर्गस्य सूत्रैः ग्रथितः यः उष्णीषः तस्य। अधस्तात् = नीचे। आयसं = लोह-निर्मित, अयस्+अण्। शिरस्त्राणं = सिर की रक्षा हेतु विशेष कवच। संस्थाप्य = रखकर, 'सम्+स्था+ल्यप्' सिंहनखनामकं शस्त्रविशेष = 'सिंहरख' नाम के विशिष्ट शस्त्र को। करयोः = हाथों में। आरोप्य = धारण कर, आङ्+रूप्+ल्यप्। दृढबद्धकटिः = जिसकी कमर कसकर बँधी है, दृढेन बद्धा कटिः यस्य सः, बद्धः-बध्+क्त। अपजलखान-साक्षात्काराय = अफजलखान के साक्षात्कार के लिए, अफजलखानस्य साक्षात्काराय। सज्जः = तैयार, 'षञ्ज्+क्त। तिष्ठति स्म = बैठा था।

टिप्पणी:— 'कमलेष्विव विकचतामासदयत्यु वीरवदनेषु' और 'भ्रमरा लिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि-पंक्तिषु' में क्रमशः 'वीरवदन' की उपमा-'कमल' से और 'असि-पंक्ति' की उपमा 'भ्रमर-पंक्ति' से देने के कारण उपमालंकार है।

अफजलखानोऽपि च - ''यदाऽहमेनं साक्षात्कृत्य, करताडनमेकं कुर्य्याम्, तदैव तालिकाध्वनि-समकालमेव अमुकामुकैः श्येनैरिवाऽभिपत्य पाशैरेष बन्धनीयः, सेनया च क्षणात् तत्सेना झञ्झया घनघटेवापनेया''। इति संकेत्य, सूक्ष्म-वसन-परिधानः, वज्रक-जटितोष्णीषिकः, गलविलुलित पद्मराग-मालः, मुक्ता-गुच्छ-चोचुम्ब्यमान-भालः, निश्वासप्रश्वास-परिमथित-मद्यगन्ध-परि-पूतितः-पार्श्व-देशान्तरालः, शोण-श्मश्रुकूर्च-विजित-नूतन-प्रवालः, कञ्चुक-स्यूत-काञ्चन-कुसुम-जालः, विविधवर्ण-वर्णनीय-शिविकामारुह्य निर्दिष्टपटकुटीराभिमुखं प्रतस्थे।

इतस्तु कुरङ्गमिव तुरङंग नर्त्तयन् रश्मिग्राह-वेषेण गौरसिंहेनाऽनुगम्यमानः माल्यश्रीक-प्रभृतिभिर्वीरवरैर्युद्ध-सज्जैः सतर्कं निरीक्ष्यमाणः शिवबीरोऽपि तस्यैव संकेतितस्य समागमस्थानस्य निकटे एव सव्यकरेण वल्गामाकृष्याऽश्वमवारुधत्।।

हिन्दी अनुवादः— और अफजलखान ने भी, 'जैसे मैं उससे (शिवाजी से) मिलकर एक बार ताली बजाऊँ, तभी ताली की ध्वनि के साथ ही अमुक-अमुक लोगों द्वारा बाज सदृश टुटकर उसे रस्सियों से बाँध लेना चाहिये, और सेना द्वारा क्षण भर में उसकी सेना को उसी प्रकार नष्ट कर देना चाहिये जिस प्रकार आँधी घनघटा को। ''यह संकेत करके, महीन कपड़े के परिधान धारण करके वाले हीरे जड़ी टोपी-धारण किये हुये, कण्ठ में पद्मराग मणियों की माला से शोभित, मुक्ता-गुच्छ द्वारा माथे का चुम्बन किये जाते हुये, श्वास-प्रश्वास के कारण निसृत शराब की गन्ध से जिसके समीप के भाग पूर्ण हैं, रक्त दाढ़ी-मूछों से नये पत्तों (की शोभा) को विजित किये हुये, सौवर्णिक पुष्प-समूह से युक्त कंचुक धारण किये हुये (अर्थात् सुवर्ण तारों के कढ़े हुये कंचुक को धारण किये हुये), विविध वर्णों वाली वर्णन के योग्य पालकी पर चढ़कर पूर्व निश्चित तम्बू की ओर चल पड़ा।

इधर हरिण-सदृश घोड़े को नचाते हुये, सारथि के वेष में गौरसिंह द्वारा अनुगमन किये जाते हुये, युद्ध के लिये तैयार माल्यश्रीक आदि श्रेष्ठ वीरों के द्वारा सतर्कता पूर्वक देखे जाते हुये, शिवाजी ने उसी संकेतिक मिलने के स्थान के निकट ही बायें हाथ से लगाम खींचकर अश्व को रोका।

हिन्दी व्याख्या:— अपजलखानोऽपि च = और अफजखान ने भी। यदाहम् = जैसे ही मैं। एनं = शिवाजी को। साक्षात्कृत्य = मिलकर, साक्षात्+कृ+ल्यप्। करताडनं = ताली, करयोः ताडनं (तत्पु0)। कुर्याम् = करूँ। तदैव = तब ही। तालिकाध्वनि-समकालम् = ताली की ध्वनि के समय ही, तालिकायाः ध्वनेः समकालं। अमुकामुक = अमुक-अमुक, अफजलखान ने कुछ व्यक्तियों को शिवाजी पर आक्रमणार्थ नियुक्ति किया था। श्येनैरिव = बाज के समान। अभिपत्य = टूटकर अर्थात् आक्रमण करके, अभि+पत्+ल्यप्। बन्धनीय = बांध लेना चाहिए, बन्ध्+अनीयर्। तत्सेना = उसकी सेना, तस्य सेना। झञ्झया = आँधी से। घनघटा = सावन मेघ-माला, घना चासौ घटा (कर्मधा0) घटा = मेघों की पंक्ति। अपनेया = समाप्त कर दी जानी चाहिये, अप+नी+यत्+टाप्। इति संकेत्य = इस प्रकार बताकर। सूक्ष्म-वसन-परिधानः = महीन वस्त्रों को धारण करने वाला, सूक्ष्माणि वसनानि तेषाम् परिधानानि यस्य सः इति सूक्ष्मवसनपरिधानः (बहुव्रीहि), वसन = वस्त्र, वस्+ल्युट् (भावे), परिधान = सिले हुए वस्त्र, परि+धा+ल्युट्। वज्रक-जटि-तोष्णीषिकः = हीरे जटिल उष्णीय को धारण करने वाला, वज्रकेण जटितः उष्णीषः यस्मिन् सः (बहुव्रीहि), वज्रकजटिततोष्णीषः+ठन्=वज्रकजटिततोष्णीषिकः। गल-विलूलित-पद्मराग-मालः = गले में पद्मराग मणियों की माला से सुशोभित, गले विलुलिता पद्मरागाणां माला यस्य सः, विलुलित = सुशोभित। मुक्तागुच्छ-चोचुम्ब्यमानभालः = मुक्ता-गुच्छा से जिसका मस्तक चूमा जा रहा है, मुक्तानां गुच्छेन चोचुम्ब्यमानः भालः यस्य सः (बहुव्रीहि)। चोचुम्ब्यमान = चुम्बित, 'चुबि+यङ्+शानच्'। निश्वास-प्रश्वासपरिमथित-मद्य-गन्ध-परिपूरित- पार्श्वदेशान्तरालः = श्वास-प्रश्वास के कारण मदिरा की गन्ध से जिसके समीप के भाग परिपूर्ण थे, रत्युत्सव में मदिरा-पान के कारण यवन सैनिकों के मुख से दुर्गन्ध निकल रही थी जिसके कारण समीवर्ती प्रदेश भी दुर्गन्धयुक्त हो रहे थे; निश्वास = श्वास लेना, प्रश्वास = श्वास निकालना, परिमथित = मथा गया, परि+मथ्+क्त, देशान्तरालः = मध्यभाग। शोण-श्मश्रु-कूर्च-विजित-नूतन-प्रवालः = जिसने रक्तवर्ण मूँछ और दाढ़ी से नवीन पत्र को तिरस्कृत कर दिया है, शोणौ श्मश्रुकूर्चौ ताभ्यां विजितं नूतनं प्रवालं येन सः (बहुव्रीहि), विजित = वि+जि+क्त। कञ्चुक-स्यूत-काञ्चन-कुसुम-जालः = सौवर्णिक पुष्पों के समूह से युक्त कञ्चुक है जिसका, काञ्चुकेन स्यूतं काञ्चनानां कुसुमानां जालं यस्मिन् सः (बहुव्रीहि), स्यूत = स्यूञ्+क्त, काञ्चन सुवर्ग के काञ्चन+अण्। विविध-वर्ण-वर्णनीय-शिविकाम् = अनेक रंगों के कारण मनोहर पालकी पर, विविधानि वर्णानि तेभ्यः वर्णनीया शिबिका ताम्। आरुह्य = चढ़कर। निर्दिष्ट-पटकुटीराभिमुखं = निश्चित तम्बू की ओर, निर्दिष्टः यः पटकुटीरः तस्य अभिमुखं, निर्दिष्ट = निश्चित-निर+दिश्+क्त। प्रतस्थे = प्रस्थान किया, प्र स्था+लिट् लकार प्र0पु0 एकवचन, 'सम-प्र-विभ्यःस्थः' के अनुसार परस्मैपदी 'स्था' धातु के बाद आत्मनेपद आता है। इतस्तु = इधर, 'इदम्' शब्द से तसिल् प्रत्यय। नर्त्तयन् = नचाते हुये, नृप+णिच्+शतृ। रश्मिग्राहवेषेण = सारथि के वेष में, रश्मि गृहएति यः सः रश्मिग्राहः, रश्मिग्राहस्य वेषः तेन इति रश्मिग्राहवेषेण (तत्पु0) अनुगम्यमानः = अनुगमन किया जाता हुआ, अनु+गम्+णिच्+शानच्। युद्ध-सज्जैः = युद्ध के लिये तैयार, युद्धाय सज्जाः तैः। निरीक्ष्यमाणः = निरीक्षण किये जाते हुये, निर्+ईक्ष्+णिच्+शानच्। समागमस्थानस्य = मिलने के स्थान के,

समागमस्य स्थानं तस्य (तत्पु0), समागम = सम्+आङ्+गम्+अप्। वल्गाम् = लगाम को। आकृष्य = खींच कर आङ्+कृष्+ल्यप्। अश्वम् = घोड़े को। अवारुधत् = रोका, अव+रुध् लङ लकार प्र0पु0 एकवचन।

टिप्पणी:— 1. 'अमुकामुकैः श्येनैरिवाऽभिपत्य' - यहाँ यवन सैनिकों की उपमा 'श्येन' से देने के कारण पूर्णोपमालंकार है।

2. तत्सेना झञ्झया घन-घटेवाऽपनेया'- यहा यवन-सेना के लिये 'झञ्झया' और मराठी सेना के लिए 'घनघटा' उपमान प्रयुक्त हैं, अतः उममा है। कुरङ्गमिवतुरङ्ग' में भी उपमा है।

3. यहाँ व्यास जी ने दीर्घ-समास-शैली का प्रयोग किया है।

4. प्रथम खण्ड से धनी यवनों की वेशभूषा का परिचय मिलता है।

ततस्तु, इतोऽश्वात् शिववीरः, ततस्तु शिविकातोऽजलखानः अपि युगपदेवावाऽतरताम्, परस्परं साक्षात्कृत्य च, उभावप्युत्सुकाभ्यां नयनाभ्याम्, सत्वराभ्यां पादाभ्याम्, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण वदनेन, आश्लेषाय प्रसारिताभ्यां च हस्ताभ्यां कौशेयास्तरण-विरोचितायां बहिर्वेदिकायां धावमानौ परस्परमलिलिंगतुः।

शिववीरस्तु आलिंगन-च्छलेनैव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं गृहीत्वा सिंहनखैर्जत्रुणी कन्धरां च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटि-प्रदेश समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽपोथयत्।

हिन्दी अनुवाद:— इसके बाद इधर घोड़े से शिवाजी और पालकी से अफजलखान भी साथ ही उतरे और परस्पर एक-दूसरे को देखकर, दोनों ही उत्सुक नयनों से, तीव्र पादक्षेपों से, पुनः-पुनः 'स्वागत' कहने में तत्पर मुख से, आलिङ्गन के लिये फैलाये हुये हाथों से, रेशमी चादर से सुशोभित बाहर के चबूतरों पर दौड़ते हुये एक-दूसरे को अलिंगन किया।शिवाजी ने तो अलिङ्गन-ब्याज से ही अपने हाथों से उसके कान्धों को दृढ़ता से पकड़ कर सिंहनखों के कन्धे के जोड़ों के और ग्रीवा को चीर डाला। और रुधिर से व्याप्त उसके शरीर को कटि भाग तक उठाकर भूमि पर पटक दिया।

हिन्दी व्याख्या:— शिविकातः = पालकी से, 'शिविका' से पञ्चम्यर्थ में 'तसिल' प्रत्यय। युगपदेव = साथ ही साथ। अवातरताम् = उतरे (शिवाजी और अफजलखान), अव+तृ+लङ् लकार (प्र0पु0द्वि0व0)। परस्परं साक्षात्कृत्य = एक-दूसरे को देखकर। उत्सुकाभ्यां नयनाभ्यां = उत्सुक नेत्रों से। सत्वराभ्यां पादाभ्यां = तीव्र गति से। स्वागताऽऽम्रडेनतत्परेण = पुनः-पुनः 'स्वागत' 'स्वागत' कहने में तत्पर, स्वागतस्य आम्रडेनम् तस्मिन् तत्परस्तेन' (तत्पु0)। आश्लेषाय = आलिङ्गन के लिये, आङ्+श्लिष्+अच्- (च0 एकवचन)। प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्यां = फैलाये हुये हाथों से, प्रसारिताभ्यां = प्र+सृ+णिच्+क्त (तृ0द्वि0व0)। कौशेयास्तरण-विरोचिताय = रेशमी चादर से सुशोभित, कौशेयं च तत् अस्तरं तेन विरोचिता तस्याम्। धावमानौ = दौड़ते हुये, धाव्+शानच्। आलिलिंगतुः = आलिङ्गन किया, आङ्+लिङ्ग+लिट् लकार (प्र0पु0द्वि0व0)। आलिङ्गच्छलेन = आलिङ्गन के व्याज से, आलिङ्गनस्य छलेन (तत्पु0)। स्वहस्ताभ्यां = अपने हाथों से। तस्य स्कन्धौ = उसके कन्धों का। दृढ़-गृहीत्वा = दृढ़तापूर्वक पकड़कर, दृढेन गृहीत्वा (त0पु0), गृहीत्वा = ग्रह+त्वा। सिंहनखैः = सिंहनख नामक शस्त्र विशेष से। जत्रुणी = कन्धे के जोड़। कन्धरां = ग्रीवा को। व्यपाटयत् = चीर डाला, वि+पट+लङ् लकार (प्र0पु0 एकवचन)। रुधिरदिग्धं = लहू से लथपथ, रुधिरेण दिग्धं (तत्पु0), दिग्ध-दिह्+क्त। तच्छरीरं = उसके शरीर को तस्य शरीरं इति तच्छरीरं। कटि-प्रदेशे = कटि भाग तक। समुत्तोल्य =

उठाकर, सम्+उत्+तुल्+ल्यप्। भूपृष्ठे = पृथ्वी पर। अपोथयत् = पटक दिया, 'पुथ-लङ् लकार (प्र0पु0 एकवचन)।

तत्क्षणादेव च शिववीरध्वजिन्यां महाध्वज एकः समुच्छितः। तत्सम-कालमेव यवन-शिविरस्य पृष्ठस्थिता शिववीर-सेना शिविरमग्निसात्कृतवती, पुरःस्थितसेनासु च अकस्मादेव महाराष्ट्र-केसरिणः समपतन्। तेषां 'हरहर-महादेव' गर्जनपुरस्सरं छिन्धि-भिन्धि-मारय-विपोथय इति कोलाहलः, प्रत्यार्थिनां च 'खुदा-तोबा-अल्लादि' पारस्य-पदमयः-कलकलो रोदसी समपूरयत्।

हिन्दी अनुवादः— उसी समय शिवाजी की सेना में एक महाध्वज फहराया और उसके साथ ही यवन शिविर के पीछे स्थित शिवाजी की सेना ने शिविर में आग लगा दी और सामने स्थित सेनाओं पर अकस्मात ही महाराष्ट्र के सिंहों ने अर्थात् सिंह सदृश महाराष्ट्रीय वीरों ने आक्रमण कर दिया। उनके 'हरहर-महादेव' इस गर्जन के साथ ही छेदन करो, भेदन करो, मारों, पटको इस कोलाहल से तथा शत्रुओं के 'खुदा-तोबा-अल्लाह' आदि फारसी शब्दमय कोलाहल ने आकाश और पृथ्वी को भर दिया।

हिन्दी व्याख्याः— तत्क्षणादेव च = और उसी समय। शिववीर-ध्वजिन्यां = शिवाजी की सेना में, शिववीरस्य ध्वजिनी तस्याम् (षष्ठी तत्पु0), ध्वज+इनि+ङीप = ध्वजिनी। एकः, महाध्वजः महान् ध्वज, महन् चासौ ध्वजः महाध्वजः (कर्म0)। समुच्छितः = फहराई, सम्+उत्+श्रि+क्त। तत्समकालमेव = ध्वजा फहराने के साथ ही। यवन-शिविरस्य = यवन-शिविर के, यवनानां शिविरस्य (षष्ठी तत्पु0)। पृष्ठस्थिता = पीछे स्थित, पृष्ठे स्थिता या सा (बहुव्रीहि), स्थिता = स्था+क्त+टाप्। शिववीरसेना = शिवाजी की सेना ने, शिव वीररस्य सेना (तत्पु0)। शिविरम् = शिविर के। अग्नि-सात्कृतवती = जला दी, 'अग्नि+सात्+कृ+क्तवतु+ङीप्'। पुरःस्थित-सेनाषु = आगे स्थित सेनाओं पर, पुरः स्थितः सेनाः तासु। महाराष्ट्र-केसरिणः = महाराष्ट्र के सिंह अर्थात् सिंह-तुल्य वीर सैनिक, महाराष्ट्रस्य केसरिणः। समपतन् = टूट पड़े, सम्+पत्+लङ् लकार (प्र0पु0 एकवचन)। तेषां = उनके अर्थात् मराठों के। 'हरहर-महादेव' गर्जनपुरस्सरम् = 'हरहर महादेव' इस कथन पूर्वक। छिन्धि = छिद् लोट् लकार (म0पु0 एकवचन)। भिन्धि = भिद् लोट् लकार। मारय = मारो, मृ लोट् लकार (उ0पु0 एकवचन)। विपोथय = पटको, वि+पुथ्, लोट् लकार (म0पु0 एकवचन)। इति कोलाहलः = इस कोलाहल ने। च प्रत्यर्थिनां = और शत्रुओं के, अर्थिन् = जो उद्देश्य प्राप्त सिद्ध करना चाहे, प्रत्यर्थिन् = जो उद्देश्य प्राप्ति में बाधक हो अर्थात् शत्रु। 'खुदा-तोबा-अल्लादि' पारस्यपदमयः = खुदा, तोबा, अल्लाह आदि फारसी शब्दमय, पारस्यस्य पदमयः। कलकलः = कोलाहल ने। रोदसी = आकश और पृथ्वी को। समपूरयत् = परिपूर्ण कर दिया, 'सम्+पूर्, लङ् लकार'।

ततो यवन- सेनासु शतसः सादिनः, गगनं चोचुम्ब्यमानाः, कृत-दिगन्त प्रकाशाः कडकडा-ध्वनि-धर्षितप्रान्त-प्रजाःउड्डीयमान-दनदह्यमान-परस्सहस्र-पटखण्ड-विहित-हैम-विहङ्गम-विभ्रमाः ज्योतिरिङ्गणायित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग-रिङ्गित-पिङ्गीकृतप्रान्ताः दोधूयमान-धूम-घटा-पटल-परिपात्यमान-भसित सितीकृतानोकहाः, सकलकलध्वनि पलायमानै-पतत्रिपटलैरिव सोसूच्यमानाः शिविरघस्मरा ज्वालामाला अवलोक्य, सहाहाकारं तदभिमुखं प्रयाताः अपरे च महाराष्ट्रऽसि-भुजाङ्गिनीभिः दन्दश्यमानाः, केचन ''त्रायस्व, त्रायस्व'' इति साम्रेडं व्याहरमाणाः पलायमानाः, अन्ये

धीरा वीराश्च- ''तिष्ठत रे तिष्ठत धूर्तधुरीणाः! महाराष्ट्रहतकाः ! किमिति चौरा इव लुण्ठका इव दस्यव इव च यवनसेनापतिनाक्राम्यथ ? समागच्छत सम्मुखम्, यथा शाम्येदस्मच्चन्द्रहासाः नां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्र-रुधिराऽऽस्वाद-तृषा'' इति सक्ष्वेडं सङ्गर्ज्य, युद्धाय सज्जाः समतिष्ठन्त। तेषां चाऽश्वानां सव्यापसव्यमार्गैः खुरक्षण्णा व्यदीर्यत वसुधा। खड्ग खटखटाशब्दैः सह च प्रादुरभूवन् स्फुलिङ्गा। रुधिरधाराभिः जपासुमनस्समाच्छन्न्मिवात्रभूद्रणाङ्गणम्।

हिन्दी अनुवादः— तब यवन सेना के सैकड़ों घुड़सवार, आकाश को छूने वाली, दिशाओं को प्रकाशित कर देने वाली, 'कड़-कड़' की ध्वनि से निकट के प्रजा को भयभीत कर देने वाली, उड़ने और जलने वाले हजारों पटखण्डों स सोने के पक्षियों का भ्रम पैदा करन वाली, जुगनू के समान करोड़ों स्फुर्लिङ्गों (चिन्गारियों) के उड़ने से प्रान्तभाग को पीला बना देने वाली, ऊपर उठती हुई (काँपती हुई) धूम-घटाओं से चारों ओर बिखेरी जा रही भस्म से वृक्षों को सफेद बना देने वाली, कल-कल ध्वनि के साथ भागते हुये पक्षियों से मानो जिसकी सूचना दी जा रही है, ऐसी शिविर का जला देने वाली अग्नि की ज्वालाओं को देखकर, हाहाकार करते हुए उसी ओर दौड़ पड़े। दूसरे यवन सैनिक मराठों की तलवार रूपी सर्पिणी से डसे जा रहे थे, कुछ ''रक्षा करो रक्षा करो'' कहते हुए भाग रहे थे, अन्य कुछ धैर्यशाली वीर- ''रुको, ऐ धूर्त राजों! रुको, दृष्ट मराठों ! क्यों चोरों की तरह, लुटेरों की तरह और डाकुओं की तरह सेनापति पर आक्रमण कर रहे हो ? सामने आओ, जिससे हमारी तलवारों की बहुत दिन से बढ़ी हुई मराठों के खुन की पिपासा शान्त हो।'' ऐसा कहकर सिंहनाद पूर्वक गरज कर युद्ध के लिये तैयार हो गये।

उनके घोड़ों के दाहिने-बायें मार्गों के आश्रमण से (पैतरे बदलने से) खुरों से खुदी हुई पृथ्वी फट गई। तलवारों के खटखट शब्दों के साथ अग्नि की चिन्गारियाँ निकलने लगीं। खून की धारा से युद्धभूमि जपा कुमुम से आच्छन्न् हुई-सी (लाल) हो गई।

हिन्दी व्याख्या:— यवसेनासु = यवन सेना में। सादिनः = घुड़सवार। चोचुम्ब्यमानाः = बार-बार चूमने वाली, 'चुबि+यङ्+शानच्'। कृतदिगन्त-प्रकाशाः = जिससे दिशायें प्रकाशित कर दी गई हैं, 'कृतः दिगन्तस्य प्रकाशोयाभिस्ताः (बहुव्रीहि)'। कडकडाध्वनिधार्षिलप्रजाः = 'कड़कड़' की ध्वनि समीप के लोगों को भयभीत कर देने वाली, धर्षि भयभीत, प्रान्त = निकट के। 'कडकडेति ध्वनिना धर्षिताः प्रान्तस्य प्रजाः याभिस्ताः'। उड्डीयमान.....विभ्रमाः = उड़ने व जलने वाले हजारों वस्त्रखण्डों से सोने के पक्षी का भ्रम पैदा करने वाले। उड्डीयमान = उड़ते हुये। दन्दह्यमान = जलते हुये, 'दह+यङ्+शानच्', हैम = सुवर्ण के बने हुये, विभ्रम = भ्रम। ''उड्डीयमानैः दन्दह्यमानैश्च परस्सहस्त्रैः पटखण्डैः विहितः हैमनाम् विहंगमानाम् विभ्रमः, याभिस्ताः (बहुब्रीहि)''। ज्योतिरिङ्गणायित.....पिङ्गीकृतप्रान्ता = जुगनू के समान करोड़ों चिन्गारियों के उड़ने से प्रान्तभाग को पीला बना देने वाली। ज्योतिरिङ्गणायित खद्योत (जुगनू) के समान आचरण करने वाले, ''ज्योतिरिङ्ग+क्यच्+क्त', परस्कोटि = करोड़ों, 'पर सुट्+कोटि' पारस्कारादित्वात् सुट्। स्फुलिङ्ग = अग्निकण, रिङ्गित = उड़ना, पिङ्गीकृत = पीले किये गये, प्रान्त = निकट के भाग। ''ज्योतिरिङ्गणायितानाम् परस्कोटिनाम् स्फुलिङ्गनाम्, रिङ्गितैः पिङ्गीकृताः प्रान्तः याभिस्ता (बहुव्रीहि)''। दोधूयमान.....अनोकहाः = ऊपर को उठने वाली धूमलेखा समूह के चारों ओर बिखर जाने वाली भस्म से वृक्षों को सफेद बना देने वाली। दोधूयमान = कम्पन के सहित ऊपर उठने वाली, 'धू´+यङ्+शानच्' पटल = समूह,

परिपात्यमान = चारों ओर गिराये जाने वाले, 'पिरि+पत्'+णिच्+शानच्', भासित = भस्म (राख) सितीकृत = सफेद किये गये, न सितं तं सितं कृतमिति सितीकृतं, 'सित+च्वि+कृ+क्त', ''दोधूयमानानाम् धूमघटानाम् पटलेन परिपात्यमानैः भसितैः सितीकृताः अनोकहाः याभिस्ताः (बहुव्रीहि)''। सकलकलध्वनिपलायमानैः = कल-कल ध्वनि के साथ उड़ने वाले। पतत्रिपटलैः = पक्षी समुदायों के, पतत्रि पक्षी। इव = समान। सोसूच्चयमानाः = बार-बार सूचना देने वाली, सूच+यङ्+शानच्'। शिविरघस्मरा = शिविर को जलाने वाली। ज्वालामाला = ज्वालाओं की माला। अवलोक्य = देखकर। सहाहाकारम् = हाहाकार के साथ। तदभिमुखम् = उसी ओर। प्रयाताः = चल पड़े, 'प्र+या+क्त'। महाराष्ट्रासिभुजाङ्गिनीभिः = मराठों की तलवार रूपी सर्पिणी के द्वारा, 'महाराष्ट्राणामस्य एवं भुजङ्गिन्यन्ताभिः'। दन्दश्यमानः = विशेष रूप से डसे जाने वाले, 'दंश्+यङ्+शानच्' (भृशं दश्यमानाः)। व्याहरमाणाः = कहते हुए 'वि+आ+हृ+शानच्'। पलायमानाः = भागते हुए। तिष्ठत = रुको। धुर्तधुरीणाः = धूर्तराजों। धूर्तेषु धुरीणाः (तत्पु0)। महाराष्ट्रहतकाः = दुष्ट मराठों। लुण्ठकाः इव = लुटेरों की तरह। दस्यव इव = डाकुओं की तरह। आक्राम्यथः = आक्रमण करते हो। समागच्छत = आओ। शाम्येत् = शान्त हो सके। अस्मच्चन्द्रहासानाम् = हम सब की तलवारों की। चिरप्रवृद्धा = बहुत दिनों से बढ़ी हुई। महाराष्ट्ररुधिरास्वादतृषा = मराठों के खून के स्वाद की प्यास, ''महाराष्ट्राणाम् रुधिराणाम् आस्वादस्य तृषा (तत्पु0)''। सक्ष्वेडम् = सिंहानाद पूर्वक, 'क्षवेडातु सिंहनादः' (अमरकोष)। संगर्ज्य = गर्जना करके। समतिष्ठन्त = खड़े हो गये। सव्यापसव्यमार्गैः = दाये-बायें पैंतरे बदलने से। खुरक्षण्णा = खुरों से खुदी हुई, 'खुरैःछण्णा इति'। व्यदीर्यत = फट गई। खड्ग खटखटाशब्दैः = तलवारों के खट-खट शब्दों से। प्रादुरभूवन् = पैदा हुए। जपासुमनस्समाच्छन्नम् = जपा कुसुमों से आच्छादित। रणांगणम् = युद्ध-क्षेत्र।

टिप्पणी:— 1. शिविर को प्रज्वलित करने वाली ज्वाला का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है।

2. इस खण्ड में रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा और अनुप्रास अलंकार।

तदवलोक्य गौरसिंहो मृतस्याऽपजलखानस्य शोणितशोणम् शोणं शरीर प्रलम्बवेणु-दण्डाग्रेषु बद्धवा समुत्तोल्य सर्वान् संदर्श्य सभेरीनादं घोषितवान् यद्- ''दृश्यताम्, दृश्यतामितो हतोऽयं यवन-सेनापतिः, ततश्चाऽग्निसात्कृतानि ससकल-सामग्री-जातानि-शिविराणि परितश्च बहूनि विनाशितानि यवनवीर-कदम्बकानि, तत्किमिति अवशिष्टा यूयं मुधा बकगृध्र-श्रृगालानां भोज्याः संवर्तध्वे ? शस्त्रणि त्यक्त्वा पलायध्वम् पलायध्वम्, यथा नेयं भूः कदुष्णैः भवतां सद्यश्छिन्न्-कन्धरा-गलद्रुधिर-प्रवाहै-र्भवद्रमणीनां च कज्जल मलिनैर्बाष्प-पूरैरार्द्रा भवेद्'' इति। तदवधार्य, दृष्ट्वा च रुधिरदग्धं क्रीडापुत्तलायितं स्वस्वामिशरीरं, सर्वे ते हतोत्साहा विसृज्य शस्त्राणि कान्दिशीका दिशो भेजुः। ससेनः शिववीरश्च विजयशङ्खनादैः रोदसी सम्पूर्य रणाङ्गणशोध-नाधिकारम्। माल्यश्रीकाय समर्प्य, प्रतापदुर्गम् प्रविश्य मातुः चरणौ प्रणानाम।

हिन्दी अनुवाद:— यह देखकर गौंरसिंह ने मरे हुए अफजल खाँ के रक्त से लथपथ लाल शरीर को लम्बे बाँस के डण्डे के अग्रभाग में बाँधकर, ऊपर उठा कर सभी को दिखाकर भेरीनाद के साथ घोषणा कर दी-''देखो, देखो, इधर यह (अफजल खाँ) यवन सेनापति मार डाला गया है

और उधर सम्पूर्ण सामग्रियों के साथ शिविर भी जला दिये गये हैं, चारों ओर अनेकों यवन सैनिकों की टुकड़ियाँ नष्ट कर दी गई हैं, तो क्यों शेष बचे हुए तुम सब व्यर्थ में बगुलों, गीधों और श्रृंगालों के भोजन बनते हो ? शस्त्र छोड़कर भागों, भागों, जिससे कि यह भूमि तुम्हारी तुरन्त ही कटी गर्दन से बहने वाली गरम-गरम खून की धाराओं से और तुम सबकी स्त्रियों के कज्जल से मलिन अश्रु-प्रवाहों से गीली न हो।'' यह सुनकर और खून से लथपथ, खिलौना बनाई हुई अपने स्वामी के शरीर को देखकर, वे सभी हतोत्साहित होकर शस्त्रों को छोड़कर भयभीत हुए चारों ओर भागने लगे।सेना के साथ वीर शिवाजी विजय-शंखनाद से पृथ्वी और आन्तरिक को पूरित करके; युद्ध-स्थल की सफाई का काम माल्यश्रीक को समर्पित करके; प्रतापदुर्ग में प्रवेश करके, माता के चरणों में प्रणाम किया।

हिन्दी व्याख्या:— मृतस्य = मरे हुए। शोणितशोणम् = खून से लाल। शोणम् = लाल (शरीर)। प्रलम्बवेणुदण्डाग्रेषु = लम्ब बांसों के डण्डों के अग्रभाग में, ''प्रलम्बानाम् वेणुदण्डानामग्रेषु (तत्पु0)''। समुत्तोल्य = ऊपर उठा कर, 'सम्+उत्+तुल+ल्यप्'। संदर्श्य = दिखाकर, 'सम् + दृश्+णिच्+ल्यप् (प्रेरक धातु)। सभेरीनादम् = भेरी नादपूर्वक अर्थात् डुग्गी पिट कर। अग्निसात्कृतानि = जला दिये गये हैं, 'अग्नितुल्यं कृतानीति अग्निसात्कृतानि' ससकल-सामग्रीजातानि-शिविराणि = सम्पूर्ण सामग्री से युक्त शिविरों को ''सकलै सामग्री जातैः सहिसानि शिविराणि इति''। विनाशितानि = नष्ट कर दिये गये हैं। यवनवीर-कदम्बानि = यवन सैनिकों के कदम्ब (समूह)। अवशिष्टाः = बचे हुए। मुधा = व्यर्थ में। बकगृधश्रृगालानाम् = बगुले, गीधों और श्रृगालों के। भोज्याः = खाद्य, 'भुज्+ण्यत्'। भक्षण से अतिरिक्त अर्थ में भोग्य बनता है। संवर्तध्वे = हो रहे हो, 'सम्+वृत+लृट् (ध्वं)'। त्यक्त्वा = छोड़कर, 'त्यज् क्त्वा'। पलायध्वं = भाग जाओ। कदुष्णैः = कुछ-कुछ गरम, 'इषद् उष्णैः'। सद्यः = शीघ्र ही। छिन्नकन्धरागलद्रुधिरप्रवाहैः = कटी गर्दन से निकल रहे रुधिर प्रवाहों से, छिन्न् = कटी हुई, कन्धरा गर्दन, गलत् = निकलते हुये, रुधिर खून, प्रवाह = धारा। 'छिन्नभ्यः कन्धराभ्यः गलन्तः रुधिराणां प्रवाहास्तैः (तत्पु0)', 'छिद्र+क्त=छिन्न्'। भवद्रमणीनाम् = आपकी स्त्रियों के, 'भवताम् रमणीनाम् इति'। कज्जलमलिनैः = काजल से मलिन। वाष्पपूरैः = आँसुओं के प्रवाहों से। आर्द्रा = गीली। तदवधार्य = यह सुनकर, अवधार्य = 'अव+धृ+ल्यप्'। दृष्ट्वा = देखकर। रुधिरदिग्धं = खून से लथपथ, 'रुधिरेण दिग्धम्', 'दिह+त्त'। क्रीड़ापुतलायितम् = खेल के लिये बनाई गई कपड़े आदि की पुत्तलिका (पुतली) के समान, 'क्रीड़ा पुत्तलमिव आचरितम् इति क्रीड़ा पुत्तलायितम्'। स्वस्वामिशरीरम् = अपने स्वामी के शरीर को, 'स्वस्य स्वामिनः शरीरम्'। हतोत्साहाः = उत्साह हीन, 'हतः उत्साहः येषां ते'। विसृज्य = छोड़कर, 'वि+सृज्+ल्यप्'। कान्दिशीका = भयभीत, 'कान्दिशोकोभयद्रत्तः' (अमरकोष)। दिशः = दिशाओं को। भेजुः = सेवित किया अर्थात् चारों ओर भागने लगे।

ससेनः = सेना सहित, 'सेनय सहितः (तत्पु0)'। विजयशङ्खनादैः = विजय की शङ्ख ध्वनि से। रोदसी = आकाश और पृथ्वी। सम्पूर्य = भरकर। रणाङ्गणशोधनाधिकारम् = रणभूमि के शुद्ध (साफ) करने के अधिकार को ''रणस्य-अङ्गणस्य शोधनस्य अधिकारस्तम्' (तत्पु0)। समर्प्य = समर्पित करके, 'सम्+अर्प+ल्यप्'। प्रविश्य = प्रवेश करके। मातु = माता के। चरणौ = चरणों को। प्रणनाम = प्रणाम किया।

टिप्पणी:— ''क्रीडापुत्तलायितम्'' - खिलौने के समान। यहाँ पर लप्लोपमा अलंकार है।

अभ्यास प्रश्न -4

1- शिवाजी किसको आदेश देकर, अपने शयनागार में प्रवेश किये ?

2- शिवाजी रेशमी कुर्ते के अन्दर क्या पहने थे ?

3- शिवाजी की सेना में क्या फहराया गया ?

4- शिवाजी ने किससे ग्रीवा को चीर डाला ?

5- शिवाजी ने अफजल खान के शरीर को किस पर पटक दिया ?

6.4 सारांश

इस इकाई में आपने तानरंग की प्रभा से वशीभूत होकर अफजल खाँ द्वारा तानरंग को सम्मान करने का वर्णन, अफजल खाँ का तानरंग के साथ वार्तालाप, अफजल खाँ द्वारा गौरसिंह की गान को सुनकर सभा में बैठे हुए लोगों के अत्यन्त प्रसन्न हो जाने और प्रसन्न हुए अफजल खाँ के साधुवादपूर्वक (सुवर्ण) कंगन का पुरस्कार देने पर तानरंग ने भी प्रसन्नतापूर्वक तानपूरे को भूमि में रखकर अफजल खाँ की गुणग्राहिता की प्रशंसा की।

इसी क्रम में शिवाजी को विजयपुर के नरेश कहते हैं कि -''वीर हमारे साथ युद्ध की इस नवीन चंचलता का परित्याग कर दो, तुम्हारी अपेक्षा हम अत्यधिक शक्तिशाली हैं, यहाँ कोष अत्यधिक है, बड़ी सेना है, अनेक दुर्ग हैं, बहुत वीर हैं। यदि अपना शुभ चाहते हो तो सम्पूर्ण चंचलता और शस्त्र को दूर से छोड़कर, कर देना स्वीकार करके, मेरी सभा में आओ। मुझसे पद प्राप्त किये हुये (तुम) चिरकाल तक जीवित रहोगे, अन्यथा दुर्दशा के साथ मारे गये कथामात्र अवशेष रहोगे। इसलिये केवल तुम पर दया के कारण ही सन्देश भेज रहा हूँ, (इसे) स्वीकार करो। वृद्धा माँ की रजत-सदृश श्वेता बरौनियों को अश्रु-प्रवाह रूपी दुर्दिन में मत गिराओ।''

शिवाजी ने अफजल खाँ को मार कर सेना के साथ विजय-शंखनाद से पृथ्वी और आन्तरिक को पूरित करके, युद्ध-स्थल की सफाई का काम माल्यश्रीक को समर्पित करके, प्रतापदुर्ग में प्रवेश करके, माता के चरणों में प्रणाम किया।

6.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
आगम्यताम्	आइये
आस्यताम	बैठिये
कथयत्सु	कहने पर
सादरम्	आदरपूर्वक
दक्षिणहस्तेन	दाहिने हाथ से
यथानिर्दिष्टम्	संकेतित,
स्थानम्	स्थान पर
अलञ्चकार	बैठ गया
इतरगायकेषु	अन्य गायकों के'
सासूयम्	असूयापूर्वक
तम्	तानरंग को
आलोकयत्सु	देखने पर

आलापः	वार्तालाप
किन्देशवास्तव्यः	किस देश के रहने वाले
एतावद	इतना
अतितराम्	अत्यधिक
पारिषदेषु	सभासदों के,
ससाधुवादम्	साधुवाद पूर्वक
वितीर्णकङ्कणे	कंकण से पुरस्कृत कर देने पर
सप्रसादम्	प्रसन्नतापूर्वक
संस्थाप्य	रखकर
भूमौ	भूमि में
गुणग्राहिताम्	गुणग्राहकता
प्रशंशस	प्रशंसा की
मैरेयमदविवशताम्	शराब की मद की विवशता को
वहन्	धारण किये हुए
कथ्यताम्	कहिए
भवादृशानाम्	आप सदृश लोगों के
गुणःग्राहकाः	गुण ग्रहण करने वाले
मर्म	रहस्य को
अवगच्छन्ति	जानते हैं
पिष्ट्वा	पीसकर, 'पिश्'
वेदपुस्तकानि	वेदग्रन्थ, वेद चार हैं
विदार्य	फाड़कर
आर्यवंशीयान्	आर्यवंश के लोगों को
यवनीकुर्वन्ति	मुसलमान बनाते है
बद्धवा	बाँधकर
लालाटिकताम्	दासता को
अङ्गीकुर्याम्	स्वीकार करूँ
कुलकलंकं	कुल के कलंक
मृतस्य	मरे हु
शोणितशोणम्	खून से लाल
शोणम्	लाल (शरीर)
प्रलम्बवेणुदण्डाग्रेषु	लम्ब बांसों के डण्डों के अग्रभाग में, समुत्तोल्य
विनाशितानि	नष्ट कर दिये गये हैं
यवनवीर-कदम्बानि	यवन सैनिकों के कदम्ब (समूह)
अवशिष्टाः	बचे हुए।

6. 6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास -1

1 - अफजल खाँ के द्वारा शिववीर सन्धि वार्ता के बहाने बुलाया जायेगा।

2 - महाराष्ट्र देश बड़ा दुर्गम है।

3- अफजल खाँ विजयपुर के सुल्तान की सभा में-''शिव के साथ लडेगा।

4- अफजल खाँ विजयपुर के सुल्तान की सभा में-''शिव के साथ लडेगा

5- तानरंग गौरसिंह के रूप में गायक था।

अभ्यास -2

1 - गौरसिंह तीन वर्ष पूर्व काशी में गंगा में स्नान किया।

2- उज्जैन देश के क्षत्रिय वंशों से अलंकृत भोजपुर देश को देखा।

3- गौरसिंह पाटलिपुत्र नगर को पार करके, सीताकुण्ड गया।

4- अफजल खाँ ने गौरसिंह को पुरस्कार में कड्गन दिया।

5- अफजल खाँ की गुणग्राहिता की प्रशंसा गौरसिंह ने की।

अभ्यास -3

1- शिववीर सामान्य राजा के नौकर का लड़का था।

2 - स्वर्णदेव शिववीर का साथी था।

3- तोरण दुर्ग इन्द्र के महल के समान था।

4- प्रतापदुर्ग में गोपीनाथ भोजन करके एक चाँदी के पलंग पर बैठे थे।

5- शिववीर धीरे से जाकर, गोपीनाथ को प्रणाम करके बैठ गये।

अभ्यास -4

1- शिवाजी भी अन्य सेनापतियों को यथायोग्य आदेश देकर, अपने शयनागार में प्रवेश किये ?

2- शिवाजी रेशमी कुर्ते के अन्दर लौह-कवच पहने थे।

3-- शिवाजी की सेना में एक महाध्वज फहराया गया।

4- शिवाजी ने सिंहनखों से ग्रीवा को चीर डाला।

5- शिवाजी ने अफजल खान के शरीर को उठाकर भूमि पर पटक दिया।

6. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

6. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक

शिवराजविजय,अम्बिकादत्तव्यास,चौखम्भा संस्कृत, भारती वाराणसी

6. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गोपीनाथ के विषय में परिचय दीजिये।

2. तानरंग कौन था इसके विषय में परिचय दीजिये।

3. गौरसिंह ने रागमाला गीत गाया इसके विषय में परिचय दीजिये

4. शिवाजी ने अफजल खान को कैसे मारा इसके विषय में परिचय दीजिये।